

❀ श्रीः ❀

हिन्दी अनुवाद सहित कारकान्त

पाणिनीयसिद्धान्तकौमुदी



महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाद दीक्षित





❀ श्रीः ❀

हिन्दी अनुवाद सहित कारकान्त

पाणिनीयसिद्धान्तकौमुदी



महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाददीक्षितेन विरचिता
सा च अनूद्य
तेनैव स्वयं प्रकाशिता



पुस्तकप्राप्तिस्थानम्

मोतीलाल बनारसीदास

चौक, नेपाली खपरा
पोस्ट बक्स ७५, वाराणसी

जवाहर नगर
दिल्ली–६

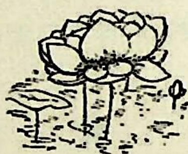
खेलाड़ीलाल बुक्सेलर
कचौड़ी गली, वाराणसी

चौखम्भा सिरीज
चौक, वाराणसी

इङ्गलिश वाले अथवा अनुपपन्न छात्रों अथवा लाइब्रेरी के उपकारार्थ

५०० प्रथमावृत्ति } संवत् २०१७ { मूल्यम् २)

प्रकाशक
म० म० पं० मथुराप्रसाद दीक्षित
१८२, अस्सी, वाराणसी



मुद्रक



भूमिका

भाषा की उत्पत्ति के विषय में विवादास्पद विविध मतों की सत्ता चाहे विद्वानों की विवेचना का विषय बना ही रहा हो, पर व्याकरण की उपयोगिता के विषय में सबका मतैक्य ही है। परन्तु आधुनिक पद्धति से यावज्जीव शुष्क व्याकरण के अध्ययन करने पर न तो संस्कृत साहित्य की समभिवृद्धि कोई कर सकता है, और न भाषा को परिष्कृत। 'द्वादशवर्षैस्तु व्याकरणमू अध्येयम्'—इस मत के पोषकों में से विरले ही ऐसे विशिष्ट व्यक्ति उपलब्ध हो सकेंगे जिनकी लेखनी विविध विषयों का समास्वादन करा सकी हो।

प्राचीन काल की पाठन परिपाटी के अनुसार संस्कृत व्याकरण के अध्यापन की वैज्ञानिक पद्धति अत्यन्त सुगम थी। अत एव इससे स्वल्प काल ही में व्याकरण विषयक परिज्ञान हो जाता था। वर्तमान कालिक प्रणाली के आधार पर यदि उस समय व्याकरण का अध्ययन किया जाता, तो जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, श्याम, अनाम, आदि सुदूर पूर्व देशों में संस्कृत भाषा का प्रचार तो दूर रहा, वह भारतवर्ष ही में त्रयोदश शताब्दी तक राजभाषा का पद न पा सकती।

महाभाष्यकार ने व्याकरण के अध्ययन की उपयोगिता पर कहा है कि व्याकरणस्य रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्।

इस उपरि निर्दिष्ट के परिशीलन करने से इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि व्याकरण का अध्ययन व्याकरण के लिये नहीं किन्तु वेद की रक्षा के लिये, विज्ञान और साहित्य की रक्षा के लिये तथा भाषा की रक्षा के लिये है। जीवित भाषा और मृत भाषा में अन्तर ही यह है कि जिसका अध्ययन साहित्य के अध्ययन के अनन्तर उसमें विशेषता के परिज्ञान के लिये किया जाय, वह जीवित भाषा है, और जिसका

व्याकरण के अध्ययन के अनन्तर उसके साहित्य का अध्ययन किया जाय वह मृत भाषा है। श्री भगवान् पतञ्जलि आदि का यह उद्देश्य कहीं भी नहीं झलकता कि व्याकरण का अध्ययन व्याकरण के लिये करना चाहिये, किन्तु उनका स्पष्ट मत है कि व्याकरण का अध्ययन वेदादि की रक्षा के लिये हो।

उस समय व्याकरण का वैज्ञानिक अध्ययन न तो भविष्य के गर्भ में ही अन्तर्हित था और न बालसुलभ दोषों से धूसरित ही था। निरुक्तकार यास्क ने भी नाम, सर्वनाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात का उल्लेख कर उपर्युक्त मत की परिपुष्टि-सी की है।

भगवान् पाणिनि के पूर्व गार्ग्य, शाकल्य, शौनक, आपिशली, शाकटायन, आदि अनेक वैयाकरणों का अस्तित्व अष्टाध्यायी के साक्ष्य पर प्रमाणित किया जा सकता है। वस्तुतः उस समय वैयाकरणों के दो सम्प्रदाय प्रचलित थे। एक का मत था कि कतिपय शब्दों का निर्माण धातुओं से हुआ है, और अवशिष्ट शब्दों का अस्तित्व मूल धातुओं के समान ही अत्यन्त प्राचीन है, दूसरा सम्पूर्ण शब्दों का उद्भव धातुओं से मानता था। इस सम्प्रदाय का नाम था श्री माहेश्वर सम्प्रदाय। इसका सिद्धान्त है कि सृष्टि की आदि में—शब्द दारिद्र्य-काल में—आदि मानव जाति ने जिन जिन चेष्टाओं से, जिन जिन भावभङ्गियों से अपने विचार व्यक्त किये थे, वे सब उनके क्रियाकलाप थे; उन्हीं से संकेतित—नाम सर्वनाम की उत्पत्ति हुई। इस अत्यन्त प्राचीन मत के अनुयायी पाणिनि, शाकटायन आदि का कथन है कि काल और लकार के निदर्शक मूल धातु से सम्पूर्ण शब्दों का (धातु से कृदन्त शब्दों का एवं कृदन्त शब्दों से तद्धित शब्दों का) निर्माण हुआ है।

संस्कृतधातुसहस्रद्वयेन प्रत्ययवशात् सर्वे शब्दा निर्मीयन्ते।

'सरस्वती'

श्री माहेश्वर सम्प्रदाय के अनुयायियों में महर्षि पाणिनि का स्थान इस समय अप्रतिम है। इसमें सन्देह नहीं है १४ सूत्रों से पाणिनिजी व्याकरण शास्त्र के (अष्टाध्यायी के) निर्माण में तब तक न सफल हो सके, जब तक इन्होंने नन्दिकेश्वर से इन सूत्रों का रहस्य न समझ लिया।

शलातुर (आधुनिक कटक) ग्रामनिवासी पातालविजय के प्रणेता दाक्षीपुत्र का समय निरूपण भी विवाद से खाली नहीं है। ऐतिहासिक गवेषणा के आधार पर इनकी विद्यमानता षष्ठ अथवा पंचम शताब्दी ईशवीय पूर्व में मानी जा सकती है। इन्होंने 'अष्टाध्यायी' नामक चतुःसहस्र सूत्रमय उस ग्रंथ रत्न की रचना की जिसकी आभा से दिग्दिगंत उज्ज्वलित हो उठा। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। सुदूर पूर्व देशों में भी इनके मत का अत्यधिक समादर हुआ।

सौ वर्ष के अनन्तर चतुर्थ शताब्दी ई० पू० में समुत्पन्न नन्द शासनकाल के अप्रतिम विद्वान् श्री वररुचि कात्यायन ने दो हजार वार्तिकों का एक परिशिष्ट जोड़कर इसकी पूर्णता प्रदर्शित कर दी।

तदनन्तर एक बृहत् समीक्षकों के समुदाय ने अष्टाध्यायी की आलोचना और प्रत्यालोचना स्वनिर्मित कारिकाओं द्वारा की है। इनमें से प्रमुख हैं—व्याधि, गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, वाजप्यायन पौष्कर सादि आदि।

तदनन्तर पुष्यमित्र कालिक (१८५-१७८ ई० पू०) योगसूत्र, चरक और महाभाष्य के प्रणेता भगवान् पतञ्जलि ने अनुपाततः आधे से अधिक सूत्रों में चरितार्थ वार्तिकों का प्रत्याख्यान कर अवशिष्ट की उपादेयता मानी है। महाभाष्य के गूढ़ार्थ विवेचन के लिए अनेक विद्वानों ने विभिन्न शैली से व्याख्या की जिनमें से प्रमुख ये हैं—

१. कैयट, २. नारायणशेष, ३. नृसिंह, ४. लक्ष्मण, ५. शिवरामेन्द्र सरस्वती, ६. सदाशिव, ७. भर्तृहरि।

इन महाभाष्य के टीकाकारों में भर्तृहरि का स्थान एक विशिष्ट महत्त्व रखता है, क्योंकि इसका अनुसरण करते हुए कैयट ने महाभाष्य प्रदीप की रचना की। नागोजी भट्ट ने भी भाष्यप्रदीपोद्योत नामक अभिनव व्याख्यान से इसे समलंकृत किया।

यह पद्धति व्याकरण विज्ञान के विकास में अधिक दुरूह ही प्रतिष्ठित हुई। अतः ६५० ईशवीय में वामन और जयादित्य ने काशिका नाम्नी नूतन वृत्ति का निर्माण किया और महाकवि भट्टि ने पाणिनीय सूत्रों के उदाहरण प्रदर्शन के लिये भट्टि महाकाव्य से 'रामयशोगाथा' का गान किया है, तदनन्तर एकादश ईशवीय शताब्दी में भोजदेव ने शब्दानुशासन की तथा चतुर्दश ईशवीय शताब्दी में सायणपुत्र माधव ने धातुवृत्ति की निर्मिति कर इसे पूर्ण विस्तृत कर दिया।

तदनन्तर श्री रामचन्द्राचार्य ने प्रक्रियाकौमुदी की रचना कर एक सुगम पद्धति चलाई जिसकी व्याख्या निरपेक्ष नीति से अनेक विद्वानों ने की। इनमें-से प्रमुख ये हैं—

१. वारणवनेश शास्त्री, २. जयन्त, ३. शेषकृष्ण, ४. विश्वनाथ दीक्षित, ५. विट्ठल, ६. विश्वकर्मा शास्त्री।

इसी समय प्रक्रियाकौमुदी में अपूर्णता का आभास पाकर शब्दकौस्तुभ-निर्माता भट्टोजी दीक्षित सिद्धान्तकौमुदी लेकर उपस्थित हुए। इसकी अनेक व्याख्यायें उपलब्ध हैं जिनमें से प्रमुख ये हैं—

१ प्रौढमनोरमा–भट्टोजी दीक्षित, २ तत्त्वबोधिनी–ज्ञानेन्द्र सरस्वती, ३ फक्किकाप्रकाश–इन्द्रदत्त उपाध्याय, ४ बालबोध–सारस्वत व्यूढमिश्र, ५ बालमनोरमा–वासुदेव दीक्षित, ६ मानसरञ्जिनी–वल्लभ, ७ रत्नाकर–रामकृष्ण, ८ रत्नाकर–शिवरामेन्द्र सरस्वती, ९ रत्नार्णव–कृष्णमिश्र।

इस सिद्धान्तकौमुदी का निर्माण कर भट्टोजी दीक्षित ने अपने समझ से भले ही वैयाकरणों का उपकार किया हो, परन्तु फक्किका की जटिलता एवं अति विस्तृतता के कारण उन्होंने सर्वसाधारण के हित में व्याघात

ही किया है। उनके इस कार्य से संस्कृत साहित्य का प्रवाह अवरुद्ध-सा हो गया। व्याकरण का अध्ययन व्याकरण में विशेषता सम्पादन के लिये होने लगा। इसे देख कर आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि श्री दयानन्द सरस्वतीजी का भी हृदय विचलित हो उठा, क्यों कि इस प्रणाली से न तो वेदों की रक्षा होती है और न संस्कृत साहित्य का संवर्धन। अतः व्याकरण का अध्ययन अपने लक्ष्य से च्युत हो गया।

आज भारतवर्ष स्वतन्त्र हो गया है, स्वतन्त्रता के साथ ही इसका उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। भारतीय प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता के पुनरुद्धार की भावना प्रत्येक पुरुष के हृदय में जागरित हो उठी है, जिसकी प्राप्ति के लिये संस्कृत का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अल्पकाल में पूर्ण व्याकरण का अध्ययन भी अपेक्षित है, अतः शिक्षितों में एक ऐसी पुस्तक की माँग है जो उनकी इस आवश्यकता की पूर्ति कर सके।

परमपूज्य पिता जी (महामहोपाध्याय सर्वतन्त्रस्वतन्त्र पं० मथुराप्रसाद दीक्षित) की यह पाणिनीय-सिद्धान्तकौमुदी इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर लिखी गई है। इसके अध्ययन में एक वर्ष से अधिक न लगेगा, क्यों कि यह भट्टोजी दीक्षित विरचित वैयाकरण सिद्धान्त-कौमुदी के तृतीयांश है। इसमें सबसे अधिक विशेषता की बात यह है कि इसमें कोई भी आवश्यक अंश और पाणिनि महर्षिजी का कोई भी सूत्र छूटने नहीं पाया है। और इसके साथ ही साथ सूत्रों से अर्थ के अवभासित होने पर, वृत्तियों का उल्लेख नहीं किया गया है, परन्तु जहाँ सूत्र से सूत्रार्थ प्रतीति नहीं होती है वहाँ सूत्रार्थबोधिका मात्र वृत्ति दी गयी है। प्रत्युदाहरण निकाल दिये गए हैं, और शुष्कपाण्डित्य के प्रदर्शन के लिये प्रणीत फक्किकाओं का परिहार कर दिया गया है। ग्रन्थरचयिता ने स्वयं ही इसका उल्लेख अपने उपक्रम में यों किया है:—

फक्किकागाढजटिलां वृत्तिविस्तरदुर्ग्रहाम्

प्रत्युदाहरणदीर्घां कौमुदीं संक्षिपाम्यहम्

इसके निर्मापण प्रकाशन में सर्वथा बघाटनरेश महाराजा साहब दुर्गासिंह जी का श्रेय है, क्योंकि उन्होंने ही भारतविजयनाटक की भविष्य कल्पना को मूर्तिमती देखकर सानुनय प्रार्थनाकर छात्रों को स्वल्पकाल में ही संस्कृत एवं व्याकरण बोध के लिये इसे निर्माण कराकर प्रकाशित कराया। पिताजी के अभिन्न-हृदयमित्र महामहोपाध्याय पं० परमेश्वनन्दजी ने छात्रों का परिश्रम शैथिल्य देखकर इसकी हिन्दी व्याख्या करने की अनुमति दी। जिससे अन्य भाषा साथ पढ़ने वाले छात्रों का महान उपकार होगा। केवल संस्कृत पढ़ने वाले एक या दो वर्ष में मध्यमोत्तीर्ण होकर अन्य ग्रन्थों में व्याकरण साहित्य न्याय सांख्य योगमीमांसादि की आचार्य परीक्षा देकर अलौकिक सुबुद्ध विद्वान् होंगे। अथवा मध्यमोत्तीर्ण सुबुद्ध विज्ञान हो शास्त्रों में प्रवेश कर देश को समुन्नत करेंगे।

अन्त में सर्वशक्ति समन्वित भगवान् विश्वनाथ रूपधारी महेश्वर के पदारविन्दों में सादर अभिवादन पूर्वक इसे समर्पित कर सहृदय विद्वानों से इसे अपनाने के लिये सानुरोध प्रार्थना कर यही कहने की धृष्टता करूँगा कि

> गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
> हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः।

सरस्वती सदन
रामनवमी २०१७

सदाशिव दीक्षित

श्रीः

पाणिनीय-सिद्धान्त-कौमुदी

——०:(❀):०——

या प्राभातिकसूर्यताम्ररुधिरारुण्यप्रभाणां सखी,
भास्वत्पद्ममणिप्रवालरसनाचण्डातशोभासुहृत् ।
पृथ्वीसूनुजपाद्रविद्रुममहापद्मप्रभाभासुरा,
सा विष्णोः फलपुञ्जवद्विजयते लोकेषु पादप्रभा ॥१॥
फक्किकागाढजटिलां वृत्तिविस्तरदुर्ग्रहाम् ।
प्रत्युदाहरणैर्दीर्घां कौमुदीं संक्षिपाम्यहम् ॥२॥
नत्वा गुरुं महेशञ्च प्रक्रियाबोधदायिनीम् ।
सतां मतां पाणिनीयां कुर्वे सिद्धान्तकौमुदीम् ॥३॥

अइउणिति। नृत्य करने के अनन्तर आशुतोष भगवान् शिवजी ने डमरू बजाई, उससे इत् वर्ण रहित सूत्र पठित क्रमानुसार वर्ण निकले। जब पाणिनियजी को स्वकीय तपश्चर्या के प्रभाव से भी वर्णानुपूर्वी का पूर्णरूपेण

अनुगम न हो सका तब नन्दिकेश्वरजी के पास गये, और उन्होंने चौदह विभाग करके प्रत्येक विभाग के समनन्तर एक २ इत् लगा दिया। वे ही चौदह सूत्र हुए। उससे पाणिनिजी को शब्द साधुत्व की रचना का ज्ञान हुआ। उसी शब्द साधुत्व को लक्ष्य करके आठ अध्याय की अष्टाध्यायी बनाई। जिसमें चार हजार सूत्र हैं, और प्रायः करीबन दो हजार धातु बनाई। जिससे सब शब्द सिद्ध हो जाते हैं, यह सरल-थोड़े से सूत्रों से शब्दसागर का साधुत्व दिखा दिया। परंतु सूत्रानुवृत्ति के कारण और 'पूर्वत्रासिद्धम्' से असिद्धता के कारण शब्दसिद्धि प्रक्रिया जब तक पूर्ण रूप से अनुगत न हो जाय तब तक बोध नहीं हो सकता, हाँ यदि अष्टाध्यायी पूर्णरूपेण उपस्थित हो, और कार्यानुकूल तत्तत्सूत्र को उपस्थित कर शुद्ध प्रयोग बना सके तो फिर भट्टोजिदीक्षित कृत जगड्वाल की आवश्यकता नहीं है। परं इस प्रकार कार्यानुकूल सूत्रों को उपस्थित कर प्रयोग सिद्ध करना परम मेधावी बुद्धिमान ही कर सकता है, अत एव भट्टोजिदीक्षितजी ने वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी बनाई, परंतु वे अपने लक्ष्य से सर्वथा बहिर्भूत हो गये इतना जटिल विस्तार कर दिया, कि जिसके समझने के लिये मनोरमा तत्त्वबोधिनी, बालमनोरमा, शब्देन्दुशेखर के पढ़ने में, और परिभाषाओं के प्रामाण्य के लिये परिभाषेन्दुशेखर भूति जटा आदि के पढ़ने में पूरा अध्ययन समय बीत जाता है, फिर अन्य शास्त्र का ज्ञान न होकर व्याकरण, व्याकरण के लिये ही सूत्रों के क्षोद क्षेम मात्र के लिये रह जाता है, अत एव मैंने पाणिनीय सिद्धान्त कौमुदी लिखी। इसमें से पंक्ति प्रत्युदाहरण हटा दिये हैं, लम्बी वृत्ति के स्थान पर सूत्रार्थ बोधक मात्र वृत्ति कर दी है, जहां पूर्व सूत्र से अनुवृत्ति आती है वहां अनुवर्त्यमान पदमात्र के साथ वृत्ति है, इससे यह कौमुदी, भट्टोजि दीक्षितजी की कौमुदी से तिहाई—तृतीयांश मात्र रह गई है, पद साधुत्व में कोई भेद नहीं है, व्यर्थ का आडम्बर विस्तार न होने से अत्यल्प समय में बोध व्याकरण का ज्ञान हो जाता है।

अइउण् ।१। ऋलृक् ।२। एओङ् ।३। ऐऔच् ।४। हयवरट् ।५। लण् ।६। ञमङणनम् ।७। झभञ् ।८। घढधष् ।९। जबगडदश् ।१०। खफछठथचटतव् ।११। कपय् ।१२। शषसर् ।१३। हल् ।१४। उप-

---

अइउण् । इति । अइउण् । इत्यादिक चौदह सूत्र प्रथमान्त हैं— उपदेश इति । उपदेश अवस्था में जो अनुनासिक अच् है वह इत् होता है, और इत् होने से 'तस्य लोपः' से उस इत् का लोप हो जाता है । हलन्त्यमिति । 'हल्' इस माहेश्वर चौदहवें सूत्र का अन्त्य वर्ण लकार इत् संज्ञक है । इस सूत्र में पूर्व सूत्र से इत् पद की अनुवृत्ति आती है । आदिरिति । 'अन्त्येन' यह इता का विशेषण है, तो यह अर्थ होगा, कि—अन्त्य-इत् संज्ञक वर्ण के सहित जो आदि वर्ण है, वह मध्यगत वर्णों की और स्व—अपनी भी उस प्रत्याहार पद से संज्ञा है । जैसे 'इक्' यहाँ इत् संज्ञक अन्त्यवर्ण ककार है उसके सहित आदि वर्ण इकार है वह मध्यगत 'उण् ऋ लृ' इनकी और स्व-अपनी इकार की भी संज्ञा है । प्रत्याहार में इत्संज्ञक वर्ण का ग्रहण नहीं है, अतः इक् प्रत्याहार गत 'इ उ ऋ लृ' ये वर्ण हैं, एवम् यण् प्रत्याहार में 'य व र ल' इन वर्णों का ग्रहण है, इसी प्रकार अच् हल् अल् इत्यादिक प्रत्याहार जानना ।

टिप्पणी—अइउण्, इस सूत्र में स्वरों की सन्धि क्यों नहीं होती है ?

उत्तर—(१) "छन्दोवत्सूत्राणि" सूत्र वेद के सदृश हैं, अतः वैदिक कार्य होने से विकल्प से सन्धि होगी । (२) प्रत्येक स्वरवर्ण को निपात माना है, और वे प्रथमान्त हैं । निपात होने से "स्वरादिनिपातमव्ययम्" इससे अव्यय संज्ञा "अव्ययादाप्सुपः" इससे विभक्ति का लुक् हो जायगा । अतः एक पद अथवा समस्त पद नहीं है, अत एव विवक्षाधीन सन्धि होने से सन्धि नहीं होगी । (३) निपात होने से 'निपात एकाजनाङ्' से प्रगृह्य संज्ञा, फिर "प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्" से प्रकृतिभाव । इस प्रकार सन्धि न होने के तीन समाधान हैं ।

देशेऽजनुनासिक इत् ।१।३।२। हलन्त्यम् ।१।३।३। हलिति सूत्रेऽ-

हलन्त्यमिति । उपदेशे पद की अनुवृत्ति है, उपदेश में अन्त्य हल् इत् संज्ञक होता है। तस्येति । तत् शब्द प्रक्रान्त इत् का परामर्शक है। तो यह अर्थ होगा। उस इत्संज्ञक का लोप हो। ऊकाल इति। उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः। ह्रस्व दीर्घ प्लुत इन तीनों प्रकार के उकार का एक शेष द्वन्द्व समास करने पर 'वः' यह प्रथमा बहुवचन है। वां काल इव कालो यस्येति ऊकालः। ह्रस्व दीर्घ प्लुत इन तीनों प्रकार के उकार के उच्चारण काल के सदृश जिनका काल है, अर्थात् ह्रस्व उकार के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतना समय जिस अच् के उच्चारण में लगेगा वह ह्रस्व होगा, एवं दीर्घ ऊकार के उच्चारण में जितना समय लगता है उतना समय जिस अच् के उच्चारण में लगेगा वह दीर्घ कहा जायगा, इसी प्रकार प्लुत का भी जानना।

टिप्पण—प्रश्न—प्रत्येक वर्ण एक बार सूत्रों से कहा गया है परन्तु हकार दो बार क्यों है, प्रथम 'हयवरट्' में हकार और फिर हल् सूत्र में हकार है।

उत्तर—यदि पूर्व 'हयवरट्' सूत्र में हकार न पढ़ते तो अर्हेण आदि प्रयोगों में नकार को णकार नहीं होता, क्योंकि हकार का व्यवधान हो जाता, पूर्व में अर्थात् हयवरट् में पढ़ देने से अट् प्रत्याहार में हकार आ जाता है, एवम् "अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि" इससे अट् प्रत्याहारान्तर्गत हकार के होने से उसके व्यवधान होने पर भी नकार को णकार होता है। एवं विरहेण, प्ररोहेण, आरोहाणाम्, प्रहाराणाम् इत्यादिकों में जानना। और यदि उत्तर में हल् सूत्र में हकार न पढ़ते तो दुह धातु का अधुक्षत् रुह् का अरुक्षत् इत्यादिकों में शल् प्रत्याहारान्तर्गत हकार के न होने से "शल इगुपधादनिटः क्सः" इससे क्स नहीं होता, 'क्स' होने

न्त्यमित् । आदिरन्त्येन सहेता ।१।२।७१। अन्त्येन इता सह आदिस्त-न्नाम्ना प्रत्याहारसंज्ञः स्यात् । हलन्त्यम् ।१।३।३। उपदेशेऽन्त्यमित्स्यात्-तस्य लोपः ।१।३।६। ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ।१।२।१७। उच्चैरु-दात्तः ।१।२।२६। नीचैरनुदात्तः ।१।२।३०। समाहारः स्वरितः ।१।२१।

उच्चैरिति । उच्च प्रकार से जिस स्वर का उच्चारण हो वह उदात्त कहाता है, जैसे रौद्र रस में, या क्रोधावेश में उच्चारण होता है। नीचैरिति । नीच प्रकार से जो स्वर उच्चारण किया जाय वह अनुदात्त कहाता है । समाहार इति । जिस स्वर में उदात्त और अनुदात्त समाहृत इकट्ठे मिले हों वह स्वरित कहाता है ।

से हो ढः एकाचो वशो भष झष न्तस्य स्ध्वोः । इससे धकार । षढोः कः सि । आदेशप्रत्यययोः इससे स+को ष, कषसंयोगे क्षः । अधुक्षत् होगा । कहा भी है "हकारो द्विरुपात्तोऽयम् अटि शल्यपि वाञ्छता । अर्हेणाधु-क्षदित्यत्र द्वयं सिद्धं भविष्यति ।

प्रश्न—सूत्रमें पठित उपदेश पद का क्या अर्थ होगा ?'

उत्तर—पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि आदि ऋषियों ने जिन प्रत्यय आगम आदेश आदिकों को साक्षात् स्वकण्ठ से पढ़ा है वे प्रत्यय आगम आदेशादिक उपदेश कहाते हैं ।

प्रश्न—अनुनासिक का ज्ञान कैसे होगा ? जैसे-शि तुक्, ङः सि धुट् इत्यादिकों में उकार, अस्थिदधि० इससे अनङ् आदेश की नकारोत्तरवर्ती अकार स्वौजसमौट्० के उकार, वयसि दन्तस्य दतृ, दतृ आदेश गत ऋकार आदि के अनुनासिक का ज्ञान कैसे होगा ?

उत्तर—यद्यपि इनके अनुनासिकोच्चारण की प्रक्रिया का लोप हो गया है फिर भी परंपरानुगत अनुनासिक जानना, अर्थात् जिसको अनुना-सिक कहा है वही अनुनासिक है । अत एव दतृ आदेश की ऋकार इत् है, परंतु त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ से जायमान तिसृ चतसृ आदेश की ऋकार इत् नहीं है । अतः परंपरानुगत ही 'इत्' संज्ञक समझना ।

तस्यादित इति। उस स्वरित ह्रस्व के आदि का आधा भाग उदात्त है, अवशिष्ट भाग अनुदात्त है।

यहां ह्रस्व ग्रहण अविवक्षित है, इससे दीर्घ प्लुत में भी उदात्त अनुदात्त जानना। यह भट्टोजिदीक्षित कहते हैं। वस्तुतः पाणिनि का यह तात्पर्य है कि आदि के ह्रस्व का अर्थात् आरम्भिक एक मात्रा का अर्ध भाग उदात्त है अवशिष्ट अनुदात्त है। तो दीर्घ में आरम्भिक आधी मात्रा उदात्त है, अवशिष्ट सार्ध एक मात्रा अर्थात् डेढ़ मात्रा अनुदात्त है, एवं प्लुत की आरम्भिक आधी मात्रा उदात्त है, और अवशिष्ट ढाई मात्रा अनुदात्त है। तो ह्रस्व दीर्घ प्लुत अकारादिक उदात्त अनुदात्त-स्वरित भेद से नव प्रकार के होते हैं। जैसे—१ ह्रस्व उदात्त, २ ह्रस्व अनुदात्त, ३ ह्रस्व स्वरित। एवम्—४ दीर्घ उदात्त, ५ दीर्घ अनुदात्त,

---

टिप्पण—पाणिनि ने एक 'हलन्त्यम्' सूत्र पढ़ा है यहाँ दो हलन्त्यम् क्यों है?

विवेचन—यद्यपि पाणिनि ने एक ही 'हलन्त्यम्' सूत्र पढ़ा है परंतु यहां अन्योन्याश्रय दोष आता है, यह अन्योन्याश्रय दोष, ज्ञप्ति ज्ञप्ति गतिमे प्रायः होता है। अन्योन्याश्रय वह कहाता है, जो एक दूसरे के आश्रित हो, और दूसरा प्रथम के आश्रित हो। जैसे यहां प्रकृत में इत् संज्ञा करने वाले 'हलन्त्यम्' सूत्र के अर्थ का ज्ञान कब होगा? जब हल् प्रत्याहार साधक आदिरन्त्येन सहेता से पठित इत् पदार्थ का ज्ञान हो जायगा। तो यह सिद्ध होता है, कि—हल् प्रत्याहार का ज्ञान कब होगा जब इत् पद का ज्ञान हो जायगा। और इत् पद का ज्ञान कब होगा? जब हल् प्रत्याहार का ज्ञान हो जायगा। इस प्रकार अन्योन्याश्रित होने से किसी सूत्र का अर्थ न हो सकैगा। अतः।

उत्तर—तन्त्रावृत्त्येकशेषान्यतमस्तु। इसके ये तीन समाधान हैं। हलन्त्यम् सूत्र का तन्त्र करेंगे। तन्त्र वह कहाता है, जो एक बार उच्चारण

तस्यादित उदात्तमर्द्धं ह्रस्वम् ।१।२।३२। ततश्च ह्रस्वदीर्घप्लुता अकारादय उदात्तानुदात्तस्वरितभेदान्नवधा । मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः

---

६ दीर्घस्वरित । एवम्—७ प्लुत उदात्त, ८ प्लुत अनुदात्त, ९ प्लुत स्वरित । इस प्रकार ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञक अकारादिक अ + इ + उ + ऋ + ये नव प्रकार के सिद्ध होते हैं, फिर। 'मुखनासिकेति' । मुखनासिकावचनः अनुनासिकः । मुखद्वितीया नासिका मुखनासिका । उच्यते यत् तद् वचनम् । वचनम्—उच्चारणम् । मुखनासिकया वचनम् उच्चारणं यस्येति । मुख के सहित नासिका से उच्चार्यमाण वर्ण अनुनासिक कहाता है । यहां व्यधिकरण बहुव्रीहि समास है ।

किया गया अनेक अर्थों को करै । तो यहां एक यह अर्थ होगा कि हल् इस चौदहवें माहेश्वर सूत्र का अन्त्यवर्ण इत्संज्ञक है, अब हल् प्रत्याहार ज्ञान की अपेक्षा नहीं रही । इस प्रकार इत् पदार्थ का ज्ञान हो जाने से 'आदिरन्त्येन सहेता' का अर्थ हो जायगा ।

नं० २ 'हलन्त्यम्' की आवृत्ति कर लेंगे "पुनः पठनमावृत्तिः" हलन्त्यम्, हलन्त्यम्' इस प्रकार दो बार पढ़ेंगे । एक का अर्थ, हल् सूत्र का अन्त्य इत् हो, इस प्रकार इत् पदार्थ का ज्ञान हो जाने से आदिरन्त्येन सहेता का अर्थ हो जायगा, इस प्रकार प्रत्याहार की सिद्धि हो जाने से दूसरे हलन्त्यम्' का अर्थ हो जायगा ।

नं० ३ एकशेष समास हल् पद का करेंगे । हल् च हल् च हलौ, तयोः अन्त्यम् हलन्त्यम् 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक हल पद का लोप हो जायगा, "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते" द्वन्द्वसमास के अन्त पर श्रूयमाण पद प्रत्येक पद के साथ संबद्ध होगा, तो दो हल् शब्दों का दो बार अन्त्य पद के साथ संबन्ध होगा, इस प्रकार दो हलन्त्यम् बनेंगे । एक हलन्त्यम् से हल् सूत्र का अन्त्य इत् हो, इस प्रकार इत् पदार्थ का ज्ञान हो जाने से आदिरन्त्येन सहेता

।१।१।८। तदित्थम्। अ इ उ ऋ एषां प्रत्येकमष्टादश भेदाः। ऌवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात्। एचामपि द्वादश। तेषां ह्रस्वाभावात्। तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ।१।१।९। अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। इचुय-

प्रश्न—मुखं च नासिका च यह द्वन्द्व समास क्यों नहीं मान लेते।

उत्तर—ऐसा मानने पर प्राण्यंग होने से "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्" इससे एकवद्भाव हो जायगा। हां—द्वन्द्व भी मान सकते हैं, यदि ईषद् वचनम्—आवचनम्। मुखनासिकम् आवचनं यस्येति सः। किंचिन्मुखवचनम्, किंचिन्नासिकावचनम्, ऐसा मानने पर द्वन्द्व भी हो सकता है। तदित्थमिति। तो इस प्रकार सानुनासिक और निरनुनासिक भेद से-अ-इ-उ-ऋ ये प्रत्येक अठारह प्रकार के होते हैं।

से हल् प्रत्याहार का ज्ञान हो जायगा, फिर द्वितीय हलन्त्यम्' से हल्, अच् यण्, अट् इत्यादिक प्रत्याहार होते हैं, और हलादिक प्रत्याहारान्तर्गत हयवरट् इत्यादि सूत्रों में पठित हकारादिकों में अकार उच्चारण मात्र के लिये है, अतः हकारादि व्यञ्जन मात्र का ग्रहण होगा। वह चाहै किसी स्वर अथवा व्यञ्जन से संयुक्त हो। परन्तु लण् सूत्र गत लकार में अकार इत्संज्ञक है, क्योंकि प्रथम कह आये हैं कि इत् का ज्ञान प्रतिज्ञाश्रित परंपरा गत जाना जाता है, अतः लकार गत अकार इत्संज्ञक है। अतः उरण् रपरः से जायमान 'र' अक्षर से र प्रत्याहार बनैगा जैसे—'आदिरन्त्येन सहेता' से अन्त्य इत्+लण् सूत्र गत लकार में अकार, उस इत् के सहित आदि वर्ण रकार, वह मध्य गत 'टल' की और स्व-अपनी रकार की भी संज्ञा है, प्रत्याहार में इत्संज्ञक वर्ण का ग्रहण नहीं होता है। अतः 'ट' का ग्रहण नहीं होगा। तो र प्रत्याहार से र ल ये दो वर्णों का ग्रहण होगा, अतः "उरण् रपरः" सूत्र में 'उः' इस षष्ठ्यन्त ऋकार से ऋ ऌ दोनों लिये जाँयगे, क्योंकि ऋ ऌ का सावर्ण्य है, अतः स्थान साम्य होने से कृष्ण ऋद्धिः में ऋ के स्थान में रपर और तव ऌकारः में ऌ के स्थान में लपर होगा। एवम् अर् अल् ये दो ऋ के स्थान में आदेश होंगे।

शानां तालु । ऋटुरषाणां मूर्धा । लृतुलसानां दन्ताः । उपूपध्मानीयाना-मोष्ठौ । ञमङणनानां नासिका च । एदैतोः कण्ठतालु । ओदौतोः

जैसे ह्रस्व उदात्त सानुनासिक १ अँ । ह्रस्व अनुदात्त सानुनासिक २ अँ । ह्रस्व स्वरित सानुनासिक ३ अँ । दीर्घ उदात्त सानुनासिक आँ । दीर्घ अनुदात्त सानुनासिक ५ आँ । दीर्घ स्वरित सानुनासिक ६ आँ । प्लुत उदात्त सानुनासिक ७ अँ ३ । प्लुत अनुदात्त सानुनासिक ८ अँ ३ । प्लुतस्वरित सानुनासिक ९ अँ ३ । ह्रस्व उदात्त निरनुनासिक १० अ । ह्रस्व अनुदात्त निरनुनासिक ११ अ । ह्रस्व स्वरित निरनुनासिक १२ अ । दीर्घ उदात्त निरनुनासिक १३ आ । दीर्घ अनुदात्त निरनुनासिक १४ आ । दीर्घ स्वरित निरनुनासिक १५ आ । प्लुत उदात्त निरनुनासिक १६ अ ३ । प्लुत अनुदात्त निरनुनासिक १७ अ ३ । प्लुत स्वरित निरनु-नासिक १८ अ ३ ।

प्रश्न—प्रत्याहारों में इत्संज्ञक वर्णों का ग्रहण क्यों नहीं होता है ?,

उत्तर—आचारात् १, अप्रधानत्वात् २, लोपश्च बलवत्तरः ३, "इत्संज्ञकस्य सर्वविधिभ्यः पूर्वमेव लोपाच्च ।" हम देखते हैं पाणिनि अपने यहां इत्संज्ञक वर्ण को प्रत्याहारान्तर्गत मान कर कार्य नहीं किया है । जैसे 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' यहां ककार के अच् प्रत्याहारान्तर्गत होने पर भी 'इको यणचि' से सकारोत्तरवर्त्ती इकार को यकार नहीं किया। इससे जानते हैं कि प्रत्याहार में इत्संज्ञक वर्ण का ग्रहण नहीं होता है। नासामनुगतः कप्रत्यय अनुनासिकः' यहां अन्तर्वर्तिनी लुप्त द्वितीया विभक्ति को मानकर सुबन्त होने से पदान्त है, अतः "इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च" इससे प्रकृतिभाव हो जायगा । एवम् अनुनासिक शब्द में कोई भी अनुपपत्ति नहीं है, परन्तु यहां ककार को अच् प्रत्याहार गत मानने से 'यचि भम्' से पद संज्ञा को बाधकर भसंज्ञा हो जायगी । अतः पद-संज्ञक न होने से प्रकृतिभाव नहीं होगा । तो फिर भी भसंज्ञा मानकर

कण्ठोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् । नासिकाऽनुस्वारस्य । इति स्थानानि । प्रयत्नो द्विधा । आभ्यन्तरो बाह्यश्च । आद्यः स्पृष्टेषत्स्पृष्टविवृ-

---

इसी प्रकार ह्रस्व दीर्घ प्लुत इ उ ऋ इनके भी उदात्त अनुदात्त स्वरित भेद से अठारह अठारह प्रकारों की कल्पना कर लेना। परन्तु लृवर्ण के बारह भेद हैं, क्योंकि वह दीर्घ नहीं है। सानुनासिक निरनुनासिक भेद से दीर्घ उदात्त दीर्घ अनुदात्त दीर्घ स्वरित ये छ भेद न होने से बारह प्रकार का है। एच्-ए ओ ऐ औ इनके भी बारह २ भेद हैं, क्योंकि ये ह्रस्व नहीं होते हैं। तुल्यास्येति। तुल्य—समान एक सदृश जिन वर्णों का आस्य-कण्ठ ताल्वादि स्थान हो, तथा प्रयत्न आभ्यन्तर एवं बाह्य प्रयत्न समान हो वे परस्पर सवर्ण हैं। अर्थात् उनके स्थान पर परस्पर उत्तराधिकारी होते हैं, जैसे-इकार स्वर को यण्-य व र ल प्राप्त होने पर तालुस्थानीय इकार को तालुस्थानीय यकार होगा। भिन्न स्थान होने से वकारादिक नहीं होंगे। एवम् इग् यणः संप्रसारणम्। यकार को संप्रसारण करने पर इक् प्रत्याहारान्तर्गत तालुस्थानीय यकार को तालुस्थानीय इकार होगा, अन्य उ ऋ लृ नहीं होंगे।

'यस्येति च' से इकार लोप नहीं देखते हैं इससे जानते हैं, कि प्रत्याहार में इत्संज्ञक वर्ण का ग्रहण नहीं है। और यदि ण्वुल् प्रत्ययान्त नासिका शब्द को मानेंगे तो यकार कार्य नहीं देखते हैं। यह कल्पना करके भट्टोजि मानते हैं प्रत्याहारों में इत्संज्ञक वर्ण का ग्रहण नहीं है। वस्तुतः लक्षणैक चक्षुष्क अस्मदादिकों को लक्ष्य देखकर विधिनिषेध की कल्पना करना सर्वथा अनुचित है, वह लक्ष्य पाणिनि प्रयुक्त हो अथवा व्यासादि प्रयुक्त हो उससे नियम की कल्पना नहीं हो सकती, अन्यथा नियमस्वरूप सूत्र निर्माण प्रयास ही व्यर्थ हो जायगा, अत एव भाष्यकारने "प्रत्याहारेऽनुबन्धानां कथमज्ग्रहणेषु न" यह प्रश्न करके "आचारादप्रधानत्वात्" इत्यादि तीन प्रकार से उत्तर दिया।

तभेदात् त्रिधा। संवृतस्वीकारे चतुर्धा। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। विवृतमूष्मणां स्वराणां च। ह्रस्वस्य अकारस्य प्रयोगे

अब किन २ वर्णों का कौन २ स्थान है यह कहते हैं। (अकुहेति) अकार कु-कवर्ग, कखगघङ और हकार एवं विसर्जनीय—विसर्ग इनका कण्ठ स्थान है, विसर्ग का उच्चारण सदा स्वर के साथ होगा। (इचुयेति) इकार चु चवर्ग—चछजझञ य, और श इनका तालु स्थान है। अर्थात् कण्ठ और दाँतों के मुख के अन्दर ऊपर के भाग को तालु कहते हैं। वहाँ पर जिह्वा का सीधा पूर्ण स्पर्श करके उच्चारण करने पर पूर्वोक्त

आचार-प्रकार, अचों का अच् प्रत्याहार में ग्रहण होगा और हकारादिक हल् वर्णों का अर्थात् 'हयवरट् से लेकर हल्' तक पठित वर्णों का हल् वर्णों के साथ ग्रहण होगा, इससे अइउण् का णकार, ऋलृक् का ककार। एओङ् का ङकार अच् प्रत्याहार में नहीं लिया जायगा, क्योंकि अचों को प्रधानरूपेण साथ साथ पढ़ा है, और हलों को हल् के साथ, तो हल् वर्ण अच् में नहीं लिया जायगा।

प्रश्न—आप तो लक्षणैक चक्षुष्क हैं, जब सूत्रमें पढ़ा हैं तब तो ग्रहण करना ही पड़ेगा, रही आचार की कल्पना, वह तो आप का मानसिक विचार है, लक्षणैक चक्षुष्कों को नहीं प्रतीत हो सकता है, वस्तुतः व्यवहार सिद्ध तो यही है कि हल् प्रत्याहारान्तर पठित वर्णों का अच् प्रत्याहार में ग्रहण नहीं हो सकता, इसी आशय को लेकर कहते हैं, "अप्रधानत्वात्" प्रधानभूत अच् वर्णों में हल् वर्ण अप्रधान है। अस्तु। रामस् टीकते, यहां 'हयवरट्' गत टकार को हल् प्रत्याहार में मान कर 'हशि च' से उत्व क्यों नहीं होता है?, 'चटतव्' गत टकार प्रधान है, और यह प्रधान नहीं है, इसमें कोई गमक नहीं है। जैसे हयवरट् और हल् सूत्र के दोनों हकारों का ग्रहण करते हो ऐसे ही दोनों टकारों का भी ग्रहण क्यों नहीं होगा?

उत्तर—सापेक्ष बलवत्तरः सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवान् एव कार्यों

संवृतम् । बाह्योऽपि संवारविवाराल्पप्राणमहाप्राणभेदाच्चतुर्धा । तत्र हशः संवारः, खरो विवारः । प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः । द्वितीयच-

---

तालुस्थानीय ही वर्णों का उच्चारण होगा । (ऋटुरषाणामिति) ऋ-वर्ण, टु टवर्ग–टठडढण र और षकार का मूर्धा स्थान है । जिह्वा को पलट कर तालु प्रदेश के कुछ ऊर्ध्वभाग में लगाकर उच्चारण करने पर उक्त मूर्धन्य–मूर्धस्थानीय वर्णों का उच्चारण होगा ।

(लृतुलेति) लृ तु-तवर्ण-तथदधन, ल और सकार इनका दन्त्य स्थान है, इस प्रकार ये तीनों श-ष-स स्थान भेद से उच्चारण में वैषम्य होने से तालव्य शकार, मूर्धन्य षकार, और दन्त्य सकार नाम से कहे जाते हैं (उपू इति) उकार पु-पवर्ग-पफबभम और उपध्मानीय ≍प≍फ इनका ओष्ठ स्थान है, परस्पर ओष्ठों के मिलने पर ही पूर्वोक्त उकारादि वर्णों का उच्चारण होता है । (ञमेति) ञ म ङ ण न, इनका नासिका स्थान है, नासिका में वायु का अर्थात् स्वर का संचार होने से उच्चारण

से लोप कार्य बलिष्ठ है, अतः हश् प्रत्याहार निर्माण से पूर्व ही टकार का लोप हो जायगा, इसी भाव को लेकर कहा है, "उच्चरितप्रध्वंसिनोऽनुबन्धाः" अइउण् इत्यादिकों में णकारादिक उच्चारण के समनन्तर ही नष्ट हो जाते हैं, तदाश्रित कोई कार्य नहीं होता है, इत्संज्ञा का स्वरूप ही है, 'एति गच्छतीति इत्' इत् संज्ञा से ही इत्संज्ञक का लोप सिद्ध था, फिर 'तस्य लोपः' जो सूत्र किया है वह सब कार्यों को बाधकर सर्वप्रथम लोप कर देगा ।

ह्रस्व इति । एक मात्रा समय ह्रस्व के उच्चारण में, दो मात्रा दीर्घ के उच्चारण में, तीन मात्रा प्लुत के उच्चारण में, और आधी मात्रा चषक—घर में घोसिला बनाकर रहनेवाली चिड़िया के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतना ही व्यञ्जन के उच्चारण में लगता है । और ह्रस्व दीर्घ प्लुत ये क्रमशः "कुक्कुट कुक्कुट र कू र" शब्द में मिलते हैं। ये तीनों

तुर्यौ शलश्च महाप्राणाः । कादयो मावसानाः स्पर्शाः । यरलवा अन्तः

होता है । और समुच्चयार्थक च शब्द से अपने २ स्थान का ग्रहण होगा । जैसे 'ङ' का नासिका स्वर सहित कण्ठ । नकार का नासिका स्वर सहित तालु है । इसी प्रकार ण-ञ-म-का भी जानना । (एदैतोरिति) एकार और ऐकार का कण्ठतालु स्थान है, अर्थात् कण्ठ और तालु दोनों के सहयोग से उच्चारण होता है । एवम् (ओदौतोरिति) ओकार

अकारादि किसी में भी एक ही स्वर में ह्रस्व दीर्घ प्लुत तीनों नहीं मिलते हैं । अत एव पाणिनिजी ने अकार इकार को छोड़कर उकार का ग्रहण किया है । क्योंकि शुद्ध नित्य-कृत्य सन्ध्योपासनादि करके सूत्र निर्माण करने को जब बैठे, तब तक मुर्गा ने प्राभातिक कुक् कुकुरू कूः यह शब्द किया । एवं उसके उच्चरित उकार में ह्रस्व दीर्घ प्लुत को सुनकर सर्व साधारण जनता के सुख प्रत्येय परिज्ञान के लिये ऊकालोऽज् ह्रस्व-दीर्घ प्लुतः पढा ।

टिप्पण—उच्चैरुदात्तः इत्यादिक सूत्रों का अर्थ सूत्रस्थ पदों से ही स्पष्ट प्रतीत हो जाता है अतः लम्बी वृत्ति छात्रों के प्रयास मात्र साधिका है । मुखेति ।'भाष्यकार'ने इस सूत्र को लौकिक व्यवहार दृष्टान्त से अनावश्यक कहा है, जैसे दो मञ्जिल मकान में ऊपर के खण्ड में रहने वाले ऊर्ध्ववासी कहाते हैं, एवम्-नीचे के खण्ड में रहने वाले अधोवासी, और दोनों खण्ड में रहने वाले उभयवासी कहाते हैं । इसी प्रकार केवल मुख,-कण्ठ ताल्वादि से कहे जाने वाले ककारादि मुख वचन कहाते हैं, एवम्-केवल नासिका से कहे जाने वाला अनुस्वार, नासिका वचन होता है । और जमङणन' इनका नासिका स्थान है और तत्तत्वर्ण का कण्ठ ताल्वादि स्थान होने से मुखवचन भी है । तो ये उभयवासी दृष्टान्त से कुछ मुखवचन और कुछ नासिकावचन हैं, अतः अनुनासिक कहे जाँयगे । एवम् स्वरों के साथ सदा रहने वाला अर्ध चन्द्राकार अँ आँ इत्यादिक भी जानना ।

स्थाः। शषसहा ऊष्माणः। अचः स्वराः। ≍क≍ख इति कखाभ्यां ≍प≍फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशौ जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ। अं

और औकार का कण्ठ और ओष्ठ के सहयोग से उच्चारण होता है। ≍क ≍ख इन जिह्वामूलीयों का जिह्वामूल स्थान है। अनुस्वार का नासिका स्थान है। यह अनुस्वार अच् के साथ ही उच्चरित होगा। इस लिये जिस अच् के साथ उच्चरित होगा उस अच् का स्थान भी होगा। इति स्थानानि। ये वर्णों के—अक्षरों के स्थान कहे। अब प्रयत्न कहते हैं प्रयत्न दो प्रकार के हैं। अर्थात् वाग्घरिः, उत्थानम्, चखान इत्यादि कों में हकारादि के स्थान पर घकारादिक वर्णादेश करने में उक्त प्रयत्नों की आवश्यकता पड़ती है, उसे तत् तत् प्रयोग साधुत्व में दिखावेंगे।

वस्तुतः "अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा" इससे क्रियमाण अनुनासिक का स्वरूप भिन्न है, हां !!! यह अनुनासिक स्वर का स्वरूप है, यदि तत्स्वरूपमात्र को अनुनासिक मानेंगे तो "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" निर्विषय होकर व्यर्थ हो जायगा। अतः परिज्ञान प्रक्रिया गौरव निवृत्त्यर्थं लाघव से स्पष्ट प्रतिपत्त्यर्थं सूत्र पढ़ा।

टिप्पण—अ अ इति। यह व्याकरण शास्त्र पदसाधुत्व का बोधक है, उच्चारण का नहीं। इसी आशय को लेकर भाष्यकार ने कहा है, "शब्द साधुत्व प्रकरणेऽस्मिन् शास्त्रे साधुत्वमुपदिश्यते" तात्पर्य यह है, "अ अ" इस अष्टाध्यायी के अन्तिम सूत्र से विवृत अकार को संवृत करते हैं, परन्तु वह दण्ड-आढकम् इत्यादिकों में 'पूर्वत्रासिद्धम्' से सर्वत्र प्रयोग साधुत्व में असिद्ध हो जायगा। फिर संवृत देखाना निष्प्रयोजन है। और ह्रस्व इकार उकारादिक भी संवृत हैं, उसे पाणिनि ने क्यों नहीं कहा ?, यह त्रुटि वे ही जाने।

टिप्पण—बाह्येति। यद्यपि यह बाह्य प्रयत्न विवार १ संवार २ श्वास ३ नाद ४ घोष ५ अघोष ६ अल्पप्राण ७ महाप्राण ८ उदात्त ९ अनुदात्त १० स्वरित

अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ । ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् ॐ
एवम् ऋवर्णास्त्रिंशत् । अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः ।१।१।६९। इदं

आद्य-आभ्यन्तर प्रयत्न, स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत, भेद से प्रक्रिया–पद साधुत्व का उपयोगी तीन ही प्रकार का है, परन्तु लौकिक उच्चारण में संवृत भी है। इस प्रकार तीन तरह का और चार तरह का है। तत्र-कोऽर्थः पदसाधुत्व में, स्पर्श वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न है, एवम्-अन्तस्थ-यरलव; वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है। ऊष्म-शषसह वर्णों का और चकार ग्रहण से स्वरों का विवृत प्रयत्न है। अ-अ-इस सूत्र से विवृत ह्रस्व अकार को संवृत करते हैं। परंतु वह संवृत अकार 'पूर्वत्रासिद्धम्' से असिद्ध है। तो फिर पद साधुत्व बोधक व्याकरण में संवृत निष्प्रयोजन है। बाह्य प्रयत्न भी संवार विवार अल्पप्राण महाप्राण प्रयत्नों के भेद से चार प्रकार का है, क्योंकि इन चार प्रकारों से ही वाग्घरिः उत्थानम्, इत्यादि प्रयोगों की सिद्धि हो जाती है।—

---

११ भेद से ग्यारह प्रकार का है परन्तु प्रक्रिया में-पद साधुत्व में चार से ही उपयोग हो जायगा। अतः चार ही प्रकार के मूल में कहे हैं।

स्वर इति स्वयं राजन्ते इति स्वराः। स्वरों का उच्चारण किसी वर्ण-अक्षर के सहयोग के विना भी हो जाता है, इस लिये ये स्वर कहे जाते हैं। परंतु व्यञ्जनों का बिना स्वर के उच्चारण नहीं होता है, भाष्यकार ने कहा है "नह्यचं बिना व्यञ्जनस्योच्चारणं संभवति" इति, हरिम्, राजन् इत्यादिकों में मकार नकार का पूर्व स्वर के आश्रित उच्चारण है। ये व्यञ्जन पूर्व स्वर के बिना नहीं उच्चरित हो सकते।

टिप्पणी—अत्रैवेति। इसी सूत्र में पर णकार से अर्थात् अइउण् की प्रथम णकार से नहीं किन्तु हयवरट् 'लण्' इस अग्रिम णकार से क्यों ग्रहण है ?,

उत्तर—तत् तत्सूत्रों में अण् ग्रहण सामर्थ्य से पूर्व णकार से ग्रहण है, जैसे 'अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः'। प्रगृह्यसंज्ञा अचों की ही होती है,

सवर्णस्य ग्राहकं स्यात्। अत्रैवाण् परेण णकारेण। इति दीर्घाणाम- प्यज्ग्रहणेन ग्रहणम्। नाज्झलौ ।६।१।१०। अनुनासिकाननुनासिकभेदेन

(हश इति) हश प्रत्याहार का संवार बाह्य प्रयत्न है। खर का विवार बाह्य प्रयत्न है। वर्ग के-अर्थात् कवर्गादिक पाँचों वर्गों के प्रथम तृतीय और पञ्चम वर्णों का—क १ ग ३ ङ ५ अक्षर का और यण्-यवरल का अल्पप्राण प्रयत्न है, पूर्वोक्तवत् अन्य वर्गों के भी प्रथम-तृतीय-पञ्चम अक्षरों का ग्रहण कर लेना। और कवर्गादिक वर्गों के द्वितीय-चतुर्थ अक्षरों का और शल् प्रत्याहार का अर्थात् शषसह का और चकार से अच् का महाप्राण प्रयत्न है।

(कादय इति) क से लेकर म पर्यन्त अर्थात् कखगघ इत्यादि से लेकर बभम पर्यतन सब अक्षर स्पर्श कहाते हैं। और यरलव ये अन्तस्थ कहाते

तो यदि उत्तर णकार से अण् ग्रहण अभिमत हो तो अच् प्रत्याहारान्तर्गत अण् आ जाँयगे अतः अण् ग्रहण व्यर्थ हो जायगा, इसलिये अण् ग्रहण सामर्थ्य से पूर्व णकार से यह अण् लिया जायगा। एवं ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः" पूर्वोक्त वत्, दीर्घ अचों को ही होता है, अतः तदन्तर्गत अण् आ जाँयगे, एवं अण् पूर्व णकार से ही है। परिशेषात् इसी सूत्र में अण् प्रत्याहार परणकार से लिया जाता है, क्योंकि पूर्वोक्तवत् यहाँ अण् ग्रहण व्यर्थ नहीं है।

दीर्घाणामिति। प्रश्न यह होता है! कि 'नाज्झलौ' से सावर्ण्य निषेध केवल ह्रस्व का ही होगा। क्योंकि-प्रथम अइउण् इत्यादि से वर्णों का उपदेश है, तदनन्तर हलन्त्यम् से इत्संज्ञा। तदनन्तर आदिरन्त्येन से प्रत्याहार, तदनन्तर 'तुल्यास्यप्रयत्नं से सवर्णसंज्ञा, नियम यह है कि, निषेध शास्त्र की विधि शास्त्र के साथ ही एक वाक्यता होगी, 'अन्यथा-भुक्तवन्तं प्रति मा भुङ्क्थाः इति निरर्थकं स्यात्" यदि, ऐसा नहीं मानोंगे तो निषेधशास्त्र व्यर्थ हो जायगा। अर्थात् जैसे भोजन करने के अनन्तर-जो भोजन कर चुका है, उससे निषेध किया जाय तो व्यर्थ हो जायगा, इसी प्रकार

हैं। शल्-शषसह ऊष्मा कहाते हैं। अच्-स्वरसंज्ञक हैं, इनका स्वर शब्द से भी बोध होता है। ≍क≍ख यह ककार खकार से पूर्व में अर्ध विसर्ग के सदृश विन्यास होने पर जिह्वामूलीय कहाता है। एवम् ≍प≍फ यह पकार और फकार से पूर्व में अर्धविसर्ग सदृश विन्यास होने पर उपध्मानीय कहाता है। अं अः अर्थात् अनुस्वार और विसर्ग सदा अच् के साथ ही होते हैं, "शिरोबिन्दुरनुस्वारः" अच् के ऊर्ध्वभाग में एक बिन्दु होने से अनुस्वार कहाता है, और दो बिन्दु आगे आने से विसर्ग कहाता है। "सन्मुखे द्विबिन्दुर्विसर्गः"। इति स्थानप्रयत्नविवेकः।

(ऋ ऌ इति) ऋ-ऌ का परस्पर सावर्ण्य जानना। तो बारह ऌवर्ण के ह्रस्व प्लुत एवम् उदात्तादि भेद ऋवर्ण के साथ मिलाने से ऋ यह तीस प्रकार का हो जाता है। प्रतीयते—विधीयते इति प्रत्ययः, न प्रत्ययः, अप्रत्ययः। जो विधान किया जाय अर्थात् आगम-आदेशादि से किया जाय वह प्रत्यय कहाता है, और जो आगम-आदेश से जायमान नहीं वह अप्रत्यय कहाता है। तो अप्रत्यय अण् और उदित् कवर्गादिक पचीस वर्ण सवर्ण के ग्राहक हैं। अर्थात् स्थान प्रयत्न से स्वकीय स्थान-प्रयत्नवाले होते हैं। (अत्रैवेति) इसी सूत्र में अण् प्रत्याहार का पर णकार से ग्रहण है।

टि॰ विधिशास्त्र से कार्य विहित हो जाने पर उसका निषेध निरर्थक हो जायगा, अतः निषेधशास्त्र (सूत्र) का विधिशास्त्र के साथ ही एकवाक्यत्वेन अर्थ होता है, एवं "नाज्झलौ" और 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' का साथ ही एकवाक्यत्वेन अर्थ होगा, तो यह अर्थ होगा—कि अच् हल् भिन्न तुल्यास्यप्रयत्न सवर्णसंज्ञक हैं। इस प्रकार अच् प्रत्याहार से ह्रस्व ही अच् जो अक्षर समाम्नाय में पढ़े हैं, उनका ग्रहण होगा, क्योंकि दीर्घों का ग्राहक अणुदित्सवर्णस्य का अभी बोध ही नहीं हुआ है, जो उसका भी निषेध करता। अतः नाज्झलौ से ह्रस्व ही अचों का हल् के साथ निषेध होगा, एवम् दीर्घ अचों का सावर्ण्य हो ही जायगा। ऐसा मानने पर विश्वपाभिः में दीर्घ आकार हकार का सावर्ण्य हो जायगा। तो ही ढः इससे आकार को

यवला द्विधा। तपरस्तत्कालस्य १।१।७०। तेन अत् इत् इत्यादय

(दीर्घाणामिति) अण् प्रत्याहारान्तर्गत अच् यह दीर्घ भी लिया जायगा। भट्टोजि ने केवल ह्रस्वों को माना है, टिप्पण देखो।

(नाज्झलाविति) अच् हल् ये परस्पर सवर्ण नहीं होते हैं। परंतु हल् हल् के साथ सवर्ण होते हैं, इसलिये अण् प्रत्याहारान्तर्गत, य व ल ये अनुनासिक यँ वँ लँ के साथ सवर्ण होते हैं, अत एव अनुनासिक और अननुनासिक भेद से य व ल ये दो प्रकार के हैं।

टि० हकार मानकर ढकारादेश प्राप्त होता है, तन्निवृत्त्यर्थं, आ अच्, यह आकार का प्रश्लेष करके दीर्घ आकार और अक्षर समाम्नाय में पठित ह्रस्व अच् को हल् को छोड़कर सवर्ण ग्राहकता हैं। अतः आकार के साथ सवर्ण ग्राहकता न होने से हो ढः की प्राप्ति नहीं होती है। हेयियासो! हेपिपासो! इस महाभाष्य-प्रयोग से प्लुत का भी ग्रहण जानना, यह भट्टोजि दीक्षितजी ने अपनी वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी में लिखा है "अकः सवर्णे दीर्घः" में कुमारी शेते यहाँ दीर्घ ईकार और शकार का सावर्ण्य होने से प्राप्त दीर्घ निवृत्त्यर्थं अच् की अनुवृत्ति मान कर उसके प्रत्युदाहरण में अचि किम् कुमारी शेते कहा है। परन्तु कुमारीभ्याम् यहाँ दीर्घ ईकार और शकार के सावर्ण्य होने से व्रश्चभ्रस्ज से षत्व हो जायगा। वधूभ्याम् में ऊकार वकार के सावर्ण्य होने से लोपो व्योर्वलि से लोप, भकार ऊकार के सावर्ण्य से युवाभ्यां में गुण इत्यादि अनेक स्थलों में दोष हो जायगा, अतः सूत्रक्रमानुसारी मात्र ज्ञान नहीं होगा, किन्तु अच् पद से भाव्यमान सवर्ण ग्राहक अणुदित् से दीर्घ प्लुत युक्त भी लिये जायँगे। यदि सूत्रज्ञान से पौर्वकालिक मात्र ज्ञान को मानेंगे तो इको गुणवृद्धी में हशि च से उत्व नहीं होगा। किञ्च तुल्यास्यप्रयत्नं से पूर्व नाज्झलौ उत्पन्न ही नहीं हुआ है, तो कैसे एकवाक्यता होगी। यदि निषेध सूत्र की प्रतीक्षा करेगा तो प्रतीक्षा के अविशेष होने से सवर्णग्राहकता की भी प्रतीक्षा कर लेगा। वस्तुतः पाणिनि को ज्ञान है तदनुकूल व्याकरण अष्टाध्यायी का निर्माण है। क्रमिक ज्ञानपूर्वक नहीं।

षरणां संज्ञा। [1]वृद्धिरादैच् १।१।१। अदेङ् गुणः ।१।२।२। अदर्शनं

(तपर इति) 'तपरः' यहां पर 'तः परो यस्मात्' यह बहुव्रीहि और 'तात्परः तपरः' यह षष्ठी तत्पुरुष विनिगमना विरह से दोनों प्रकार का समास होता है। तो तकार है पर—अग्रभाग में जिसके इस अर्थ से 'अत्-एङ् गुणः' में अत् पद से केवल ह्रस्व अकार उदात्त अनुदात्त स्वरित भेद से अनुनासिक और अननुनासिक अत् यह छ प्रकार के अकार का ग्रहण करता है। और 'तात् परः' इस पञ्चमी समास से ए—ओ-यह दीर्घ ही लिया जायगा, प्लुत नहीं। अत एव रामा ईशः इस चतुर्मात्रिक के स्थान में त्रिमात्रिक प्लुत गुण नहीं होगा। क्योंकि गुणसंज्ञा द्विमात्रिक दीर्घ ही एकार की है। यदि पञ्चमी तत्पुरुष नहीं मानेंगे तो द्विमात्रिक दीर्घ आकार और द्विमात्रिक दीर्घ ईकार मिलकर चतुर्मात्रिक होता है, परंतु चतुर्मात्रिक कोई वर्ण नहीं है अतः अगत्या चतुर्मात्रिक के स्थान पर त्रिमात्रिक हो जायगा, अतः तन्निवृत्त्यर्थं पञ्चमी तत्पुरुष भी माना है।

(वृद्धिरिति) आत् ऐच् वृद्धिः। तः परो यस्मात् इस बहुव्रीहि समास से छ प्रकार का दीर्घ आकार और तात्परः इस पञ्चमी समास से दीर्घ ऐ औ इनकी वृद्धि संज्ञा है।

(अदेङिति) अत् एङ् गुणः। पूर्ववत् उक्त समासों से अत्—छ प्रकार का ह्रस्व अकार और एङ् छ प्रकार का दीर्घ ए ओ इनकी गुण संज्ञा है।

(अदर्शनमिति) किसी पदार्थ—वस्तु के न देखने पर उसको लोप कहते हैं। यहाँ प्रकरण प्राप्त वर्णों का ग्रहण होगा। अतः वर्णों का अभाव

टि० १. वृद्धिरिति। "अनुवाद्यमनुक्त्वैव, न विधेयमुदीरयेत्" तो यहाँ विधेयवृद्धि पद पूर्व में कैसे हो सकता है ?'

उत्तर—मङ्गलार्थक वृद्धि पद है, व्याकरण ग्रन्थ-अष्टाध्यायी के आरम्भ में मङ्गलार्थक वृद्धि शब्द को कहा है, यह शिष्ट संप्रदाय है कि विघ्ननिवृत्त्यर्थं मङ्गल को करें, वृद्धि पद उन्नति रूप मङ्गल का बोधक है, अतः मङ्गलारम्भपूर्वक ग्रन्थारम्भ किया।

लोपः। १।१।६०। [1]भूवादयो धातवः।१।३।१। प्राग् रीश्वरान्निपाता
।१।४।५६। इत्यधिकृत्य। चादयोऽसत्त्वे।१।४।५७। प्रादयः।१।४।५
उपसर्गाः क्रियायोगे।१।४।५९। गतिश्च। १।४।६०। प्रादयः क्रि
योगे उपसर्गसंज्ञा गतिसंज्ञाश्च स्युः। प्र परा अप सम् अनु अव निस् नि

व्याकरण शास्त्र में लोप कहाता है, जैसे संयोगान्तस्य लोपः, संयोगा
पद के अन्त में विद्यमान अक्षर का लोप–अभाव।

(भूवेति) 'वा' का अर्थ है क्रियावाचक। भू—पद से भू शब्द
आदि पद का अर्थ है इत्यादिक। तो यह अर्थ होगा कि क्रियावाचक
इत्यादि शब्द धातु संज्ञक होते हैं। जैसे सत्ता अर्थ में भू शब्द, वृ
अर्थ में एध् शब्द इसी प्रकार से सर्वत्र जानना।

(प्रागिति) रीश्वरात् प्राक्, 'अधिरीश्वरे' सूत्रोक्त रीश्वरे मात्र का ग्र
हैं। अर्थ स्पष्ट है अधिरीश्वरे सूत्र से पूर्व तक निपात का अधिकार है
अर्थात् इस सूत्र से आरम्भ कर अग्रिम सूत्रों से जो कहा जायगा अ
रीस्वरे सूत्रपर्यन्त वह निपात संज्ञक होगा। क्योंकि इस निपात पद
अधिकार है। (चादय इति) सत्त्व माने द्रव्य। असत्त्व–द्रव्य अर्थ से अ
रिक्त अर्थ में विद्यमान चादिक–निपात संज्ञक हों। क्योंकि निपाताः
अधिकार है। (प्रादय इति) प्र परा इत्यादिक भी निपात संज्ञक हों।

(उपसर्गा इति) क्रियायोगे उपसर्गाः। प्रादयः की अनुवृत्ति है
अर्थ स्पष्ट है। क्रिया के योग होने पर अर्थात् धातु के साथ प्र
होने पर प्रादिक उपसर्ग संज्ञक होते हैं। (गतिश्च) और प्रादिक ग
संज्ञक भी होते हैं। प्रादिकों का परिगणन करते हैं। प्र परा इत्यादि
ये प्रादिक-उपसर्ग, भिन्न २ क्रिया के साथ होने से भिन्न २ अर्थों
कहते हैं। जैसे हृञ् हरणे, हरणार्थक हृधातु के योग में प्रहार, आह

टि० १. भूवेति। "भूभूमिरचलाऽनन्ता" यहाँ भू की धातुसंज्ञा
नहीं होती?

उत्तर—यहाँ क्रिया वाचक नहीं है, किन्तु भूमिपदार्थ का वाचक है

दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप एते प्रादयः। [1]नवेति विभाषा ।१।१।४४। स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा ।१।१।६८। येन विधिस्तदन्तस्य ।१।१।७२। विशेषणं तदन्तस्य संज्ञा

संहार, विहार इत्यादि। एवं लप् धातु में, प्रलाप, अपलाप, संलाप। भू धातु में प्रभव, पराभव, संभव, अनुभव, उद्भव, अभिभव इत्यादिक विलक्षण अर्थों की प्रतीति होती है। कोई उपसर्ग को द्योतक और कोई वाचक मानता है।

(न वेति) न वा इति विभाषा। न का अर्थ निषेध, वा का अर्थ विकल्प, निषेध और पाक्षिक विधि-कार्य इसकी विभाषा संज्ञा है। (स्वमिति) शब्दस्य स्वं रूपम्,' शब्द का अपना रूप लिया जायगा, अर्थात् कार्य विधान में शब्द की वर्णानुपूर्वी का ग्रहण है, जैसे 'जराया जरसन्यतरस्याम्' में जरा शब्द का ग्रहण है। परंतु अशब्दसंज्ञा। न शब्दसंज्ञा अशब्दसंज्ञा। शब्द शास्त्र—व्याकरण शास्त्र, उसमें कही गयी संज्ञा के अतिरिक्त, अर्थात् व्याकरण शास्त्र के संज्ञा वाचक का स्वरूप नहीं लिया जायगा। जैसे "शेषो घ्यसखि" से घि संज्ञा, 'घे ङिति' से घि संज्ञक इकारान्त उकारान्त का ग्रहण होगा, घि शब्द का नहीं।

(येनेति) विशेषण तदन्त की संज्ञा हो, और अपने स्वरूप की भी

टि० १. प्रश्न—निषेध और विकल्प अर्थात् निषेध और पाक्षिक कार्य पदों के नाम से विकल्प क्यों कहते हैं? तात्पर्य यह कि—नित्य कार्य प्राप्त होने पर पाक्षिकविधि, और नित्य निषेध प्राप्त होने पर पाक्षिक निषेध होकर निषेध विकल्प सिद्ध हो ही जायगें तो फिर "वा विभाषा" ऐसा ही सूत्र क्यों नहीं किया?

उत्तर—जहाँ एक ही सूत्र से विधि और निषेध दोनों करना है, वहाँ नहीं होगा। जैसे—चिनुहि—इति, यहाँ 'अप्लुतवदुपस्थिते' इससे अप्लुतवद्भाव प्राप्त है, और चिनुहि इदम् यहाँ अप्राप्त है अतः प्राप्ताप्राप्त विषय में इसका फल है।

स्यात् स्वस्य च रूपस्य। समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः। उगिद्वर्णग्रहण वर्जम्। विरामोऽवसानम् ।१।४।११०। परः सन्निकर्षः संहित १।४।१०९। सुप्तिङन्तं पदम् ।१।४।१४। हलोऽनन्तराः संयोगः १।१।

संज्ञा हो, (समासेति) समास विधि में और प्रत्यय विधि में तदन्त ग्रह नहीं होगा। अर्थात् उक्त सूत्र से तदन्त ग्राहकता नहीं होगी। पर यह निषेधक वार्तिक उगित् और वर्णग्रहण के विषय से अतिरिक्त स्थ पर लगेगा। उगित् पद से उक् प्रत्याहारान्तर्गत उ-ऋ-लृ-का ग्रह होता है, तो यह अर्थ होगा, कि उकार ऋवर्ण लृवर्ण और वर्ण अक्षर ग्रहण के विषय में यह 'समासप्रत्ययविधौ' से प्रतिषेध न होगा। उगितश्च से उगिदन्त अर्थ होने से सुपचन्ती में नुम् होगा।

(विराम इति) विराम-किसी वस्तु की समाप्ति अर्थात् अभाव। प्रकृ में वर्णों का अभाव, उक्त वर्ण के अनन्तर फिर वर्ण का आगे, उ पद में प्रयोग न हो तो वह अवसान संज्ञक होता है। जैसे 'रामाद् पञ्चम्यन्त रामाद् इस पद के आगे कोई वर्ण उस पद का नहीं है, अत यह अवसान कहा जायगा। तो फिर वावसाने से वैकल्पिक चर होगा रामात्, रामाद्। (पर इति) परः सन्निकर्षः संहिता। परः का अर्थ अतिशयित, सन्निकर्षः सन्निधिः, किसकी संनिधि इस आकाङ्क्षामें प्रत्यासत्ति से वर्णों का ग्रहण होगा। तो यह अर्थ होगा, कि वर्णों की अत्यन्त सन्निधि की संहिता संज्ञा है, अर्थात् वर्णों के सामीप्य होने प सन्धि होती है।

(सुप् इति) सुबन्त और तिङन्त, पद-संज्ञक होते हैं। राम रामस्, यह सुबन्त है, पचतस् यह तिङन्त है, अतः दोनों स्थल पर स सजुषोरुः से पदान्त सकार को रु आदेश होगा, उकार इत्, रेफ को विसर्ग। रामः, पचतः।

टि० १. सुप्तिङन्तमिति। सुप् च तिङ् च सुप्तिङौ। सुप्तिङौ अन्ते यस्येति। सुबन्त और तिङन्त शब्दरूप पदसंज्ञक होते हैं, द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते। यहाँ द्वन्द्वसमास के अन्त पर श्रूयमाण

ह्रस्वं लघु १।४।१०। संयोगे गुरु १।४।११। दीर्घं च।१।१।१२।

इति संज्ञाप्रकरणम्।

(हलो इति) अनन्तर-व्यवधान रहित हल्, किसका व्यवधान इस आकाङ्क्षा में हल् का हल् से व्यवधान हो नहीं सकता। तो हल् से विजातीय अर्थात् स्वर का, तो यह होगा कि स्वर के व्यवधान रहित हल संयोग संज्ञक होते हैं, अर्थात् उनकी संयोग संज्ञा होती है।

ह्रस्वमिति) ह्रस्व की लघु संज्ञा है। अर्थात् अ इ उ ऋ लृ, ये ह्रस्व वर्ण लघु कहे जाते हैं।

(संयोगे इति) संयुक्त वर्ण के पर रहने पर ह्रस्व गुरु कहाता है। दीर्घं च। और दीर्घ वर्ण भी गुरु कहाता है। संयोग में गुरु भी कहाता है। संयोग में गुरु संज्ञा पूर्व सूत्र से ही हो जायगी। और यदि 'संयोगे गुरु' से ह्रस्व वर्ण की ही संयोग होने पर गुरु संज्ञा मानते हो, तो 'दीर्घं च' सूत्र में पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति करके संयोग में दीर्घ की गुरु संज्ञा, और च ग्रहण से असंयोग में भी दीर्घ की गुरु संज्ञा है। वस्तुतः दीर्घं च में संयोगे पद की अनुवृत्ति है। अतः संयोग और असंयोग दोनों स्थलों में दीर्घं च से गुरु संज्ञा होगी। पूर्वोक्त सूत्रों की, सूत्र पदों से ही तदर्थ प्रतीति हो जाती है अतः तदर्थ बोधिका वृत्ति निरर्थक है। केवल छात्रों का समय नाशकारिणी है। इति-संज्ञाप्रकरणम्।

टि० अन्त पद का दोनों से सम्बन्ध होगा, अतः सुबन्त तिङन्त, का ग्रहण होगा। शब्द शास्त्र का प्रकरण है, अतः सुबन्तं तिङन्तं च शब्दरूपं पद संज्ञं स्यात्। यह अर्थ होगा।

हल इति। हलः यह बहुवचन है, इससे और 'संयोग' यह बृहत् तीन अक्षरों की संज्ञा है इससे संयोग—दो अक्षर अच् रहित, संयोग कहा जायगा। अतः दृषत् करोति में तकार ककार का अच् से व्यवधान न होने पर भी संयोग संज्ञा नहीं होगी, अतः 'संयोगान्तस्य लोपः' से तकार लोप नहीं होगा। भट्टोजिदीक्षितजी ने 'संयोगान्तस्य लोपः' की मनोरमा में संयोगौ अन्ते यस्य, दो संयोग अन्त में होने पर लोप होगा

अथ परिभाषा-प्रकरणम्

इको गुणवृद्धी १।१।३। यत्र गुणवृद्धिशब्दाभ्यां गुणवृद्धी तत्र इक इत्युपतिष्ठते। अचश्च १।२।२८। यत्र ह्रस्वादिशब्दैः अज् विधीयते तत्र अचः इत्युपतिष्ठते। [1]आद्यन्तौ टकितौ १।१।४६। मिद-

अथ परिभाषाप्रकरणम्। (इको इति) वृद्धिरादैच् से वृद्धि पद को और अदेङ् गुणः से गुण पद की अनुवृत्ति करके यह अर्थ होगा कि यत्र गुणवृद्धिशब्दाभ्यां गुणवृद्धी भवतः तत्र इकः इत्युपतिष्ठते। भावार्थ यह है कि एक गुणवृद्धि पद को विभक्ति विपरिणाम करके तृतीयान्त मानेंगे। इकः यह षष्ठ्यन्तानुकरण इकस् शब्द का प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिङ्ग का रूप है। 'न लुमताङ्गस्य' से निषेध होने से अत्वसन्तस्य० से दीर्घ न होगा, तो यह अर्थ होगा। कि जहाँ पर गुण वृद्धि पद का उच्चारण करके गुणवृद्धि का विधान है वहाँ इकः यह उपस्थित होगा। अर्थात् वहाँ इक के स्थान में गुण वृद्धि होंगे। जैसे मिदेर्गुणः मृजेर्वृद्धिः इत्यादिकों में।

(अच इति) ऊ कालोऽज्झ्रस्व दीर्घ प्लुतः की अनुवृत्ति करके पूर्ववत् यह अर्थ होगा। कि-जहाँ ह्रस्व दीर्घ प्लुत पदों का उच्चारण करके अच् का विधान हो वहाँ अचः यह षष्ठ्यन्त उपस्थित होगा।

(आद्यन्तौ इति) आदिश्च अन्तश्च आद्यन्तौ। टश्च कश्च टकौ। टकौ इतौ ययोस्तौ। द्वन्द्व समास के अन्त पर श्रूयमाण पद प्रत्येक द्वन्द्व समासीय पद के साथ सम्बद्ध होगा, अतः यह अर्थ होगा, कि टकार जिस

टि० यह अन्त-ग्रहण के सामर्थ्य से समाधान किया है। ह्रस्व दीर्घ प्लुत अचों को ही होंगे, अतः अचश्च सूत्र स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिये है।

टि० मिदचोऽन्त्यादिति अन्ते भवः अन्त्यः तस्मात्। अन्त पर जो अच उस अन्त का अवयव मित् हो। यह अर्थ, आद्यन्तौ टकितौ सूत्र में अन्त पद मात्र में स्वरितत्व प्रतिज्ञामान कर अन्त पद की अनुवृत्ति करके सामर्थ्यात् अन्तावयव मानते हैं, परः पद से भी अत्यन्त समीप तदवयव मान सकते हैं।

चोऽन्त्यात्परः १।१।४७ । [1]षष्ठी स्थानेऽयोगा । १।४।६। [2]स्थानेऽन्तरतमः ।१।१।५०। स्थानं च प्रसंगः । [3]तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १।१।६६ । तस्मिन्निति सप्तम्यन्तानुकरणम् । सप्तम्यन्ते निर्दिष्टे सति

आगमादि में इत् है वह आद्यवयव होगा, और ककार जिसके इत् हो वह अन्तावयव होगा। "यथासंख्यमनुदेशः समानाम्" इससे यथा-संख्येन अन्वय होगा।

(मिदिति) अचः अन्त्यात्परः मिदागमः। अचः यह निर्धारण अर्थ में षष्ठी है, जातित्व से अथवा सौत्रत्वाद् एक वचन है। तो यह अर्थ होगा। कि अचों के मध्य में अन्त पर जो अच उससे पर-अग्रभाग में मित् का आगम; उसी के अन्त का अवयव होगा।

(षष्ठी इति) अयोगा षष्ठी स्थाने। स्पष्ट अर्थ है नास्ति योगो यस्याः अयोगा। जिसका किसी से योग अवयवादि रूपतया संबन्ध न हो वह षष्ठी स्थान में होगी। (स्थाने इति) स्थान का अर्थ है प्रसङ्ग। स्थान होने पर अर्थात् अनेक वर्णों का प्रसङ्ग होने पर सदृशतम आदेश होगा।

(तस्मिन्निति) 'तस्मिन्' यह सप्तम्यन्त का अनुकरण है, यह अर्थ इति शब्द से प्रतीत है, तो यह अर्थ होता है कि सूत्र में सप्तम्यन्त पद के निर्देश होने पर सप्तम्यन्त पद से पूर्व को आदेश होगा। जैसे 'इको यणचि' यहाँ सप्तम्यन्त पद 'अचि' यह है, अतः अच् से अव्यवहित पूर्वस्थ इक को यण् आदेश होगा, तो सुधी उपास्यः में सकारोत्तर उकार अव्यवहित नहीं है, अतः उसको वकार नहीं होगा।

टि० १. षष्ठीस्थानेऽयोगा, नास्ति योगः सम्बन्धो यस्याः सा अयोगा, सा षष्ठी स्थाने भवति।

२. स्थाने इति। अन्तरतम पद से अनेक वर्णों का प्रसङ्ग होने पर अर्थ स्वतः सिद्ध हो जायगा अतः स्थानं च प्रसङ्गः निरर्थक है।

३. निर्दिष्टे इति। निर्दिष्ट पद में निर् है अतः नितराम् यह अर्थ होगा, अत्यन्तयोग होने पर अर्थात् व्यवधान रहित योग होने पर यह अर्थ होगा।

पूर्वस्य कार्यं बोध्यम्। तस्मादित्युत्तरस्य ।१।१।६७। पञ्चम्यन्ते निर्दि
सति परस्य कार्यं ज्ञेयम्। [1]अलोऽन्त्यस्य ।१।१।५२। ङिच्च ।१।१।५३
आदेः परस्य १।१।५४। अनेकाल् शित्सर्वस्य ।१।१।५५। स्वरि

(तस्मादिति) पूर्ववत्, पञ्चम्यन्त का अनुकरण है, तो यह अ होगा कि-पञ्चम्यन्त पद से निर्देश होने पर अव्यवहित पर को कार्य होगा जैसे उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य, उद् उपसर्ग से अव्यवहित पर-आगे वि मान, स्थास्तम्भ को पूर्वसवर्ण होगा। 'गृहस्थ-उन्नतिर्देवस्य' यहाँ नह क्योंकि यहाँ उद् से पूर्व स्था पद है।

(अल इति) षष्ठ्यन्त पद के निर्देश से विधीयमान कार्य, अन्त्य अ को होगा, अर्थात् अन्त में विद्यमान एक वर्ण के स्थान में होगा।

(ङिच्चेति) ङकार जिसके इत् है वह आदेश भी अन्त में विद्यमा एक वर्ण के स्थान पर होगा। 'अनङ् सौ' इत्यादिक उदाहरण हैं।

(आदेरिति) परस्य आदेः। पर के स्थान पर विधीयमान कार्य आ वर्ण को होगा, अर्थात् 'तस्मादित्युत्तरस्य' इससे उपस्थापित पर के स्था पर कार्य उस पर के आदि वर्ण को होगा। जैसे उद् स्थानम्, यहाँ उ से पर स्था का आदि सकार है, उसको पूर्व सवर्ण होगा।

(अनेकालिति) जिस आदेश में अनेक (अल्) वर्ण हों अथ शकार जिसके इत् हो, वह आदेश संपूर्ण स्थानी के स्थान पर, अर्थ पूरे स्थानी को होगा। जैसे 'जराया जरसन्यतरस्याम्' से जरा शब्द जरस्, अष्टाभ्य औश् से जस् शस् को शित्त्वाद् औश् इत्यादि।

(स्वरितेनेति) स्वरितत्व प्रतिज्ञा से अधिकार-अनुवृत्ति जानना। जै उपदेशेऽजनुनासिक इत्, में उपदेश पद का ज्ञान प्रतिज्ञा से परंपरा होता है ऐसे ही स्वरित ज्ञान भी जानना।

१. अल्—अइउण् के अकार से लेकर हल् सूत्र के लकार पर्यन्त अल् प्रत्याहार है, अतः अल् प्रत्याहारान्तर्गत अन्त्य वर्ण को आदेश होगा।

नाधिकारः ।१।१।५६। परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयस्त्वम् । असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे । अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः । निमित्तं विनाशो-

---

(परेति) पर-'विप्रतिषेधे०' इस सूत्र से पूर्वापेक्षया पर बलिष्ठ है, उससे नित्य "कृताकृतप्रसङ्गी विधिर्नित्यः" कार्य करने पर और न करने पर भी जो विधि प्राप्त होता है वह नित्य कहाता है, जैसे तुदति, तुद तिप्, गुण पुगन्तलघूपधस्य से प्राप्त था; परंतु तुदादिभ्यः शः से श नित्य है, क्योंकि गुण करने और न करने पर भी श प्राप्त है। 'श' विकरणागम होने पर गुण नहीं क्योंकि तिङ् शित्० से सार्वधातुक संज्ञा, सार्वधातुकमपित् से ङिद्वत्, 'क्ङिति च' से गुण का निषेध, अतः शविकरण नित्य होने से बलिष्ठ है और नित्य से अन्तरङ्ग। क्योंकि "असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे" अन्तरङ्ग कार्य कर्तव्य रहते बहिरङ्ग कार्य असिद्ध है। अन्तरङ्ग 'अल्पापेक्षया अन्तरङ्गम्' स्वल्प अपेक्षा रखता हो वह अन्तरङ्ग है। और "बह्वपेक्षया बहिरङ्गम्" अधिक अपेक्षा रखने से बहिरङ्ग कहाता है। जैसे उभय शब्द का जस् के परे, 'प्रथम चरमतया०' से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा प्राप्त है, और "सर्वादीनि सर्वनामानि" से नित्य सर्वनाम संज्ञा प्राप्त है यहाँ वैकल्पिक संज्ञा विधायक जस् की भी अपेक्षा रखता है, अतः बहिरङ्ग है, और 'सर्वादीनि०' यह निरपेक्ष है अतः अन्तरङ्ग है। एवं बहिरङ्ग विकल्प की अपेक्षया नित्य संज्ञा अन्तरङ्ग है, अतः 'उभये' यही होगा, वैकल्पिक नहीं।

अन्तरङ्ग से भी अपवाद बलिष्ठ है। अर्थात् पर नित्य अन्तरङ्ग तीनों से अपवाद बलवान् हैं। 'जैसे दैत्यारिः, श्रीशः इत्यादिकों में अन्तरङ्ग गुण यण् को बाधकर अपवादत्वाद् दीर्घ होगा। "निरवकाशो विधिरपवादः" यदि कहीं गुण कहीं यण् हो जाय तब तो अकः सवर्णे० सूत्र ही व्यर्थ हो जायगा, अतः सूत्रारम्भसामर्थ्य ही अपवाद के बलीयस्त्व का बीज है।

(अकृतेति) पाणिनीयाः 'न कृतः विशिष्टः ऊहः यैस्ते' विशिष्ट ऊह

न्मुखं दृष्ट्वा तत्प्रयुक्तं कार्यं न कुर्वन्तीत्यर्थः। इति परिभाषाप्रकरणम्।

अथ अच्सन्धिः

इको यणचि ६।१।७७। अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६। यरो वा

तर्कणा जिन्होंने नहीं की है अर्थात् निमित्त को विनाशोन्मुख देखकर तत्प्रयुक्त कार्य को नहीं करते हैं। जैसे सेदुषः, यहाँ पर शस् ङसि ङस् विभक्ति के परे, सेद् वस् शस् यहाँ 'वसोः संप्रसारणम्' इससे वकार को उकार संप्रसारण हो जायगा, यह देखकर तत्प्रयुक्त वलादि को मानकर आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इट् नहीं करते। वस्तुतः, कृत्तद्धित० से प्रातिपदिक संज्ञा सेदिवस् की होगी, इट् रहित सेद् वस् यह संप्रसारण, भसंज्ञा आदि की प्रतीक्षा करता हुआ इड् विधायक आर्धधातुकस्येड्वलादे यह कब तक ठहरेगा। भसंज्ञाविधायक और इड्विधायक दोनों बहिरङ्ग हैं, परंतु परत्वाद् इड् हो जायगा। अतः "निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः" निमित्त के नाश होने पर अर्थात् निमित्त की निवृत्ति होने पर नैमित्तिक निमित्त के उद्देश्य से आये हुए की भी निवृत्ति हो जाती है, तो वकार को उकार संप्रसारण होने पर वलादित्व की निवृत्ति होने से इट् की भी निवृत्ति हो जायगी। एवं सेदुषः सिद्ध हो जायगा। "निमित्तापाये नैमिकस्य" यह लोकन्यायसिद्ध वचन है। इति परिभाषाप्रकरणम्।

अथ अच्सन्धिः। हरि–अनुभवः, ऐसी स्थिति में, इको यणचि। इकः यण् अचि। व्याकरण में 'षष्ठी स्थाने योगा' से स्थान में षष्ठी मानी जाती है, अतः सूत्रार्थ स्पष्ट है। इक् के स्थान में यण् हो अच् के परे। इक् में रकारोत्तरवर्ती तालुस्थानीय इकार को यण् में तालुस्था-

---

१. टि० भाष्यकार ने कहा है, "नेमौ रहौ द्विर्वनस्य कार्यौ, किन्तु हि निमित्तमिमौ द्विर्वचनस्य, यथा–सर्वे ब्राह्मणा भुज्यन्ताम्, माठर कौण्डिन्यौ परिविशाताम्, नेदानीं तौ भुञ्जाते" तात्पर्य यह है, कि– ये रेफ हकार द्वित्व के निमित्त हैं, अतः द्वित्व के कार्य नहीं हो सकते हैं, इसी का लौकिक दृष्टान्त से समर्थन करते हैं, जैसे ब्राह्मणसमूह में भोजनावसर पर प्रभु आज्ञा देता है, सब ब्राह्मण भोजन करें, और

द्वित्वम्। हर्य्यनुभवः, नह्यस्ति[२]। अनचि च।८।४७। यरो वा द्वे स्तः। स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ।१।१।५६। आदेशः स्थानिवत्स्यात्। एकवर्णाश्रितो विधिः अल्विधिः। तत्र न स्थानिवत्। अचः परस्मिन्पूर्वविधौ

नीय यकार होगा। पुनः, अचो रहाभ्यां द्वे। यरोऽनुनासिके० से यर् और वा पद की अनुवृत्ति होगी। तो यह अर्थ होगा—अच् से पर जो रेफ हकार है, उससे पर यर् को विकल्प से द्वित्व हो, अतः रेफ से पर यकार को विकल्प से द्वित्व होगा, एवम्—हर्य्यनुभवः हर्यनुभवः। नहि अस्ति। पूर्ववत् यण्। यहाँ हकार से यर् प्रत्याहार की यकार को विकल्प से द्वित्व होगा। नह्य्यस्ति, नह्यस्ति। सुधी उपास्यः। पूर्ववत् यण्। अनचि च। न अच् अनच् तस्मिन् अनचि। अच् को अग्र भाग में न होने पर यर् को विकल्प से द्वित्व होता है। जब अच् हल् कुछ भी पर नहीं होगा तब भी द्वित्व होगा। जैसे 'रामात्' में तकार को द्वित्व। तो यहाँ अच से भिन्न यकार परे है, अतः पूर्वस्थ धकार को द्वित्व होगा, स्थानिवदिति। प्रश्न—'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' आदेश स्थानी के तुल्य हो, यहाँ ईकार को यकार आदेश हुआ है, वह यकार, स्थानी ईकार के सदृश हो जायगा, अतः ईकार अच परे है, एवम् द्वित्व नहीं होना चाहिये।

उत्तर—'अनल्विधौ' एक वर्ण के आश्रित जो विधि है वह अल् विधि कहाती है, वहाँ स्थानिवद्भाव नहीं होता है। यहाँ एक वर्ण ईकार है, तदाश्रित विधि द्वित्वनिषेध विधि है, उसके कर्तव्य में स्थानिवद्भाव नहीं होगा, अतः द्वित्व हो जायगा।

पुनश्च—अचः इति। पर निमित्तक अच के स्थान पर जो आदेश है वह स्थानी के तुल्य हो। स्थानीभूत जो अच् है उससे पूर्व को कार्य कर्तव्य रहने पर। तो यहाँ पर उपास्यः 'गत'

टि० माठरनामा, कौण्डिन्यनामा ब्राह्मण परोसैं। तो जो परोसनेवाला है वह इस समय भोजन नहीं करता, इसी प्रकार रेफ हकार द्वित्व के निमित्त कारण हैं अतः उन्हें द्वित्व नहीं होगा।

।१।१।५७। परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्, स्थानिभूतादचः पूर्वस्य विधौ कर्तव्ये। इति स्थानिवद्भावे प्राप्ते। न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु ।१।१।५८। इति स्थानिवद्भावनिषेधः। ततो द्वित्वम्। झलां जश् झशि ।८।४।५३। अदर्शनं लोपः ।१।१।६०। संयोगान्तस्य लोपः ।८।२।२३। पदस्य लोपः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते।

उकार है, उसको मानकर अच् के स्थानपर आदेश ईकार को यण् गत यकार हुआ है, वह स्थानी ईकार के तुल्य हो जायगा। स्थानीभूत जो अच् ईकार है उससे पूर्व में विद्यमान धकार को द्वित्व करना है, इस प्रकार स्थानिवद्भाव होने से अर्थात् अच् ईकार पर होने से द्वित्व निषेध प्राप्त होने पर।

(न पदान्त इति) पदान्त–द्विर्वचन–वर प्रत्याहार के परे यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-दीर्घ-जश्-चर–इन विधियों के कर्तव्य रहने में स्थानिवद्भाव नहीं होता है। द्वन्द्व समास के अन्त पर श्रूयमाण विधि पद का प्रत्येक से सम्बन्ध होगा। तो यह अर्थ होगा—पदान्तविधि, द्विर्वचनविधि इत्यादि। यहाँ धकार को द्वित्व करना है, अतः द्विर्वचन-विधि कर्तव्य रहते स्थानिवद्भाव नहीं होगा, एवम् धकार को द्वित्व हो जायगा। तो सुध् ध् य् उपास्यः इस स्थिति में। झलां जश् झशि। झलां स्थान षष्ठी है। तो यह अर्थ होगा। झल् के स्थान में जश् हों झश् के परे। अतः पूर्व धकार को दकार हो गया। (अदर्शनमिति) अदर्शन-का अर्थ है न देख पड़ना अर्थात् अभाव। प्रकृत में वर्णों का अभाव लोप कहाता है।

(संयोगेति) संयोगान्त पद का लोप हो। अलोन्त्यस्य से अन्त में विद्यमान यकार का लोप प्राप्त हुआ। तब "यणः प्रतिषेधो वाच्यः" यण् के लोप का प्रतिषेध कहना। अर्थात् यण् का लोप नहीं होता, इस उक्त वार्तिक से यकार का लोप नहीं होगा।

यणः प्रतिषेधो वाच्यः। ॐ यणो मयो द्वे वाच्ये ॐ उभयत्र यकार-विकल्पात् चत्वारि रूपाणि। सुद्ध्यु पास्यः। मध्वरिः। धात्रंशः। लाकृतिः। नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य।८।४।४८। पुत्रादिनी त्वमसि पापे। तत्परे च।ॐ

(यणो इति) मय् प्रत्याहार से पर यण् को विकल्प से द्वित्व हो। यहाँ मय् प्रत्याहारान्तर्गत धकार से पर यकार को विकल्प से द्वित्व हो गया। अतः अनचि च के विकल्पवाले दोनों रूपों में यकार के विकल्प होने से चार रूप होंगे। जैसे दो धकार दो यकार, १। एक धकार दो यकार २। दो धकार एक यकार ३। एक धकार एक यकार ४। इसी प्रकार मधु-अरिः, मध्वरिः। यहाँ भी पूर्ववत् चार रूप होंगे। धातृ-अंशः, धात्रंशः। यहाँ रेफ को द्वित्व नहीं होगा, टिप्पण में कारण कहा है, अतः दो रूप होंगे। लृ आकृतिः, लाकृतिः एक रूप होगा। क्योंकि न कोई अच् से परयर् है और नाही मय् से परयण् है।

(नादिन्येति) पुत्र शब्द को द्वित्व न हो आदिनि शब्द के परे आक्रोश निन्दा-गाली अर्थ प्रतीत होता हो। जैसे–हे पापिनि तू पुत्र की खानेवाली, है। यहाँ विरुद्ध अनुध्यान-कथन है। अतः आक्रोश है। एवम्, एक तकारवाला ही पुत्र रहेगा, परन्तु जहाँ आक्रोश नहीं होगा वहाँ द्वित्व होगा ही। (तत्परे च) पुत्र शब्द को द्वित्व न हो, आदिनी-परक पुत्र शब्द के परे आक्रोश में। जैसे–पुत्रपुत्रादिनी त्वमसि पापे!। यहाँ पुत्र शब्द को आदिनीपरक पुत्र शब्द के परे द्वित्व नहीं होगा। पुत्र शब्द का व्यवधान है अतः पूर्व सूत्र से निषेध सिद्ध नहीं है अतः यह वार्तिक है।

(वा हतेति) पुत्र शब्द को हत जग्ध शब्द के परे विकल्प से द्वित्व हो। पुत्र हती, दो तकार। पुत्रहती, एक तकार।:एवं पुत्त्रजग्धी, पुत्रजग्धी।

टि० १. पुत्रहती इत्यादि में अनचि च से द्वित्व विकल्प होने से एक तकारक, द्वितकारक रूप सिद्ध हो थे फिर यह वार्तिक क्यों किया ?।

"त्रपुत्रादिनी त्वमसि पापे । वा हतजग्धयोः* । पुत्त्रहती पुत्रहती, पुत्र
जग्धी पुत्रजग्धी । त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य ८।४।५० । इन्न्द्रः इन्द्रः
राष्ट्रम्, राष्ट्रम् । सर्वत्र शाकल्यस्य ८।४।५।५१ । अर्कः, ब्रह्मा

(त्रिप्रभृतीति) तीन प्रभृतिक अर्थात् तीन चार जब हल् हो तब शाक-
टायन के मत से द्वित्व नहीं होगा, अर्थात् पाणिनि के मत से द्वित्व हो
जायगा, इस प्रकार वैकल्पिकत्व सिद्ध ही है फिर वैकल्पिक के लिये वा
पद की अनुवृत्ति नहीं करना, इन्द्रः, राष्ट्रम् ।

(सर्वत्रेति) शाकल्य के मत से सब जगह द्वित्व नहीं होगा । अर्थात्
समान वर्ण जहाँ द्वित्व करने पर रहेंगे वहाँ द्वित्व नहीं होगा । अर्कः
ब्रह्मा । परंतु पाणिनि मत से अचो रहाभ्यां से द्वित्व होगा ।

(दीर्घादिति) आचार्यों के मत से दीर्घ से पर वर्ण को द्वित्व नहीं
होगा । दात्रम्, पात्रम् । आचार्य के मत से धात्रंशः में भी द्वित्व
नहीं होगा ।

(हलो इति) हर्य्यनुभवः, में 'अचोरहाभ्यां द्वे' यकार द्वित्व करने पर
वैकल्पिक इस सूत्र से लोप होने पर और द्वित्वाभाव में एक यकार का
रूप सिद्ध है, फिर सूत्र का फल कहते हैं । आदित्यो देवता अस्य इस
विग्रह में आदित्य शब्द से 'दित्यदित्यादित्य०' इससे ण्य प्रत्यय, णु
से णकार इत्, यस्येति च से अकार का लोप, आदित्य् य इस अवस्था में
"हलोयमां यमि लोपः" हल् से पर यम का लोप हो, यथाक्रम यम्
प्रत्याहार के परे । तो यहाँ हल् प्रत्याहारान्तर्गत तकार है उससे पर
प्रत्याहारान्तर्गत यकार है उसका लोप हो जायगा यमण्य प्रत्यय का यकार

टि० "सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति" सिद्ध होने पर जो
विधि कही जाती है वह नियम करती है । तो यह वार्त्तिक नियम करेगा
कि पुत्र शब्द को क्त प्रत्ययान्त शब्द के परे द्वित्व हो तो हत और जग्ध
शब्द के परे ही हो, आक्रोश में ही हो, तो पुत्रगतः, में अथवा पुत्रहती
यहाँ भी आक्रोश न होने पर यथार्थ कथन में द्वित्व नहीं होगा। त्रिप्रभृतीति
न पद की अनुवृत्ति को मण्डूक प्लुति से भट्टोजि ने माना है और यहाँ
वा पद की अनुवृत्ति मानी है, यह वैषम्य चिन्त्य है ।

दीर्घादाचार्याणाम् ८।४।५५ दात्रम्, पात्रम्। हलो यमां यमि लोपः ८।४।६४ आदित्यो देवता अस्येति आदित्यम् हविः। एचोऽयवायावः ६।१।७८ हरये, विष्णवे, नायकः, पावकः। यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे। वान्तो यि प्रत्यये ६।१।६८ यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरवावौ स्तः। गव्यम्, नाव्यम्। गोर्यूतौ छन्दस्युपसंख्यानम्। अध्वपरिमाणे च। गव्यूतिः।

परे है। तो इस सूत्र का फल हर्य्यनुभवः में नहीं है, क्योंकि लोपाभाव और द्वित्व में दो यकार होंगे, एवम् द्वित्वाभाव और लोप में एक यकार होगा। किन्तु उक्त प्रक्रिया से आदित्यम् में एक यकार का होना फल है।

(एचो इति) एच्—ए ओ ऐ औ इन को अय् अव् आय् आव् हों अच् के परे। हरे—ए। यहाँ एकार को अय् इत्यादिक चारों प्राप्त हुए, अतः "यथासंख्यमनुदेशः समानाम्" समानाम् अनुदेशः यथासंख्यं भवति। समस्थानियों का अनुदेश, अर्थात् जितने स्थानीय हों उतने आदेश अथवा निमित्तादि कारण हों तो यथासंख्य से होंगे, प्रथम को प्रथम, द्वितीय को द्वितीय इत्यादि संख्या से होते हैं। तो यहाँ एकार को अय्, ओकार को अव्, ऐकार को आय् और औकार को आव् होगें। एकारको अय्; हरये। विष्णो—ए, ओकार को अव् विष्णवे। नै-अकः, ऐकार को आय्, नायकः। पौ—अकः, औकार को आव् पावकः।

(यस्मिन्निति) जिस अल् के ग्रहण में अर्थात् जिस सप्तम्यन्त एक अक्षर के ग्रहण में जो विधि आरम्भे की जाती है वह तदादि अल् का ग्रहण करती है। जैसे गोर्विकारः, गाय के दुग्धादि का विकार इस अर्थ में, गोपयसोर्यत् से यत् प्रत्यय, गो यम् इस अवस्था में।

(वान्तो—इति) सप्तम्यन्त एक वर्ण यकार के ग्रहण होने से यह अर्थ होगा, कि—यकारादि प्रत्यय के परे ओकार औकार इनको वान्त आदेश अव् आव् हों। वान्त आदेश ओकार औकार को ही होते हैं, अतः ओकार औकार स्थानी का ग्रहण हो जायगा, गव्यम्। नौ यम्, नाव्यम्।

(गोर्यूतौ इति) गोशब्द से यूति शब्द पर रहने से ओकार को वेद

टिप्पण—गव्यम् नाव्यम् में 'यचि भम्' से भसंज्ञा होने पर लोपः शाकल्यस्य से लोप नहीं होगा।

धातोस्तन्निमित्तस्यैव ६।१।८० । लव्यम्, लाव्यम् । क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे ६।१।८१ क्षय्यम्, जय्यम् । क्रय्यस्तदर्थे ६।१।८२ । तस्मै

में वान्तादेश होता है, गो यूतिः, ओकार को अव् । गव्यूतिः । अध्व-मार्ग के परिमाण अर्थ में गोशब्द के ओकार को 'वान्त' अव् आदेश होता है। गो–यूतिः गव्यूतिः । गव्यूतिः का अर्थ दो कोश मार्ग । "गव्यूतिः क्रोशयुगम्" इत्यमरः ।

(धातोरिति) लव्यम्, लो-यम् 'अचोयत्' से य प्रत्यय, गुण । लाव्यम् में लूधातु 'ओरावश्यके' से ण्यप्रत्यय, णित्त्वात् 'अचो ञ्णिति' से वृद्धि। लौ-यम् यहाँ दोनों प्रयोगों में धातोस्तन्निमित्तस्यैव, धातु के एच् को अर्थात् ओकार औकार को यदि वान्तादेश हो तो तन्निमित्तक अर्थात् यकार को मानकर ओकार अथवा औकार हुआ होगा, तो वान्तादेश होगा अन्यथा नहीं। लव्यम्, यहाँ यकार को मानकर गुण ओकार हुआ है, लाव्यम्, यहाँ णित् यकार को मानकर औकार वृद्धि हुई है । लाव्यम् ।

(क्षय्येति , शक्य अर्थ मे क्षय्य जय्य होते हैं, अर्थात् क्षि-जि-धातु से 'शकि लिङ च' से यत् गुण क्षे-यम्, जे-यम्, अयादेश अप्राप्त था। निपातनात् शक्य अर्थ में अय् आदेश। क्षय्यम्, जय्यम् । और जहाँ शक्य अर्थ नहीं होगा वहाँ "अर्हे कृत्य तृचश्च" से यत्, गुण। क्षेयम् जेयम् रहेंगे।

(क्रय्येति) तदर्थ मे क्रय्य होता है। तदर्थ शब्द का निर्वचन यह है

टिप्पण—प्रश्न माहात्म्यम् में तकार से पर मकार का लोप क्यों नहीं होता, यम् प्रत्याहार का यकार परे है ।

उत्तर—यथाक्रम से यम् के आगे यम् परे होने पर लोप होता है अर्थात् यकार के आगे यकार, वकार के वकार इत्यादि । तो यहाँ मकार के लोप कर्तव्य में यदि मकार होता तो लोप होता, यहाँ यकार है अतः लोप नहीं होगा ।

प्रश्न—अयादिकों के यकार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा, तस्य लोपः से लोप क्यों नहीं होता । उ०—यकार वकार के उच्चारण सामर्थ्य से लोप नहीं होता । अन्यथा इनके आदेश में उच्चारण व्यर्थ हो जायगा ।

टिप्पण—धातोरिति । प्रश्न लव्यम्, लाव्यम्, इत्यादि

प्रकृत्यर्थाय इदं तदर्थम्। क्रेतारः क्रीणीयुरिति बुद्ध्य आपणे प्रसारितं क्रय्यम्। क्रेयमन्यत्। क्रयणार्हमित्यर्थः। लोपः शाकल्यस्य ८।२।१६।

तस्मै अर्थम्, तदर्थम्। प्रकृत सूत्र में, क्री धातु बेचने अर्थ में है, किसी द्रव्य-धान्यादि से अथवा धनादि से विनिमय करना हो, तो तदर्थ—विनिमय करने के लिये यही होगा, अर्थात् बेचने के लिये ही होगा वहाँ अप्राप्त क्री धातु के एकार को निपात से अय् आदेश होगा। क्री-अचो यत् से यत् प्रत्यय, गुण। प्रकृत सूत्र से अय् क्रय्यम्। और जहां तदर्थ नहीं है, किन्तु अपने लिये है और आग्रह से परिचित को बेच देता है तो वहाँ अयादेश नहीं होगा, अर्हे कृत्यतृचश्च से यत्, पूर्ववत् गुण, क्रेयम्।

(लोप इति) अवर्णपूर्वक पदान्त के यकार, वकार का शाकल्य के मत से लोप हो, अर्थात् पाणिनि के मत से न हो, एतावता स्वतः वैकल्पिकत्व फलित होता है। हरे- इह, इस अवस्था में 'एचोऽयवायावः' से अया-देश, 'लोपः शाकल्यस्य' से यकार लोप। हर-इह, पक्ष में हरयिह।

प्रश्न—यह होता है कि हर इह यहाँ यकार लोप के अनन्तर गुण क्यों नहीं होता?

प्रयोगों से 'वान्तोयि प्रत्यये' से अवादेश सिद्ध ही था फिर 'धातोस्तन्निमित्तस्यैव' सूत्र क्यों किया? उत्तर है कि—'सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय कल्पते' कार्य प्रयोगादि की सिद्धि सूत्र से रहते हुए फिर भी जो विधि का अर्थात् कार्य विधायक सूत्र का आरम्भ–निर्माण करते हैं वह नियमार्थ होता है। यहाँ उसका फल ओयते। आङ् उपसर्ग—आ ऊयते आद्गुणः। औयत, आडजादीनाम्। आटश्च से वृद्धि। यहाँ यकार निमित्तक ओकार औकार नहीं है अतः अव् आव् नहीं होंगे। गव्यूतिः में अवादेश करने पर लोपःशाकल्यस्य से, अथवा 'हलिसर्वेषाम्' से यलोप क्यों नहीं होता?, छान्दसत्वात् लोप नहीं होता है, अध्वपरिमाण में संज्ञाभङ्ग भय से लोप नहीं होता। अथवा गोयूतौछन्दसि॰ में छकार के पूर्व में वकार का प्रश्लेष करके उस प्रश्लिष्ठ वकार के सामर्थ्य से श्रूयमाण वान्त आदेश रहेगा अर्थात् वकार का लोप नहीं होगा।

अवर्णपूर्वयोर्यवयोर्वा लोपोऽशि परे। पूर्वत्रासिद्धम् ८।२।१। अधिकारोऽयम्। इति लोपस्यासिद्धत्वान्न सन्धिकार्यम्। हर एहि, हरयेहि। विष्ण इह, विष्णविह। श्रिया उद्यतः, श्रियायुद्यतः, गुरा उत्कः, गुरावुत्कः।

उत्तर—पूर्वत्रासिद्धम्, पूर्व में कार्य कर्तव्य रहते, अर्थात् इस सूत्र से पूर्वोक्त सूत्र के द्वारा कार्य के कर्तव्य में इस सूत्र के अनन्तर सूत्र से किया हुआ कार्य अथवा इस सूत्र के अनन्तर पठित सूत्र असिद्ध हो, सूत्र की असिद्धता से कार्य स्वतः असिद्ध हो जायगा। प्रकृत में हरय इह इस स्थिति में लोपः शाकल्यस्य से यकार का लोप किया है, वह, यकार का लोप इससे पूर्व-अर्थात् पूर्वत्रासिद्धम् से पूर्वस्थ किसी सूत्र से कोई कार्य कर्तव्य रहने पर इस पूर्वत्रासिद्धम् के अनन्तर सूत्र से किया हुआ कार्य असिद्ध हो जायगा। मानो वह कार्य हुआ ही नहीं है, तो पूर्वत्रासिद्धम् यह अष्टमाध्याय द्वितीय पाद का प्रथम सूत्र है, अतः इससे पूर्व सवासात अध्यायस्थ सूत्र से क्रियमाण कार्य होने पर पूर्वत्रासिद्धम् के अनन्तर तीन पादों से किया हुआ कार्य असिद्ध हो जायगा। अतः हर इह यहाँ छठे अध्यायस्थ आद् गुणः से गुण कर्तव्य रहने पर त्रिपादीस्थ अष्टमाध्याय द्वितीयपादस्थ लोपःशाकल्यस्य से किया हुआ यकार का लोप असिद्ध है, मानो यकार का लोप आद्गुणः की दृष्टि में हुआ ही नहीं है किंतु यकार उपस्थित है, अतः अव्यवहित अच् नहीं परे हैं किन्तु यकार का व्यवधान है अतः गुण नहीं होगा। हर इह। एवम्, विष्णो इह एचोयवायावः से ओकार को अव्, पूर्वोक्तवत् वकार का लोप। विष्ण-इह, पक्ष मे विष्णविह। पूर्वत्रासिद्धम् से वकार का लोप असिद्ध है, अतः गुण नहीं होगा, एवम् श्रियै उद्यतः आयादेश, यलोप, श्रिया उद्यतः, श्रियायुद्यतः। गुरौ-उत्कः, गुरा उत्कः, गुरा-वुत्कः, आवादेश, वलोप। वलोप असिद्ध है अतः गुण नहीं होगा।

'अधिकारः इति'। पूर्वत्रासिद्धम्' यह अधिकार सूत्र है। छः प्रकार के भेदापन्न सूत्र हैं "संज्ञा च परिभाषा च, विधिर्नियम एव च। अतिदेशोऽधिकारश्च षडविधं सूत्रलक्षणम्", अधिकार सूत्र अपने स्थल पर शाब्द बोध करके स्वरित प्रतिज्ञानुकूल प्रत्येक उत्तर सूत्र के साथ शाब्दबोध कराता

एकः पूर्वपरयोः ६।१।८४ इत्यधिकृत्य । आद् गुणः ६।१।८७। उपेन्द्रः, रमेशः, गङ्गोदकम्। उरण् रपरः १।१।५१। ऋयोगे अर् इति, लृयोगे अल् इति गुणः। अचो रहाभ्यां द्वे इति धकारस्य द्वित्वे। झरो झरि सवर्णे ८।४।६५। इति धलोपः। लोपद्वित्त्वाभ्याम् एकधम्, द्विधम्,

---

(एक इति) इसका अग्रिम प्रत्येक सूत्र के साथ संबन्ध होगा, तो आद्गुणः इत्यादिकों से गुण इत्यादिक पूर्व पर के स्थान में एक, दोनों से मिलकर होगा। उप-इन्द्रः, आद् गुणः, कण्ठस्थानीय अकार तालुस्थानीय इकार मिलकर, 'एदैतोः कण्ठतालु' कण्ठतालुस्थानीय एकार गुण होगा, उपेन्द्रः, रमा-ईशः, रमेशः गङ्गा उदकम्, आकार उकार के स्थान पर, ओदौतोः कण्ठोष्ठम् कण्ठोष्ठस्थानीय ओकार गुण होगा। गङ्गोदकम्।

(उरणिति) उः अण् रपरः, उः यह ऋ शब्द का षष्ठी के एकवचन का रूप है, अर्थ स्पष्ट है, ऋ के स्थान पर जो अण्-अ-इ-उ आदेश होंगे वे रपर, र जिनसे पर है ऐसे आदेश होंगे, कृष्ण-ऋद्धिः। अकार से अच्-ऋकार परे है अतः अकार ऋकार मिलकर अकार गुण, उरण् रपरः से रपर 'अर्' होगा। और लृ के स्थान मे लपर अल् होगा। क्योंकि ऋ लृ का सावर्ण्य है, अतः उः पद से ऋवर्ण लृवर्ण इन दोनों का ग्रहण होगा। तो कृष्णर् द्धिः, इस स्थिति में 'अचोरहाभ्यां द्वे' से धकार द्वित्व। क्योंकि द्वित्वविधायक अचोरहाभ्यां द्वे की दृष्टि मे झलां जश झशि से उत्पन्न दकार असिद्ध हैं अतः धकार को द्वित्व।

(झरो इति) झर् का लोप हो, सवर्ण झर के परे। तो रकार से पर

तो इससे पूर्व, सवा सात अध्यायस्थ कार्य करने पर इससे पर त्रिपादी असिद्ध है, और त्रिपादी सूत्रों में भी पूर्वत्रासिद्धम् प्रत्येक सूत्र में अनुवर्त्यमान होकर, पूर्वत्र कर्तव्य रहने पर यह असिद्ध होगा, इस प्रकार प्रत्येक त्रिपादिस्थ सूत्रों के साथ अर्थ करेगा, तो पचन्, पठन्, विद्वान्, भवान् इत्यादिकों में त्रिपादिस्थ ८।२।७। से नलोप करने पर उससे पर ८।२।२३। से उत्पन्न तकार सकार लोप असिद्ध है, अतः पदान्त नकार नहीं है इससे नकार लोप नहीं होगा।

त्रिघम्, कृष्णर्द्धिः । यण इति पञ्चमी मय इति षष्ठीति पक्षे ककारस्यापि द्वित्वे तवल्कार इत्यत्र रूपचतुष्टयम् । वृद्धिरेचि ६।१।८८ । कृष्णैकत्वम्, गङ्गौघः, देवैश्वर्यम्, कृष्णौत्कण्ठ्यम् । एत्येधत्यूठ्सु ।१।८६ ।६ उपैति,

---

झर प्रत्याहारान्तर्गत धकार का लोप होजायगा, झर् प्रत्याहारान्तर्गत धकार परे है, तो, द्वित्व लोप के विकल्प से तीन प्रकार के चार रूप होंगे, जैसे लोप हो और वैकल्पिकत्वात् द्वित्व न हो तो एक धकार (१) लोप भी न हो और द्वित्व भी न हो तो दो धकार (२) अथवा द्वित्व भी हो और लोप भी हो तो दो धकार (३) यहाँ दूसरे तीसरे प्रकार में समान दो धकार के रूप हैं और द्वित्व हो परंतु लोप न हो तो तीन धकार (४) इस प्रकार एक धकारात्मक दो धकारात्मक,दोरूप प्रकार भेद से, एवं त्रिधकारात्मक ये तीन प्रकार के चार रूप होंगे । तव लृकारः यहाँ पूर्वोक्त प्रक्रिया से लपर् अल् गुण होगा, अनचिच से वैकल्पिक लकार द्वित्व। दोनों में 'यणो मयो द्वे वाच्ये' यण् से पर मय को द्वित्व हो । यण् प्रत्याहारान्तर्गत लकार से पर मय प्रत्याहार के ककार को द्वित्व हो जायगा। तो दो लकार ककार (१) एक लकार एक ककार (२) दो लकार दो ककार (३) दो ककार एक लकार । इस प्रकार चार रूप होंगे ।

(वृद्धिरिति) आद्गुणः से अकार की अनुवृत्ति । अवर्ण से एच् पर रहने पर वृद्धि एकादेश हो। कृष्ण-एकत्वम्, पूर्ववत् अकार एकार मिलकर ऐकार वृद्धि होगी कृष्णैकत्वम् । एवम्-गङ्गा-ओघः, गंगौघः । देव-ऐश्वर्यम्, देवैश्वर्यम् । कृष्ण-औत्कण्ठ्यम्, कृष्णौत्कण्ठ्यम् ।

(एतीति) वृद्धिरेचि से एच् की अनुवृत्ति, यस्मिन् विधिः से तदादि ग्रहण अर्थ स्पष्ट है । एजादि, एति, एधति और ऊठ् आदेशात्मक ऊ शब्द पर रहने से वृद्धि एकादेश हो । उप-एति, एवम्, उप-एधते

टिप्पण—कृष्णैकत्वम् इत्यादिकों में त्रिमात्रिक, गङ्गौघः इत्यादिकों में चतुर्मात्रिक के स्थान पर त्रिमात्रिक प्लुत आदेश नहीं होगा। क्योंकि स्थानेन्तरतमः में तमप् ग्रहण से स्थानकृत आन्तर्य अन्य आन्तर्यों से बलिष्ठ प्रधान हैं । 'स्वं रूपं' से 'स्वादीरेरिणोः' में स्वशब्द का ग्रहण होगा । एवं प्रशब्द का भी जानना ।

उपैधते, प्रष्ठौहः। अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्। अक्षौहिणी। स्वादिरेरिणोः स्वैरः, स्वैरी 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणात्' स्वैरिणी। प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु। प्रौहः, प्रौढः। अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम्।

दोनों स्थलों पर वक्ष्यमाण 'एङि पररूपम्' से पर रूप प्राप्त था। उसको अपवादत्वात् बाधकर वृद्धि होगी। उपैति, उपैधते। पृष्ठ-ऊहः। अप्राप्त वृद्धि का विधान है। प्रष्टवाह् शस् ङसि ङस् के परे वाह ऊठ से वकार को ऊठ्। संप्रसारणाच्च से ऊकारे आकारे मिलकर पूर्वरूपे ऊकार, उक्त सूत्र से वृद्धि। पृष्ठौहः।

(अक्षादिति) अक्ष शब्द से ऊहिनी शब्द पर रहने पर पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो। अक्ष-ऊहिनी। अकार ऊकार को एकादेश वृद्धि औकार हुई। अक्षौहिणी।

(स्वादिति) स्व शब्द से ईर ईरिन् पर रहने पर वृद्धि एकादेश हो। स्व ईरः। अकार ईकार को एकादेश ऐकार होगा, स्वैरः, एवम्, स्व-ईरिन्, स्वैरी। स्त्रीलिङ्ग में "प्रातिपदिकग्रहणेलिङ्गविशिष्टस्यापि-ग्रहणम्" प्रातिपदिक ईरिन् के ग्रहण में स्त्रीलिङ्ग बोधक ङीप् विशिष्ट स्वैरिणी शब्द का भी ग्रहण होगा। अतः स्व-ईरिणी, यहाँ आकार ईकार को एकादेश ऐकार वृद्धि हुई, स्वैरिणी।

(प्रादिति) प्र शब्द से ऊह-ऊढ-ऊढि-एष-ऐष्य पर रहने पर वृद्धि हो। ऊहादि तीन में अप्राप्त वृद्धि का विधान है और एष, एष्य में एङि पररूपम् से पररूप प्राप्त था उसको अपवादत्वेन बाधकर वृद्धि होगी। प्रौहः, प्र-ऊढः, प्रौढः। प्र-ऊढवान् यहाँ भी इससे वृद्धि होना चाहिए। क्योंकि जैसे ऊढः में ऊढ है, वैसे ही ऊढवान् शब्द में भी ऊढ-वान्, विभाग करने पर ऊढ शब्द पर है, अतः वृद्धि प्राप्त होती है।

उत्तर—नियम यह है कि अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होता है। वह धातु का क्त प्रत्यय में ऊढ यह बनता है, उस सार्थक ऊढ के ग्रहण में निरर्थक क्तवतु प्रत्यय का अर्धांश का ग्रहण नहीं होगा। ऊढवान् सार्थक है, तदन्तर्गत उसका भाग निरर्थक ही है। अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम्, इसका विवेचन संस्कृत टिप्पण में है।

प्रोढवान् । प्रौढिः, प्रैषः, प्रैष्यः । ऋते च तृतीयासमासे । सुखेन ऋतः, सुखार्तः । प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे । प्रार्णम्, वत्सतरार्णम्, ऋणार्णम्, दशार्णः । उपसर्गादृति धातौ ।६।१।६१ । उपार्च्छति। प्रार्च्छति। अन्तादिवच्च ।६१।८५ । एकादेशः पूर्वस्यान्तवत्, परस्यादिवत् च । पदान्तत्वात् । खरवसानयोर्विसर्जनीयः ।८।३।१५ । इति

एवम्, प्रौढिः, प्रैषः, प्रैष्यः में एङि पररूप से पररूप प्राप्त था उसको बाधकर वृद्धि होगी। (ऋते इति) तृतीया समास में ऋत शब्द पर होने से पूर्व पर के स्थान में वृद्धि होती है, सुखेन-ऋतः समास। सुख ऋतः इस स्थिति में आकार वृद्धिः। वृद्धिरादैच् से आकार वृद्धिसंज्ञक है कण्ठ स्थानीय अकार ऋकार के स्थान पर आकार वृद्धि, उरण् रपरः से रपर आर् होगा, सुखार्तः ।

(प्रेति) प्र-वत्सतर-कम्बल-वसन-ऋण-और दशन शब्द से ऋण शब्द के पर रहने पर पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो। प्र-ऋणम्, प्रार्णमित्यादि, (उपेति)। अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु पर होने पर पूर्वपर के स्थान में वृद्धि हो, आद्गुणः से आत् की अनुवृत्ति है। वह उपसर्गात् का विशेषण है । अतः अवर्णान्तात् अर्थ होगा । 'ऋति' यह धातौ का विशेषण है, अतः "यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे" अल् ग्रहणे सप्तम्यन्ते विशेषणीभूते यो विधिरारभ्यते स तदादौ बोध्यः" यहां सप्तम्यन्त एक वर्णाश्रित रूप ऋति यह है और वह धातौ का विशेषण है, अतः ऋकारादौ धातौ यह अर्थ होगा, अतः पूर्वोक्त अर्थ होगा। एवम् उप ऋच्छति। अकार ऋकार को आकार वृद्धि, उरण् रपरः से रपर। उपार्च्छति, एवम्, प्र–ऋच्छति प्रार्च्छति। यहाँ रेफ को विसर्ग क्यों नहीं होता है ? अन्तेऽति। क्योंकि–अन्तश्च आदिश्च अन्तादी, ताभ्यां तुल्यम् अन्तादिवत्, पूर्वपर को जो एकादेश होता है वह क्रम से पूर्व के अन्त के तुल्य और पर के आदि के तुल्य हो, तो यहाँ उप के प्र के अन्तवत् होने से पदान्त रेफ को ।

(खरिति) खर् प्रत्याहार के परे और अवसान में पदान्त रेफ को विसर्ग हो, यहाँ खर् प्रत्याहारान्तर्गत चकार परे है, अतः अन्तवत्त्वेन

विसर्गे प्राप्ते। उभयथत्तु कर्तरि चर्षिदेवतयोरिति निर्देशान्न विसर्गः। उपसर्गैणैव धातोराक्षेपे सिद्धे धाताविति योगविभागेन पुनर्वृद्धिर्विधीयते। तेन ऋत्यक इति पाक्षिकः प्रकृतिभावोऽत्र न भवति। वा सुप्यापिशलेः। ६।१।६२। प्रार्षभीयति, प्रर्षभीयति। प्राल्कारीयति प्रल्कारीयति। एङि

पदान्त रेफ को विसर्ग प्राप्त है, परन्तु उभयोत्तु ।८।३।८। कर्तरि-चर्षिदेवतयोः ।३।२।१८६। यहाँ उभयाऋत्तु में कर्तरि च ऋषि में गुण का पर होने पर ककार षकार के परे रेफ को विसर्ग नहीं देखते हैं, अतः पाणिनिसूत्रनिर्देश से जानते हैं कि एकादेशानन्तर जायमान रेफ का अन्तवद्भाव अथवा पदान्तत्व नहीं होता है, अतः विसर्ग नहीं होता है। पुनः प्रश्न होता है, उप ऋच्छति, इस स्थितिं में वक्ष्यमाण 'ऋत्यकः' सूत्र से प्राक्षिक प्रकृतिभाव क्यों नहीं होता ?,

उत्तर–'उपसर्गाः क्रियायोगे' १।४।५६ से उपसर्ग संज्ञा धातु के योग में ही होगी। अतः उपसर्ग पद से ही धातौ आ जायगा, फिर धातौ ग्रहण विभक्त होकर पुनर्वृद्धि का विधान करेगा। 'उपसर्गात् ऋकारादौ धातौ वृद्धिरेवजान्यः' उपसर्ग से ऋकारादि धातु के परे वृद्धि ही हो, अन्य कुछ न हो अतः ऋत्यकः से पाक्षिक प्रकृतिभाव नहीं होगा।

(वेति) वा–सुपि–'आपिशलेः' पूर्वोक्त उपसर्गादिति धातौ की अनुवृत्ति है। एवम् आद्गुणः से, आत्, वृद्धिरेचि से वृद्धि। तो यह अर्थ होगा, अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि "सुबन्त धातु पर होने से विकल्प से वृद्धि हो,"आपिशलि नामक आचार्य के मत से"। ऋषभम् आत्मान्न इच्छति, ऋषभीयति। प्र–ऋषभीयति यहाँ सुबन्त ऋकारादि ऋषभीयति धातु परे है अतः विकल्प से आकार वृद्धि। उरण् रपरः से रपर। प्रार्षभीयति। पक्ष में आद्गुणः से गुण, पूर्ववत् रपर। प्रर्षभीयति। "ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्" से सुबन्त लृकार के परे भी वैकल्पिक वृद्धि होगी। प्र–लृकारीयति। पूर्वपर को आकार वृद्धि, 'उरण्

टिप्पण—वा ग्रहण से वैकल्पिकत्व सिद्ध था फिर आपिशलि ग्रहण पूजार्थ है, अन्य आपिशलि हैं जिनकी पाणिनि संमति मानते हैं।

पररूपम् ।६।१।६४। प्रेजते, उपोषति। इह वा सुपीत्यनुवर्त्य वाक्यभेदेन व्याख्येयम्, तेन। एङादौ सुब्धातौ वा ? उपेडकीयति, उपैडकीयति प्रोघीयति प्रौघीयति। एवे चानियोगे। क्वेव भोक्ष्यसे। अचोऽन्त्यादि टि

रपरः' से र प्रत्याहारान्तर्गत रेफ–लकार दोनों के ग्रहण होने पर सावर्ण्यात् लपर आल वृद्धि होगी, प्राल्कारीयति। पक्ष में अल् गुण होगा, प्रल्कारीयति।

(एङीति) एङि पररूपम्, अर्थ स्पष्ट है। अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे पूर्व पर के स्थान में पर रूप हो। प्र—एजते। वृद्धि प्राप्त थी उसको बाधकर अकार एकार के स्थान में पर–एकार का रूप हो जायगा। प्रेजते। एवम्, उप-ओषति। उपोषति। उप–एडकीयति। एङि पररूपम् से नित्य पररूप प्राप्त था, अभिमत वृद्धि नहीं होगी। उपैडकीयति प्रयोग नहीं होगा, अतः 'वासुप्यापिशलेः' सूत्र से वासुपि की अनुवृत्ति कर, एङि पररूपम् की आवृत्ति कर, एङि वासुपि पररूपम्, ऐसा पढ़ेंगे तो यह अर्थ होगा, "अवर्णान्तादुपसर्गादेङादौ सुब्धातौ वा पररूपम्"। अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि सुबन्त धातु पर रहने पर विकल्प से पररूप हो, तो जहाँ पररूप होगा वहाँ उपेडकीयति, पक्ष में वृद्धिरेचि से वृद्धि होगी, उपैडकीयति। एवम् प्र–ओघीयति। पररूप होने से, प्रोघीयति, पक्ष में वृद्धि होगी, प्रौघीयति।

(एवेति) नियोग–अवधारण। अन्ययोगव्यवच्छेदत्वेन निश्चय। न–नियोगः अनियोगः। अनिश्चय अर्थ में अवर्णान्त से एव शब्द पर रहने पर पूर्वपर के स्थान में पररूप हो, क्व एव, क्वेव। कहाँ भोजन करोगे, कहीं स्थान नहीं है। नियोग–निश्चय अर्थ में वृद्धि होगी। ममैवेदम्।

(अच इति। अचः यह निर्धारण अर्थ में षष्ठी। जातित्वात् एकवचन। अन्त में जो होता है वह अन्त्य कहाता है, अन्त्यः आदिर्यस्य तत् अन्त्यादि। तो यह अर्थ होगा कि अचों के मध्य में अन्त्य जो अच् है वह जिसकी आदि में है वह समुदाय टि संज्ञक हो मनस ईषा, पतत् अश्वाः इत्यादिकों में अन्त्य अच् अकार, वह तकार, सकार के आदि

।१।१।६४। शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। ॐ। तच्च टेः। शकन्धुः, कर्कन्धुः, सीमन्तः, मनीषा, हलीषा, पतञ्जलिः। आकृतिगणोऽयम् मार्तण्डः। ओत्वोष्ठयोः समासे वा॥। स्थूलोतुः, स्थूलौतुः। बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः। ओमाङोश्च ६।१।९५। शिवायोंनमः। शिवेहि। अव्यक्ता-

---

में है, अतः अत् अस् की टि संज्ञा होगी, परन्तु शक, हल इत्यादिकों में अकार की नहीं होगी। ठीक है, परन्तु यहाँ "व्यपदेशिवद्भाव है, जैसे किसी के एक ही पुत्र है, वही ज्येष्ठ है, वही कनिष्ठ है। इसी प्रकार वही अकार अन्त्य है, और वही अन्त्यादि हैं।

(शकेति) शकन्ध्वादिक शब्दों में पररूप होता है और वह 'टि' के स्थान में होता है। अर्थात् पूर्वगत टि और पर् के स्थान में पररूप एकादेश होता है। शक—अन्धुः, कर्क—अन्धुः। सवर्ण दीर्घ प्राप्त था, टि को पररूप हो गया। शकन्धुः, कर्कन्धुः। सीमन्-अन्तः। यहाँ ईकार अकार अचों में अन्त्य अच् मकारोत्तर अकार है, वह नकार के-आदि में है, अतः उस अन् की टि संज्ञा होगी, और शकन्ध्वादिषु से टि—अन् को पररूप होगा। एवम् सीमन्तः। इसी तरह मनस्-ईषा अस् और ईकारको मिलकर, मनीषा। पतत् अञ्जलिः, पतञ्जलिः। यह शकन्ध्वादि आकृतिगण है, प्रयोग के अनुकूल शकन्ध्वादि में मान-लेना चाहिए। जैसे—मृत-अण्डः। मृतण्डः। शकन्ध्वादित्वात्, मृतण्डः। तद्वत्य मार्तण्डः।

(ओत्वोष्ठेति) आत् की अनुवृत्ति है। अवर्ण से ओतु—अथवा ओष्ठ शब्द पर रहने पर पूर्व पर के स्थान पर समास होने पर पररूप विकल्प से हो। स्थूल-ओतुः। स्थूलोतुः। पक्ष में स्थूलौतुः। एवम्, बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः।

(ओमाङोरिति अवर्ण से ओम् अथवा आङ् पर होने से पूर्व पर के स्थान में पररूप हो। शिवाय-ओं-नमः, वृद्धि प्राप्त थी, पररूप हो गया। शिवायोंनमः। एवम्, आ—इहि, एहि। शिव—एहि। वृद्धि को बाधकर पररूप शिवेहि।

नुकरणस्यात इतौ ।६।१।९८ पटत् इति, पटिति । एकाच्चो न *। अदिति। नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा । ६।१।९९। तस्य परमाम्रेडितम् ८।१।२ । पटत्पटेति । पक्षे । झलां जशोऽन्ते ८।२।३९ । पटत्पटदिति।

(अव्यक्तेति) अव्यक्तस्य अनुकरणम्—अव्यक्तानुकरणम् । तस्य-अव्यक्त—जो स्फुट—स्पष्ट नहीं है, अर्थात् ध्वन्यात्मक शब्द, उसके अनुकरणात्मक शब्द के अत् से इति पर रहने पर पूर्व पर के स्थान में पररूप हो, तो पटत् के अत् भाग को और इकार के स्थान में इकार हो गया । अज्झीनं परेणसंयोज्यम्-अच् से रहित टकार पर इकार से संयुक्त हो गया । पटिति । एकाच इति । एक अच् वाले अव्यक्तानु-करणात्मक शब्द के अत् भाग को पररूप नहीं होगा । अत् इति। यहाँ अव्यक्त—ध्वन्यात्मक अत् शब्द है उसके अनुकरण में अत् को पररूप नहीं होगा । 'झलां जशोऽन्ते' से दकार, अदिति ।

(नाम्रे॰ इति) आम्रेडितस्य न, आम्रेडित के अत् को पररूप न हो । किन्तु अन्त्यस्य तु वा । अन्त्य वर्ण को विकल्प से पररूप हो। 'आम्रेडित' क्या होता है–(तस्येति) तत् शब्द पूर्व का परामर्शक है। अतः 'सर्वस्य द्वे' सूत्र के द्वे शब्द का ग्रहण होगा, तो यह अर्थ होगा—उस द्वित्व का पररूप आम्रेडित कहाता है। पटत्पटत् इति, यहां द्वितीय पटत् आम्रेडित है, उसके अत् को पररूप नहीं होगा, किन्तु अन्त्य 'त्' को और इकार को विकल्प से इकार होगा, आद्गुणः से गुण, पटत्पटेति । पक्ष में । झलामिति । पदस्य ।८।१।१६। से पदस्य की अनुवृत्ति है । पदान्ते झलां जशः स्युः । पद के अन्त में विद्यमान झलां को जश् हों । तो यहाँ झल् प्रत्याहारान्तर्गत तकार को 'लृतुलसानां-तालु' तालु स्थान साम्य होने से जश् प्रत्याहारान्तर्गत दकार होगा। पटत्पटदिति ।

टिप्पण—पटिति में झलां जशोऽन्ते से जश क्यों नहीं ? स्थानिवद्-भाव होने से पदान्त में टकार नहीं है ।

अकः सवर्णे दीर्घः। ६।१।१०१। दैत्यारिः, श्रीशः, विष्णूदयः। ऋति ऋ सवर्णे ऋ वा। *। होतॄकारः। लृति सवर्णे लृ वा। *। होत्लृकारः लृकारस्य दीर्घाभावात्, पक्षे सावर्ण्यात् ॠकारः। होतॄकारः। एङः पदान्तादति ६।१।१०९। हरेऽव, विष्णोऽव। सर्वत्र विभाषा गोः

(अकः इति)। अक से सवर्ण पर रहने से पूर्व पर को दीर्घ एकादेश हो। दैत्य-अरिः। दैत्यारिः। इसी तरह, श्री—ईशः, विष्णु-उदयः। यहां भी दीर्घ होगा। होतृ—ऋकारः। "ऋति सवर्णे ऋवा" अक से सवर्ण ऋकार पर होने से विलक्षण 'ॠ' आदेश हो। ऋ का सवर्ण ऋ ही है, अतः ऋ से ऋ पर होने से द्विमात्रिक ह्रस्व ऋ आदेश हो। इस वार्तिक से विलक्षण 'ॠ' इस प्रकार का माना है। पक्ष में अकः सवर्णे से दीर्घ, होतॄकारः। एवम्, होतृ—लृकारः। यहाँ 'लृति सवर्णे लृवा' से लृ आदेश, होत्लृकारः। इन वार्तिकों से जायमान ऋ लृ में वैलक्षण्य यह है, कि ऋ आदेश के आदि भाग में दो रेफ लृ में दो लकार होते हैं। परंतु इस प्रकार का आदेश कल्पना मात्र गम्य है, व्यवहार में नहीं। केवल ऋ अवश्य तदनुगामी है, परंतु आदेशगत विलक्षण 'ॠ' व्यञ्जन के साथ लिखा भी नहीं जा सकता। 'लृतिसवर्णे' के पक्ष में अकः सवर्णे० से दीर्घ लृकार है नहीं अतः ॠ लृ के सावर्ण्य होने से दीर्घ लृ के स्थान पर दीर्घ ॠ होगा। होतॄकारः।

(एङः इति) पदान्तात् एङः अति पूर्वरूपम्। पदान्त एङ से ह्रस्व अकार पर होने से पूर्व पर को पूर्वरूप हो। अति तपरकरण से तावन्मात्रिक केवल ह्रस्व लिया जायगा। हरे-अव, विष्णो-अव। पूर्वरूप हो गया। हरेऽव, विष्णोऽव।

(सर्वत्र-इति) यजुष का अधिकार है, सर्वत्र पद से ऋग् यजुष। लोक-

टिप्पण—भट्टोजि दीक्षितजी कुमारी-शेते यहाँ दीर्घ ईकार और शकार का सावर्ण्य मान कर दीघनिवृत्त्यर्थ अचि की अनुवृत्ति मानते हैं। निराकरण बालमनोरमा का टिप्पण देखो।

६।१।१२२। इति प्रकृतिभावः गो अग्रम् , गोऽग्रम् । अवङ्स्फोटायनस्य ६।१।१२३ । अतीतिनिवृत्तम् , अचीतिसंबध्यते । गवाग्रम् । इन्द्रे च । ६।१।२७। गवेन्द्रः । व्यवस्थितविभाषया गवाक्षः ।। अथ प्रकृतिभावः ॥ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ।६।१।१२५। एहि कृष्ण३ अत्र गौश्चरति।

वेद सब का ग्रहण होगा । एङ् पद की अनुवृत्ति है, अतः यह अर्थ होगा । एङन्त गो शब्द को लोक और वेद में सब जगह विकल्प से प्रकृतिभाव हो । प्रकृति स्वरूप की स्थिति हो कुछ भी पूर्वरूप अवादि आदेश न हो, गो अग्रम् , ऐसा ही रहेगा । पक्ष में एङःपदान्तादति से पूर्वरूप गोऽग्रम् ।

(अवङिति) । गो अग्रम् , इस स्थिति में 'अवङ् स्फोटायनस्य' पूर्वोक्त सूत्र से गोः पद की अनुवृत्ति होगी, स्फोटायन के मत से गो शब्द को अवङ् आदेश हो, अच् के परे । 'ङिच्च' सूत्र से अन्त्य ओकार को अवादेश होगा, किन्तु अनेकाल्त्वात् सर्वादेश नहीं होगा । अकः सवर्णे० से दीर्घ, गवाग्रम् । अच् के परे अवादेश होने से गवोदकम् यहां गो-उदकम् , अवादेश, आद्गुणः, गवोदकम् , गवेशः इत्यादि सिद्ध होते हैं ।

(इन्द्रे इति) । इन्द्र शब्द के परे गो शब्द को अवङ् आदेश हो। पूर्वसूत्र से अवङ् आदेश सिद्ध ही था फिर यह सूत्र नित्य अवङ् आदेश विधानार्थ है । गो-अक्षः, यहाँ व्यवस्थित विभाषानुकूल नित्य अवादेश होगा । "व्यवस्थित विभाषा" वह कहाती है, जो लक्ष्य-प्रयोग के अनुकूल विभाषा हो । एवम् प्रयोगानुसारी अवङ् आदेश है, तो जहाँ पाणिनि को भी अवङ् आदेश अभिमत वहाँ नित्य, और जहाँ पाणिनि को अभिमत नहीं किन्तु स्फोटायन को ही अभिमत वहाँ वैकल्पिक । ऐसी स्थिति में इन्द्रे च सूत्र मन्दप्रयोजन है । गो अक्षः, नित्य अवङ् आदेश । सवर्ण दीर्घ । गवाक्षः । अब प्रकृतिभाव कहते हैं । प्रकृति से ही यथावस्थित शब्द रहेंगे अर्थात् सन्धिकार्य नहीं होंगे ।

(प्लुतेति) । प्लुत-प्रगृह्या अचि नित्यम् । प्रकृत्या का अधिकार है।

हरी एतौ । इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ।६।१।१२६ । चक्रि अत्र, चक्र्यत्र । य समासे ह * । वाप्यश्वः । सिति[२] च* । पार्श्वम् । ऋत्यकः ।६।१।१२७ । ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः । न समासे इतीह न सम्बध्यते । सप्त

अर्थ स्पष्ट है । प्लुतसंज्ञक और प्रगृह्यसंज्ञक अच् के परे नित्य प्रकृतिभाव से रहे, अर्थात् सन्धिकार्य-यणादिक नहीं होंगे । जैसे-एहि कृष्ण३ अत्र, यहाँ वक्ष्यमाण दूराद्धूते च से प्लुत संज्ञा है, हरी-एते यहाँ ईदूदेत् से प्रगृह्य संज्ञा है, प्रकृतिभाव होने से दीर्घ यण् नहीं होंगे ।

(इक इति) । 'एङः पदान्तादति' से पदान्त की अनुवृत्ति है। पदान्त इक को असवर्ण अच् के परे विकल्प से ह्रस्व समुच्चित प्रकृतिभाव हो । अर्थात् उस इक् का प्रकृतिभाव होगा, और उसे ह्रस्व भी होगा, चक्री-अत्र, विकल्प से ह्रस्व समुच्चित प्रकृतिभाव होने से चक्रि अत्र, पक्ष में इकोयणचि से यण् । चक्र्यत्र । न समासे । समास में ह्रस्वसमुच्चित प्रकृतिभाव नहीं होगा । वाप्याम्-अश्वः, सप्तमी तत्पुरुष समास विभक्ति का लुक्, वापी-अश्वः, ह्रस्व समुच्चित प्रकृतिभाव नहीं होगा । पर्शूनां समूहः, 'पर्श्वा णस् वक्तव्यः' से णस आदि वृद्धी । 'सिति च' से पद संज्ञा । पदान्तत्वात् विकल्प से ह्रस्व समुच्चित प्रकृतिभाव प्राप्त था, नहीं हुआ, यहाँ "सिन्नित्यसमासे शाकलप्रतिषेधो वाच्यः" यह वार्तिक हैं स्पष्ट प्रतिपत्त्यर्थं विभाग करके दो वार्तिक कहे हैं ।

(ऋतीति) । ऋत् यह तपर है अतः ह्रस्व का ग्रहण होगा, ह्रस्व ऋकार के परे अक को ह्रस्व समुच्चित प्रकृतिभाव हो । ब्रह्मा ऋषिः, आकार को ह्रस्व और प्रकृतिभाव हो गया । ब्रह्म ऋषिः, पक्ष में गुण ब्रह्मर्षिः । यहाँ ऋत्यकः से ह्रस्व प्रकृतिभाव समास में भी होगा, क्योंकि 'सिन्नित्यसमासे शाकलप्रतिषेधो वाच्यः' में शाकल पद है, अतः 'इको सवर्णे०' से जहाँ ह्रस्व प्रकृतिभाव प्राप्त होगा वहाँ वार्तिक निषेध करेगा, यहाँ नहीं । सप्त च ते ऋषयः । सप्तऋषीणाम्, षष्ठी बहुवचन, ह्रस्व,

---

टिप्पण—प्रसशब्द में ह्रस्व को ह्रस्व करने का क्या फल है सूत्र पर्जन्यवत् प्रवृत्त होता है, जैसे मेघ स्थल में बरसता है, वैसे ही जल में भी । इसी प्रकार सूत्र ह्रस्व दीर्घ दोनों में समान रूप से लगेगा ।

ऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम्। वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः।८।२।८०। अधिकारोऽयम्। प्रत्यभिवादेऽशूद्रे।८।२।८३। भो आयुष्मानेधि देवदत्त३। स्त्रियां न।* भो आयुष्मती भव गार्गि। नाम गोत्रं वा यत्र प्रत्यभिवादवाक्यान्ते प्रयुज्यते तत्रैव प्लुत इष्यते। नेह आयुष्मानेधि।

प्रकृतिभाव, सप्तऋषीणाम्, नित्यसन्धि प्राप्त थी, पक्ष में सप्तर्षीणाम्। गुण, रपर।

(वाक्यस्येति)। यह अधिकार सूत्र है, अतः प्लुत संज्ञा जो होगी, वह वाक्य के टि की प्लुत संज्ञा होगी और वह उदात्त होगी।

(प्रत्यभीति)। अभिवादन के बाद जो आशीर्वाद दिया जाता है वह प्रत्यभिवादन है, आधुनिक प्रथा के सदृश दोनों अभिवादन नहीं करते हैं, अस्तु। अशूद्र विषयक जहाँ प्रत्यभिवादन हो अर्थात् आशीर्वाद देना हो वहाँ वाक्य की टि की प्लुत संज्ञा हो। प्रथम अशूद्र-ब्राह्मणादि देवदत्त प्रणाम करता है, उसके प्रत्यभिवादन में आशीर्वाद देता है, तो यहाँ वाक्य देवदत्त के अन्त्य अकार की उदात्त संज्ञक प्लुत संज्ञा होगी।

(स्त्रियां न)। यह वार्तिक है। स्त्रीलिङ्ग में प्रत्यभिवाद होने पर प्लुत संज्ञा नहीं होगी यहाँ स्त्रीवाचक गार्गि है, तो इसकी प्लुत संज्ञा नहीं होगी, आयुष्मती भव गार्गि। 'हे गार्गि! आयुष्मती भव,' यह आशीर्वाद प्रत्यभिवाद है।

(नामेति)। नाम अथवा गोत्र जहाँ प्रत्यभिवाद वाक्य के अन्त पर होगा वहीं प्लुत होगा, अन्यत्र नहीं, यह भाष्यकारादि संमत इष्टि है, तो आयुष्मान् एधि। यहाँ वाक्य के अन्त पर 'एधि' यह क्रिया है, नाम अथवा गोत्र वाचक नहीं है। अतः प्लुत नहीं होगा।

(भो इति)। भो शब्द अथवा राजन्य-क्षत्रिय वाचक, अथवा विश्-वैश्य वाचक शब्द जहाँ प्रत्यभिवाद वाक्य के अन्त पर होगा वहाँ वाक्य के टि की प्लुत संज्ञा विकल्प से होगी, एधि भोः, यहाँ भो शब्द है

भो राजन्यविशां वेति वाच्यम् *। आयुष्मानेधि भोः एधीन्द्रवर्म३न्। इत्यादि एव ३ तयोरेव प्लुतः। दूराद्धूते च ।८।२।८४। सक्तून् पिब देवदत्त ३। हैहेप्रयोगे हैहयोः ।८।२।८५। हे ३ राम। हे३अच्युत। गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् ।८।२।८८। दे३वदत्त, देवद३त्त, देवदत्त ३। प्राचामिति योगविभागात्सर्वः प्लुतो

वर्मन्, क्षत्रिय है, पालित वैश्य है।

(दूरादिति) दूर से हूत-बुलाने के अर्थ में प्लुत संज्ञा होगी। देवदत्त पुकारनेवाले से दूर है, अतः वह पुकारता है, आगच्छ देवदत्त३, सक्तून् पिब यह दूसरा वाक्य है अथवा दूर से नदी आदि के दूसरे तट से पुकार कर कहता है, वयं सक्तून् पिबामः, त्वमपि सक्तून् पिब देवदत्त३, यहाँ तकाराकार की प्लुत संज्ञा हो गयी।

(है हे इति) है अथवा हे शब्द के प्रयोग में इनकी ही प्लुत संज्ञा होगी, अन्य की नहीं। वक्ष्यमाण गुरोरनृतो॰ से प्लुत संज्ञा सिद्ध ही थी फिर इससे जो प्लुत संज्ञा का विधान किया वह नियमार्थ होगा, इससे हे राम! में मकाराकार की नहीं होगी। हे अच्युत में गुरोरनृतो॰ से एकैकग्रहण से अकार की होगी, 'हे' के एकार की नहीं होगी, अतः पूर्वरूप हो जायगा। नियम होने से इनके प्रयोग में इनकी ही होगी अन्य की नहीं, तो हे अच्युत में एकार की प्लुत संज्ञा, प्रकृतिभाव होने से पूर्वरूपादि नहीं होंगे।

(गुरोरिति) प्राचीन आचार्यों के मत से ऋ वर्ण रहित अर्थात् 'ऋ' को छोडकर अन्य, अनन्त्य वर्णों की अर्थात् जो अन्त में विद्यमान नहीं भी हों उन गुरुसंज्ञक वर्णों की और अपि शब्द से अन्त्य वर्ण की भी एक एक की प्लुत संज्ञा हो, एकैक ग्रहण से जब एक की प्लुत संज्ञा होगी तब दूसरे की नहीं होगी।

संयोगे गुरु दीर्घं च से गुरुसंज्ञक जानना। देवदत्त ३। यहाँ वकार गुरु संज्ञक नहीं है, अतः उसके अतिरिक्त पर्याय से अन्य वर्णों की प्लुत संज्ञा होगी। देवद३त्त। दे३वदत्त, देवदत्त३। इस सूत्र में पठित

विकल्प्यः । अप्लुतवदुपस्थिते ।८।२।१२८। उपस्थितोऽनार्ष इति शब्दः। सुश्लोक ३ इति, सुश्लोकेति । वत्करणात्, अग्नी इति । ईश्चाक्रवर्म-

'प्राचाम्' पद को पृथक् करेंगे । प्राग् आचार्यों के मत से प्लुत हो अन्य के मत से नहीं, तो सब प्लुत वैकल्पिक होगा । है हे प्रयोग से नियम का विधान है, अतः उनका वैकल्पिक प्लुत नहीं होगा ।

(अप्लुतेति) यह उपस्थित शब्द-अनार्ष इति शब्द का वाचक है, जैसे सुश्लोक ! ३ यह तैत्तिरीय का प्लुत संज्ञक है, पद काल के अवग्रह में उससे परे इति शब्द का प्रयोग पदकार करते हैं, अतः पदकार आर्ष नहीं हैं, इससे अनार्ष इति शब्द है, उसके परे प्लुत संज्ञक सुश्लोक यह अप्लुत के समान हो जायगा इससे आद्गुणः से गुण हो जायगा। सुश्लोकेति ।

(वदिति) प्रश्न यह होता है, कि अप्लुत होने में अथवा के समान होने में क्या अन्तर है ? क्योंकि सन्धिकार्य हो जाने पर जो स्व अप्लुत समान हुआ है उसका तो श्रवण है नहीं, तो अप्लुत ही का विधान क्यों नहीं करते ? यह ठीक है परंतु जहाँ सन्धि नहीं हुई वहाँ प्लुत का श्रवण नहीं होगा । जैसे—अग्नी-इति । यह अग्नी यहाँ द्विवचन है, अतः ईदूदेद् द्विवचनम् से प्रगृह्य संज्ञा है । और संबोधन द्विवचनान्त अग्नी का अनुकरण है, तो प्रगृह्याश्रित प्रकृतिभाव होने से सन्धिकार्य

टिप्पण—क्या पूर्वोक्त सूत्रों से विहित प्लुत का प्राचीनों के मत से निषेध करते हैं? अथवा उनकी भी प्लुत संज्ञा करते हैं। यदि उनके भी प्रागाचार्य प्लुत संज्ञा करते हैं और पाणिनि भी, तो वैकल्पिकत्व सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि सभी के मत से प्लुत संज्ञा हो जाती है, और यदि निषेधमुखेन प्रागाचार्यों के वचन को लगावेंगे तो हे अच्युत ! यहाँ पूर्व रूप सन्धि हो जायगी । अतः है हे के नियम को छोड़कर विभाषा है। वस्तुतः 'सर्वः प्लुतः समासमनिच्छता विभाषा वक्तव्यः' यह जात प्लुत के वैकल्पिकत्व का विधायक है । अतः प्राचां के विभाग से वार्तिक का खण्डन है, तो यह भी उन्हीं का विकल्प करेगा ।

णस्य ।६।१।१३०। चिनुहि ३ इति । चिनुहीति । चिनुहि ३ इदम्
चिनुहीदम् । उभयत्र विभाषेयम् । ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११ ।

नहीं होगा, अतः त्रिमात्रिक प्लुत का श्रवण होगा, अप्लुत के सदृश कहने से सर्वथा प्लुतत्व नहीं जाता है किन्तु प्लुतप्रयुक्त सन्धिकार्य के निषेध की निवृत्ति होती है, अतः अग्नी३ इस त्रिमात्रिक का श्रवण होता है।

(ई चाक्र-इति) इ यह प्रथमान्त लुप्तविभक्तिक प्लुत का निर्देश है, अतः दीर्घत्वेन सूत्र में स्वरूप निर्देश है। इको यणचि से अचि की अनुवृत्ति है। चाक्रवर्मण नामक ऋषि के मत से प्लुत इकार अप्लुतवत् हो अच् के परे। चिनु हि इति। 'विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः' से प्लुत संज्ञा। चाक्रवर्मण ऋषि के मत से अप्लुतवत् होगा, अन्य के मत से नहीं, अतः वैकल्पिक अप्लुतवत् होगा, चिनु हि इति, यहाँ अप्लुतवदुपस्थिते, से नित्य अप्लुतवद्भाव प्राप्त था, परंतु चाक्रवर्मण के मत से ही होगा, अन्य के मत से नहीं, अतः प्राप्त विभाषा है। चिनु हि इदम्, यहाँ अप्राप्त था, ऋषि के मत से अप्लुतवद्भाव। यहाँ अप्लुतवद्भाव किसी से प्राप्त नहीं था। अतः प्राप्ताप्राप्त विषयक यह विकल्प है। चिनु हि, यह पूर्वान्वयी एक वाक्य है, इदं यह उत्तरान्वयी है। यदि एक वाक्य मानोगे तो 'वाक्यस्य टेः' का अधिकार है। हि यह वाक्य की 'टि' न होने से प्लुत संज्ञा होगी। क्योंकि इदम् पर्यन्त वाक्य मानने से इदम् का अम् 'टि' होगा। अतः हे देवदत्त त्वं चिनुहि, इदं वनं मम इत्यादि।

(ईदूदेदिति) तपरस्तत्कालस्य से दीर्घ मात्र का ग्रहण होगा, ईदूदेत् यह द्विवचनं का विशेषण है, अतः तदन्त विधि होगी। द्वन्द्वसमास के अन्त पर श्रूयमाण अन्त पद का प्रत्येक से संबन्ध होगा, तो यह अर्थ होगा कि ईदन्त ऊदन्त अथवा एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्य संज्ञा हो। प्रगृह्य संज्ञा होने से प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् से प्रकृतिभाव। हरी एतौ यहाँ ईदन्त द्विवचन है। यण् नहीं होगा, एवम् विष्णू इमौ ऊदन्त द्विवचन, पचेते इमौ एदन्तद्विवचन है।

हरी एतौ। विष्णू अमू। पचेते इमौ। अदसो मात् १।१।१२। अमी ईशाः। अमू आसाते। शे।१।१।१३। अस्मे इन्द्राबृहस्पती। निपात एकाजनाङ्।१।१।१४। इ इन्द्रः, उ उमेशः। आ एवं नु मन्यसे। आ एवं किल तत्। ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः। एतमातं ङितं विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित्। ईषदुष्णम् ओष्णम्। ओत्।१।१।१५।

(अदस इति) अदस शब्द संबन्धी मकार से पर ईत् ऊत् की प्रगृह्य संज्ञा हो, अमी ईशाः! प्रगृह्यत्वात् प्लुत संज्ञा, प्लुत प्रगृह्या० से प्रकृतिभाव। अतः अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ नहीं होगा। एवम् अमू आसाते में यण् नहीं होगा।

(शे इति) प्रगृह्य की अनुवृत्ति, शे यह प्रगृह्य संज्ञक हो। अस्मभ्यम् के प्रयोग में वेद में सुपां सुलक् इत्यादि सूत्र से भ्यस् को शे आदेश, शित्त्वात् सर्वादेश लशक्वतद्धिते, शेषे लोपः अस्मे इन्द्राबृहस्पती, अयादेश प्राप्त था। 'शे' इससे प्रगृह्य संज्ञा, प्लुतप्रगृह्या० से प्रकृतिभाव अस्मे इन्द्राबृहस्पती इति।

(निपात इति) आङ् रहित, अर्थात् आङ् न हो ऐसा एक अच् स्वरूप निपात प्रगृह्य संज्ञक हो, चादि गण में होने से चादयोऽसत्त्वे से निपात संज्ञा। उक्त सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा, इ-इन्द्रः, उ-उमेशः। उभयत्र सवर्ण दीर्घ प्राप्त था, प्रगृह्य-संज्ञक होने से प्लुतप्रगृह्या०' से प्रकृतिभाव, उक्त रूप यथावस्थित रहेंगे। आङ् रहित आकार वाक्य और स्मरण अर्थ में है, आ-एवं नु मन्यसे, तुम प्रथम यह नहीं मानते थे अब ऐसा मानते हो, यहाँ वाक्य का सूचक 'आ' यह है, अतः प्रगृह्य संज्ञा, सन्धि कार्य वृद्धि नहीं होगी। स्मरण अर्थ में आ-एवं किल तत्। यहाँ स्मरण अर्थ में 'आ' है। ठीक, वह निश्चय से ऐसा ही है। ङित् आकार, ईषत्-कुछ-थोड़ा इस विवक्षा में क्रिया-धातु के साथ संबन्ध होने पर मर्यादा और अभिविधि अर्थ में प्रयुज्यमान आकार ङित् संबन्धी है, जैसे ईषत् उष्णम्, ईषत्-आङ् संबन्धी आकार के अर्थ में है। आ उष्णम्, प्रगृह्य संज्ञा न होने से आद्गुणः, ओष्णम् कुछ गरम अर्थ होगा। क्रिया योग में आ-इहि एहि। मर्यादा-आ-इन्द्रप्रस्थात् देवो वर्षतु, इन्द्र प्रस्थ तक, अभिविधि, इन्द्रप्रस्थ से लेकर, उभयत्र आ-इन्द्रप्रस्थात् में गुण हो जायगा, एन्द्रप्रस्थात् होगा।

अहो ईशाः। संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे। १।१।१६। विष्णो इति, विष्णविति। उञः १।१।१७। उ इति, विति। ऊँ।१।१।१८। ऊँ इति। मय उञो वो वा।८।३।३३। किमु उक्तम्। वस्यासिद्धत्वान्नानुस्वारः।

(ओत् इति) ओदन्त निपात प्रगृह्य संज्ञक हो। अहो-ईशाः, प्रगृह्य संज्ञा होने से प्रकृतिभाव, अवादेश नहीं होगा।

(संबुद्धौ इति) शाकल्य ऋषि के मत में सम्बुद्धिनिमित्तक जो ओकार है, अर्थात् संबुद्धि मानकर जो ओकार हुआ है उसको अवैदिक इति शब्द के परे प्रकृतिभाव हो, अन्य आचार्य के मत से न हो, इससे वैकल्पिकत्व स्वतः सिद्ध है। विष्णो इति, पक्ष में अवादेश विष्णविति। भट्टोजि के मत से लोपःशाकल्यस्य से वकार लोप विष्ण इति।

(उञ इति) उञ की इति शब्द परे प्रगृह्य संज्ञा विकल्प से हो,उ इति, पक्ष मे यण् विति। निपात एकाजनाङ् से नित्य प्रगृह्य संज्ञा प्राप्त थी।

(ऊँ इति) उञ को ऊँ आदेश प्रगृह्य संज्ञक विकल्प से हो, इति शब्द के परे, ऊँ इति। इसके पक्ष में पूर्वोक्त उ इति, विति, इस प्रकार तीन रूप होंगे।

(मय इति) मयः पञ्चमी है, उञः षष्ठी है, ङमो ह्रस्वादचि से अचि की अनुवृत्ति है, तो यह अर्थ होगा, मय् से उत्तर जो उञ् है उसको वकारादेश विकल्प से हो अच् के परे। किम् उ-उक्तम्। इस स्थिति में मय् प्रत्याहारान्तर्गत मकार से पर उञ के उकार को वकार होगा अच् प्रत्याहार का उक्तम् का उकार परे है, किम्वुक्तम्। यहाँ मोऽनुस्वारः से मकार

टिप्पण—भट्टोजि शाकल्य के मत से अवादेशानन्तर 'लोपः शाकल्यस्य से वकार लोप मानते हैं, यह असंगत है। जब शाकल्य के मत से प्रगृह्य संज्ञा हो जायगी, और वे यहाँ अवादेश मानते ही नहीं हैं, तब लोप को क्यों कहेंगे। यह ठीक है। परंतु शाकल्य दो मानेंगे। ये शाकल्य भिन्न हैं और वे भिन्न। परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से व्याकरणकार शाकल्य एक ही हुए हैं। और बालमनोरमा तत्त्वबोधिनीकारादि इस प्रयोग का उल्लेख भी नहीं करते, इति।

किम्वुक्तम्। ईदूतौ च सप्तम्यर्थे १।१।१९। सोमो गौरी अधिश्रितः। मामकी तनू इति सप्तम्यर्थमात्रे पर्यवसन्नम् ईदूदन्तं प्रगृह्यं स्यात् वृत्तावर्थान्तरोपसंक्रान्ते मा भूत्, तेन नेह वाप्यश्वः। वाप्यधिकरणके अश्व

का अनुस्वार क्यों नहीं होता? पूर्वत्रासिद्धम् से वकार असिद्ध है मोऽनुस्वारः की दृष्टि में उकार ही है। क्योंकि त्रिपादी में भी पूर्व के प्रति पर असिद्ध है। वत्व विधायक ८।३।३३। है और अनुस्वार विधायक ८।३।२३। अतः परत्वात् वत्व असिद्ध है। पक्ष में निपात एकाजनाङ् से प्रगृह्य संज्ञा, किमु उक्तम् प्लुत प्रगृह्या० से प्रकृतिभाव दीर्घ नहीं होगा।

(ईदूताविति) सप्तम्यर्थ मात्र में पर्यवसन्न अर्थात् उत्तर के साथ सप्तम्यर्थ का संवन्ध नहीं करनेवाले ऐसे ईदन्त ऊदन्त की प्रगृह्य संज्ञा हो। गौरी अधिश्रितः, यण् प्राप्त था प्रगृह्यत्वात् नहीं हुआ। गौर्याम् 'सुपां सुलुक' से सप्तमी का लुक्। गौरी यह सप्तम्यन्त मात्र में पर्यवसान को प्राप्त है। गौर्याम् अधिश्रितः सोमः अधिकरणत्वादि अर्थ अधिश्रित के साथ साकांक्ष नहीं है। एवम्, मामक्याम् इति, तन्वाम् इति, सुपां सुलुक् से सप्तमी का लुक्। मामकी इति,तनू इति, दोनों जगह ईदन्त, मामकी ऊदन्त तनू सप्तम्यन्त मात्र में समाप्त है। वाप्याम् अश्वः, 'सुपो धातु०' से सप्तमी

टिप्पण—सप्तम्यर्थ मात्र में पर्यवसन्न यह अर्थ कहाँ से लेते हैं?

उत्तर—ईदूतौ च सप्तमी १ 'अदसः'२ मात् ग्रहण नहीं करना क्योंकि अदस शब्द के ईकार ऊकार मकार से ही पर हैं 'ईदूदेत् द्विवचनम्', में एच्च द्विवचनम् करना। ईदूत् की अनुवृत्ति आ जायगी। इस लघुभूतन्यास से सिद्ध था, फिर जो गुरुभूत न्यास अर्थ ग्रहण के साथ किया है, वह यह सूचित करता है, कि सप्तम्यर्थमात्र में पर्यवसन्न ईदन्त, ऊदन्त, इससे यह फलित हुआ कि—वृत्तौ-समासवृत्तौ अर्थान्तरोपसंक्रान्ते प्रगृह्य संज्ञा न। इससे वाप्याम् अश्वः, वापी-अश्वः, यहाँ तत्पुरुषसमास में ईदन्त वापीशब्द सप्तम्यन्तमात्र में सार्थक समास नहीं है, किन्तु वाप्यधिकरणक अश्व में उपसंक्रान्त है।

समाप्त

सूत्रसंक्रान्तकार। अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः ८।४।५७। दधिँ। दधि।
इत्यच्संधिः।

अथ हल्सन्धिः

स्तोः श्चुना श्चुः।८।४।४०। हरिश्शेते, रामश्चिनोति। सच्चित्, शार्ङ्गिञ्जय। शात् ८।४।४४। विश्नः, प्रश्नः। ष्टुना ष्टुः।८।४।४१।

का लुक्, वापी अश्वः, यहाँ वापी यह सप्तम्यन्त मात्र में पर्यवसन्न नहीं है किन्तु वाप्यधिकरणक अश्व में उपसंक्रान्त हैं, अतः प्रगृह्य संज्ञा नहीं होगी। यण्, वाप्यश्वः,।

(अणो इति) अप्रगृह्य अण्, अर्थात् प्रगृह्य संज्ञक नहीं ऐसे अण् को अनुनासिक विकल्प से हो, दधिँ, पक्ष में अनुनासिक रहित। इत्यच्सन्धिः।

अथ हल्सन्धिः

(स्तोरिति) स्तोः सकार तवर्ग को शकार चवर्ग से योग-संबन्ध रहने पर श्चुः-शकार चवर्ग यथाक्रम से होते हैं, यहाँ स्थान्यादेश का यथासंख्य है, किन्तु स्थानी षष्ठ्यन्त का—और योग—श्चुना इस तृतीयान्त का यथासंख्य नहीं है क्योंकि इनका यथासंख्य मानने पर 'शात्' 'तोःषि' सूत्र व्यर्थ हो जायँगे, विश्नः, सन्षष्ठः, यहाँ यथासंख्याश्रयण से चुत्व ष्टुत्व प्राप्त ही नहीं है। हरिः शेते, 'वा शरि' से सकार, उक्त सूत्र से सकार को शकार। हरिश्शेते। रामस् चिनोति। सकार चवर्ग का योग होने से सकार को शकार। रामश्चिनोति, यहाँ यथासंख्य से योग नहीं है किन्तु क्रम से सकार चवर्ग का योग है। एवम्-सत् चित् जस्त्व की अपेक्षा चुत्व असिद्ध है झलां जशोऽन्ते से दकार स्तोःश्चुना श्चुः से जकार, खरि च से चकार। सच्चित्। शार्ङ्गिन्-जय नकार को ञकार। शार्ङ्गिञ्जय।

(शादिति) विश् नः। तोः षि सूत्र से तु-तवर्ग की अनुवृत्ति है। यहाँ शकार तवर्ग का योग है, नकार को ञ प्राप्त था, शात्-शकार से तवर्ग

रामष्षष्ठः, रामष्टीकते, पेष्टा, तट्टीका, चक्रिण्ढौकसे। न पदान्ताट्टोर-नाम् ।८।४।४२। षट् सन्तः, षट् ते। अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्। षण्णाम्, षण्णवतिः, षण्णगर्यः। तोः षि ।८।४।४३। सन् षष्ठः। झलां जशोऽन्ते ८।२।३९। वागीशः, चिद्रूपम्। यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको

का योग होने पर चुत्व नहीं होगा, विश्नः, एवं प्रश्नः।

(ष्टुना इति) स्तोः की अनुवृत्ति है, अतः यह अर्थ होगा—सकार तवर्ग का षकार ट वर्ग से योग होने पर षकार ट वर्ग यथाक्रम से होते हैं। स्तोः सकार त वर्ग से योग हैं, अतः प्रत्यासत्तिन्याय से सकार त वर्ग को क्रम से षकार ट वर्ग होगा। सकार को षकार और त वर्ग को ट वर्ग, रामस्-षष्ठः, सकार का षकार से योग, रामस् टीकते, सकार ट वर्ग का योग। पेष्-ता, षकार त वर्ग का योग, तत्-टीका, तवर्ग-टवर्ग का योग है। यहाँ सकार त वर्ग का पूर्व पर उभय प्रकार का व्युत्क्रम दिखाया है, चक्रिन् ढौकसे, त वर्ग ट वर्ग का योग है, अतः न कार को णकार, चक्रिण्ढौकसे।

(न पदान्तेति) पदान्तात् टोः न। पदान्त ट वर्ग से सकार या त वर्ग का योग होने पर 'ष्टु' षकार टवर्ग नहीं होगा। षट्-सन्तः, षट् यह पदान्त ट कार का सन्तः शब्द के आदिस्थ सकार से योग है, अतः सकार को षकार नहीं होगा। एवम्-षट् ते, षट् नरः, यहाँ पदान्त टवर्ग का तवर्ग से योग है, अतः ष्टुत्व तकार को टकार, और नकार को णकार नहीं होगा। षट् ते, षण्नरः, ऐसा ही रहेगा। षण्नरः में यरोंऽनुनासिके से णकार हो जायगा। (अ नामिति) नाम्, नवति नगरी इन शब्दों को छोड़कर न पदान्ता से ष्टुत्व निषेध होगा, षट्-नाम्, षट् नवतिः षट् नगर्यः षण्णगर्यः।

(तोः षीति) पदान्तात् की अनुवृत्ति है पदान्त तवर्ग षकार के पर होने से तवर्ग को ट वर्ग नहीं होगा। षन् षष्ठः, नकार को णकार नहीं हुआ। सन्षष्ठः।

(झलामिति) पद की अनुवृत्ति है, पद के अन्त में विद्यमान झलों को जश्

वा ८।४।४५। एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः। प्रत्यये भाषायां नित्यम् *। तन्मात्रम्, चिन्मयम्। तोर्लि ८।४।६०। तल्लयः। नकारस्यानुनासिको लकारः। विद्वाँल्लिखति। उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८।४।६१। आदेः

हो। वाक् ईशः, ककार को गकार हो गया, वागीशः। एवम्, चित्-रूपम्, चिद्रूपम्। (यर इति) 'ञमङणनानां नासिका च' ञ-म-ङ-ण-न, इनका नासिका स्थान है, च कार से अपना २ कण्ठताल्वादि स्थान है, तो नासिकामनुगतः अनुनासिकः तस्मिन् नासिका को प्राप्त। अर्थात् ञमङणन इन वर्णों के परे पदान्त यर् को अनुनासिक विकल्प से हो। एतत् मुरारिः, तकार को पाँचों अनुनासिक प्राप्त थे, 'तुल्यास्यप्रयत्नं' से सवर्णः।' दन्तस्थानीय न कार होगा, अर्थात् वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः जिस वर्ग का यर् उसी वर्ग का अनुनासिक आदेश होगा, एतन्मुरारिः। पक्ष में झलां जशोऽन्ते। एतद्मुरारिः।

(प्रत्यये इति) भाषा में अर्थात् लोक में अनुनासिक प्रत्यय के परे नित्य अनुनासिक हो। तत् शब्द से 'प्रमाणे द्वयसज्०' से मात्रच् प्रत्यय, चकार इत्। मात्रच् प्रत्यय परे है अतः नित्य अनुनासिक नकार होगा। एवम् चित् शब्द से मयट् चिन्मयम्।

(तोर्लीति) 'अनुस्वारस्य ययि०' से परसवर्ण' हो। तद्-लयः, इस स्थिति में दकार को पर का लकार का सवर्णी लकार हो गया। तल्लयः, विद्वान्-लिखति, इस स्थिति में अनुनासिक नकार को सानुनासिक लकार होगा, क्योंकि अनुनासिक और निरनुनासिक भेद से लकार दो प्रकार का है, तो निरनुनासिक दकारादिकों के स्थान पर निरनुनासिक लकार, और सानुनासिक नकार को सानुनासिक लकार होगा। विद्वाँल्लिखति।

(उद इति) उद से पर स्था स्तम्भ के आदिसकार को पूर्व का सवर्णी आदेश हो, तस्मादित्युत्तरस्य से पर स्थास्तम्भ का ग्रहण होगा। "आदेः परस्य" से आदि सकार का ग्रहण होगा। उद्-स्थानम्, इस स्थिति में सकार को पूर्व दकार का सवर्णी हो तो 'लृतुलसानां दन्ताः' से सब प्राप्त हुए। अतः बाह्य प्रयत्न का साम्य लेने में 'खरो विवारः' खर प्रत्याहार

परस्य । अत्र विवारस्य महाप्राणस्य सस्य तादृश एव थकारः । तस्य झरो झरीति पाक्षिको लोपः । उद् थानम् इति स्थिते । खरि च ८।४।५५। झलां चरः स्युः । उत्थानम् । उत्तम्भनम् । लोपाभावे थकारस्यासिद्धत्वात् तस्य न चर्त्वम् । झयो होऽन्यतरस्याम् ८।४।६२ । संवारस्य महाप्राणस्य

का विवार प्रयत्न है, तो खर प्रत्याहारान्तर्गत सकार का खर प्रत्याहारान्तर्गत तकार थकार दो प्राप्त हुए। अतः फिर 'द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः। वर्ग का दूसरा चौथा वर्ण और शल् प्रत्याहार इनका महाप्राण प्रयत्न है, तो शल् प्रत्याहारान्तर्गत सकार को फिर भी दूसरा और चौथा दो प्राप्त होते हैं, कौन हो इस आकांक्षा में द्वितीय थकार होगा, क्योंकि विवार प्रयत्न में खर प्रत्याहारान्तर्गत सकार थकार है, और यहाँ महाप्राण प्रयत्न में भी सकार और द्वितीय अक्षर थकार है तो थकार विवार प्रयत्न में भी मिलता है और महाप्राण प्रयत्न में भी मिलता है अतः सकार को थकार होगा तो उद्थ् थानम् ऐसा हुआ, इस स्थिति में 'झरो झरि सवर्णे' हल्-दकार से पर झल् प्रत्याहारान्तर्गत आदेश जन्य थकार का लोप विकल्प से हो जायगा झल् प्रत्याहार में थानं का थकार परे है। तो उद् थानम् ऐसी स्थिति में ।

(खरीति) खर के परे झलां को चर हो, तो खर प्रत्याहारान्तर्गत थकार के परे झल् प्रत्याहार के दकार को चर में तालुस्थानीय तकार हो गया, उत्थानम्, लोपाभाव में थकार ही रहेगा, क्योंकि 'पूर्वत्रासिद्धम्' से 'खरिच' की दृष्टि में 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' से उत्पन्न थकार असिद्ध है, अतः उत्थ्थानम्, एक तकार दो थकारात्मक होगा ।

(झय इति) झयः पञ्चमी है अतः तस्मादित्युत्तरस्य से यह अर्थ होगा, कि झय से उत्तर हकार को पूर्वसवर्ण हो । वाक् हरिः, इस स्थिति में हकार को पूर्वस्थ ककार के सवर्णी, क-ख-ग-घ-ङ ये पाँचों प्राप्त हुए, हशः संवारः । हश प्रत्याहारान्तर्गत ग घ ङ ये तीन प्राप्त हुए । अतः "द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः" द्वितीय, 'ख' और चतुर्थ 'घ' एवं शल् प्रत्या-

हस्य तादृशो वर्गचतुर्थ एवादेशः । वाग्घरिः, वाग्हरिः । शश्छोऽटि ८।४।६३ । तच्छिवः, तच्शिवः । छत्वममीति वाच्यम् * तच्छ्लोकेन । मोऽनुस्वारः ।८।३।२३ हलि पदान्ते । हरिं वन्दे । नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४ । यशांसि, आक्रंस्यते । अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः

हारान्तर्गत हकार का महाप्राण प्रयत्न है, तो संवार प्रयत्न में और महाप्राण प्रयत्न में हकार के साथ चौथा वर्ण घकार ही मिलता है, अतः हकार को कवर्ग का चौथा वर्ण घकार विकल्प से होगा । झलां जशोऽन्ते ककार को गकार वाग्घरिः । पक्ष में वाग्हरिः । एवम्-तद् हविः, हकार को तवर्ग का चौथा वर्ण ध होगा । तद्धविः, तद्हविः ।

(शश्छोऽटीति) पूर्वसूत्र से झयः अन्यतरस्याम् की अनुवृत्ति है, तो यह अर्थ होगा, झय से पर शकार को छकार हो, अट् प्रत्याहार के परे । तद् शिवः प्रथम स्तोःश्चुना श्चुःसे जकार, 'खरि च' से जकार को चकार, उक्त सूत्र से शकार को छकार होगा, अट् प्रत्याहार का इकार परे है, तच्छिवः पक्ष में तच्शिवः । वार्तिककार का मत है कि यहाँ अटि के स्थान पर अमि कहना 'शश्छोऽमि' शकार को छकार हो अम् प्रत्याहार के परे । तो तच् श्लोकेन यहाँ अट् प्रत्याहारान्तर्गत लकार नहीं है, अतः छकारादेश नहीं होगा, 'अमि' कहने से अम् प्रत्याहार में लकार आ जाता है, अतः शकार को छकार हो गया । तच्छ्लोकेन, पक्ष में तच्श्लोकेन ।

(मोऽनु० इति) मकार को अनुस्वार हो, हल् प्रत्याहार के परे पदान्त में, सूत्रार्थ में 'हलि और पदान्ते' अपेक्षित है अतः तन्मात्रवृत्ति है, हरिम्-वन्दे, इस स्थिति में मकार को अनुस्वार हो गया, हरिं वन्दे ।

(नश्चेति) अपदान्त नकार को और चकार से अपदान्त मकार को अनुस्वार हो झल् प्रत्याहार के परे । यशान् सि, सकार के परे नकार को आक्रम्-स्यते में मकार को अनुस्वार होगा, यशांसि, आक्रंस्यते ।

(अनु इति) अनुस्वार को यय् प्रत्याहार के परे पर सवर्ण हो । अङ्कितः

अनुस्वार का नासिका स्थान है, अतः नासिका स्थानीय वर्गका पञ्चम

८।४।५८। अङ्कितः, अञ्चितः, कुण्ठितः, शान्तः, गुम्फितः । वा पदान्तस्य ८।४।५९। त्वङ्करोषि, त्वं करोषि । सँय्यन्ता, संयन्ता । सँव्वत्सरः संवत्सरः । यँल्लोकम् , यं लोकम् । अत्रानुनासिका यवलाः । मो राजि समः क्वौ ८।३।२५। सम्राट् । हे मपरे वा ।८।३।२६ किम् ह्मलयति किं ह्मलयति । यवलपरे यवला वेति वक्तव्यम् * । यथासंख्यमनुदेश

अक्षर होगा । क्रम से प्रत्येक वर्ग का उदाहरण है, अञ्चितः कुण्ठितः शान्तः, गुम्फितः ।

(वेति) पदान्त अनुस्वार को यय् प्रत्याहार के परे पर सवर्ण विकल्प से हो । पक्ष में अनुस्वार ही रहेगा । त्वम्-करोषि 'मोऽनुस्वारः' से मकार को अनुस्वार, कवर्ण का नासिकास्थानीय अनुस्वार का सवर्ण ङ है अतः अनुस्वार को ङकार होगा, त्वङ्करोषि, पक्ष में अनुस्वार, त्वं करोषि सम्-यन्ता, इत्यादिकों में सर्वत्र मोऽनुस्वारः से अनुस्वार । अनुनासिक अननुनासिक भेद से य-व-ल, दो प्रकार के हैं । अतः अनुनासिक अनुस्वार को यकारादि के उन यकारादि का सवर्णी अनुनासिक 'यँ' यकारादि होगा, सँय्यन्ता, पक्ष में अनुस्वार रहेगा, संयन्ता । इसी प्रकार सँव्वत्सरः, यँल्लोकम् , में भी जानना ।

(मोराजीति) मोऽनुस्वारः से मकार की अनुवृत्ति है । क्विबन्त राज् शब्द के परे सम् शब्द के मकार को मकार हो । अर्थात् मोऽनुस्वार से अनुस्वार न हो, सम्राट् ।

(हे मपरे इति) 'मपरे हे वा' मकार जिससे पर—आगे हो ऐसे हकार के परे मकार को मकार विकल्प से हो । किम् —ह्मलयति । मकार परक हकार परे है । अतः मकार रहेगा, पक्ष में अनुस्वार, किं ह्मलयति

(यवलेति) य-व-ल, जिससे पर हैं ऐसे हकार के परे अनुस्वार को य व ल आदेश विकल्प से हो, किम् ह्यः, इस स्थिति में 'हे मपरे वा' 'यवल परे' यह असिद्ध है, अतः मोऽनुस्वारः से मकार को अनुस्वार 'यवल परे' वार्तिक से अनुस्वार को यवला सब प्राप्त थे ।

समानाम्। किँय् ह्यः, किं ह्यः। किँ व् ह्वलयति, किं ह्वलयति। किँल् ह्लादयति किं ह्लादयति। नपरे नः ८।३।२७। किन्न् ह्नुते, किंह् नुते। ङ्णोः कुक् टुक् शरि ८।३।२८। यथासंख्येन कुक्टुकौ। तयोरसिद्धत्वान्न जश्त्वम्। चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् * प्राङ्ख् षष्ठः। प्राङ्क् षष्ठः, प्राङ् षष्ठः। सुगण्ठ् षष्ठः। सुगण्ट् षष्ठः, सुगण्षष्ठः। ङः सि धुट् ८।३।२९। षट् त्सन्तः, षट् सन्तः। नश्च ८।३।३०। सन्त्सः

(यथेति) समान निमित्तों में यथासंख्य-संख्यानुरूप अनुदेश जानना तो यपरक हकार के परे यँ, व परक हकार के परे वँ, एवं ल परक हकार के परे लँ आदेश होंगे। किँय् ह्यः, इत्यादि, पक्ष में अनुस्वार, किं ह्यः। इसी तरह व-ल, में भी जानना।

(नपरे इति) न है पर जिससे ऐसे हकार के परे 'नः' अनुस्वार को नकारादेश हो। किम्-ह् नुते मोऽनुस्वारः, से अनुस्वार, उक्त सूत्र से नकार, किन् ह् नुते, पक्ष में अनुस्वार, किं ह् नुते।

(ङ्णोरिति) 'हे मपरे वा' से सर्वत्र वा की अनुवृत्ति है। ङकार णकार के विकल्प से कुक् टुक् का आगम हो, यथासंख्य से ङकार के कुक्, एवं णकार के टुक् आगम होगा। 'आद्यन्तौ टकितौ' से कित् होने से अन्त पर होगा। हलन्त्यम्, उपदेशेऽजनुनासिक इत्, प्राङ्क् षष्ठः, सुगण्ट् षष्ठः, इस स्थिति में 'झलां जशोऽन्ते' से जश्त्व प्राप्त था, परंतु 'पूर्वत्रासिद्धम्' से कुक् टुक् असिद्ध हैं। 'झलां जशोऽन्ते' की दृष्टि में हुए ही नहीं है। फिर 'चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्' चय को द्वितीय अक्षर पौष्करसादि के मत से हो' तो ककार को 'ख' एवं टकार को 'ठ' द्वितीय होगा, प्राङ् ख् षष्ठ: अन्य के मत से, प्राङ् क् षष्ठः। एवं सुगण् ठ् षष्ठः, सुगण् ट् षष्ठः, कुक् टुक् के विकल्प में अर्थात् जहाँ कुक् टुक् नहीं हुए, वहाँ प्राङ् षष्ठः, सुगण् षष्ठः ऐसे ही रहेंगे।

(ङः सीति) ड से पर सकार के धुट् का आगम विकल्प से हो। टित्वात् सकार के आदि में होगा। 'खरि च' से तकार। षट्त्सन्तः, पक्ष में 'खरि च' से 'ड' को 'ट' षट् सन्तः।

सन्सः, शि तुक् ८।३।३१। शश्छोऽटीति छत्वविकल्पः। पक्षे झरो झरीति चलोपः सञ्छम्भुः। सञ्च्छम्भुः सञ्च्शम्भुः, । सञ् शम्भुः। ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् ८।३।३२। प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण्णीशः, सन्नच्युतः। समः सुटि ८।३।५। मस्य रुः स्यात्। अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा

(नश्चेति) नान्तपद से पर सकार के धुट् का आगम विकल्प से हो, टित्वात् आदि में, उकार टकार इत्। तस्य लोपः। खरि च से तकार, सन्त्सः, पक्षमें सन्सः।

(शि तुगिति) नः षष्ठयन्त विभक्ति विपरिणाम से नान्त पद को तुक् का आगम विकल्प से हो शकार के परे। सन्-शम्भुः, 'आद्यन्तौ टकितौ' से कित् होने से नान्त-सन् के अन्त पर होगा, सन् त् शम्भुः। स्तोः श्चुना श्चुः से तकार को चकार न को ञ 'शश्छोटि' से विकल्प से शकार को छकार, सञ् च् छम्भुः इस स्थिति में, झरो झरि सवर्णे हल्-ञकार से पर-चकार का लोप होगा, सवर्ण झर्-छकार परे है, तो विकल्प से चकार का लोप हो जायगा, सञ् छम्भुः, झरो झरि के लोप के पक्ष में सञ्च्छम्भुः।

शश्छोऽटि के पक्ष में अर्थात्-जहाँ शकार को छकार नहीं हुआ वहाँ सञ्च्शम्भुः, यहाँ शकार सवर्णी नहीं है अतः इस स्थिति में च लोप नहीं होगा, और जहाँ तुक् ही नहीं होगा, वहाँ केवल स्तोः श्चुना श्चुः से 'न' को 'ञ' होगा, सञ्शम्भुः।

(ङमो॰ इति) ह्रस्व से पर जो ङम्-प्रत्याहार अर्थात् ङ ण न्, तदन्त जो पद अर्थात् ङकारान्त, णकारान्त, नकारान्त जो पद उससे पर जो अच् है उसको नित्य ङमुट् का आगम हो, टित् होने से अच् के आदि में होगा ङम्-ङमुट् ङम् प्रत्याहार के साथ उट् लगा है अतः यथाक्रम से ङुट्-णुट्-नुट् होंगे, ङकारान्त के ङुट्, णकारान्त के णुट्, नकारान्त के नुट् होगें, प्रत्यङ्-आत्मा ङुट्, प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण ईशः,-णुट्, सुगण्णीशः, सन्-अच्युतः, नुट् सन्नच्युतः, संयोगान्त लोप असिद्ध है, अतः सन् के नकार का न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य से लोप नहीं होगा।

(समः इति) सम्-स्कर्ता। इस स्थिति में 'समः सुटि' सम को रु होने

८।३।२। रोः पूर्वस्यानुनासिकः स्यात्। अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः ८।३।४। खरवसानयोर्विसर्जनीयः इति विसर्गे, वा शरीति विकल्पे प्राप्ते। संपुंकानां सो वक्तव्यः*। संस्कर्ता संस्स्कर्ता। समो वा लोपमेके इति भाष्यम्। लोपस्यापि रुप्रकरणस्थत्वाद् अनुस्वारानुनासिकौ स्तः। एवमेकसकारं रूपद्वयम्, पूर्वोक्ते द्विसकारके अनचिचेति द्वित्वे त्रिसकारम्। अनुस्वारविसर्ग-

---

सुट् के परे, 'अलोऽन्त्यस्य' से अन्त को होगा, तो यह अर्थ होगा, सम (उपसर्ग) के अन्त्य मकार को रु हो, सुट् के परे। यहाँ 'संपरिभ्यां करोतौ भूषणे' से सुट्। अतः सुट् परे है, मकार को रु हो गया, स रु स्कर्ता, इस स्थिति में अत्रानुनासिकः वंस्य तु वा अत्र का अर्थ, इसमें, अर्थात् रु प्रकरण में पूर्वस्य-पूर्व को प्रकृतत्वात् रु के पूर्व को अनुनासिक विकल्प से हो, तो सकारोत्तरवर्ती पूर्व अकार को सानुनासिक अकार विकल्प से होगा, पक्ष में 'अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः' अनुनासिकात् में पञ्चमी 'ल्यब् लोपे कर्मण्यधिकरणे च' इससे है, तो यह अर्थ होगा, अनुनासिक को छोड़कर अर्थात् जहाँ अनुनासिक नहीं हुआ उसके विकल्प में, पर-सम् उपसर्ग के अकार से पर अनुस्वार का आगम हो। इससे अनुस्वार हुआ, तो सँरुस्कर्ता, संरुस्कर्ता, ये दो रूप हुए। उकार इत्-लोप, "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" से सकार के परे विसर्ग, तो सकार के परे 'वाशरि' से विकल्प से सकार प्राप्त था, उसका अपवाद 'संपुंकानां सो वक्तव्यः' सम्-पुम् कान्, इन के विसर्ग को नित्य सकार हो, इससे विसर्ग को सकार हुआ तो उभयत्र द्विसकारक, सँस्स्कर्ता, संस्स्कर्ता रूप हुए। एके-अन्य-कतिपय दूसरे आचार्य मानते हैं, सम् के विकल्प से लोप हो, 'हयवरट्' सूत्र पर भाष्यकार ने "समो वा लोपमेके" यह कह कर उन आचार्यों का समर्थन किया है, तो सम् के मकार का लोप होगा, और यह लोप भी रुप्रकरण में है, अतः लोप होने पर उक्त सूत्रों से अनुनासिक और अनुस्वारागम होगा, तो लोप पक्ष में रुत्व विसर्ग सकार नहीं होंगे, क्यों कि मकार का तो लोप हो गया है। अतः एक सकार के दो रूप, और दो सकार के पूर्वोक्त प्रक्रिया से दो रूप। दो सकारवालों में,

जिह्वामूलीयोपध्मानीयानामकारोपरि शर्षु च पाठस्योपसंख्यानम् ।* इत्यनु-स्वारस्य अच्त्वात् । एवं त्रीणि सानुनासिकानि, त्रीणि सानुस्वाराणि। शर: खय: * इत्यनुनासिकवतां कद्वित्वे षट् । अनुस्वारवतामनुस्वारस्य शर्त्वात्तस्यानचिचेति द्वित्वे शर: खय इति कद्वित्वे द्वादश । एषामष्टादशानाम् अचो रहाभ्यामिति तकारस्य द्वित्वे पुनः यणो मय इति द्वित्वे

"अनुस्वार-विसर्ग-जिह्वामूलीयोपध्मानीयानाम् अकारोपरि शर्षु च पाठस्योपसंख्यानम्" अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय इनका अकार के ऊपर और शर् प्रत्याहार में पाठ माना जाता है। तो अनुनासिकात्मक अकार तो अच् ह, य, और अनुस्वार को अकार के ऊपर मानने से वह भी अच् हुआ, अतः द्विसकारक को दोनों जगह अर्थात् अनुनासिक और अनुस्वार पक्ष में 'अनचिच' से सकार को द्वित्व करें तो त्रिसकार के दो रूप होंगे। एक सकारक में द्वित्व करने का कुछ भी फल नहीं है, क्यों कि अनचिच के पक्ष में द्विसकारक है। एवम् एक सकार दो सकार तीन सकारवाले अनुनासिक के तीन और ऐसे ही एक दो तीन सकारवाले अनुस्वार के तीन, इस प्रकार अनुनासिकवाले तीनों रूपों में "शर: खय:' शर् से पर जो खय् उसको विकल्प से द्वित्व हो, एवं सकार से पर ककार को विकल्प से द्वित्व होगा, तो अनुनासिक के छ रूप होंगे। तीन एक ककार के और तीन दो ककार के। एवम् एक द्वित्रि सकारात्मक अनुस्वारवालों में 'शर: खय:' से ककार द्वित्व होने से छ रूप, इन छओं रूपों में अनचिच से अनुस्वार को द्वित्व करेंगे, क्योंकि अनुस्वार को शर् प्रत्याहार में माना है, इस प्रकार एक अनुस्वार के छ रूप, और दो अनुस्वार के छ रूप, तो बारह अनुस्वार पक्ष में, और छ पूर्वोक्त प्रक्रिया से अनुनासिक पक्ष में कह आये हैं, ये अठारह रूप हुए इन अठारहों में 'अचो रहाभ्यां द्वे' इससे तकार को विकल्प से द्वित्व और फिर 'यणो मयो द्वे वाच्ये' यण् प्रत्याहार गत रेफ से तकार को द्वित्व विकल्प, तो एक तकारात्मक (१८) द्वितकारात्मक (१८) त्रितकारात्मक (१८) इस प्रकार चौवन (५४) रूप होते हैं, इन सब

एकतं, द्वितं, त्रितमिति चतुःपञ्चाशत्। अणोऽप्रगृह्येति अनुनासिके अष्टोत्तरशतम्। **पुमः खय्यम्परे ८।३।६।** पुंस्कोकिलः, पुँस्कोकिलः, पुंस्पुत्रः, पुँस्पुत्रः। *ख्याञादेशे न। पुंख्यानम्। **नश्छव्यप्रशान् ८।३।७।**

'अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः' से अनुनासिक विकल्प से होगा, इस प्रकार कर्ता के तकारोत्तरवर्ती आकार के सानुनासिक चौवन (५४) और निरनुनासिक चौवन (५४) दोनों मिलाकर एक सौ आठ (१०८) रूप होते हैं।

(पुम इति) अम्परे खयि। अम् प्रत्याहार जिसके उत्तर-आगे हो, ऐसे खय् प्रत्याहार के परे पुम् शब्द के मकार को रु हो, उक्त सूत्रों से अनुनासिक, अनुस्वार, रेफ को विसर्ग, संपुंकानाम् से विसर्ग को सकार, पुँस्कोकिलः, पुंस्कोकिलः एवम्-पुम्-पुत्रः, रुत्व, अनुनासिक अनुस्वार विसर्ग। दोनों स्थलों में कुप्वोः ≍क ≍पौ च' प्राप्त था। संपुंकानाम् से सकार। पुँस्पुत्रः, पुंस्पुत्रः। पुम्-ख्यानम्, इस स्थिति में अम् प्रत्याहारान्तर्गत यकार जिससे परे है, ऐसे खकार के परे रुत्व प्राप्त था, उसके निषेधार्थ 'ख्याञादेशे न' वार्तिक है, ख्याञ् आदेश में रुत्व नहीं होगा, मोऽनुस्वारः। पुंख्यानम्।

टि०—यह 'संस्कर्त्ता' में एक सौ आठ (१०८) रूप सिद्ध करके दिखाने में भट्टोजि दीक्षितजी का क्या रहस्य है यह तो वे ही जानें, परंतु इस प्रकार का पाण्डित्यमूलक रूप 'संस्स्स्कर्त्त्त्ता' जिसमें दो अनुस्वार तीन सकार तीन तकार का उच्चारण काव्यादि में प्रयोग असंभव ही है, छात्रों का जीवन, समय का नाश, मूर्ख रखना ही भट्टोजि जी का हार्दिक रहस्य प्रतीत होता है।

टि०—भाष्यकार ने 'ख्याञादेशे न' इसका खण्डन करते हुए 'चक्षिङः ख्याञ्' के स्थान पर 'चक्षिङः ख्शाञ्' ऐसा पढ़ा, और रषाभ्यां के अनन्तर 'शस्य यो वा' से शकार को यकार। वह यकारादेश असिद्ध है, अतः इसकी दृष्टि में शकार है, एवम् अम् परक नहीं है, अतः रुत्व प्राप्त नहीं है। इसमें कल्पनागौरव है अथवा नहीं, यह भाष्यकार ही जानें।

विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४। खरि। शार्ङ्गिंश्छिन्धि शार्ङ्गिँश्छिन्धि, चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिंस्त्रायस्व। नॄन् पे ८।३।१०। इति रुः। कुप्वोः ≍क≍पौ च ८।३।३७। चाद्विसर्गः। नॄँ≍पाहि, नॄं≍पाहि, नॄँःपाहि, नॄंःपाहिः, नॄन् पाहि। कानाम्रेडिते ८।३।१५। कस्कादिषु च ८।३।४

(नश्छव्यीति) नान्तपद को रु हो, छव् प्रत्याहार के परे, प्रशान् शब्द को न हो। चक्रिन्-त्रायस्व, इस स्थिति में समस्त पद को नहीं किन्तु 'अलोऽन्त्यस्य' से नकार को अनुनासिक, अनुस्वार, उकार इत्, रेफ को विसर्ग पूर्ववत् होंगे। चक्रिः त्रायस्व इस स्थिति में, 'विसर्जनीयस्य सः' खरि की अनुवृत्ति है। खर् प्रत्याहार के परे विसर्ग को सकार हों। यहाँ त्रायस्वगत तकार खर् प्रत्याहार का परे है अतः विसर्ग को सकार हो गया। चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिंस्त्रायस्व, शार्ङ्गिन् छिन्धि, पूर्ववत् रु, अनुनासिक, अनुस्वार, विसर्ग, सकार के अनन्तर स्तोःश्चुना श्चुः से शकार शार्ङ्गिँश्छिन्धि, शार्ङ्गिंश्छिन्धि। इस सूत्र का रहस्य यह है, कि च वर्ग, टवर्ग, तवर्ग के पहिले और दूसरे अक्षर के परे, अर्थात् च-छ, ट-ठ, त-थ, के परे यह सूत्र लगता है, भ्रामक होने से यह व्याख्या की है। प्रशान् शब्द में रुत्व नहीं होगा, प्रशान्तः। स्तोःश्चुना श्चुः। प्रशाञ्चलति, ष्टुना ष्टुः। प्रशाण्टीकते।

(नॄनिति) नॄन् इसको रु हो, पे-पकार के परे। नॄन्-पाहि इस स्थिति में अलोन्त्यस्य से नकार को रु आदेश, अनुनासिकादि विसर्ग पर्यन्त पूर्ववत्, नॄँः पाहि, इस स्थिति में।

(कुप्वोरिति) खरि की अनुवृत्ति है, कवर्ग-पवर्ग संबन्धी खर् प्रत्याहार के परे अर्थात् कख, पफ के परे विसर्ग को ≍क≍प हों, यथासंख्य से कवर्ग में ≍क और पवर्ग में ≍प। चकार ग्रहण से विसर्ग ही रहेंगे नॄँ≍पाहि, नॄं≍पाहि, नॄँःपाहि, नॄंःपाहि और जहाँ नॄन्पे से रु नहीं होगा, वहाँ नॄन्पाहि ऐसा ही रहेगा।

(कानिति) कान् यह द्वितीयान्तानुकरण लुप्तषष्ठ्यन्त है। 'तस्य परमाम्रेडितम्' से आम्रेडित संज्ञा। 'अलोन्त्यस्य' कान् शब्द के अन्त्य

एण्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षः स्यादन्यत्र तु सः। इति सः। कांस्कान्, कस्कः, कौतस्कुतः। सर्पिष्कुण्डिका। धनुष्पकालः। आकृतिगणोऽयम्। संहितायाम् ६।१।७२। इत्यधिकृत्य। छे च ६।१।७३। ह्रस्वस्य छे परे तुक्। स्वच्छाया, शिवच्छाया। श्चुत्वस्यासिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वं न। आङ्मा-

वर्ण की अर्थात् कान् शब्द के नकार को रु हो आम्रेडित के परे अर्थात् द्वितीय कान् शब्द के परे। इससे नकार को 'रु' आदेश, अनुनासिकादि पूर्ववत्, काँः कान्, इस स्थिति में 'कुप्वो⌣क⌢प्वौच' प्राप्त था, उसको बाध कर 'संपुंकानां' से सकार, कांस्कान्। कः कः इस स्थिति में।

(कस्केति) कस्कादि गण पठित शब्द के इण् से उत्तर विसर्ग को मूर्धन्य षकार हो। कस्कादि में अकारान्त पाठ सामर्थ्य से स्वतः सिद्ध है, अन्यत्र अकारान्त से पर विसर्ग को सकार हो। अतः इसीसे अकार से पर विसर्ग को दन्त्य सकार हो गया। कस्कः। एवं कुतः कुतः। अकार से पर विसर्ग को सकार। कुतस्कुतः, 'तत आगतः' से अण्, कौतस्कुतः। सर्पिः कुण्डिका, धनुः कपालम्। यहाँ इण् प्रत्याहारान्तर्गत इकार उकार से पर विसर्ग है अतः मूर्धन्य षकार होगा। सर्पिष्कुण्डिका, धनुष्कपालम्।

(संहितेति) 'संहितायाम्' का अधिकार है अर्थात्, वक्ष्यमाण सूत्रों से कार्य संहिता में ही होंगे।

(छे च इति) ह्रस्व के तुक् हो छकार के परे। स्व-छाया, इस स्थिति में कित्व से स्व शब्द के अन्त पर तुक्। उकार ककार इत्। 'झलां जशोन्ते' से दकार, 'स्तोः श्चुना श्चुः' से जकार, खरि च से चकार। स्वच्छाया। एवं शिवच्छाया, चोः कुः से 'च' को 'क' क्यों नहीं होता?, 'पूर्वत्रासिद्धम्' से स्तोः श्चुना श्चुः से उत्पन्न जकार असिद्ध है, अतः चोः कुः सूत्र दकार ही देखता है। अतः कुत्व नहीं होगा।

(आङ्माङोरिति) छकार तुक् की अनुवृत्ति है। आङ् माङ् के नित्य तुक् हो छकार के परे। इससे तुक्। दकार, जकार, चकार पूर्ववत्,

टि०—वाक्यों में 'कः कोऽत्र मोः' कैसे?, सन्धि की अविवक्षा में प्राप्त ही नहीं है।

ङोश्च ६।१।७४। आच्छादयति, माच्छिदत्। दीर्घात् ६।१।७५। चेच्छिद्यते। पदान्ताद्वा। ६।१।७६। लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया।

इति हल्सन्धिः।

अथ विसर्गसन्धिः।

विसर्जनीयस्य सः। विष्णुस्त्राता। शर्परे विसर्जनीयः ८।३।३५। कः त्सरुः। घनाघनः क्षोभणः। वा शरि ८।३।३६। हरिश्शेते, हरिः शेते। खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः *। राम स्थाता, रामःस्थाता, राम-

---

आच्छादयति, माच्छिदत्। 'पदान्ताद्वा' से विकल्प से तुक् प्राप्त था, उसका अपवाद नित्य तुक् विधानार्थ है।

(दीर्घादिति) षष्ठ्यर्थ में पञ्चमी है। दीर्घ के तुक् हो छकार के परे, अन्य कार्य पूर्ववत्। चेच्छिद्यते।

(पदान्तादिति) दीर्घात् की अनुवृत्ति। षष्ठ्यर्थ में पञ्चमी है। दीर्घ पदान्त के विकल्प से तुक् हो, छकार के परे। लक्ष्मी छाया, अन्तर्वर्तिनी लुप्त षष्ठी को मानकर पदान्तत्व। तुक् का उकार ककार इत्। अन्य सब कार्य पूर्ववत्, लक्ष्मीच्छाया, पक्ष में लक्ष्मीछाया। इति हल्संधिः।

अथ विसर्गसन्धिः।

विष्णुः-त्राता। पूर्वोक्त 'विसर्जनीयस्य सः' से विसर्ग को सकार, विष्णुस्त्राता।

(शर्परे इति) खर् की अनुवृत्ति है, शर्परे खरि। शर् प्रत्याहार जिससे पर है, ऐसे खर् के परे विसर्ग को विसर्ग ही हो। कः त्सरुः, 'विसर्जनीयस्य सः' से सकार प्राप्त था, विसर्ग ही रहा, घनाघनः क्षोभणः, कुप्वोः ≍क≍पौ च प्राप्त था विसर्ग ही रहा। घनाघनः क्षोभणः।

(वा शरीति) शर् प्रत्याहार के परे विसर्ग को विसर्ग विकल्प से हो, पक्ष में 'विसर्जनीयस्य सः' से सकार, स्तोः श्चुनाश्चुः से शकार, हरिः शेते, हरिश्शेते।

(खर्परे इति) खर् प्रत्याहार जिससे पर है ऐसे शर के परे विकल्प से विसर्ग का लोप हो, पक्ष में वाशरि से विसर्ग, उसके पक्ष में सकार। एवं रामस्थाता इत्यादि तीन रूप होंगे।

स्स्थाता। हरि स्फुरति हरिः स्फुरति हरिस्स्फुरति। **सोऽपदादौ ८।३।३८।** पाशकल्पककाम्येष्विति वाच्यम् *। पयस्पाशम् यशस्कल्पम्, यशस्कम् यशस्काम्यति। अनव्ययस्येति वाच्यम्। *। प्रात:कल्पम्। काम्ये रोरेवेति

(कुप्वोरिति) यद्यपि पूर्व, नॄन्पे सूत्र पर यह सूत्र व्याख्यात है परंतु प्रकरणतः पुनः कहा है। कः करोति इत्यादि उदाहरण क-ख-प-फ इन चारों वर्णों के दिये, इनमें उक्त सूत्र लगेगा।

(सोऽपदेति, 'अपदादौ सः' विसर्ग को सकार हो पद के आदि में विद्यमान नहीं ऐसे कवर्ग पवर्ग के परे। क्या सर्वत्र अपदादि कवर्गपवर्ग में होगा? इसके लिये वार्तिककार नियम करते हैं। "पाश कल्प क काम्येष्विति" पाश-कल्प-क-काम्य, इनके ही परे सकार होगा, अन्यत्र 'कुप्वोः' से ᳲक ᳳप होंगे। यशस्पाशम् इत्यादि में सकार हुआ।

(अनव्ययेति) अव्यय भिन्न में ही होगा, अर्थात् अव्यय सम्बन्धी विसर्ग को सकार नहीं होगा। प्रातः कल्पम्। यहाँ प्रातः यह अव्यय है, अतः इस विसर्ग को सकार नहीं होगा, किन्तु 'कुप्वोः' विसर्ग और ᳲक होंगे।

(काम्ये इति) काम्य (च्) प्रत्यय के परे 'रु' संबन्धी ही विसर्ग को सकारादेश होगा, किन्तु केवल रेफ संबन्धी विसर्ग को नहीं। जैसे अहः काम्यति, यहाँ अहन् शब्द है, रोऽसुपि से रेफादेश, रेफ को 'खरवसानयोः' से विसर्ग है यद्यपि काम्य शब्द परे है, परंतु रेफ संबन्धी विसर्ग है, अतः सकार नहीं होगा। पूर्ववत् विसर्ग।

(इण इति) पूर्व विषय में अर्थात् अपदादि कवर्ग के परे इण् से उत्तर विसर्ग को मूर्धन्य षकार हो, पूर्वसूत्र के समान, 'पाशकल्पककाम्य'

टि०—भट्टोजि जी ने कौमुदी में सोऽपदादौ सूत्र पर 'काम्येरोरेवेति वाच्यम्' का उदाहरण गीः काम्यति दिया है, परंतु यह तो इणः षः का विषय है, सोऽपदादौ सूत्रमें अकार का अनुपादान होने से भी अकार से पर ही में परिशेषात् लगता है अतः इसका उदाहरण अहः काम्यति है। बालमनोरमाकार वासुदेवजी ने भी गीः काम्यति का समर्थन किया है। वस्तुतः अकार से पर रेफजन्य का उदाहरण उचित है।

वाच्यम् । गीः काम्यति । इणः षः ८।३।३९ । पूर्वविषये एव । सर्पिष्पाश-मित्यादि । **नमस्पुरसोर्गत्योः** ८।३।४० । नमस्करोति, पुरस्करोति। **इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य** ।८।३।४१। निष्प्रत्यूहम्, आविष्कृतम्, दुष्कृतम् । एकादेशशास्त्रनिमित्तकस्य न षत्वम् । कस्कादिषु भ्रातुष्पुत्रशब्दस्य पाठात् । तेनेह न । मातुः कृपा । मुहुसः प्रतिषेधः * । मुहुः कामा।

इनके ही परे होगा, अनव्यय को ही होगा, रु संबन्धी को ही होगा । उदाहरण—सर्पिष्पाशम्, सर्पिष्कल्पम्, सर्पिष्कम्, सर्पिष्काम्यति । गिर—शब्द में रु संबन्धी विसर्ग नहीं है अतः गीः काम्यति में षत्व नहीं होगा।

(नम इति) गत्योः नमस्-पुरसोः सः । गतिसंज्ञक नमस्पुरस् शब्द के विसर्ग को सकार हो । 'साक्षात्प्रभृतीनि च' से गति संज्ञा । नमस्करोति, पुरस्करोति ।

(इदुदिति) अप्रत्यय—प्रत्यय संबन्धी नहीं और इकार अथवा उकार जिसकी उपधा हो अर्थात् इकार या उकार जिसके पूर्व में विद्यमान हो ऐसे विसर्ग को षकार आदेश हो कवर्ग पवर्ग संबन्धी खर् प्रत्याहार के परे, निः प्रत्यूहम्, आविः कृतम्, दुःकृतम्, निः आ।विः में इकारोपध है, दुः उकारोपध है, अतः ष हो गया ।

(एकेति) मातुः कृपा, यहाँ उकारोपध है, और 'ऋत उत्' से ऋकार और ङस् प्रत्यय का अकार मिलकर एकादेश, उरण् रपरः, रात्सस्य से स लोप हुआ, तो यहाँ प्रत्यय का विसर्ग नहीं है अतः षत्व होना चाहिये, परंतु 'कस्कादिषु च' सूत्र के कस्कादि गण में भ्रातुष्पुत्र शब्द को जो पढ़ा है इससे जानते हैं कि एकादेश शास्त्र निमित्तक विसर्ग को षकार नहीं होता है । क्योंकि उरण् र परः से र पर हुआ है तो भ्रातुष्पुत्रः में षत्व हो ही जाता, फिर भ्रातुष्पुत्र शब्द का जो पाठ किया है, उससे उक्त वचन सिद्ध होता है, फल मातुः कृपा, पितुः पुत्रः इत्यादिकों में षत्व नहीं होगा । किन्तु कुप्वोरिति, मातु≍कृपा, मातुः कृपा ये रूप होंगे।

मुहुस इति । मुहुस के विसर्ग को सकार न हो, मुहुः कामा, मुहु≍कामा।

तिरसोऽन्यतरस्याम् ।८।३।४२। तिरस्कर्ता, तिरःकर्ता। द्वित्रिश्चतुरिति कृत्वोर्थे ।८।३।४३। द्विष्करोति, द्विःकरोति। त्रिष्करोति, त्रिःकरोति। चतुष्करोति, चतुःकरोति। इसुसोः सामर्थ्ये ।८।३।४४। सर्पिष्करोति, सर्पिःकरोति। धनुष्करोति, धनुःकरोति। नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य ।८।३।४५। सर्पिष्कुण्डिका, धनुष्कपालम्। कस्कादिषु च सर्पिष्कुण्डिकाश-

---

(तिर इति) तिरस् के विसर्ग को सकारादेश विकल्प से हो, कवर्ग पवर्ग संबन्धी खर् के परे। तिरस्कर्ता, पक्ष में तिर≍कर्ता, तिरः कर्ता।

(द्वित्रिरिति) कृत्वोर्थ में विद्यमान द्वि-त्रि-चतुर् शब्द के विसर्ग को कवर्ग पवर्ग खर् के परे विकल्प से षकार हो, 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' इससे कृत्वोर्थ में सुच्, सकार को रुत्व विसर्ग। द्विष्करोति। पक्ष में जिह्वामूलीय विसर्ग। द्वि≍करोति, द्विःकरोति, एवं त्रिष्करोति, चतुष्करोति में भी जहाँ कृत्वोर्थ नहीं है वहाँ 'चतुर्षु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः' यहाँ चतुः शब्द का विसर्ग कृत्वोर्थ में नहीं है, अतः इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य से नित्य षकारादेश होगा, चतुष्कपालः।

(इसुसोरिति) सामर्थ्ये। परस्पर साकांक्ष एक वाक्य में विद्यमान इस् उस् संबन्धी विसर्ग को कवर्ग पवर्ग संबन्धी खर के परे विकल्प से षकार हो। सर्पिः करोति, एक वाक्य है और इस् प्रत्यय का विसर्ग है, धनुः करोति। यहाँ उस् संबन्धी विसर्ग है, अतः विकल्प से षकार होगा, जहाँ दो वाक्य भिन्न-भिन्न परस्पर निरपेक्ष हैं, वहाँ नहीं होगा, जैसे—ममेदं सर्पिः, पिब त्वमुदकम्। मम इदं सर्पिः, यह भिन्न वाक्य है, त्वम् उदकं पिब, यह भिन्न वाक्य है।

(नित्यमिति) इसुसोः सामर्थ्ये इस पूर्वसूत्र से 'इसुसोः' की अनुवृत्ति है। उत्तर पद में विद्यमान नहीं ऐसे इस् उस् संबन्धी विसर्ग को समास में नित्य षकार हो, कवर्ग पवर्ग संबन्धी खर के परे। सर्पिषः कुण्डिका, धनुषः कपालम्। षष्ठी समास, विभक्ति लोप, सकार को रुत्व विसर्ग। 'इसुसोः सामर्थ्ये' से विकल्प से षत्व प्राप्त था, समास में नित्य षकार होगा। सर्पिष्कुण्डिका, धनुष्कपालम्।

न्दोऽसमासे व्यपेक्षाविरहेऽपि षत्वार्थः, व्यपेक्षायां नित्यार्थश्च । अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ।८।३।४६। अयस्कारः, अयस्कामः, अयस्कंसः, अयस्कुम्भः, अयस्पात्रम्, अयस्कुशा, अयस्कर्णी अधःशिरसी पदे ।८।३।४७। समास एव, अनुत्तरपदस्थस्यैव । अधस्पदम्, शिरस्पदम्, । कस्कादिषु च । भास्करः ।

इति विसर्गसन्धिः ।

(कस्केति) पूर्वोक्त उदाहरण — सर्पिष्कुण्डिका में षत्व सिद्ध ही है, फिर कस्कादिगण में सर्पिष्कुण्डिका शब्द का पाठ क्यों किया ?, यह आपाततः तो ठीक ही है, परंतु जब समास नहीं है, परस्पर भिन्न दोनों पद हैं, और परस्पर साकाङ्क्ष्य–सामर्थ्य रूप व्यपेक्षा भी नहीं है, जैसे– यज्ञदत्तस्य सर्पिः, कुण्डिका देवदत्तस्य, वहाँ षत्वार्थ सर्पिष्कुण्डिका शब्द है और व्यपेक्षा में भी परस्पर साकांक्ष एक क्रियान्वयी होने पर 'इसुसोः सामर्थ्ये' से विकल्पेन षत्व प्राप्त था, उसके प्रतिषेध के लिये नित्यषत्व विधानार्थ कस्कादिगण में पाठ है, यद्यपि यह सर्पिः का विसर्ग प्रत्यय स्वरूप नहीं है, परंतु प्रत्ययावयव तो है, अतः इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य से भी षत्व प्राप्त नहीं है ।

(अत इति) 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थ' की अनुवृत्ति है, अतः यह अर्थ होगा, अनुत्तरपदस्थ अव्यय रहित अकार से पर विसर्ग को समास में नित्य सकार हो, कृकमिकंस इत्यादिकों के परे । अयः—कारः, 'कुप्वोः' प्राप्त था उसको बाधकर सकार हो गया । अयसः कारः, अथवा अयः करोतीति अयस्कारः । इसी तरह सर्वत्र यथासम्भव समास जानना । स्वः कामा में अव्यय का विसर्ग है, असमास में यशः करोति, इसी तरह स्वकीय बुद्धि से प्रत्युदाहरणों की कल्पना करनी चाहिये ।

परामर्श—पाणिनीय सिद्धान्त कौमुदी प्रत्युदाहरणादि आडम्बर शून्य है । प्रत्युदाहरणों को देना, छात्रों की बुद्धि को संकुचित करना है । और व्याकरण पद साधुत्व ज्ञान में अनुपयुक्त भी है, फिरभट्टोजि की कौमुदी ज्ञान के लिये नहीं है, किन्तु छात्रों के जीवन बरबाद करने के लिये ही है इस प्रकार व्याकरण की खाल निकालने का फल क्या है ।

अथ स्वादिसन्धिः ।

शिवस् अर्च्य इति स्थिते । ससजुषा रुः ।८।२।६६। अतो रोरप्लुतादप्लुते ।६।१।११३। सूत्रारम्भसामर्थ्यादुत्वं प्रति रुत्वस्यासिद्धत्वं न भवति, शिव

(अध इति) षष्ठ्यर्थ में प्रथमा है । अधस् , शिरस् शब्द के विसर्ग को सकार हो, पद के परे समास में । पदस्य अधः, मयूरव्यंसकादित्वात्समास, अधस्पदम् , षष्ठीतत्पुरुष । शिरस्पदम् । जहाँ समास नहीं है, वहाँ अधः पदम् , उत्तर पदस्थ, परमशिरः पदम् , सकार नहीं होगा । भाः करः, 'अतः', तपरत्व से ह्रस्व अकार का ग्रहण होगा, इस कारण 'अतः कृकमिकंस' से सकार नहीं प्राप्त था अतः कस्कादिगण में भास्कर शब्द का पाठ किया । यहाँ दीर्घ आकार से पर विसर्ग है, उसको सकार हो गया । भास्करः । इति विसर्गसन्धिः ।

स्वादिसन्धिः

(ससजुषोरिति) शिव शब्द से 'स्वौजसमौट्' से सु उकार, इत् । शिवस्–अर्च्यः इस स्थिति में । ससजुषो रुः । पदस्य की अनुवृत्ति है । 'ससजुषोः' का विशेषण है । अतः 'येन विधिस्तदन्तस्य' से तदन्त ग्रहण होगा, तो यह अर्थ होगा, पदान्त सकार और सजुष् शब्द को रु हो । शिवरु अर्च्यः, इस स्थिति में, 'अतो रोरप्लुतादप्लुते'' 'ऋत उत्' से उकार की अनुवृत्ति है, तो यह अर्थ होगा, अप्लुत अकार से पर जो रु, उसको उकार हो, अप्लुत अकार के परे, यहाँ अप्लुत अकार से पर रु को उकार होगा । यहाँ 'पूर्वत्रासिद्धम्' से ससजुषोः रुः इस त्रिपादी से उत्पन्न 'रु' अतो रोरप्लुतादप्लुते ।६।१।११३। की दृष्टि में असिद्ध है,

---

टि०—अतः किम् , देवास् अत्र, देवा अत्र । अति किम् , देवस् आयाति, अप्लुतादिति किम् । हे सुश्रोतस अत्र स्नाहि । यहाँ प्लुत ह्रस्व अकार है, पूर्वत्रासिद्धम् , से प्लुत असिद्ध है, अ ः अत् से पर रु है । अस्तु, अप्लुतात् करने पर भी असिद्ध क्यों नहीं होता ? अर्थात् प्लुत असिद्ध है, अतः उत्व हो जाय । परंतु अप्लुतात् यह विशेषण दिया है इसके सामर्थ्य से असिद्ध नहीं होता है । अतोरोरप्लुतात् में अतः तप-

करण है, इससे केवल ह्रस्व का ग्रहण करेंगे, हे सुश्रोतः । अत्र यहाँ प्लुत

उ अर्च्यं इति स्थिते। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ।६।१।१०२। इति पूर्वसवर्णदीर्घे प्राप्ते। नादिचि ।६।१।१०४। इति निषेधः, आद् गुणः, एङः पदान्तादति। शिवोऽर्च्यः। हशि च ।६।१।११४। शिवो वन्द्यः। भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि ।८।३।१७। लोपः शाकल्यस्य। देवा इह। देवायिह।

अतः यह सकार ही देखता है। परन्तु ऐसा मानने पर अतो रोरप्लुतात्० सूत्र व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि 'रोः' का उपादान है और यह 'रु' त्रिपादी होने से सर्वत्र असिद्ध हो जायगा, अतः यह सूत्रारम्भसामर्थ्य से मानना पड़ेगा, कि उत्व के प्रति अर्थात् उत्व कर्तव्य रहते रुत्व असिद्ध नहीं है अतः रु को उकार हो गया। शिव उ अर्च्यः ऐसा स्थित हुआ। यहाँ।

(प्रथमयोरिति) 'अकः सवर्णे०' से अक् की अनुवृत्ति, 'इको यणचि' से अचि की, तो यह अर्थ होगा—अक् से प्रथमा द्वितीया संबन्धी अच् परे रहने पर पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो। यहाँ प्रथमा संबन्धी उकार परे हैं अतः दीर्घ आकार प्राप्त हुआ।

(नादिति) आत् इचि न। अनुवर्त्यमान प्रकरण प्राप्त पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध है। अवर्ण से इच् परे रहने पर पूर्व सवर्ण दीर्घ न हो। यहाँ इच् प्रत्याहारान्तर्गत उकार परे है, अतः पूर्व सवर्ण दीर्घ नहीं होगा, 'आद् गुणः' से गुण ओकार। 'एङः पदान्तादति' से पूर्वरूप। शिवोऽर्च्यः। शिवस्-वन्द्यः, इस स्थिति में, ससजुषो रुः, से रु आदेश।

(हशि चेति) हश् प्रत्याहार के परे अप्लुत अत से परे जो 'रु' है उसको 'उ' हो, शिवस् वन्द्यः, रुत्व, उत्व, आद्गुणः। शिवो वन्द्यः।

(भोभगो इति) संबोधन में भवत्, भगवत्, अघवत् को भोस् भगोस् अघोस् क्रम से निपात से होते हैं। देवास् इह, 'ससजुषो रुः' उक्त सूत्र से रु को यकारादेश, लोपः शाकल्यस्य से विकल्प से य लोप, देवा इह

असिद्ध है, तो ह्रस्व है, अतः इस तपरकरण सामर्थ्य से असिद्ध नहीं होगा, यह नहीं कह सकते, क्योंकि दीर्घ निवृत्ति में तपरकरण चरितार्थ है। एवम् प्लुते किम्? यथः अग्निदत्त। गुरोरनृतो से प्लुत संज्ञा है।

भोस् भगोस् अघोस् इति निपाताः। तेषां रोर्यत्वे कृते। **व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य** ।८।३।१८। पदान्तयोर्यवयोर्वा लघूच्चारणौ यवौ स्तोऽशि परे। भो यच्युत। पक्षे। **ओतो गार्ग्यस्य** ।८।३।२०। यस्य लोपः स्यात्। भो अच्युत। **उञि च पदे** ।८।३।२१। नित्यं लोपः स्यात्। स उ एकाग्निः। **हलि सर्वेषाम्** ।८।३।२२। भो देवाः, भगो नमस्ते, अघो याहि, देवा

यलोप असिद्ध है, अतः आद् गुणः से गुण नहीं होगा। पक्ष में देवायिह। भोस् अच्युतः 'ससजुषो रुः' से रु आदेश। भो भगो अघो॰ से रु को यकारादेश, उस यकार को।

(व्योरिति) पदान्त यकार वकार को शाकटायन के मत से लघूच्चारण यकार वकार हों, अश् के परे। भो भगो अघो॰ एतत्समनन्तर यह सूत्र है, अतः एतद् विषय में ही यह सूत्र लगेगा। हर इह हर यिह, इत्यादि में नहीं लगेगा। भोस् अच्युत, सकार को, भोभगो से यकार उस यकार को लघूच्चारण यकार। भोयच्युत, पक्ष में, जहाँ लघूच्चारण यकार नहीं है, वहाँ।

(ओतो इति) ओकार से पर यकार का नित्य लोप हो, भो अच्युत। यहाँ गार्ग्य का उपादान है अतः विकल्प होना चाहिये, परंतु यहाँ गार्ग्य-ग्रहण पूजार्थ है। यद्यपि 'व्योः' की अनुवृत्ति है, परंतु ओकार से पर यकार ही मिलता है, अतः वृत्ति में वकार का ग्रहण नहीं किया।

(उञि इति) पूर्व सूत्र से अनुवृत्ति, अवर्ण पूर्वक पदान्त यकार वकार का नित्य लोप हो, उञ् पद के परे। सस् उ एकाग्निः। स को रु आदेश। रु को भो भगो से यकारादेश। लोपः शाकल्यस्य से विकल्प प्राप्त था। इससे नित्य य लोप होगा, उ—एकाग्निः में 'निपात एकाजनाङ्' से प्रगृह्य संज्ञा, 'प्लुत प्रगृह्या' से प्रकृतिभाव। उ यह पद लिया जायगा, वेञ् का संप्रसारण उ के बाद उञ् मानकर नहीं, भोस् देवाः। ससजुषो रुः, भो भगो अघो॰ से यकार। भोय् देवाः, इस स्थिति में।

(हलीति) भो भगो अघो अपूर्वक यकार का लोप हो, हल् प्रत्याहार के परे। सभी आचार्यों के मत में। इससे य लोप हो गया, भो देवाः,

नम्याः । रो ऽसुपि ।८।२।६९। अह्नोऽसुपि रेफादेशः । अहरहः, अहर्गणः ।
रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम् * । अहोरूपम् अहोरात्रः, अहोरथन्तरम् ।
अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः * । अहर्पतिः, गीर्पतिः, धूर्पतिः । फ

इसी प्रकार, भगो नमस्ते, अघो याहि, देवा नम्याः, इत्यादिकों में य लो जानना । अहन् अहन् इस स्थिति में, 'अहन्' इससे पदान्त में रुत्व प्राप्त था । उसका अपवाद ।

(रोऽसुपीति) सुप् से भिन्न, अर्थात् 'सुऔजस् से लेकर ङि ओस् सु पर्यन्त' सुप् के अतिरिक्त अहन् शब्द को रेफादेश हो । इससे रेफ हो गया । अहरहः । इसी प्रकार अहर्गणः । अहन् रूपम् । अहन् से रु आदेश प्राप्त था । उसको बाधकर 'रोऽसुपि' से रेफ प्राप्त था । उसको बांधकर 'रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्' रूप-रात्र-रथन्तर के परे अहन् शब्द को 'रु' आदेश हो । 'अलोऽन्त्यस्य' से नकार को रु आदेश हुआ आद् गुणः से गुण, अहो रूपम् । अहश्च रात्रिश्च । 'अहः सर्वैकदेश' से अच्, यस्येति च 'रात्राह्नाहाः पुंसि' से पुंलिङ्ग । 'अहन् रात्रः' अहन् से रुत्व प्राप्त हुआ, उसको बाधकर, रोऽसुपि से रेफ प्राप्त था, उसको बाधकर उक्त वार्तिक से 'रु' होगा । यहाँ रात्र परे है, रात्रि नहीं । य ठीक है, परंतु यह लोक न्याय है, कि 'एकदेशविकृतमनन्यवद्भवति' यानि किसी का एकदेश विकृत हो जाय तो वह अन्य नहीं होता है किंतु वही कहाता है, जैसे घोड़े की पूँछ काट देने पर घोड़ा ही रहता है, अन्य गर्दभादि नहीं होता है । इसी प्रकार रात्रि के इकार का लोप हो जाने पर रात्रि ही माना जायगा, तो अहन् के नकार को रु । हशि च आद्गुणः । अहोरात्रः । एवम् अहोरथन्तरम् । रुत्व, उत्व, गुण ।

(अहरादीति) अहन् इत्यादिक शब्दों को पत्यादिक शब्दों के परे रहते विकल्प से रेफ हो । अहन्ः पतिः, अहन् पतिः । रोऽसुपि, से नित्य रेफ विकल्प से विसर्ग प्राप्त था उसको बाधकर रेफ ही होगा, पक्ष में खरवसानयोः० से विसर्ग, कुप्वोः से ≍ प । इस प्रकार अहर्पतिः अहः पतिः, अहः पतिः । ये तीन रूप होंगे । इसी प्रकार गीर्पतिः, धूर्पतिः इत्यादिकों में भी जानना । पुनर्-रमते, इस स्थिति में ।

विसर्गोपध्मानीयौ । **रो रि** ।८।३।१४। लोपः स्यात् । **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** ।६।३।१११। पुना रमते, हरी रम्यः, शम्भू राजते । रोरीत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव । मनोरथः । **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि** ६।१।१३२। एष विष्णुः, स शम्भुः । **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** ।६।१।१३४। सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषे । ऋक्पाद एवेति वामनः । अविशेषात् श्लोकपादोऽपीत्यपरे । सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः । इत्यादि ।

इति स्वादिसन्धिः ।

(रोरीति) रेफ का रेफ के परे लोप हो, इससे पुनर् के रेफ का लोप हो गया ।

(ढ्रलोपे इति) ढः रश्च ढ्रौ, ढ्रौ लोपयतीति ढ्रलोपः, तस्मिन्, ढ्रलोपे । ढकार अथवा रेफ का लोप करानेवाले, अर्थात् ढकार अथवा रेफ लोप के निमित्तभूत ढकार रेफ के परे पूर्व अण् को दीर्घ हो, तो पुनर् रमते, यहाँ रोरि से रेफ लोप का निमित्तभूत रमते का रेफ परे है अतः पूर्व अकार को दीर्घ हो गया, पुना रमते । हरिस् रम्यः, ससजुषो रुः, रो रि । 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' से इकार दीर्घ, हरी रम्यः, एवं शम्भू राजते में उकार को दीर्घ । मनस्-रथः, ससजुषो रुः से सकार को रु आदेश, उकार इत्, रोरि से रेफ लोप प्राप्त था, परंतु यह त्रिपादी ।८।३।१४। का है, अतः हशि च ।६।१।११४। की दृष्टि में असिद्ध है, हशि च से उकार, आद्गुणः मनोरथः । एषस् विष्णुः । इस स्थिति में ।

(एतदिति) अकच् प्रत्यय रहित नञ् समास वर्जित एतद् अथवा तद् शब्द के सु का लोप हो हल् प्रत्याहार के परे । इसकी दृष्टि में 'ससजुषो रुः' असिद्ध है, अतः स का लोप हो गया । एवम् सस् शम्भुः, यहाँ तद् शब्द के सकार का लोप । सशम्भुः । काव्य में श्लोक के चतुर्थांश पाद में । 'सस इमाम्' इस स्थिति में, रुत्व, यत्व, यलोप, लोप असिद्ध है, अतः सन्धि कार्य नहीं होने से स इमां प्राप्त था, अतः ।

(सोऽचीति) सस का अच के परे लोप हो, 'चेत् लोपे पादपूरणम्' यदि लोप करने पर पादपूर्ति होती हो । सस् इमाम् में 'अलोऽन्त्यस्य' से

अथ अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम् ।

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ।१।२।४५। कृत्तद्धितसमासाश्च ।१।२।४६। एते प्रातिपदिकसंज्ञाः स्युः । प्रत्ययः ।३।१।१। परश्च ३।१।२

सकार लोप आद् गुणः । सेमाम् । इस सूत्र से वेदोक्त ऋचा संबन्धी ही पाद का ग्रहण है, यह वामनाचार्य का मत है। परंतु सूत्र में ऋक् सूचक पद का उपादान नहीं है, अतः लोक-वेदसंबन्धी दोनों प्रकार के पादों का ग्रहण होगा, यह अन्य आचार्यों का मत है। अतः 'सैष दाशरथी रामः' 'सस् एषः' सु का लोप। वृद्धिरेचि से वृद्धिः, सैषः। पूर्वोक्त प्रक्रिया से य लोप करने से, य लोप असिद्ध है, सन्धि कार्य वृद्धि नहीं होगी। परंतु जब पाद पूर्ति इससे लोप करने पर ही होती होगी, तब तो इससे लोप होगा, और यदि यलोपासिद्ध से पूर्ति होती होगी तो वही होगा, जैसे 'स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः' यहाँ य लोप असिद्ध है अतः सन्ध्यभाव से ही पादपूर्ति हो रही है। और 'सैष राजा युधिष्ठिरः' सैष कर्णो महात्यागी, सैष भीमो महाबलः इत्यादिकों में भी पूर्ववत् जानना।

इति स्वादिसन्धिः ।

अजन्तपुँल्लिङ्गाः ।

(अर्थवदिति) अधातु-धातु-रहित, अप्रत्यय पद की आवृत्ति करेंगे प्रत्यय रहित, और प्रत्ययान्त रहित, जो शब्द का स्वरूप है वह प्रातिपदिक संज्ञक होता है।

(कृत्तद्धितेति) कृदन्तादिकों में प्रत्ययान्त होने के कारण प्रातिपदिक संज्ञा प्राप्त नहीं थी अतः सूत्र किया। कृद्-कृत्प्रत्ययान्त, तद्धित प्रत्ययान्त

टि०—यदि धातु की प्रातिपदिक संज्ञा होगी, तो हन् धातु की प्रातिपदिक संज्ञा होने से अहन् सिद्ध रूप में न लोपः प्राति० सूत्र से न लोप हो जायगा। प्रत्ययरहित कहने से हरिषु करोति, में सुप प्रत्यय की प्रातिपदिक संज्ञा, सात्पदाद्योः से षत्वनिषेध हो जायगा; अप्रत्ययान्त कहने से करोति को प्रातिपदिक संज्ञा न होने से सुबुत्पत्ति नहीं।

अधिक्रियेते। ङ्याप्प्रातिपदिकात् ।४।१।१। अयमपि तथा॥ स्वौजस-मौट् छष्टाभ्याम्भिस् ङेभ्याम्भ्यस् ङसिभ्याम्भ्यस् ङसोसाम् ङ्योस्सुप् ।४।१।२। सु औ जस् इत्यादीनां सप्तानां त्रिकाणां प्रथमादयः

और समास की प्रातिपदिक संज्ञा हो। प्रश्न यह होता है कि समास में पूर्व सूत्र 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' से प्रातिपदिक संज्ञा हो ही जायगी, क्योंकि 'राज्ञः पुरुषः' में राज्ञः प्रत्ययान्त है, पुरुषः प्रत्ययान्त है, राज्ञः पुरुषः प्रत्ययान्त नहीं है, तो इस वाक्य की प्रातिपदिक संज्ञा हो जायगी, अतः समास ग्रहण व्यर्थ होकर नियम करता है, कि जिस समुदित वाक्य के पूर्व भाग में पद है, उसकी यदि प्रातिपदिक संज्ञा हो, अर्थात् उस वाक्य की यदि प्रातिपदिक संज्ञा हो तो समास की ही हो, तो 'सः ग्रामं गच्छति' इस वाक्य की नहीं होगी।

प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप् प्रातिपदिकात् का अधिकार है। अर्थात् इसके बाद जो विहित होंगे वे प्रत्ययसंज्ञक और आगे उससे पर होंगे। और वे प्रत्यय ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से पर होंगे।

(स्वौजसिति) इन इक्कीस विभक्तियों के तीन-तीन करके विभाग करने से सात भाग होंगे। उन सात भागों की प्रथमा से लेकर सप्तमी पर्यन्त, अर्थात् प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी इन नामों से प्राचीन आचार्य तीन-तीन विभक्तियों का व्यवहार करते हैं, उन्हीं संज्ञा वाचक नामों से यहाँ पाणिनीय ग्रन्थ में भी व्यवहार है, तो यह निष्कर्ष हुआ—सु औ जस्, यह प्रथमा। एवम्, अम् औ शस्, द्वितीया। टा भ्याम् भिस्, तृतीया। ङे भ्याम् भ्यस्, चतुर्थी। ङसि भ्याम् भ्यस्, पञ्चमी। ङस् ओस् आम्, षष्ठी। ङि ओस् सुप्, सप्तमी। इन त्रिकों की संज्ञा तथा किस विवक्षा में कौन हों इत्यादि कहते हैं।

टि०—ङ्याप् प्रातिपदिकात् सूत्र में 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्ग विशिष्टस्यापि ग्रहणम्' इस परिभाषा से ङ्यन्त आबन्त का ग्रहण हो जाता, फिर ङ्याप् ग्रहण क्यों है? यदि ङ्याप् नहीं करेंगे, तो प्रातिपदिक से पर प्रत्यय हों ऐसा कहने से ङ्यन्त आबन्त से पूर्व प्रातिपदिक से पर तद्धित प्रत्यय हो जायगे।

सप्तम्यन्ताः प्राचां संज्ञास्ताभिरिहापि व्यवहारः । सुपः ।१।४।१०३। सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञाः स्युः। विभक्तिश्च ।१।४।१४०। सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः । द्व्येकयोर्द्विवचनै कवचने ।१।४।२२। रुत्वविसर्गौ । रामः । सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ।१।२।६४। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः इति प्राप्ते, नादिचि । वृद्धिरेचि रामौ

(सुप इति) 'तान्येकवचन०' सूत्र से 'एकवचन, द्विवचन, बहुवचनानि एकशः' की अनुवृत्ति, एवम् । 'तिङस्त्रीणि २' से त्रीणि त्रीणि की अनुवृत्ति होती है, तो यह अर्थ होगा कि सुप् के तीन तीन वचन, अर्थात् प्रथमादि संबन्धी सु औ जस्, इत्यादिक एक वचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञक होते हैं।

(विभक्तिरिति) सुप्-सुऔजस् के 'सु' से लेकर सुप् पर्यन्त, 'सुप् प्रत्याहारान्तर्गत प्रत्यय' एवम् तिप् तस् झि की 'ति' से लेकर 'महिङ्' पर्यन्त तिङ् प्रत्याहारान्तर्गत प्रत्यय विभक्ति संज्ञक होते हैं। किस प्रकार की विवक्षा में कौन विभक्ति हो ?

(द्व्येकयोरिति) यथासंख्य से द्वित्व दो कहने की इच्छा में द्विवचन और एकत्व में एकवचन होंगे। एकत्व संख्या विशिष्ट एक राम इस विवक्षा में राम सु। उकार इत्। सकार को ससजुषो रुः। अवसान में रेफ को खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग रामः। एकत्वाभिन्नः एकत्व विशिष्टो वा रामः, प्रकृति प्रत्यय का अभेद है। दो राम इस 'द्वित्व संख्या विशिष्ट राम', कहने की इच्छा में उसके स्वरूप परिज्ञानार्थ दो बार राम कहना होगा। तब द्विवचन विभक्ति औ होगी। राम राम इस स्थिति में।

(सरूपाणामिति) 'एकविभक्तौ सरूपाणाम् एकशेषः' एक विभक्ति के परे समान स्वरूपवालों के मध्य में एक अवशिष्ट रहेगा, अन्य समान स्वरूप वालों का लोप हो जायगा, तो यहाँ दो राम शब्द का स्वरूप था, एक का लोप हो गया, एक अवशिष्ट रहा, द्विवचन की जो विभक्ति है, वह दो राम को बतावेगी, क्योंकि प्रकृतिप्रत्ययोरभेदान्वयः । तो राम औ इस

बहुषु बहुवचनम् ।१।४।२३। राम जस् इति स्थिते । चुटू ।१।३।७। प्रत्ययाद्यौ इतौ स्तः । न विभक्तौ तुस्माः ।१।२।४। इति सस्य नेत्वम् ।

स्थिति में प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से प्रथमा संबन्धी 'औ' परे है अतः पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त था । 'नादिचि' न आत् इचि । अवर्ण से इच् परे होने पर पूर्व सवर्ण दीर्घ नहीं होगा । प्रकृत में राम शब्द के अकार से पर इच् प्रत्याहारान्तर्गत औकार है, अतः पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होगा, किन्तु वृद्धि-रेचि से वृद्धि औकार होगा । रामौ । द्वित्वाभिन्न राम ।

बहुत्व विवक्षा में अर्थात् बहुत से राम विवक्षा में तीन बार राम शब्द का प्रयोग होगा, और 'बहुषु बहुवचनम्' बहुतों में बहुवचन होगा, तो राम-राम-राम जस् इस स्थिति में 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' यहाँ एक विभक्ति जस् के परे तीन समान रूपवाले राम शब्दों का प्रयोग है, अतः एक राम शब्द अवशिष्ट रह जायगा, दो राम शब्दों का लोप हो जायगा, यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी अवशिष्ट एक राम बहुत्व का बोध करेगा, तो राम-जस् इस स्थिति में ।

(चुटू इति) इत् की अनुवृत्ति है । प्रत्यय के आदि में विद्यमान च वर्ग ट वर्ग इत् संज्ञक होते हैं, तो च वर्ग के जकार की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप, हलन्त्यम् से सकार की इत् संज्ञा प्राप्त थी ।

(न विभक्ताविति) 'विभक्तौ तुस्माः न' विभक्ति में विद्यमान तवर्ग सकार मकार इत् संज्ञक नहीं होते हैं, तो यहाँ जस् विभक्ति गत सकार है इत्संज्ञा नहीं होगी । प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्ण दीर्घ । 'ससजुषो रुः' खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग, रामाः । राम अस् इस स्थिति में ।

टि०—राम-अस्, इस स्थिति में 'अकः सवर्णे दीर्घः' को अतोगुणे अपवादत्वाद् जैसे बाध करता है, वैसे ही 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' को बाध नहीं करता है ?

उ०—यह नियम है, कि "पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते, नोत्तरान्" पूर्व पठित अपवाद सूत्र—अर्थात् निरवकाशत्वेन बाधा करने-वाले सूत्र अपने से समनन्तर सूत्र को बाँधते हैं, उत्तर सूत्र को नहीं ।

अतो गुणे ।६।१।९७। पररूपमेकादेशः स्यादिति प्राप्ते । परत्वात्पूर्वसवर्ण दीर्घः । रामाः । एकवचनं संबुद्धिः ।२।३।९। एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः ।६।१।६

(अतो इति) 'उस्यपदान्तात्' से अपदान्तात् की अनुवृत्ति है, तो अर्थ होगा—अपदान्त अकार से गुण-'अकार एकार ओकार' पर हो से पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश हो, इससे पररूप एकादेश प्रा था, उसको विप्रतिषेधे से परत्वात् प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से दीर्घ हो रामाः।

(एकेति) संबोधन में प्रथमा का एकवचन संबुद्धि संज्ञक होता है अपने तरफ उन्मुखीकरण—अर्थात् आह्वानादि द्वारा अपने तरफ उन्मु करना संबोधन कहाता है। तो राम शब्द से एकत्व विवक्षा में संबोधन सु प्रत्यय हुआ, उसकी उक्त सूत्र से संबुद्धि संज्ञा। राम सु अवस्था में।

(एङ्ह्रस्वादिति) एङन्तेति। अङ्गस्य का अधिकार है, एङ्ह्रस्व यह अङ्ग का विशेषण है, अतः यह अर्थ होगा। एङन्त ह्रस्वान्त अङ्ग

तो 'अतो गुणः' ६।१।९७। यह सूत्र दीर्घ और पर रूप के वि में अनन्तर पठित सूत्र अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१। का बाध करे और उत्तर में पठित 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' ६।१।१०२। का बाध करेगा, तो भव-अन्ति। अतो गुणे से पर रूप, भवन्ति। यहाँ अतो चरितार्थ है, अतः राम-अस् यहाँ परत्वात् पूर्वसवर्ण दीर्घ होगा। रामाः

टि०—एङ्ह्रस्वादिति। 'येन विना यदनुपपन्नं तत्तेनाक्षि जिसके बिना जो अनुपपन्न होता है, वह उससे आक्षेप कर लिया है, तो अङ्ग के बिना संबुद्धि-सुप्रत्यय हो ही नहीं सकती, उसका असंभव है, इसलिये संबुद्धि से अङ्ग का आक्षेप है, और 'येन आक्षिप्यते तस्य तत्रैव अन्वयः' जिससे जिसका आक्षेप होता है उसी के साथ अन्वय होता है, तो संबुद्धि से आक्षिप्त अङ्ग का संबु साथ अन्वय होगा, तो यह अर्थ होगा 'अङ्गात् परा या सम्बुद्धिस्तद

एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाङ्गात् हल्लुप्यते, संबुद्धेश्चेत्। हेराम, हेरामौ, हेरामाः।

पर जो हल् है उसका लोप हो, वह हल् यदि संबुद्धि का हो, तो राम-
सु। उकार इत्। राम स् इस अवस्था में, अङ्गसंज्ञक ह्रस्व अकारान्त

यो हल् स लुप्यते स हल् एङ् ह्रस्वाभ्यामुत्तरश्चेत्' अङ्ग से पर जो संबुद्धि है, तदवयव जो हल् उसका लोप हो, वह हल्, एङ् ह्रस्व सें उत्तर हो, तो इस अर्थ में हे कतरत् नहीं बनेगा, क्योंकि कतर संबोधन नपुंसक लिङ्ग सु को अद् ड् आदेश, डित्त्व सामर्थ्य से भसंज्ञा रहित भी टि का लोप। हे कतर् अद्। अङ्ग संज्ञक कतर् से पर संबुद्धि अद् तदवयव दकार का लोप हो जायगा, वह 'द' ह्रस्व आदेश के अकार से उत्तर है। इसलिये एङन्त ह्रस्वान्त से अङ्ग का अन्वय करने से यह अर्थ होगा। एङन्तात् ह्रस्वान्ताच्चाङ्गात् परा या संबुद्धिः तदवयवस्य हलो लोपः स्यात्। एङन्त ह्रस्वान्त अङ्ग से पर जो संबुद्धि तदवयव जो हल् उसका लोप हो। हेकुल-सु। अतोऽम् से अमादेश। परत्वात् नित्यत्वात् अमिपूर्वः। हे कुलम्, इस स्थिति में जो ह्रस्वान्त अङ्ग कुल है उससे पर संबुद्धि संज्ञक अम् नहीं है, किन्तु म् है, एकदेश विकृत न्याय से संबुद्धि मानेंगे। उसका निषेध है, 'अर्धविकारे अर्धाधिक्यविकारे च एकदेशविकृतन्यायो न प्रवर्तते' यहाँ अर्धमात्रा अवशिष्ट है, एक मात्रा का विकार है। 'अन्तादिवच्च' से परादिवद्भाव मानकर संबुद्धिसंज्ञक अम् परे हैं परंतु इस स्थिति में ह्रस्वान्त अङ्ग नहीं रहेगा। यदि पूर्वादिवद्भाव से ह्रस्वान्त अङ्ग मान लें, और परादिवद्भाव से संबुद्धि स्वरूप अम् मान लें तो मकार लोप होकर हे कुल बन जायगा, परंतु 'उभयतः आश्रये नान्तादिवत्' दोनों के आश्रय में अर्थात् पूर्व और पर दोनों के आश्रय में अन्तादिवच्च नहीं लगता। तो ह्रस्वान्त अङ्ग जो कुल है उससे पर संबुद्धि संज्ञक अम् नहीं है, किंतु 'म्' मात्र है, और संबुद्धि संज्ञक 'अम्' है वह ह्रस्वान्त अङ्ग से परे नहीं है, किन्तु हलन्त कुल् से पर है, अतः यहाँ लोप नहीं होगा, इसलिये न्यासानुरोध से यह अर्थ होगा—एङन्ताद् ह्रस्वान्ताच्चाङ्गात् हल् लुप्यते संबुद्धेश्चेत्। इति।

अमि पूर्वः । ६।१।१०७। रामम् । रामौ । लशक्वतद्धिते ।१।३।८। प्रत्ययाद्या एते इतः स्युः । तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३। अट्कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि ।८।४।२। रषाभ्यां परस्य नस्य णः

राम है उससे पर 'हल्' सकार है, उसका लोप हो जायगा और वह सकार संबुद्धि का है। तो संकार का लोप। हे राम। द्विवचन में 'सरूपाणां' से एकशेष, वृद्धिरेचि से वृद्धि। हे रामौ। जस् में पूर्ववत् चुटू से जकार इत्, 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से दीर्घ ससजुषो रुः। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' हे रामाः। द्वित्वैकत्व विवक्षा में राम अम्, इस स्थिति में।

(अमीति) 'अकः सवर्णे दीर्घः' से अकः की अनुवृत्ति है और 'इको यणचि' से अचि की, तो यह अर्थ होगा—अक् से अम् संबन्धी अच् परे रहने पर पूर्व पर को पूर्वरूप एकादेश हो, तो राम शब्द के अकार का अम् के अकार के साथ पूर्वरूप अकार हो गया। रामम्। द्विवचन में, रामौ पूर्ववत्। बहुत्व विवक्षा में राम-राम-राम शस् इस अवस्था में 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक शेष।

(लशकु इति) अतद्धिते लशकु इतः। तद्धित के अतिरिक्त प्रत्यय के आदि में विद्यमान लकार शकार और कवर्ग—क: ख-ग-घ-ङ ये इत् संज्ञक हों। इससे शकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः से श लोप। परत्वात् 'अतो गुणे' को बाधकर 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्व सवर्ण दीर्घ। रामाः इस अवस्था में।

(तस्मादिति) तत् शब्द पूर्व का परामर्शक है, तो यह अर्थ होगा, पूर्वसवर्ण दीर्घ से पर शस् की सकार को नकार हो, तो सकार को नकार हो गया, रामान्, यहां 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' एक पद में रेफषकार से पर नकार को णकार हो। इससे अन्त्य नकार को णकार क्यों नहीं होता। वहाँ मकार आकार का व्यवधान है, तो इसका प्रति प्रसव है।

(अट्कुप्वाङिति) अट् प्रत्याहार-कवर्ग-पवर्ग आङ् नुम् इनसे व्यवधान होने पर भी रेफ षकार से पर नकार को णकार हो, एक पद में। ये सब किसी प्रयोग में भी मिल जायँगे यह असंभव है, अतः

स्यात्समानपदे। पदान्तस्य ८।४।२७। नस्य णत्वं न स्यात्। रामान्। यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ।१।४।१३। अङ्गस्य ।६।४।१। इत्यधिकृत्य। टाङसिङसामिनात्स्याः ।७।१।१२। अतोऽङ्गादित्यर्थः। रामेण। सुपि च ।७।३। यञादौ सुप्यतोऽङ्गस्य दीर्घः स्यात्।

एक अथवा अनेक के व्यवधान होने पर भी 'न' को 'ण' होगा। तो आकार मकार आकार के व्यवधान में अन्त्य-हल् नकार को णकार प्राप्त था।

(पदान्तेति) पदान्त नकार को णकार नही होगा। 'सुप्तिङन्तं पदम्' से पद संज्ञा, तो सुबन्त पद के अन्त पर विद्यमान 'न्' को 'ण्' नहीं हुआ, रामान्।

(यस्मादिति) जिससे प्रत्यय विधि हो, अर्थात् जो प्रत्यय जिससे विधान किया जाय तदादि शब्द स्वरूप उस प्रत्यय के परे अङ्ग संज्ञक हो। प्रकृत में तृतीया का एकवचन टा प्रत्यय है वह किससे विधान किया गया है राम से, तदादि शब्द स्वरूप; व्यपदेश-वद्भाव से राम है। उसकी टा विभक्ति के परे अङ्ग संज्ञा है।

(अङ्गस्येति) 'अङ्गस्य' यह अधिकार सूत्र है, इसके अधिकार में जितने कार्य होंगे वे सब अङ्ग संज्ञक के विषय में ही होंगे। राम टा इस स्थिति में।

(टाङसी) अदन्त अङ्ग से पर टा ङसि ङस् इनको 'इन आत् स्य' आदेश क्रम से हों। अर्थात् टा को इन। ङसि को आत् और ङस् को स्य। चुटू से टकार की इत्संज्ञा। अवशिष्ट 'आ' को इन, आद् गुणः से गुण। उक्त सूत्र रषाभ्यां के प्रकरण में "अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि" से नकार को णकार। रामेण। द्वित्वविवक्षा में राम-राम-श्याम्, 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक शेष, राम-श्याम् इस स्थिति में।

(सुपिचेति) यञ् प्रत्याहारान्तर्गत वर्ण जिसके आदि में ऐसे सुप् प्रत्याहार के परे अदन्त अङ्ग को दीर्घ हो। तो यहाँ यञ प्रत्याहारान्तर्गत

रामाभ्याम् । **अतो भिस ऐस्** ।७।१।९०६। रामैः । **ङेर्यः** ।७।१।१ रामाय । रामाभ्याम् । **बहुवचने झल्येत्** ।७।३।१०३। रामेभ्यः **वाऽवसाने** ।८।४।५६। झलां चरो वा स्युः । रामात्, रामाद्

भकार आदि में है, ऐसे सुप् प्रत्याहारान्तर्गत भ्याम्, के परे अदन्त अ राम को दीर्घ हो गया, अर्थात् अन्त्य मकाराकार को दीर्घ हो गया रामाभ्याम्, बहुत्वविवक्षा में सरूपाणां से एक शेष, राम-भिस् इ स्थिति में ।

(अतो इति) अदन्त अङ्ग से पर भिस् को ऐस् हो । 'अनेका शित्सर्वस्य' से अनेकाल्त्वात्सर्वादेश, वृद्धिरेचि, ससजुषो रुः खरवसानयोर्विसर्जनीयः । रामैः । चतुर्थी के एकवचन में राम इस स्थिति में ।

(ङेर्य इति) अदन्त अङ्ग से पर ङे को 'य' आदेश हो, तो य अदन्त अङ्ग राम से पर, ङे को यकारादेश, 'सुपि च' से मकार को दीर्घ, रामाय । द्विवचन में पूर्ववत् एकशेष, सुपि च से दी रामाभ्याम्, बहुवचन में राम भ्यस् ।

(बहुइति) सुपि की अनुवृत्ति है । झलादि बहुवचन सुप् के अदन्त अङ्ग को एकार हो । अलोऽन्त्यस्य से अकार को एका पूर्ववत् रुत्वविसर्ग, रामेभ्यः । पञ्चमी के एकवचन में ङसि ङकार इकार इत् । टा ङसिङसामिनात्स्याः से ङसि को आ अनेकाल्त्वात् सर्वादेश, अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ ।

टिप्पणी—रामाय, यहाँ सन्निपात परिभाषा से दीर्घ नहीं हो चाहिये, "यो यमाश्रित्य उत्पद्यते स तं प्रति सन्निपातः" "सन्निपा लक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य" यहाँ अदन्त मानकर हुआ य अदन्त के नाश को नहीं करेगा । परं तु 'कष्टाय क्रमणे' इस दीर्घ नि से जानते हैं कि सन्निपात परिभाषा अनित्य है, अतः रामाय में दी हो जायगा । जस्तु अचर्त्व, जहाँ चर नहीं होगा वहाँ चर् ।

टि०—दीक्षित जी ने बहुवचने का प्रत्युदाहरण रामः में

रामाभ्याम्। रामेभ्यः। रामस्य। **ओसि च** ७।३।१०४। रामयोः। **ह्रस्वनद्यापो नुट्** ।७।१।५४। आमो नुट् स्यात्। **नामि** ६।४।३। दीर्घः स्यात्। रामाणाम्। रामे। रामयोः। **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** ८।३।५५। **इण्कोः** ।८।३।५७। इत्यधिकृत्य। **आदेशप्रत्यययोः** ।८।३।५९। इण्कवर्गाभ्यां परस्यापदान्तस्यानयोः सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात्। रामेषु।

(वावसान इति) अवसान में विद्यमान-अर्थात् अन्त में जिसके आगे फिर कोई वर्ण न हो ऐसे झल् को चर् विकल्प से हो। तो रामात्, में झलां जशोऽन्ते प्रथम तकार को दकार। फिर 'द्' को विकल्प से 'त्' रामात्, रामाद्। दोनों में 'अनचि च' से विकल्पेन द्वित्व। चार रूप होते हैं। द्विवचन में पूर्ववत्, सुपि च से दीर्घ, रामाभ्याम्, बहुवचने झल्येत्, रुत्वविसर्ग, रामेभ्यः। षष्ठी के एकवचन में, राम ङस्, 'टाङसिङसामिनात्स्याः' से स्य आदेश, रामस्य। षष्ठी द्विवचन में राम राम ओस्, 'सरूपाणां' से एकशेष, राम ओस्।

(ओसि चेति) अतः, एत्, की अनुवृत्ति। 'ओस्' के परे अदन्त अङ्ग को एकार हो, अलोऽन्त्यस्य से अकार को एकार, एचोऽयवायावः, से अयादेश, पूर्ववत्, रुत्वविसर्ग, रामयोः। बहुत्वविवक्षा में आम्। एकशेष, राम आम् इस स्थिति में।

(ह्रस्वेति) ह्रस्व-नदी-आपः। ह्रस्वान्त, नदीसंज्ञक और आबन्त अङ्ग संज्ञक से पर जो आम है उसके नुट् हो। 'आद्यन्तौ टकितौ' से टित्वात् आम् की आदि में नुट्, हलन्त्यम्, उपदेशेऽजनुनासिक इत्। उटावितौ। राम नाम् इस स्थिति में। नामि इति, नाम् के परे अजन्त अङ्ग को दीर्घ हो। इससे अकार को दीर्घ। 'अट् कुप्वाङ्' से नकार को णकार, रामाणाम्। सूत्रारम्भ सामर्थ्य से सन्निपात परिभाषा से दीर्घ का निषेध नहीं होता।

सप्तमी के एक वचन में,लशक्वतद्धिते से ङकार इत्। आद् गुणः। रामे। द्विवचन में पूर्ववत्, एकशेष, ओसि च से एकार, एचोऽयवायावः से अय्, रुत्वविसर्ग, रामयोः। सप्तमी बहुवचन में, राम-राम-राम-

सुप्, सरूपाणां से एकशेष, पकार इत् बहुवचने झल्येत् राम सु।

सर्वादीनि सर्वनामानि ।१।१।२७। जसः शी ।७।१।१७। अतः सर्वादेः परस्य शी स्यात् । सर्वे । सर्वनाम्नः स्मै ।७।१।१४। सर्वस्मै ।

(अपदान्तेति) 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः', 'इण् कोः' इन दोनों सूत्रों का अधिकार है, (आदेशेति) इण् कवर्ग से पर अपदान्त-आदेश अथवा प्रत्ययावयव संबन्धी जो सकार है उसको मूर्धन्यादेश हो, बाह्य प्रयत्न में विवार प्रयत्न के सकार को विवार मूर्धन्य षकार होगा, रामेषु।

(सर्वादीति) सर्वादीनि सर्वनामानि, अर्थात् सर्वादिक जो शब्द स्वरूप हैं वे सर्वनाम संज्ञक होते हैं । सर्वः, सर्वौ रामशब्दवत् । बहुल-विवक्षा में जस् । एकशेष ।

(जसः शीति) अदन्त सर्वादिक से पर जो जस् उसको शी हो, तो 'अनेकाल् शित् सर्वस्य' इससे अनेकाल्त्वात् संपूर्ण जस् को शी आदेश, लशक्वतद्धिते से शकार इत्, लोप, आद् गुणः,सर्वे । द्वितीया तृतीया में रामशब्दवत् । चतुर्थी के एकवचन में, ङे । सर्व ङे ।

(सर्वनाम्न इति) सर्वनाम्नः स्मै, अदन्त सर्वनाम से पर जो ङे

दिखाकर रामस्य दिया है, सर्व स्मै, सर्वस्मात्, सर्वस्मिन्, ये भी प्रत्युदाहरण हैं ।

टिप्पणी—सर्वादिक तदन्त भी लिये जाते हैं, यद्यपि संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति' से निषेध प्राप्त है,परंतु यदि तदन्त नहीं लिये जाते तो 'द्वन्द्वे च' सूत्र व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि तदन्त के अग्रहण से 'वर्णाश्रमेतर' में सर्वनाम संज्ञा प्राप्त ही नहीं थी, फिर जो निषेध किया, उस सूत्रारम्भसामर्थ्य से जानते हैं कि सर्वनाम संज्ञा कर्तव्य रहते तदन्त विधि होती है, अतः 'द्वन्द्वे च' से सर्वनाम संज्ञा निषेध होने से वर्णाश्रमेतराणाम् में सुट् नहीं हुआ ।

सर्वे में जसः शी' से उस को शी आदेश अनेकाल्त्व मानकर होगा, शित्त्वात् नहीं, यद्यपि 'श' अनुबन्ध है, और यह नियम है, 'नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्' परन्तु शकार की इत्संज्ञा, आदेशावस्था में प्राप्त ही नहीं है, क्योंकि शी आदेश के शकार की इत् संज्ञा लशक्वतद्धिते से

ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ।७।१।१२। सर्वस्मात्। आमि सर्वनाम्नः सुट् ।७।१।५२। एत्वषत्वे। सर्वेषाम्। सर्वस्मिन्। शेषं रामवत्। एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः। सर्वादयः पञ्चत्रिंशत्। सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्, स्वमज्ञातिधना-

---

उसको स्मै हो, तो ङे को स्मै हो गया, सर्वस्मै, सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः। रामवत्। पञ्चमी में।

(ङसीति) अदन्त सर्वनाम से पर ङसि ङि को स्मात् स्मिन् आदेश होते हैं, यथासंख्य से ङसि को स्मात् और ङि को स्मिन्। तो ङसि को स्मात्, जश्, वावसाने, सर्वस्मात्, सर्वस्माद्। पञ्चमी को द्विवचन, बहुवचन, षष्ठी को ङस् ओस् में, राम शब्दवत्, बहुत्व विवक्षा में सर्व आम्।

(आमीति) 'आमि सर्वनाम्नः सुटः' 'आज्जसेरसुक्' से आत् की अनुवृत्ति है। अवर्णान्त सर्वनाम से विहित जो आम् उसके सुट् का आगम हो। टित्त्वात् आम् के आदि में सुट्, उटौ इतौ, 'बहुवचने झल्येत्', से एत्व 'आदेशप्रत्यययोः' इससे षकार, सर्वेषाम्। सप्तमी के एकवचन में सर्व ङि,' ङसि ङ्योः स्मात् स्मिनौ' से ङि को स्मिन्, सर्वस्मिन्, अवशिष्ट विभक्तियों में राम शब्द के समान साधुत्व जानना। और सर्व शब्द के समान सर्वादिकों में पठित विश्वादिक शब्दों में साधुत्व जानना। जैसे-विश्वःविश्वौ विश्वे, विश्वम् विश्वौ विश्वान्, विश्वेन विश्वाभ्याम् विश्वैः। विश्वस्मै विश्वाभ्याम् विश्वेभ्यः। विश्वस्मात् विश्वाभ्याम् विश्वेभ्यः। विश्वस्य विश्वयोः विश्वेषाम्, विश्वस्मिन् विश्वयोः विश्वेषु। हे विश्व! हे विश्वौ! हे विश्वे! ये सर्वादिक पैंतीस हैं, इनको बताया है। ये पूर्वादिक नौ हैं, इनमें सात व्यवस्था और असंज्ञा-किसी का संज्ञावाचक न हों तो पूर्वादि में माने जायेंगे। व्यवस्था क्या? अपेक्षमाण की अवधि का नियम, अर्थात् नियम से अवधि सापेक्ष अर्थ में विद्यमान, जैसे "प्रयागात्पूर्वा काशी"

ख्यायाम्, अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्
अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम् । इति । उभश
नित्यं द्विवचनान्तः, तस्येह पाठो ह्यकजर्थः । उभयशब्दस्य द्विवच

प्रयाग से काशी पूर्व है, प्रयाग अवधि है, अतः ऐसे उदाहर
में पूर्वादि हैं ।

'स्वमज्ञाति-धनाख्यायाम्' स्वशब्द यदि ज्ञाति और धन का वाच
नहीं है तो सर्वनाम संज्ञक होगा । स्वशब्द के आत्मीय १, आत्मा
ज्ञाति ३, धन ४ ये चार अर्थ हैं, आदि के दो आत्मीय और आ
अर्थ में सर्वनाम संज्ञा होगी । ज्ञातिधन अर्थ में नहीं । अन्तर शब्द
बहिर्योग और उपसंव्यान पहिरने अर्थ में सर्वनाम संज्ञा होगी
उभ शब्द नित्य द्विवचनान्त है, सर्वादि कार्य 'शी स्मै स्मात्
स्मिन्' ये एकवचन बहुवचन मे ही होते हैं, फिर उभ शब्द का सर्वा
में पाठ क्यों ?

उत्तर उसका पाठ 'अव्यय सर्वानाम्नामकच् प्राक् टेः' से अक
प्रत्यय के लिये है । यद्यपि अकच् प्रत्यय के स्थान पर क प्रत्यय क
से भी कार्य बन सकता, परन्तु पञ्चमी सप्तमी में उभयतः उभयत्र
तरह अकच् हो जायगा, इसलिये उभ शब्द का सर्वादि में पाठ
उभय शब्द की जस् के परे विकल्प से सर्वनाम संज्ञा क्यों नहीं ?
प्रथम चरम सूत्र पर कहेंगे । उभय शब्द का द्विवचन नहीं होता
किन्तु एक वचन बहुवचन ही होता है, यह हरदत्त का पक्ष है, उ
प्रमाण, उभयो मणिः, उभये देवमनुष्याः । यहाँ एकवचन बहुवचन
उदाहरण भाष्यकार ने दिया है, द्विवचन का नहीं, इससे जानते
उभय शब्द का द्विवचन नहीं है । दूसरा प्रमाण, 'उभयोऽन्य
वार्तिक, (२३२) । अन्यत्र-द्विवचन परत्व के अभाव में उभय श
है, अर्थात् उभय शब्द का द्विवचन नहीं होता है ।

हरदत्त कहते हैं, कि उभय शब्द का द्विवचन भी होता है, उ
प्रमाणों का खण्डन—भाष्यकार ने कहा है, 'न चोदाहरणमादरणीयम्
हमारे उदाहरण का आदर नहीं करना, कि यदि किसी धातु का

नास्तीति कैयटः। अस्तीति हरदत्तः। समः सर्वपर्यायः। तुल्यपर्यायस्तु नेह गृह्यते, यथासंख्यमनुदेशः समानामिति ज्ञापकात्। **पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्** ।१।१।३४। जसि वा सर्वनामसंज्ञकाः स्युः। पूर्वे, पूर्वाः। स्वाभिधेयावधिनियमो व्यवस्था। **स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्** ।१।१।३५। स्वे, स्वाः। **अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः** ।१।१।३६। अन्तरे, अन्तरा वा गृहाः, बाह्या इत्यर्थः। अन्तरे, अन्तरा वा शाटकाः। परिधानीया इत्यर्थः। गणसूत्रे अपुरीति

मान में प्रयोग है तो वर्तमान कालिक ही उस धातु को नहीं समझना। एवम् उभय शब्द का द्विवचन में उदाहरण न देने से इसका द्विवचन नहीं है यह नहीं जानना, इससे द्विवचन भी है, यह सिद्ध होता है॥ जो दूसरा प्रमाण कैयट ने दिया है वह भी ठीक नहीं, 'पूर्व में कह आये हैं कि उभ शब्द को सर्वादि में न मानने पर अयच् हो जायगा, इस आशय को लेकर 'उभयोऽन्यत्र' यह वार्तिक है। इति।

सम शब्द दो अर्थों में है, एक सर्वपर्याय में। दूसरा तुल्य पर्याय में। 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' इस पाणिनि सूत्र में 'समानाम्' प्रयोग से जानते हैं कि तुल्य पर्याय सम शब्द सर्वादि में नहीं है। पूर्व-जस् इस स्थिति में।

(पूर्वेति) पूर्व पर अवर इत्यादिक सात शब्द व्यवस्था और असंज्ञा में जस् के परे सर्वनाम संज्ञक विकल्प से होते हैं, सर्वनाम होने से जसः शी, आद् गुणः, पूर्वे, अन्य में पूर्वसवर्ण दीर्घ, रुत्वविसर्ग, पूर्वाः। रामशब्दवत्साधु। स्व जस्।

(स्वमिति) ज्ञाति धन से अतिरिक्त अर्थ में विद्यमान अर्थात् आत्मीय और आत्मा अर्थ में विद्यमान स्वशब्द विकल्प से सर्वनाम संज्ञक हो। साधुत्व (स्वे) पक्ष में स्वाः। अन्तर-जस् इस स्थिति में।

(अन्तरमिति) बहिर्योग और उपसंव्यान—पहिरने अर्थ में अन्तर शब्द जस् के परे विकल्प से सर्वनाम संज्ञक हो। बहिर्योग में अन्तरे, अन्तराः। बाह्याः गृहाः। बाहर के घर। परिधानीय अर्थ में—अन्तरे अन्तराः,

वक्तव्यम् । तेनेह न । अन्तरायां पुरि । **पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा** ।७।१।१६। एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः । पूर्वस्मात्, पूर्वात्, पूर्वस्मिन्, पूर्वे । एवं परादीनामपि । शेषं सर्ववत् । **न बहुव्रीहौ** ।१।१।२९। बहुव्रीहौ चिकीर्षिते सर्वनामसंज्ञा न स्यात् । त्वकं पिता यस्

शाटकाः परिधानीयाः पहिरने योग्य साड़ियाँ । साधुत्व पूर्व शब्द की तरह जानना । यहाँ सर्वादिगण में 'अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः' में 'अपुरीति वक्तव्यम्' यह वार्तिक है, पुरि वक्तव्य रहते अन्तर शब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं होगी । सर्वनाम संज्ञा न होने से 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च' नहीं होगा, किन्तु याडागम होगा । अन्तरायाम्, पुरि का विशेषण है, इससे स्त्रीलिङ्ग होगा । चतुर्थीपर्यन्त सर्व शब्द के समान साधुत्व । पूर्वम्, पूर्वौ पूर्वान् । पूर्वेण, पूर्वाभ्याम्, पूर्वैः । पूर्वस्मै पूर्वाभ्याम् पूर्वेभ्यः । पञ्चमी के एकत्व की विवक्षा में पूर्व—ङसि इस स्थिति में

(पूर्वादिभ्य इति) पूर्वादिक नव शब्दों से पर ङसि-ङि को स्मात् स्मिन् विकल्प से होते हैं । ङसि को स्मात् हो गया, पूर्वस्मात्, पक्ष में राम शब्दवत् । पूर्वात् । षष्ठी बहुवचन में पूर्व-आम् । आमि सर्वनाम्नः सुट् । उटावितौ । बहुवचने झल्येत् । आदेशप्रत्यययोः । पूर्वेषाम् । सप्तमी का एक वचन, पूर्व—ङि, पूर्वादिभ्यो वा से ङि को विकल्प से स्मिन्, पूर्वस्मिन् । पक्ष में आद् गुणः पूर्वे । पूर्वयोः, पूर्वेषु । संबोधन में प्रथमा के समान । एङ् ह्रस्वात्संबुद्धेः से सुलोप । हे पूर्व ! हे पूर्वौ, हे पूर्वाः । इसी प्रकार परादिक आठों शब्दों का साधुत्व जानना ।

(न बहुव्रीहाविति) बहुव्रीहि समास में अन्य पद प्रधान उपसर्जन होने से सर्वनाम संज्ञा प्राप्त ही नहीं है, फिर सूत्र का फल क्या है ? उसी फल को बताते हैं । उपसर्जनत्व तो समास करने के अनन्तर समस्त पद में होगा । अत एव बहुव्रीहि समास करने से पूर्व, बहुव्रीहि समास करने की इच्छा में ही सर्वनाम संज्ञा न होगी । जैसे—तुम हो पिता जिसके, यहाँ अन्य पद प्रधान बहुव्रीहि समास है, उस विवक्षा में सर्वनाम संज्ञा का निषेध है, अतः स्वार्थ में 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः' से सर्वनाम

सः, त्वत्कपितृकः, एवं मत्कपितृकः। भाष्यकारस्तु त्वकत्पितृकः, मकत्पितृक इति रूपे इष्टापत्तिं कृत्वैतत्सूत्रं प्रत्याचख्यौ। सर्वनाम इति महासंज्ञाकरणात् संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः। सर्वो नाम कश्चित् तस्मै, सर्वाय। एवम् अतिसर्वाय देहि। **तृतीयासमासे** ।१।१।३०।

मानकर अकच् प्रत्यय नहीं होगा, किंतु क प्रत्यय होगा, 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' से युष्मद् को त्वत्, अस्मद् को मत् एक वचन में आदेश होगा, तो त्वम् के स्थान में त्वकम्, अहम् के स्थान में अहकम् होगा, बहुव्रीहि समास की विवक्षा में त्वत्कम्, अस्मद् शब्द में मत्कम्, पिता यस्य सः, त्वत्कपितृकः, एवं मत्कपितृकः। नद्यृतश्च से पितृ शब्द से कप् प्रत्यय है। भाष्यकार त्वकत्पितृकः, मकत्पितृकः, इन रूपों को मानते हैं, उनका मत है अकच् प्रत्यय युक्त ही इनका प्रयोग होता है, अतः अकच् प्रत्यय निषेधक यह सूत्र निरर्थक है इस प्रकार इस 'न बहुव्रीहौ' सूत्र का प्रत्याख्यान किया है। किसी का मत है कि इन तीनों मुनियों में यथोत्तर-सर्वोत्तम पूर्व-पूर्व का प्रामाण्य है और किसी का यथोत्तर प्रामाण्य है, वस्तुतः सूत्र निर्माता पाणिनि का प्रामाण्य सर्वोत्तम है। सति कुड्ये चित्रम्, कुड्याभावे नैव चित्रम्। यह सर्वनाम संज्ञा, संज्ञा वाचक-एक मनुष्य के नाम में तथा उपसर्जन में नहीं होगी,क्योंकि "लघ्वक्षरं हि संज्ञा करणम्" संज्ञा स्वल्पाक्षर से ही होती है, जैसे 'टि' संज्ञा, 'घि' संज्ञा, दाधाघ्वदाप्, 'घु' संज्ञा, इत्यादि। परंतु 'सर्वनाम' यह चार अक्षरों की जो संज्ञा की है, वह अन्वर्थ नाम की सूचिका है, तो, सबका सूचक होने पर सर्वादिक होगा, अन्यथा नहीं। संज्ञावाचक एक व्यक्ति मात्र का बोधक होने से, उपसर्जन-गौण, तत्क्रिया मात्र का बोधक होने से सर्वादिक में नहीं होता है, जैसे सर्व किसी का नाम होने से, अतिसर्व-उपसर्जन होने से सर्वादिक में नहीं है, अतः चतुर्थी के एकवचन में 'सर्वनाम्नः स्मै' से स्मै नहीं होगा। सर्वाय, अतिसर्वाय रामवत् ङेयः सुपि च होगा।

(तृतीयेति) तृतीया समासे। तृतीया समास में सर्वनाम संज्ञा न हो।

मासपूर्वाय । **द्वन्द्वे च** ।१।१।३१। वर्णाश्रमेतराणाम् । **विभाषा जसि** ।१।१।३। वर्णाश्रमेतरे, वर्णाश्रमेतराः । **प्रथमचरमतयाल्पार्द्धकतिपयनेमाश्च** ।१।१।३३। प्रथमे, प्रथमाः । शेषं रामवत् । तयप्रत्ययस्ततस्तदन्ता ग्राह्याः । द्वितये, द्वितयाः । शेषं रामवत् । नेमे, नेमाः । शेषं सर्ववत् ।

मासेन पूर्वः, मासपूर्वः, तस्मै, चतुर्थी में स्मै आदेश नहीं होगा, इसी तरह ङसि, आम्, ङि में भी जानना ।

(द्वन्द्वे इति) द्वन्द्व समास में भी सर्वनाम संज्ञा नहीं होगी, वर्णाश्रमेतराणाम् में 'सुट्' नहीं होगा । विभाषेति । द्वन्द्व समास में जस् के परे विकल्प से सर्वनाम संज्ञा हो । जहाँ सर्वनाम संज्ञा होगी, वहाँ जसः शी आद् गुणः, वर्णाश्रमेतरे, अन्यत्र रामवत्, वर्णाश्रमेतराः ।

(प्रथमेति) प्रथम, चरम, तय अर्थात् तय प्रत्ययान्त; अल्प, अर्द्ध, कतिपय, नेम, ये शब्द जस के परे सर्वनाम संज्ञक विकल्प से हों, नेम शब्द की सर्वादित्वात् नित्य सर्वनाम संज्ञा प्राप्त थी अन्य प्रथमादिकों को अप्राप्त थी, विकल्प से जस् के परे सर्वनाम संज्ञा, सर्वनामत्वात् जसः शी, आद् गुणः, प्रथमे, पक्ष में रामवत्, प्रथमाः । णत्व रहित सब रूप राम शब्दवत् होंगे । 'तय' प्रत्यय है केवल तय प्रत्यय की प्राति-पदिक संज्ञा असंभव है, अतः 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' से तयप्रत्ययान्त द्वितय शब्द का ग्रहण होगा, विकल्प से सर्वनाम संज्ञा, द्वितये, पक्ष में द्वितयाः । णत्व वर्जित रामशब्दवत् । नेम ३ जस्, एकशेष, सर्वादित्व से नित्य सर्वनाम संज्ञा प्राप्त थी विकल्प से होगी, नेमे, पक्ष में नेमाः । अन्य सब विभक्तियों में णत्व वर्जित सर्व शब्द की तरह । यह भी नेम शब्द में प्राप्त अन्य में अप्राप्त विषयक उभयत्र विभाषा है । द्वितीय शब्द राम शब्दवत्, चतुर्थी एकवचन ङे । (विभाषेति) विभाषा प्रकरण में तीय प्रत्ययान्त को ङिति वचन में उपसंख्यान है । अर्थात् ङिति वचन में सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होगी, 'सर्वनाम्नः स्मै' से ङे को स्मै द्वितीयस्मै, पक्ष में ङेर्यः, सुपिच, द्वितीयाय । एवम्, द्वितीयस्मात्, द्वितीयात्, द्वितीयस्

विभाषा प्रकरणे तीयस्य ङित्सूपसंख्यानम्। द्वितीयस्मै, द्वितीयायेत्यादि।

उभयत्र एक सा ही होगा। बहुवचन में नुट्। द्वितीयानाम्, ङि के परे, द्वितीयस्मिन्, द्वितीये। निर्गतः जराम्, निर्जरः, द्विवचन में औ। जराया:

(जराया इति) जरा शब्द को जरस् आदेश हो अजादि विभक्ति के परे, यद्यपि यहाँ जरा नहीं है, किन्तु जर है, परंतु 'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति' एक देश से विकृत हो वह अन्य नहीं होता है, जैसे घोड़े की पूँछ काटने पर घोड़ा ही रहता है, अन्य नहीं होता है, इसी तरह जरा का जर हो जाने पर अन्य नहीं होगा किंतु जरा ही माना जायगा, अस्तु यद्यपि 'पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च ग्रहणम्' तो जराशब्दान्त को जरस् आदेश हो यह अर्थ करने पर निर्जर शब्द को जरस् आदेश प्राप्त हुआ, किन्तु यह नियम है, कि 'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति' निर्दिश्यमान को अर्थात् जिसका उपादान करते हैं, उसको आदेश होते हैं, प्रकृत में जरा शब्द का उपादान है अतः जरा स्थानापन्न जर शब्द को जरस् आदेश होगा। 'अज्झीनं परेण संयोज्यम्' निर्जरसौ निर्जरौ। अजादि विभक्तियों में जरस् आदेश होने पर अग्रिम स्वर से

होती है, और शी प्रत्यय नहीं है, जस् प्रत्यय के स्थान में होने से स्थानिवद्भाव से प्रत्ययत्व हो जायगा, परन्तु अभी तो आदेश ही नहीं हुआ है, अतः इत्संज्ञा न होने से अनेकाल्त्वात् सर्वादेश है।

टि०—भट्टोजिदीक्षितजी ने जरसादेश प्रकरण में वृत्तिकारादिकों के सिद्धान्त को दिखाया है, यद्यपि प्रक्रिया साधुत्व में उस पक्ष विपक्ष सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है परंतु विशेष जिज्ञासुओं के लिये हिन्दी में स्फुट व्याख्या करता हूँ।

टिप्पणी—वै० सि० कौमुदी—वृत्तिकृता तु 'पूर्वविप्रतिषेधेन इनातोः कृतयोः संनिपातपरिभाषाया अनित्यत्वमाश्रित्य जरसि कृते निर्जरसिन निर्जरसादिति रूपे न तु निर्जरसा निर्जरसः इति, केचिद्" इत्युक्तम्, तथा भिसि निर्जरसैरिति रूपान्तरमुक्तम्, तदनुसारिभिश्च षष्ठ्येकवचने निर्जरस्येत्येव रूपमिति स्वीकृतम्' एतच्च भाष्यविरुद्धम्,

जराया जरसन्यतरस्याम् ।७।२।१०१। अजादौ विभक्तौ। निर्जरः।

संयुक्त होगा। निर्जरसः, निर्जरसम् इत्यादि होंगे, और पक्ष में राम शब्द की तरह, निर्जराः, निर्जरम्, हलादि में जरस् आदेश नहीं। अतः राम शब्द की तरह निर्जराभ्याम्, निर्जरैः इत्यादि रूप होंगे। पाद शब्द के प्रथमा में और द्वितीया के एकवचन द्विवचन में राम

वृत्तिकृता तु इत्युक्तम्, इति केचित्" यह अन्याय है, कोई यह कहते हैं कि जरस् टा, ङसि, भिस्, इन विभक्तियों में 'टा' को इन आदेश नहीं करना किन्तु 'न' आदेश करना। घटेन रामेण में एकार योग-विभाग करने से सिद्ध हो जायगा, जैसे, बहुवचने झल्येत्, ओसिच, 'आङि च' आङ् के परे, अर्थात् टा के परे अदन्त अङ्ग को एकार हो। इससे एकार करेंगे, तदनन्तर आपः को 'संबुद्धौ च' के साथ पढ़ेंगे आपः सम्बुद्धौ च। तो यह अर्थ होगा, कि आबन्त को संबुद्धि के परे एकार हो और चकारात् आङ् के परे एकार हो। एवम्, ङसि को आत् नहीं, किन्तु अत् करना, अकारोच्चारण सामर्थ्य से अतो गुणे से पररूप नहीं होगा। एवम्, 'अतो भिस ऐस्' में 'अतो भिस एस्' करना, ऐकार के स्थान पर एकार पढ़ना, इस लघुभूत न्यास से सिद्ध था फिर इनादेश का इकार 'आत्' का दीर्घाकार ऐस् का ऐकार किया वह इसलिये है, कि जिससे इकार आकार ऐकार का श्रवण हो, वह कब हो सकता है कि जब तत्तत् स्थलों में हलन्त हो, वह केवल निर्जर, अतिजर आदि शब्दों में जरसादेश करने पर ही होगा, अतः इनादि में इकार के सामर्थ्य से 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' से टा–ङसि से परत्वात् जो जरस् होता है, उस सूत्र में परं का अर्थ अभीष्टम् करेंगे, और अदन्त मानकर हुए जो इन, आत् ऐस् हैं वे सन्निपात परिभाषा से अदन्त का नाश नहीं करेंगे, क्योंकि जरस् होने से अदन्त निर्जर का नाश हो जायगा, उसको भी इन आत् ऐस् सामर्थ्य से अनित्य मानेंगे, एवम् उक्त इकारादि सामर्थ्य से निर्जरसिन निर्जरसात् निर्जरसैः, पक्ष में रामवत्। उक्त न्याय से 'परम् अभीष्टम्, अर्थ होने से इन आत् के सह पठित 'स्य' आदेश भी

एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् जरशब्दस्य जरस् निर्जरसौ, निर्जरौ। निर्जरसः, निर्जराः; इत्यादि। **पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ।६।१।६३।** पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृज्, यूष, दोष, यकृत्, शकृत्, उदक, आस्य, एषां पदादय आदेशाः स्युः शसादौ वा। पादः पादौ पादाः। पादम्। पादौ पदः पादान्। पदा, पादेन, इत्यादि। पक्षे रामवत्। **सुडनपुंसकस्य**

शब्दवत्। द्वितीया के बहुवचन में पाद-शस्, शकार लशक्वतद्धिते से इत्। पाद अस्।

(पद्दन्नो इति) पदादिक आदेश स्वस्वरूपानुरूप स्थानी की कल्पना करेंगे, तो पाद को पद्, दन्त को दत्, नासिका को नस्, मास को मास्, हृदय को हृद्, निशा को निश, असृज् को असन्, यूष को यूषन्, दोष् को दोषन्, यकृत् को यकन्; शकृत् को शकन्, उदक को उदन्, आस्य को आसन् आदेश होते हैं, शसादि विभक्तियों के परे विकल्प से। तो पाद को पद् आदेश हो गया, पदः, पक्ष में राम शब्द की तरह, पदान्। एवम्, पदा, पादेन, पाद्भ्याम्-पादाभ्याम्, इत्यादि रूप होंगे। दन्तशब्द। शसादिपर्यन्त, दन्तः, दन्तौ दन्ताः इत्यादि राम शब्दवत्, शस् के परे दत् आदेश, दत् शस् इस स्थिति में (सुड् इति) सुट् पद से सुट् प्रत्याहार अर्थात् सु औं जस, अम् औट्। ये स्वादि पाँच वचन सर्वनामस्थान संज्ञक हों,

---

हो जायगा, फिर 'स्य' को अजादि न होने से जरस् नहीं होगा। यह भाष्यविरुद्ध है, क्योंकि भाष्यकार ने इस लघुभूत न्यास को सुवच ही माना है, यह 'टाङसिङसाम्'-सूत्र के भाष्य में स्थित है। और "गोनर्दीयस्त्वाह अतिजरैरित्येव भवितव्यम्, सन्निपात परिभाषया" तो इनादि की ज्ञापकता सुवच होने से समाप्त हो जाती है और अतिजरैरित्येव से निर्जरसैः मानना स्पष्ट भाष्यविरोध है।

जरा।१०।जरस न्यासस्याम् (७।२।१०१)

।१।१।४३। स्वादि पञ्च वचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युः, न तु न
सकस्य। स्वादिष्वसर्वनामस्थाने ।१।४।१७। पूर्वं पदसंज्ञं स्यात्। य
भम् ।१।४।१८। आ कडारादेका संज्ञा ।१।४।१। इत आरभ्य कडा
कर्मधारय इति पर्यन्तमेकस्य एकैव संज्ञा ज्ञेया। या पराऽनवकाशा
इति भसंज्ञा। दतः, दता। भ्यामि पदत्वाद् जश्त्वम्। दद्भ्यामित्या

नपुंसक लिङ्ग के नहीं। यहाँ पर यह सूत्र "सर्वनामस्थान" संज्ञा
बताने के लिये है, प्रयोग में यहाँ उपयोग नहीं है।

(स्वादिष्विति) सर्वनामस्थान संज्ञक से रहित अर्थात् उक्त स
पाँचों को छोड़कर अन्य स्वादि विभक्तियों के परे पूर्व की पद सं
हो, इससे पद संज्ञा होने से 'झलां जशोऽन्ते' से पदत्वाद् दकार प्रा
था, परन्तु पद संज्ञा का बाधक।

(यचीति) तद्धित प्रत्यय सम्बन्धी क प्रत्यय पर्यन्त, सर्वनामस
प्रत्यय से रहित, यकारादि अथवा अजादिप्रत्यय के परेपूर्व में विद्यमा
प्रातिपदिक की भसंज्ञा हो, तो पद संज्ञा को बाधकर भसंज्ञा हो जायं
पदत्व का अभाव है, अतः जश् नहीं होगा। यहाँ पद संज्ञा भ
दोनों हो जायँ, क्या हानि ? पद संज्ञा और भसंज्ञा के भिन्न
होने के कार्य हो जायेंगे, युगपद् दो संज्ञा नहीं होंगी।

(आकडारादिति) आ-आङ् मर्यादा अर्थ में है, तो यह
होगा कि यहाँ से आरम्भ कर अर्थात्, १।४।१। से लेकर 'कड
कर्मधारये' सूत्र पर्यन्त एक की एक ही संज्ञा होगी, दो न
पद संज्ञा हो या भसंज्ञा, इसका निर्णायक 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्'
पर होगी, अथवा जो अनवकाश होगी वह होगी। प्रकृत में जहाँ
भसंज्ञा प्राप्त है वहाँ २ पद संज्ञा प्राप्त है, अतः परत्वात्, अपवाद
पद संज्ञा को बाधकर अजादि के परे भ संज्ञा ही होगी पद
नहीं। अतः पदान्त में तकार नहीं है इसलिये दकार नहीं होगा, द
तृतीया एकवचन में दता, द्विवचन भ्याम् के परे अजादि प्रत्यय

मासः मासान्। भ्यामि रुत्वे यत्वे च यलोपः। माभ्याम्, मासाभ्यामित्यादि। भस्येत्य धिकृत्य। अल्लोपोऽनः ।६४।१३४। भसंज्ञकस्यअङ्गावयवस्य अन्नन्तस्याकारस्य लोपः स्यात्। रषाभ्यां नो णः समानपदे

है अतः भसंज्ञा नहीं होगी, किंतु पद संज्ञा होगी, तो पद के अन्त में झल् प्रत्याहारान्तर्गत तकार है उसको दकार हो जायगा, दद्भ्याम्, एवं दद्भिः। एवं मास-भ्याम्। पद्न्नोमास से मास को मास् आदेश, पदत्वात् 'ससजुषोरुः' से रु आदेश, 'भो भगोअघो अपूर्वस्य योऽशि' से यकारादेश। 'हलि सर्वेषाम्' से नित्य लोप, माभ्याम्। जहाँ मास् आदेश नहीं होगा वहाँ 'सुपिच' से दीर्घ, मासाभ्याम्, इत्यादिक जानना। यूष शब्द अकारान्त, यूषः यूषौ, पाँच वचन में रामशब्दवत्, यूष-शस्, उक्त सूत्र से यूषन् आदेश। यूषन्-शस् इस अवस्था में अजादित्वात्, भसंज्ञा।

(अल्लोप इति) भसंज्ञक अङ्ग का अवयव अन्नन्त प्रातिपदिक के आकार का लोप हो, तो यूषन् शसादि अजादि में भसंज्ञक है, और अन्नन्त भी है, अतः अन् के अकार का लोप हो जायगा, तदनन्तर—

(रषाभ्यामिति) एक पद में रेफषकार से अव्यवहित पर जो नकार है उसे णकार हो। इससे णकार हो गया, यूष्णः, यूष्णा, हलादि में पद संज्ञा है, अतः यूषन्-भ्याम् इस स्थिति में।

टिप्पणी—यूष्णः इत्यादि में ष्टुनाष्टुः से भी णत्व सिद्ध है, उत्तर सूत्र में अनुवृत्त्यर्थ षग्रहण है, अथवा 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' सूत्र में 'पूर्वविधौ' के दो अर्थ हैं, 'पूर्वस्य विधौ' अथवा 'पूर्वस्मात् परस्य विधौ कर्तव्ये' यहाँ, पर में विद्यमान शस् को मानकर अजादेश अल्लोप है वह स्थानी अकारवत् हो जायगा, स्थानिभूत अकार से पूर्व में दृष्ट षकार है, उससे पर नकार को णकार कर्तव्य है, तो इस पक्ष में अट् कुप्वाङ् से न को 'ण' हो जायगा, 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्' इससे स्थानिवद् भाव का प्रतिषेध कर देंगे। उसका "संयोगादि लोप लत्वणत्वेषु प्रतिषेधः" यहाँ णत्व कर्तव्य है, अतः स्थानिवद् भाव का प्रतिषेध नहीं होगा।

।८।४।१। यूष्णः, यूष्णा । भ्यामि । **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** ।८।२।७। इति नलोपः । **पूर्वत्रासिद्धम्** ८।२।१। अधिकारोऽयम् । तेन सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् । इति नलोपस्यासिद्धत्वाद् दीर्घत्वमैस्त्वमेत्वं च न । यूषभ्याम्, यूषभिः

(न लोप इति) न-प्रातिपदिक-दोनों लुप्तषष्ठयन्त हैं, 'प्रातिपदिकस्य' पदस्य का विशेषण है, तो यह अर्थ होगा, 'प्रातिपदिकस्य पदान्तस्य नस्य लोपः स्यात्' यहाँ प्रातिपदिक पद यूषन् है, उसके अन्त में विद्यमान नकार का लोप हो गया, यूषभ्याम्, बहुवचन में यूषभिः यहाँ भ्याम् में सुपिच से दीर्घ, भिस को 'अतोभिस ऐस्' से ऐस् भ्यस् में 'बहुवचने झल्येत्' से एकार क्यों नहीं होते ?

(पूर्वत्रेति) यह ।८।२।१। से अधिकार सूत्र है, तो प्रत्येक सूत्र के साथ इसका संबन्ध होगा, पूर्वत्र कर्तव्ये इदम् असिद्धम्, तो आठ अध्यायों में इससे पूर्व सवासात अध्याय हैं, और बाकी तीन पाद हैं अतः इस त्रिपादी से पूर्व सवा सात अध्याय के प्रति यह असिद्ध हैं । और अधिकार सूत्र होने के कारण प्रत्येक त्रिपादी के सूत्रों से सम्बन्ध होने से पूर्व सूत्र का कार्य करने में यह सूत्र अर्थात् इस सूत्र का कार्य असिद्ध हो । यह प्रत्येक त्रिपादी सूत्र के साथ अर्थ होगा । तो त्रिपादी सूत्रों में प्रत्येक पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध होगा । अर्थात् पूर्व सूत्र की दृष्टि में पर सूत्र कृत कार्य मानों हुआ ही नहीं है। प्रकृत में यूषन् भ्याम् भिस् भ्यस् सुप् में जो 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न लोप हुआ है, वह त्रिपादी अष्टमाध्याय द्वितीय पाद का (८।२।७) का है। दीर्घ ऐस् एकार विधायक सप्तमाध्याय के हैं । अतः दीर्घादि कार्य करने में न लोप असिद्ध है । मानो इन दीर्घादि विधायक सूत्रों की दृष्टि में न लोप हुआ ही नहीं है । अतः अदन्त नहीं है । किन्तु नकारान्त है अतः दीर्घादि नहीं होंगे, यूषभ्याम्, यूषभिः इत्यादि । सप्तमी एकवचन में ङि, यूषन् ङि इस स्थिति में ङ् इत्, भसंज्ञा, अल्लोपोऽनः प्राप्त था

त्यादि। **विभाषा ङिश्योः** ।६।४।१३६। अन्नन्तस्याकारस्य लोपो वा स्यात्, ङिश्योः परयोः। यूष्णि, यूषणि। पक्षे रमवत्। द्वयोरह्नोर्भवो द्व्यह्नः। **संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याहन्नन्यतरस्यां ङौ** ।६।३।११०। द्व्यह्नि द्व्यहनि, द्व्यह्ने। एवम्, व्यह्नि, व्यहनि, व्यह्ने। सायाह्नि, सायाहनि, सायाह्ने। इत्यदन्ताः। विश्वपाः। नादिचि। विश्वपौ,विश्वपाः।

(विभाषेति) अन्नन्त अकार का विकल्प से ङि और शी—नपुंसक लिङ्ग के प्रथमा द्वितीया के द्विवचन की 'शी'—के परे लोप हो, तो ङि के परे अकार का लोप हो गया, रषाभ्याम् से या 'अट् कुप्वाङ्' से न को ण। यूष्णि, अल्लोपाभाव में यूषणि। जहाँ यूष को यूषन् आदेश नहीं होगा, वहाँ राम शब्दवत्, यूषे, द्व्यह्न शब्द, राम शब्द वत्। द्व्यह्नः, द्व्यह्नेन, रेफषकार नहीं है, अतः णकार नहीं होगा। सप्तमी एकवचन ङि।

(संख्येति) संख्यावाचक शब्द एवं वि अथवा साय जिसके पूर्व में हैं, ऐसे अह्न शब्द को अहन् आदेश हो, ङि के परे। यहाँ संख्यावाचक द्विशब्द पूर्व में है, अतः अह्न शब्द को अहन् आदेश हो गया, 'विभाषा ङिश्योः' से अन् के अकार का लोप हो गया, द्व्यह्नि, लोपाभाव में द्व्यहनि, और जहाँ अहन् आदेश ही नहीं हुआ वहाँ आद्गुणः, द्व्यह्ने। एवम् संख्यावाचक, त्र्यह्नि, त्र्यहनि, त्र्यह्ने, इत्यादिक भी जानना, विपूर्वक में व्यह्नि, व्यहनि, व्यह्ने, सायपूर्वक में भी सायाह्नि, सायाह्ने, पूर्ववत् जानना। इत्यदन्ताः।

आकारान्त विश्वपा शब्द है, विश्वं पाति रक्षति, पा धातु है, विच्, हलन्त्यम्, उपदेशेजनुनासिक इत्, वेरपृक्तस्य, विश्वपाः रुत्व विसर्ग। द्विवचन में 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्ण दीर्घ, 'औ' और 'आ' मिल कर आकार प्राप्त था, नादिचि से पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध होगा, वृद्धिरेचि, विश्वपौ, राम शब्दवत्, विश्वपाम्, विश्वपौ। विश्वपा—वास्, इव स्थितमें।

आतो धातोः ।६।४।१४०। आकारान्तस्य धातोर्भस्याङ्गस्य लोपः स्यात्। अलोऽन्त्यस्य । विश्वपः, विश्वपा । विश्वपाभ्यामित्यादि । एवं शंखध्मादयः । आत इति योगविभागादधातोरप्याकारलोपः कचित् । क्त्वः,श्नः। इत्यादन्ताः । हरिः । प्रथमयोः पूर्वसवर्णः हरी । जसि च ।७।३।१०९।

(आतो इति) आतः यह धातोः का विशेषण है, आदन्त धातु सम्बन्धी भसंज्ञक अङ्ग का लोप हो, यचि भम् से अजादि स्वादि के परे भसंज्ञक । अलोन्त्यस्यसे आकार का लोप । विश्वपः। तृतीया में, विश्वपा विश्वपाभ्याम् विश्वपाभिः । इत्यादि रूप पूर्वोक्त प्रक्रिया से जानना । इसी तरह शंखध्माः, शंखध्मौ इत्यादिक विश्वपा के समान सब विभक्तियों में जानना । 'आतो धातोः' सूत्र का योगविभाग करना । आतः, यह पृथक् सूत्र पढ़ना । आदन्त भसंज्ञक अङ्ग का लोप हो । यहाँ धातु का उपादान नहीं है अतः अधातु आकार का लोप होगा, जैसे क्त्वा शब्द का षष्ठी एकवचनमें क्त्वः, श्ना शब्द का श्नः। समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् । हलः श्नः शानज् झौ । इत्यादिक में आकार का लोप होता है । पुनः 'धातोः' पृथक् पढ़ेंगे । आकारान्त धातु के अङ्ग का लोप हो । इससे अधातु आकार का क्वाचित्क ही लोप होगा । अतः हाहा शब्द में हाहान् हाहा हाहै इत्यादि में नहीं होगा, यथास्थान दीर्घ वृद्धि होगी । इत्यादन्ताः।

इकारान्त हरि शब्द है । सु उकार इत्, रुत्वविसर्ग। हरिः। द्विवचन, हरि औ। प्रथमयोः पूर्वसवर्ण दीर्घ, हरी। बहुवचन में, हरि जस् इस स्थितिमें।

(जसीति) ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण हो । तालुस्थान। इकार को कण्ठतालु स्थानीय एकार गुण होगा, एवम्, उकार को ओकार गुण होगा । एचोऽयवायावः से अयादेश, हरयः । संबोधन में, हे हरि सु। एङ् ह्रस्वात् से सु लोप प्राप्त था, उसको परत्वात् नित्यत्वात् बाधकर

टिप्पण—गुण—इकारान्त, उकार में ही होगा, अकारान्त में फल नहीं । ऋकारान्त में ऋतो ङिसर्वनाम स्थानयोः से गुण होता ही है, तदन्तगत् जस् आ जाता है ।

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः स्याज्जसि परे। हरयः। ह्रस्वस्य गुणः।७।३।८ संबुद्धौ। एङ्ह्रस्वादिति संबुद्धिलोपः। हे हरे। हरिम्। हरी, हरीन्। शेषो घ्यसखि।१।४।७। अनदी संज्ञौ ह्रस्वाविदुतौ घिसंज्ञौ स्तः। आङो नाऽस्त्रियाम्।७।३।१२०। घेः परस्येत्यर्थः। आङिति टासंज्ञा प्राचाम्। हरिणा। घेर्ङिति।७।३।१११०। घिसंज्ञस्य ङिति सुपि गुणः स्यात्। हरये। ङसिङसोश्च।६।१।११०। एङो ङसिङसोरति परे पूर्वरूपमेकादेशः

(ह्रस्वेति) ह्रस्वस्य गुणः। संबुद्धौ च, संबुद्धि की अनुवृत्ति होगी, तो यह अर्थ होगा, ह्रस्व को गुण हो, सम्बुद्धि के परे, तो इकार को ए कार गुण हो गया। 'एङ् ह्रस्वात्संबुद्धेः' संबुद्धि सु का लोप होगा। हे हरे, हे हरी, हे हरयः। पूर्ववत्। हरिम्, हरी, हरीन्। राम शब्दवत्। तृतीया के एक बचन में हरि टा, इस स्थिति में—

(शेष इति) 'उक्तादन्यः शेषः' कहने से जो बाकी रहे, अर्थात् अवशिष्ट रहे वह शेष है। प्रकृत में नदी संज्ञा से अवशिष्ट, सखि शब्द वर्जित ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द घिसंज्ञक हो। घिसंज्ञक होने से

(आङ् इति) 'घि' की अच्चघेः से अनुवृत्ति है। घिसंज्ञक परे जो आङ् उसको 'ना' आदेश हो, स्त्रीलिङ्ग में नहीं। प्राचीन आचार्य आङ्, यह टा विभक्ति की संज्ञा मानते हैं। उसी से यह व्यवहार किया है, तो, 'टा' को ना आदेश हो गया। 'अटकुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' अट् प्रत्याहारान्तर्गत इकार से व्यवधान होने पर भी रेफ से पर न कार को णकार हो गया। हरिणा, हरिभ्याम् हरिभिः। हरि ङे इस स्थिति में,

(घेर्ङित्तीति) घिसंज्ञक को ङित् सुप् के परे गुण हो। तो 'इ' को एकार गुण हो गया, एचोऽयवायावः से अयादेश, हरये। हरि-ङसि, लशक्वतद्धिते, से ङ इत्, उपदेशेऽजनु० से इकार इत्। 'घेर्ङिति' से एकार गुण। हरे-अस्।

(ङसिङसोरिति) एङ् से पर अर्थात् एकार ओकार से ङसिङस् के आकार के पर होने पर पूर्वपर के स्थान में पूर्वस्य एकादेश हो। तो एकार और अकार मिलकर एकार हो गया। ससजुषोरुः। खरवसा-

नयोर्विसर्जनीयः। हरेः। एवम् षष्ठी एक बचन में पूर्ववत् साधुत्व है।

स्यात् । हरेः, हर्योः, हरीणाम् । **अच्च घेः** ।७।१।११९। ङेरौत्स्यात्, घेरच्च । हरौ, हर्योः, हरिषु । एवं श्रीपत्यग्निरविकव्यादयः । **अनङ् सौ** ।७।३।९३। सख्युरङ्गस्यानङ् स्यादसंबुद्धौ सौ परे । **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** ।१।१। ६५। **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** ।६।४।८। नान्तस्योपधाया दीर्घःस्यात्

हरेः । द्विवचन में, इको यणचि, हर्योः । बहुवचन में, हरि-आम्, ह्रस्वनद्यापो नुट् । उटौ इतौ । नामि से पूर्व में इकार को दीर्घ । अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि से नकार को णकार, हरीणाम्, हरि-ङि

(अच्चघेः इति) ङेराम्नद्याम्नीभ्यः, से ङे की 'इदुभ्याम्' से इत् उत् की, औत् से औकार की अनुवृत्ति है । तो यह अर्थ होगा । ह्रस्व इकार उकार से उत्तर जो ङि उसको औकार आदेश हो, और घिसंज्ञक-इकार अथवा उकार को अकार हो, तो इकार को अकार हो गया । वृद्धिरेचि से अकार-औकार को औकार । हरौ । हर्योः । आदेशप्रत्यययोः से षकार, हरिषु । इसी प्रकार श्रीपति, अग्नि, रवि, कवि, इकारान्त शब्दों का साधुत्व जानना । पति शब्द का समास में हरि शब्दवत् साधुत्व केवल पति शब्द का नहीं, यह आगे कहेंगे । सखि शब्द । सखि इस स्थिति में ।

(अनङिति) 'सख्युरसंबुद्धौ' की अनुवृत्ति है । तो यह अर्थ होगा—अङ्गसंज्ञक सखि शब्द को अनङ् आदेश हो संबुद्धि भिन्न सु के परे, अलोऽन्त्यस्य से अन्त को प्राप्त उस को 'अनेकाल् शित्सर्वस्य' से अनेकाल् होने से सर्वादेश प्राप्त था । उसको 'ङिच्च' अपवादत्वेन बाधकर अन्त इकार को अनङ् । ङकार हलन्त्यम् से, नकारोत्तर अकार उपदेशेऽजनुनासिक इत् ! इत् तस्य लोपः

(अलोऽन्त्यादिति) 'अन्त्यात् अलः पूर्वः उपधा । अन्त में विद्यमान जो वर्ण है उस से पूर्व वर्ण उपधा संज्ञक होता है । सखन् में यहाँ सखन् इस प्रातिपदिक के अन्त में विद्यमान नकार है उससे पूर्व वर्ण अकार है, उस की उपधा संज्ञा होगी ।

(सर्वेति) 'नोपधायाः' को, 'ढ्रलोपे' से दीर्घ की अनुवृत्ति है, तो

संबुद्धौसर्वनामस्थाने परे। इत्युपधादीर्घः। अपृक्त एकाल्प्रत्ययः।१।२।४१। हल्ङ्याभ्यो दीर्घात सुतिस्यपृक्तं हल्।६।१।६८। इति स् लोपः। नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपः। सखा। हे सखे! सख्युरसंबुद्धौ।७।१।९२। सर्वनामस्थानपरे णित्कार्यं स्यात्। अचोञ्णिति।७।२।११५।

अर्थ होगा, नान्तशब्द की उपधा को दीर्घ हो, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान के परे। तो खकारोत्तरवर्ती उपधा अकार को दीर्घ हो गया।

(अपृक्त इति) एकाल् प्रत्ययः अपृक्तः। एकश्चासौ अल् एकाल्, यह कर्मधारय समास है। एक अल्स्वरूप अर्थात् अल् प्रत्याहार अ से ह पर्यन्त है तो एक मात्र वर्ण रूप जो प्रत्यय है वह अपृक्त संज्ञक है, तो प्रकृत में एक वर्णरूप-'स्' है उस की अपृक्त संज्ञा है,अपृक्त संज्ञक होने से,

(हल्ङ्येति) दीर्घात् यह ङी आप् का ही विशेषण है, क्योंकि दीर्घ हल् का असंभव है, तो यह अर्थ होगा, हलन्त से पर अथवा दीर्घ ङी आप् से पर सु-ति-सि. एतत्सम्बन्धी अपृक्त हल् वह लुप्त हो जाता है, अर्थात् उसका लोप हो जाता है, इससे सु के सकार का लोप हो गया। नलोपः प्रातिपदिकस्य से प्रातिपदिकान्त सखान् के नकार का लोप हो गया, सखा। सखि-औ इस स्थिति में।

(सख्युरिति) 'इतोऽत्सर्वनामस्थाने' से सर्वनामस्थान की अनुवृत्ति है। 'गोतोणित्' से'णित्' की अनुवृत्ति है, तो यह अर्थ होगा, अङ्ग-संज्ञक सखि शब्द से पर सम्बुद्धिवर्जित जो सर्वनाम स्थान है वह णित् हो, अर्थात् णिद्वत् हो, तो—

(अचो इति) 'मृजेर्वृद्धिः' से वृद्धि पद की अनुवृत्ति है, ञित् ञकारेत्संज्ञक, णित्-णकारेत्संज्ञक, प्रत्यय के परे अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो, तो णिद्वत् होने से औ इत्यादि सर्वनामस्थान विभक्तियाँ णित् हैं अतः उनके परे इ कार को 'एदैतोःकण्ठतालु' तालुस्थानीय

टिप्पणी—हल्ङ्याभ्यो में प्रथम हल् ग्रहण नहीं करना क्यों कि संयोगान्तस्य लोपः से सकार लोप हो जायगा। परं तु संयोगान्त लोप को असिद्ध होने से न लोप नहीं होगा।

ञिति णिति च परेऽजन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् । सखायौ, सखायः, सखायम्, सखायौ । घिसंज्ञाऽभावान्न तत्कार्यम् । सख्या सख्ये । ख्यत्यात्परस्य ।६।१।११२। ङसिङसोरत उत्स्यात् । सख्युः सखीनाम् । औत् ।७।३।११८। इदुद्भ्यां परस्य ङेरौत्स्यात् । सख्यौ, शोभनः सखा, सुसखायावित्यादि ।

सखायः, सखायम्, सखायौ, शस् के परे हरि शब्दवत्, सखीन् । 'टा' 'ङे' के परे 'शेषोघ्यसखि' से सखि शब्द से भिन्न इकारान्त की घिसंज्ञा होती है, अतः यहाँ घिसंज्ञा नहीं होगी । इको यणचि से यण् । सख्या, सख्ये । हलादि में हरिवत् । भिस्-भ्यस् में रुत्वविसर्ग । हरि ङसि इस स्थिति में । ङ कार-इकार इत् । सखि-अस् । इको यणचि से यण् । सख्य् अस् । इस स्थिति में ।

(ख्यत्यादिति) 'एङः पदान्तादति' से अत् की अनुवृत्ति । 'ङसिङसोश्च' से 'ङसि ङस्' की, ऋत उत् से उकार की 'ख्य त्य' ये ह्रस्व खिति शब्द से बने हों, अथवा दीर्घ खीती शब्द से बने हों । ख्य-त्य हो । तो यह अर्थ होगा—ख्य-त्य, पर ङसि ङस् संबन्धी जो अकार उस को उकार हो । तो यहाँ ख्य् से पर ङसि ङस् का अकार है, उसको उकार हो गया, रुत्व विसर्ग, सख्युः, 'इको यणचि' सख्योः, सखीनाम् । ह्रस्वनद्यापो नुट् । नामि । 'शेषोघ्यसखि' से असखि है, अतः सखि की घि संज्ञा नहीं होगी । तो सखि ङि इस स्थिति में ।

(औत्) ङेः इत् उत् की अनुवृत्ति, उकारानुवृत्ति उत्तरार्थ है । तो यह अर्थ होगा । इत् उत् से उत्तर जो ङि है उसको औकार हो; 'इकोयणचि' से यण्, सख्यौ । सम्बोधन में 'संबुद्धि' से अतिरिक्त में अनङ् आदेश होता है, अतः अनङ् नहीं होगा, 'ह्रस्वस्य गुणः' एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः । हेसखे हेसखायौ, हेसखायः । पूर्ववत् , सख्युरसंबुद्धौ, अचोञ्णिति, 'एचोऽयवायावः' । शोभनः सखा, सुसखि, 'कुगति प्रादयः' से समास, 'राजाहःसखिभ्यस्टच्' से टच् नहीं होगा । क्योंकि 'नपूजनात्' से निषेध हो जायगा । 'अङ्गस्य' का अधिकार है, अतः 'येन विधिस्तदन्तस्य' से तदन्तविधि होगी । तो सखि शब्द को, और

पराङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च

समुदायस्य सखिरूपत्वाभावादसखीति निषेधाप्रवृत्तेर्घिसंज्ञा। सुसखिना, ऐकार वृद्धि, एचोऽयवायावः से ऐकार को आयादेश। सखायौ, एवम्, सुसखये। एवमतिसखा, अतिसखायौ, परमः सखा यस्येति परमसखा, परमसखायावित्यादि। सखीमतिक्रान्तोऽतिसखिः। लिङ्गविशिष्टपरिभाषाया

सखि शब्दान्त को भी अनङ् णिद्वद्भाव होंगे, अतः पूर्ववत्, अनङ् सुलोप, दीर्घ, न लोप। सुसखा, पूर्ववत्, णिद्वत्, वृद्धि. आयादेश, सुसखायौ, सुसखायः। सुसखीन्। सुसखि-टा, इस स्थिति में 'शेषोध्य-सखि' से घिसंज्ञा। यद्यपि असखि से-सखि भिन्न की घि संज्ञा होती है, यहाँ सखि है, परं तु 'सुसखि' यह समुदाय सखिस्वरूप नहीं है, अतः सूत्र में 'असखि' इससे घिसंज्ञा का निषेध नहीं होगा, तो घि संज्ञा होने से आङो नाऽस्त्रियाम्' से ना आदेश. घेर्ङिति से गुण होगें, सुसखिना, ससुखये, ङसिङसोश्च से पूर्वरूप, सुसखेः, अच्चघेः, सुसखौ। एवम्, अतिशयितः, सखा अतिसखा, अतिसखायौ अतिसखायः, अतिसखिना, अतिसखये, इत्यादि, सुसखि शब्दवत् जानना। परमश्चासौ सखा, इस विग्रह में परमसखः, 'राजाहःसखिभ्यस्टच' से टच् होने से राम शब्दवत् रूप होंगे, 'न पूजनात्' से टच् का निषेध क्यों नहीं होगा, "स्वतिभ्यामेव" यह नियम है, यहाँ परम पद है। परमः सखा यस्य इस विग्रह में परम सखा, परमसखायौ, यहाँ तत्पुरुष समास नहीं है, किन्तु बहुव्रीहि है, अतः टच् नही होगा, अनङ् णिद्वद् भाव गौण में भी होंगे, समुदाय 'परमसखि' यह रूप है अतः 'असखि' यह घि संज्ञा का निषेध नहीं करेगा। परमसखये, परमसखेः, परमसखौ, हरि शब्दवत् रूप होंगे।

सखि इस पुलिङ्ग का स्त्रीलिङ्ग में 'सख्यशिश्वीति भाषायाम्' से ङीष्, 'यस्येति च' से इकार लोप। सखीमतिक्रान्तः, अतिसखिः। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्व। 'प्रतिपादिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' इस परिभाषा से सखी भी सखि है, अतः 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' से टच क्यों नहीं होता है? लिङ्गविशिष्ट परिभाषा, अर्थात् लिङ्गबोधक प्रत्यय विशिष्ट परिभाषा अनित्य है। क्योंकि 'शक्ति

तिपदो- क्तयोः

अनित्यत्वान्न टच् । गोस्त्रियोरिति ह्रस्वत्वे सखिशब्दस्य लाक्षणिकत्वाद ङित्वे न भवतः । लक्षणप्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणात् । पतिः समास ए

लाङ्गलाङ्कुश' इस वार्तिक में 'घट-घटी' दोनों का ग्रहण क्यों किया क्योंकि घट के ग्रहण से 'घटी' का ग्रहण हो ही जायगा, फिर जो ग्रहण किया है, उससे जानते हैं, उक्त परिभाषा अनित्य है । अ टच् नहीं होगा । अस्तु अतिसखि । 'गोस्त्रियो' से ह्रस्व करने पर स शब्द मानकर अनङ् णिद्वद्भाव क्यों नहीं होते ?, 'लक्षण' औ प्रतिपदोक्त के मध्य में प्रतिपदोक्त का ही ग्रहण है, यहाँ सखि श से निष्पन्न लाक्षणिक 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्व होकर सखि श बना है, अतः इसका ग्रहण न होने से अनङ् णिद्वद्भाव नहीं होंगे, हरि शब्दवत्, अतिसखेः, अतिसखीनाम्, अतिसखौ, अतिसख अतिसखिषु, हे अतिसखे, इत्यादि हरिशब्दवत् होंगे । पति श प्रथमा द्वितीया में हरि शब्दवत्, तृतीया के एक वचन में, पति इस स्थिति में, शेषोध्यसखि से घि संज्ञा प्राप्त थी ।

(पतिः इति) पतिः समास एव, यह नियामक है, पति शब्द समास में ही घि संज्ञा हो, तो केवल पति शब्द का घि संज्ञा नहीं होग

टिप्पणी—'पतिः समास एव' में एव ग्रहण क्यों ?, 'पतिः सम इतना ही सूत्र करना था, 'सिद्धे सतिआरभ्यमाणो विधिर्नियम कल्प्यते' 'शेषोध्यसखि' से घि संज्ञा सिद्ध ही थी, फिर इससे घि सं करना नियम करेगा, समासे एव पति शब्दो घिसंज्ञःस्यात्, विपरी नियम क्यों न होगा समासे पति शब्द एव घिसंज्ञः । सख्युरसम्बुद्धे मे असम्बुद्धौ, सरूपाणाम्० मे एक विभक्तौ आदि निर्देश से जानते हैं विपरीत नियम नहीं होगा । फिर एव ग्रहण यह सूचित करता है, क्वचित् असमासेऽपि समासयोग्यतायाँ विग्रह वाक्येऽपि घिसंज्ञा अर्थात् समास में विग्रह वाक्य में भी कहीं-कहीं पति शब्द की घि सं हो जायगी, किन्तु केवल पति शब्द की नहीं । अतः सीतायाः पतये नमः इत्यादि सिद्ध होते हैं ।

।१।४।८। घिसंज्ञः स्यात्। पत्या, पत्ये, पत्युः, पत्यौ। शेषं हरिवत्। समासे भूपतिना। **बहुगणवतुडतिसंख्या** ।१।१।२३। एते संख्या संज्ञाः स्युः। **डति च** ।१।१।२५। डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात्‌ प्रत्ययस्य

अतः टा–ङे–ङसि–ङस्–ङि के परे घि संज्ञा न होने से 'इको यणचि' से यण् होगा, पत्या, पत्ये। ङसि ङस् में यण् होने से 'त्य्' से पर ङसि ङस् का आकार है, अतः ख्यत्यात्परस्य से अकार को उकार हो जायगा, रुत्व विसर्ग, पत्युः। षष्ठी बहुवचन में, 'ह्रस्वनद्यापो नुट्', नामि पती नाम्। सप्तमी एकवचन में, 'औत्' से ङि को औकार, यण्, पत्यौ, अन्य मकारादि ओस् सुप् और संबोधन में हरि शब्दवत् होंगे। भूपति, प्रजापति आदि शब्दों में समास है अतः 'पतिः समास एव' से घि संज्ञा हो जायगी। इसलिये हरि शब्दवत् रूप और साधुत्व होगा। आङोनाऽस्त्रियाम्, भूपतिना, घेर्ङिति, भूपतये, ङसिङसोश्च, भूपतेः २। अच्च घेः भूपतौ इत्यादि हरिशब्दवत् साधुत्व है।

'का संख्या येषाम्' इस विग्रह में 'किमः संख्या परिमाणे डति च' इस से डतिप्रत्यय डित्वात् टिलोप, कति जस्।

(बहुगणेति) बहुगण, ये त्रित्वादि से लेकर परा पर्यन्त संख्यावाचक शब्द 'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्' की वतु प्रत्ययान्त और उक्त डति प्रत्ययान्त संख्या संज्ञक हों। संख्या संज्ञक होने से,

(डति चेति) डति प्रत्ययान्त संख्यासंज्ञक शब्द षट् संज्ञक हो, यहाँ डति प्रत्ययान्त संख्या संज्ञक कति शब्द है तो इसकी षट् संज्ञा हुई। लुक् का स्वरूप कहते हैं—

(प्रत्ययस्येति) प्रत्यय का अदर्शन अर्थात् लुक्–श्लु–लुप इन शब्दों से किया जाता जो प्रत्यय का अदर्शन है वह तत्-तत्संज्ञक होता है, अर्थात् लुक् शब्दों से अदर्शन की लुक् संज्ञा एवं श्लु–लुप् शब्दों से भी जानना। षट् संज्ञा का फल।

(षड्भ्यो इति) षट् संज्ञक से पर जो जस् प्रत्यय अथवा शस् प्रत्यय उसका लुक् हो, अर्थात् उस प्रत्यय का अदर्शन हो। तो सर्

लुक्श्लुलुपः ।१।१।६१। एतैः प्रत्ययादर्शनं तत्तत्संज्ञं स्यात् । षड्भ्यो लुक् ।७।१।२२। जश्शसोर्लुक् स्यात् । कति । प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ।१।१।६२। इति, जसिचेति गुणे प्राप्ते । न लुमताऽङ्गस्य ।१।१।६३। लुमत्ताशब्देन प्रत्ययलोपे अङ्गकार्यं न स्यात् । कति २, कतिभिः, कतिभ्यः कतीनाम् । कतिषु । त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रयः । त्रीन् त्रेस्त्रयः ।७।१।५३। नामि परतः त्रयाणाम् । द्विशब्दो नित्यं द्विवच

संज्ञक कति शब्द से पर जस् अथवा शस् प्रत्यय है, उसका लोप हो जायगा, कति, प्रथमा बहुवचन जस् में ।

(प्रत्यय इति) 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' प्रत्यय का लोप होने पर 'प्रत्यय लक्षणम्' अर्थात् प्रत्यय निमित्तक कार्य हो, याने प्रत्यय को मान कर होनेवाले कार्य होते हैं । तो यहाँ जस् का लोप हुआ है, अतः जस् प्रत्यय निमित्तक 'जसि च' से इकार को एकार गुण प्राप्त था।

(लुमतेति) 'प्रत्ययलोपे०' से उक्त पद की अनुवृत्ति है, लुमान् शब्द से, अर्थात् लुशब्द जिसमें विद्यमान उससे तात्पर्य यह कि लुक्-श्लु-लुप् इन शब्दों से प्रत्यय का अदर्शन होने पर अङ्ग को कार्य नहीं होते हैं तो यहाँ 'षड्भ्योलुक्' से लुक् है, और लुक् यह लुमान् शब्द है अतः लुक् शब्द से जस् प्रत्यय का अदर्शन होने से तन्निमित्तक जसि च से अङ्ग को कति को गुण नहीं होगा, शस् में भी कति । षष्ठी बहुवचन आम्, ह्रस्वनद्यापो नुट्, नामि, कतीनाम् ।

त्रिसंख्या का वाचक त्रि शब्द है, और प्रकृति प्रत्यय का अभेदान्वय है अतः बहुबचन ही होगा, हरि शब्दवत् रूप होंगे। किन्तु षष्ठी बहुवचन में

(त्रेरिति) "त्रेस्त्रयः" त्रि शब्द को त्रय आदेश हो, अनेकाल् त्वात्सर्वादेश होगा, ह्रस्वनद्यापो नुट्, नामि, अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि । त्रयाणाम् । 'त्रेस्त्रयः' यह अङ्गाधिकारस्थ है, अतः "पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य ग्रहणम्" इस परिभाषा से त्रिशब्दान्त का भी ग्रहण होगा, तो प्रियत्रि से, प्रियत्रयाणाम् , एवं परमत्रि से परमत्रयाणाम् होंगे । द्वित्वसंख्यावाचक द्वि शब्द है, प्रकृति-प्रत्यय का अभेदान्वय होता है अतः नित्य द्विवचनान्त है । द्वि औ, इस स्थिति

नान्तः। त्यदादीनामः ।७।३।१०२। द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः। द्वौ २ द्वाभ्याम् ३ द्वयोः २। संज्ञायामुपसर्जने च नात्वम्, सर्वाद्यन्तर्गणकार्यत्वात् नेह द्विर्नाम कश्चित्/औडुलोमिः, औडुलोमी। लोम्नोऽपत्ये बहुष्वकारो वक्तव्यः। उडुलोमाः। औडुलोमी उडुलोमान्। इतीदन्ताः।

(त्यदादीति) 'त्यदादीनामः'। विभक्तौ की अनुवृत्ति है। विभक्ति के परे त्यदादिकों को अकार आदेश हो। 'अलोन्त्यस्य' से अन्त्य इकार को अकार होगा, राम शब्दवत्, द्वौ-द्वौ इत्यादिक होंगे। त्यदादिगण सर्वादिगण के अन्तर्गत है, अतः 'सर्वनाम' इस महासंज्ञाकरण सामर्थ्य से जानते हैं कि संज्ञा और उपसर्जन—गौण, में सर्वादि कार्य नहीं होते हैं। इसी प्रकार तदन्तर्गणस्थ त्यदादि कार्य भी संज्ञा और उपसर्जन में नही होंगे। तो द्वि कि किसी व्यक्ति का नाम होगा, अथवा द्वौ अतिक्रान्तः यह उपसर्जन 'अतिद्वि' शब्द होगा तो त्यदादिगण प्रयुक्त अकारादेश नहीं होगा, किन्तु हरि शब्दवत् रूप होंगे। संज्ञा उपसर्जन में ही सर्वादिगण कार्य का निषेध है, इसी प्रकार त्यदादि भी संज्ञा उपसर्जन में नही होंगे प्राधान्य में हो जायँगे, परमद्वौ इत्यादि जानना।

उडूनि नक्षत्राणि लोमानि यस्येति उडुलोमा, तस्य अपत्यम्। इस विग्रह में उडुलोमन् शब्द से "बाह्वादिभ्यश्च" से इञ्, 'नस्तद्धिते' से टिलोप, 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि वृद्धि, औडुलोमिः, औडुलोमी; हरिशब्दवत्। बहुवचन में, 'लोम्नोऽपत्ये बहुष्वकारो वक्तव्यः' लोमन् शब्द से अपत्य अर्थ में बहुवचन में 'अ' प्रत्यय हो, 'नस्तद्धिते' से टि लोप, उडुलोमाः। ञित् णित्, कित् नहीं है अतः आदि वृद्धि नहीं होगी। औडुलोमिम्, औडुलोमी, उडुलोमान्। एकवचन द्विवचन में हरिशब्दवत् औडुलोमि शब्द होगा, और बहुवचन में उडुलोम शब्द रामशब्दवत् होगा। इति इदन्ताः।

अव्युत्पन्न वातप्रमी शब्द है रुत्व विसर्ग। वातप्रमीः। द्विवचनमें वातप्रमी औ, इस स्थिति में 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' इससे पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त था,

वातप्रमीः, दीर्घाज्जसि च ।६।१।१०५। जसि इचि च न पूर्वसवर्ण-दीर्घः । वातप्रम्यौ, । वातप्रमीम्, वातप्रम्यौ, वातप्रमीन् । वातप्रम्ये । दीर्घ-त्वान्न नुट् । वातप्रम्याम् । ङौ तु सवर्णदीर्घः । वातप्रमी । वातप्रमीषु । एवं ययी पपीत्यादयः । क्विबन्तवातप्रमीशब्दस्य तु अमि शसि ङौ च

(दीर्घादिति) 'दीर्घाज्जसि च' दीर्घ से जस् और चकार से इच् का ग्रहण होने से इच् प्रत्याहार के परे पूर्वसवर्ण दीर्घ न हो, यहां दीर्घ वातप्रमी शब्द से इच् प्रत्याहारान्तर्गत औ परे है, अतः पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होगा, किन्तु 'इको यणचि' से यण् वातप्रम्यौ, जस् में, जस् परे है, अतः पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होगा । वातप्रम्यः । अम् के परे परत्वात् यण् को बाधकर अमि पूर्वः से पूर्वरूप, वातप्रमीम् । वातप्रमी शस्, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्णदीर्घ, तस्माच्छसो नः पुंसि से स् को न् आदेश, वातप्रमीन् । टा इत्यादिकों में इको यणचि से यण्, वातप्रम्या, वातप्रम्ये, इत्यादि होंगे । वातप्रमी आम् , ह्रस्वान्तनद्यन्त नहीं है, अतः नुट् नहीं होगा, किन्तु उक्त सूत्र से यण्, वातप्रम्याम्, सप्तमी एकवचन में वातप्रमी-ङि । 'लशक्वतद्धिते' ङकार इत् । 'इको यणचि' से यण् प्राप्त था, उसको बाधकर 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ । वातप्रमी, "आदेश प्रत्यययोः" वातप्रमीषु । इसी प्रकार औणा-दिक ई प्रत्ययान्त ययी पपी इत्यादि शब्दों के रूप होंगे । पपीः पप्यौ पप्यः । पपीम्, पप्यौ पपीन्, इत्यादि । क्विप् प्रत्ययान्त, प्र-पूर्वक मी धातु हिंसार्थक का वातप्रमी है, तो यहाँ धात्ववयव ईकार है, और असंयोगपूर्वक भी है, वातप्रमी अनेकाच् है अतः वक्ष्यमाण 'एरने-काचोऽसंयोगपूर्वस्य' से यण् होगा । अजादि विभक्तियों में इससे अथवा 'इको यणचि' से यण् करने में कोई भेद नहीं है, किन्तु अम् के परे अमिपूर्वः, शस् में 'प्रथमयोः' से पूर्वसवर्ण दीर्घ, ङि को अकः सवर्णे दीर्घः ये इको यणचि को बाध लेते हैं, अतः वातप्रमीम्, वातप्रमीन्, वातप्रमी रूप औणादिक वातप्रमी के होंगे और क्विबन्त 'मी' धातु से

विशेषः। वातप्रम्यम्, वातप्रम्यः, वातप्रम्यि। एरनेकाच इति वक्ष्यमाणेन यण्। बहुश्रेयसी। हल्ङ्याब्भ्य इति सुलोपः। **यूस्त्र्याख्यौ नदी।१।४।३।** प्रथमलिङ्गग्रहणं च। पूर्वं स्त्रीत्वाख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वम् वक्तव्यमित्यर्थः। **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः।७।३।१०७।** संबुद्धौ ह्रस्वः स्यात्।

निष्पन्न वातप्रमी में 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' इससे यण् अमिपूर्वः आदिकों को बाधकर होंगे। अतः वातप्रम्याम्, वातप्रम्यः, वातप्रम्यि होंगे। अन्य विभक्तियों में समान होंगे।

बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य, 'स्त्रियाः पुंवद्भाषित०' से बह्वी का पुंवद्भाव, बहुश्रेयसी। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से श्रेयसी को ह्रस्व क्यों नहीं होता ?, 'ईयसो बहुव्रीहेर्नेति वाच्यम्' से निषेध हो जायगा। 'कृत्तद्धित समासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा। बहुश्रेयसी-सु, 'हल्ङ्याब्भ्यो' से सुलोप, क्योंकि दीर्घङ्यन्त बहुश्रेयसी है, यद्यपि ङ्यन्त श्रेयसी है, परन्तु 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' से तदन्त बहुश्रेयसी है अतः सुलोप हो जायगा, बहुश्रेयसी। बहुश्रेयस्यौ बहुश्रेयस्यः। सम्बोधन में हे बहुश्रेयसी सु इस स्थिति में—

(यू-इति) 'यूस्त्र्याख्यौ नदी।' 'स्त्री' शब्द से ही स्त्री वाचक का ग्रहण सिद्ध था फिर जो आख्या पद का उपादान किया है वह नित्य स्त्रीलिङ्ग द्योतनार्थ है। "स्त्र्याख्यौ यूनदी" नित्यस्त्रीलिङ्ग 'यू' दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त शब्द नदी संज्ञक हो, यहाँ बहुश्रेयसी यह पुंलिङ्ग है तो नित्य स्त्रीलिङ्ग न होने से नदी संज्ञा कैसे, अतः वार्तिक है। "प्रथमलिङ्गग्रहणं च" प्रथम लिङ्ग ग्रहण भी नदी संज्ञक होता है, अर्थात् प्रथम वह नित्य स्त्रीलिङ्ग हो और फिर उपसर्जन होकर अन्यलिङ्ग हो गया हो तब भी नित्य स्त्रीलिङ्ग मानकर नदी संज्ञक होता है। नदी संज्ञा होने से।

(अम्बार्थेति) अम्बार्थक-संयुक्त-अम्ब-अक्क-अल्ल, और नदी संज्ञकान्त को सम्बोधन में ह्रस्व हो, तो ह्रस्व हो जाने से 'एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' से सुलोप हो जायगा। हे बहुश्रेयसि !, द्वितीया में, बहु-

हे बहुश्रेयसि। बहुश्रेयसीन्। **आण्नद्याः** ।७।३।११२ ङितामाडा-गमः स्यात्। **आटश्च** ।६।१।९०५। अचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। बहुश्रेयस्यै। बहुश्रेयस्याः। **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** ।१।४।२। यणि प्राप्ते नद्यन्तत्वात् परत्वान्नुट्। बहुश्रेयसीनाम्। **ङेराम् नद्याम्नीभ्यः** ।६।३। १०६। नुड् बाध्यते। बहुश्रेयस्याम्। अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः। अति-

---

श्रेयसीम्, अमिपूर्वः। बहुवचन में, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः, तस्माच्छसो नः पुंसि, बहुश्रेयसीन्, यण्। बहुश्रेयस्या। चतुर्थी में बहुश्रेयसी ङे,

(आणिति) आट् नद्याः। घेर्ङिति से ङिति की अनुवृत्ति है। 'तस्मादित्युत्तरस्य' से पर ङित् वचन के आट् होगा, तो यह अर्थ होगा। नदी संज्ञक से पर ङित् वचन के आट् का आगम हो। टित् होने से "आद्यन्तौ टकितौ" से ङे के आदि में आ.ट् हुआ।

(आटश्चेति) अचि और वृद्धि की अनुवृत्ति है, आट् से अच् पर होने से पूर्व पर के स्थान में वृद्धिरूप एक देश हो। 'आ' 'ए' मिलकर ऐकार वृद्धि। यण्। बहुश्रेयस्यै, एवम् बहुश्रेयस्याः, बहुश्रेयस्योः। बहुश्रेयसी आम्, इस स्थिति में नद्यन्तत्वात्,नुट्, और इको यणचि से यण् प्राप्त था।

(विप्रतीति) 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' अन्यत्र-अन्यत्र लब्धावकाशों की युगपत्—एक साथ प्राप्ति होने पर अग्रिम सूत्र से विहित कार्य होता है, तो यहाँ यण् विधायक सूत्र से 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' यह नुट् विधायक पर है, अतः परत्वात् नुट् होगा। उटावितौ, बहुश्रेयसीनाम्। सप्तमी के एकवचन में, बहुश्रेयसी-ङि इस स्थिति में।

(ङे रामिति) 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' ङेः आम्। नद्यन्त आबन्त नी शब्द से पर ङि को आम् हो। यहाँ 'प्रथमलिङ्गग्रहणं च' से नदी संज्ञा हुई है अतः नद्यन्त बहुश्रेयसी है उससे पर ङि को आम् हो गया। आम् होने के बाद 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् प्राप्त था, उसको परत्वात् 'आण् नद्याः' से बाधकर आट् हो गया, 'आटश्च' से वृद्धि एकादेश। यण्। आम् करने के अनन्तर भी नुट् क्यों नहीं होता !, "विप्रतिषेधेन यद् बाधितं तद् बाधितमेव" विप्रतिषेध से जिसका बाध हो जाता है, वह बाधित ही

लक्ष्मीः। शेषं बहुश्रेयसीवत्। कुमारीमिच्छन् आचरन् वा ब्राह्मणः कुमारी। क्यजन्तात् आचारक्विबन्ताद् वा कर्तरि क्विप्। हल्ङ्याब्विति सुलोपः। अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ।६।४।७७। अजादौ स्तः, इति प्राप्ते। एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य।६।४।८२। यण् स्याद-जादौ प्रत्यये परे। कुमार्यौ कुमार्यः। अमि शसि कुमार्यम्, कुमार्यः। कुमार्यै। कुमारीणाम्, कुमार्याम्। एवं प्रधीः। प्रध्यौ प्रध्यम् प्रध्यः इत्यादि। असंयोगपूर्वस्य धात्ववयवस्यैवात्र ग्रहणादिह स्यादेव। उन्न्यौ

रहेगा, बहुश्रेयस्याम्। लक्ष्मीम् अतिक्रान्तः इस विग्रह में अतिलक्ष्मी शब्द से सु प्रथमा का एकवचन, रुत्व विसर्ग। अतिलक्ष्मीः। 'हल् ङ्याभ्यो०' से सुलोप क्यों नहीं होता, यहाँ ङ्यन्त ईकार नहीं है, किन्तु 'लक्षेरीमुट् च' से औणादिक ईकार, अवशिष्ट सब विभक्तियों में बहुश्रेयसी शब्द के सदृश रूप होंगे।

कुमारीम् इच्छन् यहाँ 'सुपआत्मनः क्यच्' से क्यच्। कुमारी इवा-चरति यहाँ 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः' इसक्विप्, फिर कर्ता में क्विप्। लोपो व्योर्वलि से यलोप, 'वेरपृक्तस्य'से व लोप, कुमारी सु, ङ्यन्त होने से हल्ङ्याब्भ्यो से सुलोप कुमारी, पुरुषः। कुमारी-औ इस स्थिति में।

(अचीति) अचिश्नु धातुभ्रुवां य्वोरिङुवङौ, अचि यह सप्तमी है, अतः, 'यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे' से अजादौ यह अर्थ होगा, तो यह होगा, श्नु प्रत्ययान्त अथवा इवर्णान्त उवर्णान्त, धातुसंबन्धी अथवा भ्रूशब्दकी इकार उकार को इयङ् उवङ् हों। यथासंख्यमनुदेशः समानाम्, से इकार को इयङ् उकार को उवङ् होंगे, ङित् होने से ङिच्च से अन्य को होंगे, एवम् ईकार को इयङ् प्राप्त था।

(एरिति) एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य। अचिश्नुधातुभ्रुवाम्से धातु की अनुवृत्ति फिर, धातोः की आवृत्ति है। अवयवावयविभाव में षष्ठी है, दूसरा धातोः स्थान षष्ठ्यन्त है तो यह अर्थ होगा, धातु के अवयवों का संयोग

नोट—अवी तन्त्री-तरी-लक्ष्मी-धा-ह्री-श्रीणामुणादिषु, सप्त स्त्रीलिङ्ग शब्दानां न सुलोपः कदाचन। 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' के स्थान में एरनेकाचोऽसंयोगात् सूत्र निर्दोष सुवच है।

जिस इकार से पूर्व न हो, ऐसी एः—इवर्णान्त जो धातु तदन्त अनेकाच् अङ्गको यण् हो, अजादि प्रत्ययके परे। निष्कर्ष यह है, कि—इकार ईकार से पूर्व धात्ववयव संयुक्त न होने पर अनेकाच् शब्द को यण्, और इसके विपरीत में इयङ् उवङ्। तो कुमारी शब्द के ईकार से पूर्व कोई संयोग नहीं हैं, और तीन अच् हैं अतः अनेकाच् है, तो ईकार को यकार हो गया। कुमार्यौ, कुमार्यः। अम् के परे 'अमिपूर्वः' को, और शस् के परे 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' को परत्वात् यण् विधायक एरनेकाचो० और इयङ् उवङ् विधायक 'अचिश्नुधातुभ्रुवाम्०' बाध लेंगे। तो ई—को य हो गया। कुमार्यम्। यण् रुत्वविसर्ग, कुमार्यः। कुमारी, चतुर्थी के एक वचन में ङे। 'प्रथमलिङ्गग्रहणं च' प्रथम कुमारी यह स्त्रीलिङ्ग था, इस समय क्विबादि के योग होने से उपसर्जन हो जाने पर भी नदी संज्ञा हो जायगी। नदीत्वात्' 'आण्नद्याः' से आट्। 'आटश्च' से वृद्धि पूर्व पर के स्थान में ऐकार, 'एरनेकाचो' से यण्, कुमार्यै, कुमार्याः, पूर्व वत्, कुमारी आम् इस स्थिति में 'प्रथमलिङ्ग ग्रहणं च' प्रथम स्त्रीलिङ्ग था, इस समय उपसर्जन होकर पुंलिग हो गया है।

तब भी ईदन्त नित्यस्त्रीलिङ्ग मानकर 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' से नदी संज्ञा हो जायगी। नद्यन्त होने से 'ह्रस्वनद्यापो नुट्। उटावितौ। नकार को 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से अट् प्रत्याहारान्तर्गत ईकार के व्यवधान होने पर भी नकार को णकार हो गया, कुमारीणाम्, सप्तमी के एकवचन में कुमारी-ङि इस स्थिति में प्रथमलिङ्गग्रहणं च से नदी संज्ञक होने से ङेराम् नद्याम् नीभ्यः से ङि को आम्, 'आण्नद्याः' से आट्। 'आटश्च' से वृद्धि 'एरनेकाचो०' से यण्, कुमार्याम्। इसी प्रकार प्रधी शब्द के भी रूप जानना। अनेकाच् होने से 'एरने-काचोऽसंयोगपूर्वस्य' से यण्, प्रध्यौ प्रध्यः। अम् शस् के परे पूर्व वत् परत्वात् यण्, प्रध्यम्, प्रध्यः इत्यादि।

इकार से पूर्व धातु के अवयवों का संयोग न हो ऐसा कहने से उपसर्ग के अवयवों से संयोग होने पर भी असंयोग पूर्व ही ईकार है क्योंकि धातु कहने से धातु मात्र के अवयवों की असंयोगपूर्वता अभि-मत है, अतः उन्नी। यहाँ यद्यपि ईकार से पूर्व ...

उन्यः। इह तु न सुश्रियौ, यवक्रियौ। गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते। *। शुद्धधियौ, परमधियौ। कथं तर्हि दुर्धियः, वृश्चिकभियः इत्यादि। उच्यते। यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञाः स्युरित्युक्तेः। दुःस्थिता धीर्येषामिति विग्रहे दुरित्यस्य धीशब्दं प्रति गति-

---

नकार नकार का संयोग है परंतु दोनों नकार धातु के नहीं हैं, किन्तु एक 'यरोऽनुनासिके' से उत् उपसर्ग के दकार से जन्य है और एक नी धातु के, एवम् धात्ववयवमात्र संयोग पूर्व में नहीं है, किन्तु उद् उपसर्ग के अवयव सहकृत् है, अतः धात्ववयवासंयोगपूर्वक ईकार को यकार हो जायगा, उन्न्यौ, उन्न्यः इत्यादि। और जहाँ केवल धात्ववयवों का संयोग ईकार से पूर्व है वहाँ असंयोग पूर्वक न होने से यण् न होगा, किन्तु 'अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' से ईकार को इयङ् हो जायगा, जैसे सुश्रीऔ, यहाँ शकार रेफ् का संयोग ईकार से पूर्व है और 'श्रिञ्' धातु के अवयव हैं, अतः इयङ् आदेश, अजादि के परे, सुश्रियौ, सुश्रियः, सुश्रियम्, इत्यादि, एवम्, यवक्री औ, ककार रेफ् का संयोग है अतः इयङ् होगा, यवक्रियौ यवक्रियः इत्यादि। शुद्धा चासौ धीः यदि वा शुद्धाधीर्यस्येति शुद्धधीः, परमा चासौ धीः परमा धीर्यस्येतिवा परमधीः, इस कर्मधारय या बहुव्रीहि समास में द्विवचन की विवक्षा में शुद्धे च ते धियौ, शुद्धधी औ इस स्थिति में असंयोगपूर्वक अनेकाच् होने से यण् प्राप्त था।

(गतीति) गतिसंज्ञकः 'उपसर्गाः क्रियायोगे' गतिश्च से गति संज्ञक अर्थात् प्रादिक अथवा कारक, कर्त्ता कर्म करण संप्रदान अपादान अधिकरण, इनसे अन्य यदि धातु से पूर्व होगा तो यण् नहीं होगा। यहाँ शुद्ध पद न गतिसंज्ञक है और नाहीं कारक है, अतः गति कारक से इतर शुद्ध पूर्व है अतः यण् नहीं हुआ इयङ् हो गया। शुद्धधियौ, एवम् परमधियौ में भी जानना और यदि शुद्धं ध्यायति यह विग्रह करेंगे तो यण् हो जायगा। शुद्धध्यौ इत्यादि। क्योंकि कर्मकारक पूर्व में है।

प्रश्न यह होता है कि दुर्धियः, वृश्चिकभियः यहाँ यण् क्यों नहीं? क्योंकि

त्वमेव नास्ति। वृश्चिकभिय इत्यत्र तु बुद्धिकृतमपादानत्वं न विवक्षितम्। वृश्चिकसंबन्धिनी भीर्वृश्चिकभीरित्युत्तरपदलोपो वा। न भूसुधियोः ।६।४।८५। यण् न स्यादचि सुपि। सुधियौ, सुधियः। इत्यादि। सखाय-

---

दुर्धियः में दुर् यह उपसर्ग है अतः गतिसंज्ञक है एवम् वृश्चिकाद्भीः वृश्चिकभीः, यहाँ वृश्चिकात् यह पञ्चम्यन्त कारक पूर्व में विद्यमान है। क्योंकि गतिसंज्ञक अथवा कारक पूर्व में होने से यण् ही होता है। उत्तर-यह ठीक है, परंतु दुर्धी शब्द में दुर् यह धीशब्द के साथ गतिसंज्ञक नहीं है, क्योंकि दुःस्थिता धीर्येषां ते, इस विग्रह में दुर् उपसर्ग का स्था से योग है, और यह नियम है कि "यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञाः स्युः" जिस क्रिया से युक्त प्रादिक होंगे वे उस क्रिया के ही साथ गतिसंज्ञक अथवा उपसर्गसंज्ञक होंगे। यहाँ दुःस्थिता धीर्येषाम् इस विग्रह में स्था के साथ दुर् उपसर्ग का योग है अतः धी शब्द के साथ दुर् उपसर्ग की गति संज्ञा ही नहीं है, वृश्चिकभियः, यहाँ भी अपादानत्व नहीं है, क्योंकि जैसे 'वृक्षात् पर्णम् पतति' यहाँ वृक्ष का और पर्ण का संयोग है और संयोगपूर्वक विभाग-पृथक् होने को अपादान कहते हैं, तो यहाँ वृश्चिकभियः में वृश्चिक का भियः के साथ संयोग ही नहीं है अतः अपादान संज्ञा नहीं हो सकती। बुद्धिकृत अपादानत्व मानकर आरोपित अपादानत्व है, अतः फिर भी यण् प्राप्त है अतः दूसरा समाधान कहते हैं, वृश्चिकस्य सम्बन्धिनी वृश्चिकसंबन्धिनी वृश्चिकसम्बन्धिनी भीः, शाकपार्थिवत्वात् सम्बन्धिनी पद का लोप हो जायगा, अतः पञ्चम्यन्त अपादान पूर्व में नहीं है, किन्तु वृश्चिकस्य यह षष्ठ्यन्त पूर्व में है और षष्ठ्यन्त कारक नहीं है यह बता आये हैं। सुष्ठु ध्यायति इस विग्रह में सुधी औ इस स्थिति में एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य से यण् प्राप्त था।

(न भू सुधियोरिति) अजादि सुप् के परे भू और सुधी शब्द को यण् न हो। अतः 'अचिश्नुधातुभ्रुवाम्' से इयङ्; ङित्त्वात्, ङिच्च से अन्त्य ईकार को इयङ्। ङकार अकार हलन्त्यम्, उपदेशेऽजनुनासिक इत् सुधियौ, सुधियः इत्यादिक जानना।

मिच्छति सखीयति। ततः क्विप्। अल्लोपयलोपौ। अल्लोपस्य स्थानिवत्वाद् यणि प्राप्ते। क्वौ लुप्तं न स्थानिवत्। एकदेशविकृतस्यानन्यतया अनङ् णित्वे भवतः। सखा, सखायौ, सखायः। हेसखीः। अमि पूर्वरूपात्परत्वाद् यणि प्राप्ते ततोऽपि परत्वात्सख्युरसम्बुद्धाविति प्रव-

---

सखायमिच्छति, इस विग्रह में सखिशब्द से 'सुप आत्मनः क्यच्' से क्यच्, अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' से दीर्घ। सखीय की 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातु संज्ञा। 'क्विप् च' से क्विप्। 'अतोलोपः' से अल्लोप, 'लोपो व्योर्वलि' से यलोप, हलन्त्यम्, लशक्वतद्धिते, उपदेशेऽजनुनासिक इत् वेरपृक्तस्य से वलोप, सखी शब्द की कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा। 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' से अल्लोप का स्थानिवद् भाव मानकर इकोयणचि से यण् प्राप्त था। 'क्वौ लुप्तं न स्थानिवत्' क्विप् प्रत्यय के परे लोप होने पर स्थानिवद्भाव नहीं होता' यहाँ सखीय के यकाराकार का लोप हुआ है अतः स्थानिवद्भाव नहीं होगा, अतः यण् नहीं होगा, तो सखी सु इस स्थिति में अनङ् सौ इससे ङित्त्वात् सखी के ईकार को अनङ्। प्रश्न यह होता है कि यहाँ सखी है सखि शब्द नहीं है तो अनङ् आदि कैसे? उत्तर-'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति' एक देश से विकृत न्यूनता से अथवा आधिक्य से हो जाय तो अन्यवत् अर्थात् अन्य नहीं होता, यदि घोड़े की पूँछ काट दी जाय तो भी घोड़ा ही रहेगा, अन्य नहीं होगा। एवम् यदि किसी मनुष्य के छ अंगुली हो जाँय तो भी वह मनुष्य ही रहेगा। तो यहाँ सखी दीर्घ ईकारान्त होने पर भी सखि ही माना जायगा, अतः अनङ्, हलङ्याभ्यो० से सुलोप् सर्वनामस्थाने० से दीर्घ, नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य से न लोप, सखा। सखी औ, 'सख्युरसंबुद्धौ' से सर्वनामस्थान णिद्वत्, णित्वात् अचोञ्णिति से वृद्धि, आयादेश, सखायौ, सखायः। सखीअम्, अमिपूर्वः से पूर्वरूप प्राप्त था उसको परत्वात् बाधकर एरनेकाचो० से यण् प्राप्त था, उसको परत्वात् बाधकर सख्युरसंबुद्धौ से णिद्वत् अचोञ्णिति से वृद्धि सखायम्, सखायौ, शस् के परे एरनेकाचो० से यण्, सख्यः, सख्या इत्यादि।

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६।१।१०२)
इत्येतत् एरनेकाच इति (६।४।८२)

र्तते । सखायम् । शसि यण् , सख्यः । सह खेन वर्तते इति सखः, तमिच्छतीति सखीः । सखिरूपाभावादनङ् णित्वे न भवतः । एवम् सुखीः सुतीः । एरनेकाच इति यण् । सख्यौ सुख्यौ सुत्यौ । ख्यत्यादिति ख्यत्यग्रहणादुकारः । सख्युः सुख्युः सुत्युः । एवमेव, लूनीः क्षामीः प्रस्तीमीः । नत्वमत्वयोरसिद्धत्वात् ख्यत्यादित्युत्वम् । लून्युः । क्षाम्युः

ङसि ङस् में समान कार्याधायक शब्दों को दिखाते हैं, सह खेन वर्तते सखः तमिच्छतीति सखीयति, सखीयतीति सखीः पूर्ववत् क्विबादि साधुत्व । यहाँ अनङ् णित्त्व नहीं होगा, क्योंकि सखि स्वरूप से सखी नहीं हुआ है किन्तु सख स्वरूप से है, एवम् सुखमिच्छति सुखीयति सुखीयतीति सुखीः, एवं सुतीयतीति सुतीः । सखी सुखी सुती शब्दों से अजादि के परे एरनेचो० से यण् । सख्यौ सुख्यौ सुत्यौ । ङसिङस् में यण् होने से ख्य् त्य् स्वरूप हो जाता है अतः 'ख्यत्यात्परस्य' से ङसि ङस् के अकार को उकार होगा सख्युः सुख्युः सुत्युः । ङि के परे ह्रस्व इकार नहीं है अतः घिसंज्ञादि नहीं होगी । यण् एरनेकाचो से दीर्घ को बाधकर होगा । सख्यि, सुख्यि, सुत्यि, इत्यादि ।

इसी तरह लूनमिच्छति लूनीयति, लूनीयतीति लूनीः लू-धातु । क्त प्रत्यय, ल्वादिभ्यश्च से तकार् को नकार । क्षै क्षये । क्तप्रत्यय 'आदेच उपदेशेऽशिति से ऐकार को आकार, 'क्षायो मः' से तकार को मकार क्षामः, पूर्ववत् क्षामीः । ष्टयै स्त्यै शब्दसंघातयोः स्त्यै-धातु, क्त प्रत्यय 'आदेच उपदेशेऽशिति' से ऐकार को आकार । 'प्रस्त्योऽन्यतरस्याम्' से तकार को मकार । 'स्त्यः प्रपूर्वस्य' से यकार को इकार संप्रसारण । 'संप्रसारणाच्च' से पूर्वरूप । 'हलः' संप्रसारण इकार को दीर्घ । प्रस्तीमः क्यजादि पूर्ववत् । अजादि बिभक्ति के परे 'एरनेकाचो०' से यण् सुखी सुती शब्दवत् रूप होंगे । उक्त शब्दों में ङसि ङस् के परे यण् 'पूर्वत्रासिद्धम्' से लूनी शब्द का नकार क्षामी प्रस्तीमी का मकार असिद्ध है तो ख्यत्यात्परस्य की दृष्टि में तकार ही है । अतः त से पर ङसि ङस् का अकार है, उसको उकार हो जायगा । सख

प्रस्तीम्युः। शुष्कीयतेः क्विप्। शुष्कीः। इयङ्। शुष्कियौ, शुष्कियः। इत्यादि। इतीदन्ताः। शम्भुर्हरिवत्। एवं विष्णुवायुभान्वादयः। तृज्वत्क्रोष्टुः।७।१।९८। असंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे। ऋतो ङिसर्व-

को रुत्व विसर्ग। लून्युः, च्चाम्युः, प्रस्तीम्युः। अन्य रूप कार्य सुती शब्द-वत्। शुष्की शब्द में शुषः कः से ककार, संयोग पूर्व में होने से 'एरने-काचो॰' से यण् नहीं होगा। किन्तु 'अचिश्नुधातुभ्रुवाम्॰' से इयङ् होगा। अतः ककार के असिद्ध होने पर भी 'त्य' स्वरूप नहीं है अतः उकार नहीं होगा। शुष्कियः, शुष्कियोः शुष्कियाम्। इत्यादि होंगे। इति ईदन्ताः।

उकारान्त शम्भु शब्दके हरि शब्द के समान कार्य होंगे। रुत्व विसर्ग। शम्भुः। द्विवचन में शम्भु औ, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः शम्भुजस्, 'जसि च' से उकार को ओकार गुण, अवादेश रुत्व विसर्ग, शम्भवः। आङो नाऽस्त्रियाम्, शम्भुना। घेर्ङिति, शम्भवे, ङसिङसोश्च, शम्भोः। अच्च घेः, शम्भौ, इत्यादि हरि शब्द के समान साधुत्व है, इसी प्रकार विष्णु वायु भानु इत्यादि शब्द हैं, उकारान्त क्रोष्टु शब्द है, क्रोष्टु सु इस स्थिति में।

(तृज्वदिति) 'तृज्वत् क्रोष्टुः' 'सख्युरसंबुद्धौ' से असंबुद्धौ, 'इतोत्सर्व-नामस्थाने' से सर्वनाम स्थान की अनुवृत्ति है। तो यह अर्थ होता है, संबुद्धि रहित सर्वनामस्थान के परे क्रोष्टु शब्द तृजन्त के तुल्य हो। 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' इस परिभाषा से तृजन्त का ग्रहण है, तो क्रोष्टुको क्रोष्टृ तृजन्त हो गया। क्रोष्टृ–सु इस स्थिति में—

टिप्पणी—तृज्वदिति। कार्यरूपनिमित्तार्थशास्त्रतादात्म्यशब्दिताः। व्यपदेशश्च सप्तैतानतिदेशान् प्रचक्षते॥ इति सप्त अतिदेशाः। तत्र प्राधा-न्यात् तृजन्तरूपमेव अतिदिश्यते। तच्च क्रोष्टु शब्दस्य स्थाने क्रोष्टृ इति तृजन्तरूपमतिदिश्यते।

नामस्थानयोः ।३।३।१३०। गुणः स्यात् । इति प्राप्ते । ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ।७।१।९४। एषामङ् स्यादसंबुद्धौ सौ परे। क्रोष्टा। अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् ।६।३।११ अबादीनामुपधाया दीर्घः स्यादसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे। क्रोष्टारौ क्रोष्टारः । क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ, क्रोष्टून् । विभाषा तृतीयादिष्वचि ।७।

.(ऋतोङीति) ङि और सर्वनामस्थान के परे ऋदन्त अङ्ग को गुण हो, तो यहाँ सर्वनामस्थान सु परे है, अतः ऋ को अर् गुण प्राप्त था, उसको बाधकर,

(ऋदुशनेति) ऋदन्त और उशनस् पुरुदंशस् अनेहस् इन को अनङ् हो, संबुद्धि भिन्न सु के परे, तो 'ङिच्च' से अन्त्य ऋ कार को अनङ् हो गया। ङकार इत्, अकार उच्चारणार्थ, 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से उपधा दीर्घ। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से नलोप, क्रोष्टा । क्रोष्टु औ, 'तृज्वत् क्रोष्टुः' तृज्वद्भाव ऋ तो ङिसर्वनामस्थानयोः । उरण् रपरः ऋ को अर् गुण । क्रोष्टर् औ इस स्थिति में-

(अप्तृन्निति) अबादिक—अर्थात्, अप् शब्द और तृन् तृच् प्रत्ययान्त तथा स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षत्तृ-होतृ-पोतृ और प्रशास्तृ शब्दों की उपधा को दीर्घ हो। 'अलोन्त्यात्पूर्व उपधा' क्रोष्टर् औ, यहाँ अन्त्य अल् रेफ है, उससे पूर्व वर्ण अकार है उस उपधासंज्ञक अकार को दीर्घ हो गया। औ जस् इत्यादि सर्वनामस्थान विभक्ति परे है, 'सुडनपुंसकस्य' से पाँच वचन 'सु औ जस् अम् औ', ये सर्वनामस्थान' संज्ञक हैं, तो अकार को दीर्घ हो गया। क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः इत्यादि। शस् के परे क्रोष्टु शस्, शकार इत्, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः, तस्माच्छसो नः पुंसि, क्रोष्टून्, तृतीया का एकवचन क्रोष्टु टा इस स्थिति में—

(विभाषेति) विभाषा तृतीयादिषु अचि, अजादि तृतीयादिक विभक्तियों के परे क्रोष्टु शब्द को विकल्प से तृज्वत् हो, तो तदा

।९७। अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत्। क्रोष्ट्रा क्रोष्टुना, इत्यादि। ऋत उत् ।६।१।१११। ङसिङसोरति उकार एकादेशः स्यात्। रपरत्वम्। रात्सस्य ।८।२।२४। रेफात्सस्यैव लोपो नान्यस्य। क्रोष्टुः। आमि परत्वात्तृज्वद्भावे प्राप्ते। नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन। *। क्रोष्टूनाम्, क्रोष्टरि। पक्षे हलादौ च शम्भुवत्। इत्यु-

तृज्वत् हुआ, वहाँ इको यणचि से यण्, क्रोष्ट्रा, पक्ष में 'शेषोध्यसखि' से घिसंज्ञा, 'आङोनाऽस्त्रियाम्' से 'टा' को ना आदेश, क्रोष्टुना, एवम् चतुर्थी एकवचन में क्रोष्ट्रे, पक्ष में घिसंज्ञा, घेर्ङिति: से गुण, अवादेश, क्रोष्टवे। क्रोष्टु ङसि विभाषा तृतीयादिष्वचि से तृज्वद्भाव क्रोष्टृङसि।

(ऋत इति) ऋतः उत्। ऋदन्त से ङसि ङस् का अकार पर होने से पूर्व पर के स्थान में उकार एकादेश हो, तो ऋकार और अकार मिलकर उकार एकादेश हुआ। 'उरण् रपरः' से रपर उर् हुआ। क्रोष्टुर्-स्, 'संयोगान्तस्य लोपः' से स लोप सिद्ध था।

(रादिति) रात्सस्य, नियम करता है। "सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय कल्पते" सिद्ध रहते फिर भी विधिविधायक सूत्र का जो आरम्भ किया जाता है वह नियम करता है। प्रकृत में संयोगान्त लोप से स लोप सिद्ध था फिर भी 'रात्सस्य' से जो स लोप किया है वह नियम करेगा। रेफ से पर सकार का ही लोप होगा, अन्य का नहीं। तो सकार का लोप हो गया। रेफ को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग, क्रोष्टुः। नियम का फल, ऊर्क् सु। हल्ङ्यादि लोप के बाद संयोगान्त क-लोप नहीं होगा, जहाँ वहाँ भानुवत् घि संज्ञा, घेर्ङिति, ङसिङसोश्च रुत्व विसर्ग, क्रोष्टोः। यण् क्रोष्ट्वोः। क्रोष्टु आम्, 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' से परत्वात् तृज्वद्भाव प्राप्त था।

टिप्पणी—नित्यत्वात् नुट् क्यों नहीं होता क्यों कि क्रोष्टु स्थितिमें प्राप्त है, और तृज्वद्भाव होने पर क्रोष्टृ स्थितिमें भी प्राप्त है अतः नित्य है। क्रोष्टृ आदेश हो जाने पर सन्निपात परिभाषा से नुट्का बाध हो जायगा, अतः नित्य नहीं है।

दन्ताः । हूहूः, हूह्वौ हूह्वः हूहूम्, हूहून् । अतिचमूशब्दे तु नदीकृ
विशेषः । हे अतिचमु । अतिचम्वै अतिचम्वाः २ अतिचमूनाम्, अति
चम्वाम् । खलपूः । ओः सुपि ।६।४।८३। धात्ववयवसंयोगपूर्वो

(नुमचिरेति) नुम् अचि के परे र् और तृज्वद्भाव से पूर्व विप्रति
षेध से नुट् हो जाता है । तो नुट् हो गया । उटावितौ । 'नामि'
उकार को दीर्घ, क्रोष्टूनाम्, सप्तमी एकवचन, ङि, तृज्वद्भाव, 'ऋ
ङि सर्वनामस्थानयोः' से ङि के परे ऋ को अकार गुण, 'उरण् रपरः'
से रपर । क्रोष्टरि, पक्ष में 'शेषो घ्यसखि' 'अच्च घेः' 'वृद्धिरेचि' क्रो
इत्यादि । 'विभातृतीयादिष्वचि' से पक्ष में और हलादि विभक्ति
शम्भु शब्दवत् रूप होंगे । इति उदन्ताः ।

ऊकारान्त हूहू शब्द है, रुत्व विसर्ग हूहूः । 'हाहा हूहूश्चैवमा
गन्धर्वास्त्रिदिवौकसाम्' देवताओं के गन्धर्व हाहा हूहू नाम के
ये संभवतः सामवेद गानेवाले थे, क्योंकि सामवेद में इन शब्दों
विशेषता रहती है । इकोयणचि, हूह्वौ, हूह्वः । अमिपूर्वः हूहू
प्रथमयोः पूर्वसवर्णः 'तस्माच्छसो नः पुंसि' से सकार को नकार हूहू
इत्यादि । अतिचमू शब्द हूहू शब्द की तरह होगा । नदी का
अधिक होगा । यूस्त्र्याख्यौ नदी, प्रथमलिङ्गग्रहणं च, प्रथम स्त्रीलि
हो, अनन्तर उपसर्जन होकर अन्य लिङ्ग हो गया हो तब भी नदी
होती है । प्रथम चमू शब्द स्त्रीलिङ्ग था, अतिचमू समास में—चमू
अतिक्रान्तः इसमें विशेषण होकर पुंलिङ्ग हो गया है तब भी नदी
संज्ञा होगी । संबोधन में 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' से ह्रस्व, एङ् ह्रस्वात्संबुद्धे

टिप्पणी—'हे अतिचमु में सन्निपात परिभाषा से सुलोप का प्रतिषे
क्यों नहीं होता ? से—स्मृतो इत्यादि शब्दों का अप्रयोग होने से विष
है, अतः एङ्ह्रस्वात्सूत्र में एङ्ग्रहण व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि सम्बुद्धि
मानकर हुआ एङ् संबुद्धि के विघात में नहीं होगा अतः उसकी सामर्थ्य
से संबुद्धि लोप कर्तव्य में सन्निपात परिभाषा अनित्य है । अतः ह्र
मानकर लोप हो जायगा ।

भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्याद-जादौ सुपि। खलप्वौ खलप्वः। एवं सुल्वादयः। स्वभूः। न भूसु-धियोः। स्वभुवौ, स्वभुवः। गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते। परम-

से सुलोप। हे अतिचमु, ङिद् वचन में, आण् नद्याः से आट्। 'आटश्च' से वृद्धि, अतिचम्वै, अतिचम्वाः। आम् के परे नद्यन्त मानकर ह्रस्व-नद्यापो नुट्' से नुट्, अतिचमूनाम्। ङि में, 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम्, आण् नद्याः' आटश्च। अतिचम्वाम्। खलपूः, रुत्व-विसर्ग। खलपू-औ इस स्थिति में (ओः सुपीति) जिस उकार से पूर्व धातु के अवयवों का संयोग पूर्व न हो ऐसा जो उवर्ण तदन्त जो धातु तदन्त अनेकाच् अङ्ग अर्थात् धात्ववयवसंयोगरहित उवर्णान्त धातुयुक्त अनेकाच् अङ्ग उसको यण् हो अजादि सुप् के परे। इस सूत्र का और 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' का एक सा ही निमित्त है, परन्तु यह अजादि सुबन्तमात्र में लगेगा, और एरनेकाचो, यह सुबन्त तिङन्त दोनों में लगेगा, तो ऊकार को अलोन्त्यस्य से वकार हो गया। खलप्वौ, खलप्वः इत्यादि। एवम्, सुलूः, अनेकाच्, असंयोगपूर्वक धातु का ऊकार है। ओः सुपि से यण् हो गया। सुल्वौ, सुल्वः। स्वभूः, स्वभुव-औ। स्वस्मात् भवतः। यहाँ कारक पूर्व है अतः ओः सुपि से यण् प्राप्त था। 'न भूसुधियोः' भू शब्द है अतः यकार नहीं होगा। 'अचिश्नुधातुभ्रुवाम्' से उवङ्। स्वभुवौ, स्वभुवः। एवं स्वयंभुवौ स्वयंभुवः, इत्यादिकों में भी जानना।

परमाश्चासौ लूः परमलूः। द्विवचन में परमलू-औ। यहाँ परम शब्द न गतिसंज्ञक है, और नाहीं कारक है, अतः यण् नहीं होगा। उवङ्। परमलुवौ, परमलुवः। वर्षासु भवतीति वर्षाभूः। 'वर्षाभूर्द-र्दुरे पुमान्' वर्षाभू-औ, इस स्थिति में, इकोयणचि से यण्, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्ण दीर्घ। दीर्घाज्जसि च से तन्निषेध। अचिश्नु-धातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ से उवङ् उसको बाधकर ओः सुपि से यण्, उसका न भूसुधियोः से यण् निषेध प्राप्त था, उसका अपवाद बाधक।

लुवौ परमलुवः । **वर्षाभ्वश्च ।६।४।८४।** वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः । दृन्भूः दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्य । * । दृन्भ्वौ, दृन्भ्वः । इत्यादि खलपूवत् एवं करभूपुनर्भूशब्दावपि । दृन्भूशब्दावत् । इत्यूदन्ताः धाता, धातारौ, धातारः । ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् । * । धातॄणाम्

(वर्षेति) वर्षाभ्वश्च । वर्षाभू शब्द को अजादि सुप् के परे यण् हो । इससे यण् हो गया, वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः । दृन् हिंसां भवते प्राप्नोति भूङ् प्राप्तौ । दृन्भू-औ कर्म कारक पूर्व में है अतः 'ओः सुपि' से यण् प्राप्त था उसका न भूसुधियो से निषेध प्राप्त था, उसका 'दृन् कर पुनः पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः' दृन्-कर-पुनः जिससे पूर्व हों ऐसे भू को यण् होता है, तो भू को यण् अन्त्य ऊकार को वकार हो गया । दृन्भ्वौ दृन्भ्वः । दृन्भ्वम् इत्यादि खलपू शब्दवत् होंगे । इसी तरह कर पुनर्भू शब्द के भी जानना । पुनर्भ्वम्, पुनर्भ्वौ, पुनर्भ्वः । दृम्भू शब्द हूहू शब्द की तरह जानना । क्योंकि यहाँ धातु का ऊकार नहीं है किन्तु–'अन्दू दृम्भू-दम्बू कफेलू कर्कन्धू दिधिषू' ये उणादि से सिद्ध हैं, अतः इनका ऊकार धातु सम्बन्धी नहीं है इसलिये ओः सुपि से यण् होगा, और ना ही एरनेकाचो से उवङ् होगा । दृम्भूम् दृम्भ्वौ इकोयणचि । दृम्भून्, इत्यादि । इति ऊदन्ताः ।

धातृ सु ऋतोङि सर्वनामस्थानयोः से गुण प्राप्त था, उसको बाधकर ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसांच' से ऋको ङित्व से अनङ् हलङ्यादि सुलोप । न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य से न लोप, धाता द्विवचन आदि में ऋतोङि सर्वनामस्थानयोः से गुण । तृजन्त होने से अप्तृन् तृच् से उपधादीर्घ । धातारौ धातारः । धातॄन् । प्रथमयोः पूर्वसवर्णः । तस्माच्छसो नः पुंसि । पदान्तस्य से णत्वनिषेध धातृ ऋत उत्, उरण् रपरः, रात्सस्य, खरवसानयोर्विसर्जनीयः । धातुः धातृ आम् । 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् । 'नामि' से दीर्घ । ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् । रेफ से पर नकार को णकार हो । तो नकार को णकार धातॄणाम् । हे धातः । पितृ शब्द पूर्ववत्, अनङ् आदि । पिता,

एवं नप्त्रादयः। पिता, पितरौ, पितरः। पितरम्, पितरौ। शेषं धातृवत्। एवं जामात्रादयः। ना नरौ नरः। नृ च।६।४।६ नृशब्दस्य नामि वा दीर्घः। नृणाम्, नॄणाम्। इति ऋदन्ताः। कॄ तॄ अनयोरनुकरणे प्रकृति-

---

तृच् नहीं है, किन्तु उणादि निष्पन्न पितृ शब्द है। पितरौ पितरः। दीर्घ के अतिरिक्त धातृ शब्द के समान है। इसी प्रकार जामातृ इत्यादि क्तृन् तृच् से भिन्न शब्दों का साधुत्व समान है। नृ-सु, अनङ् दीर्घ, सुलोप, न लोप पूर्ववत्। ना, ऋतोङि सर्वनामस्थानयोः से गुण, नरौ, नरः। नृआम्। 'ह्रस्वनद्यापो नुट्। नामि से नित्य दीर्घ प्राप्त था।

(नृच) नृशब्द को नाम् के परे विकल्प से दीर्घ हो। दीर्घ हाने पर, नॄणाम्, ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्, से णकार। दीर्घ के विकल्प में नृणाम्। इति ऋदन्ताः।

कॄ तॄ, कॄ विक्षेपे, तॄ प्लवनतरणयोः। कॄ तॄ इनके अनुकरण में, 'अनुकार्यानुकरणयोः भेदविवक्षा, अभेदविवक्षा च' कॄ तॄ इनके अनुकरण करने पर धातुपाठपठित कॄ तॄ का ग्रहण होगा। अनुकरण भूत कॄ तॄ इनका अर्थवत्त्व होने से प्रातिपदिक संज्ञा सुबुत्पत्ति। 'ॠत इद्धातोः' से इकार उरण रपरः से रपर। हल्ङ्याब्भ्यो० से सुलोप,

---

टिप्पण—कॄ-तॄ, इत्यादिकों का, एवं गम्लृ शक्लृ इत्यादिकों का और से इत्यादिकों का लोक काव्यादि में प्रयोग न होने से अर्थात् एवं विधशब्दों का अनभिधान है।

टिप्पण—प्रश्न यह होता है, अनुकरण भूत कॄ तॄ इनको अनुकार्य का स्वरूप होने से अनुकार्य शब्द कॄ तॄ इस स्वरूप के वाचक हैं क्रिया-वाचक नहीं अतः धातुत्व नहीं है, जा ऋत इद्धातोः से इत् नहीं होगा। 'प्रकृतिवदनुकरणम्' इससे अनुकरण भूत का धातुत्व है। तो फिर 'अधातुः' से प्रातिपदिकत्व नहीं होगा सुबुत्पत्ति नहीं होगी। इसलिये प्रकृतिवदनुकरणम् को भेदाभेदविवक्षा से वैकल्पिकातिदेश माना है। इति।

वदनुकरणमिति वैकल्पिकातिदेशादित्वे रपरत्वम्। कीः किरौ किरः। कीर्षु। तीः तिरौ तिरः तीर्षु इत्यादि गीर्वत्। पक्षे कॄः क्रौ क्रः। इत्यादि इति ॠदन्ता। गम्लृ शक्लृ अनयोरनुकरणेऽनङ्। गमा, शका। गुणविषये लपरत्वम्, गमलौ गमलः। ङसिङसोस्तु ऋत उदित्युत्वे लपरत्वे संयोगान्तलोपे गमुल्, शकुल्, इत्यादि। इति लृदन्ताः। सेः, सयौ

र्वोरुपधाया दीर्घ इकः से दीर्घ, कीः, अजादि में पदत्व नहीं है किरौ किरः। भ्यामादि के परे। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से पद संज्ञा पदान्तत्वात्, र्वोरुपधाया दीर्घ इकः। कीर्भ्याम्, कीर्भिः इत्यादि। कीर्षु 'खरवसानयोः' से रेफ को विसर्ग नहीं होगा, रोः सुपि से नियम हो जायगा। सुप् के-परे रुसंबन्धी ही रेफ को विसर्ग होगा। गीर्षु। इसी प्रकार तॄ का तीः तिरौ तिरः, तीर्भ्याम् तीर्षु इत्यादि गिर् शब्दवत् जानना। पक्ष में। भिन्न होने से धातु नहीं है अतः इर् नहीं होगा कॄः क्रौ क्रः इत्यादि रूप होंगे। इति ॠदन्ताः।

गम्लृगतौ, शक्लृ शक्तौ। गम्लृ शक्लृ इनके अनुकरणमें प्रातिपदिक संज्ञा, सुबुत्पत्ति, ऋलृके सावर्ण्य होने से, 'ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च' से अनङ्। हल्ङ्यादि लोप। उपधादीर्घ, नलोप। गमा द्विवचन आदि में, 'ऋतोङिसर्वनामस्थानयोः' गुण, 'उरण् रपरः' से लपर, गमलौ, गमलः। इत्यादि। ङसि ङस्में 'ऋत उत्' उरण् रपर से लपर, संयोगान्तसे सलोप, गमुल्, शकुल्। आम् के परे हस्व नद्यापो नुट्से नुट्। 'नामि' से दीर्घ नहीं होगा। क्योंकि लृवर्ण दीर्घ नहीं है। गम्लृनाम्। सप्तमीएकवचनमें ऋतोङि॰ से गुण गमलि शकलि इत्यादि। इति लृदन्ताः।

इना सह वर्तते. सेः रुत्वविसर्ग। अयादेश अजादि के परे। सयौ सयः। इत्यादि। ङसि-ङस्में 'ङसिङसोश्च' से पूर्वरूप, रुत्वविसर्ग। सेः, सयोः सेषु इत्यादि, इत्येदन्ताः।

ओकारान्त गोशब्द, सुविभक्ति। गो—सु इस अवस्था में।

सयः, ङसिङसोश्चेति पूर्वरूपे। सेः, इत्येदन्ताः। **गोतो णित्** ।७।१।९०। सर्वनामस्थाने। णित्त्वात् वृद्धिः, गौः गावौ गावः। **औतोऽम्शसोः**।६।१।९३। आ ओत इति च्छेदः। शसा साहचर्यात्सुबेव अम् गृह्यते। नेह अचिनवम् गाम्, गावौ गाः। गोः इत्यादि ओतोणिदिति वाच्यम्। ॐ। सुद्यौः सुद्यावौ सुद्यावः। इत्यादि। विहितविशेषणं च। ॐ। ओकारान्ताद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वदिति व्याख्यानान्नेह। हेभानो भानवः।

(गोतो इति) गोतोणित्, गोशब्द से पर सर्वनामस्थान णिद्वत् हो। इससे सु औ जस्, अम् औ, णित्वत्, होंगे। णित्वात् अचो ञ्णिति से ओकार को औकार वृद्धि। रुत्व विसर्ग। गौः। औ जस् की णित्संज्ञा, णित्त्वात् वृद्धि, आयादेश। गावौ गावः। अम् के परे णित्वात् वृद्धि प्राप्त थी।

(औतोमिति) औतोम् शसोः। आ-ओतः अम् शसोः। ओकार को एकादेश आकार हो अम् शस् के परे। ओकार को आ हो गया। गाम्, गावौ, गाः। शस् के साहचर्य से सुबन्त अम् का ग्रहण होगा। इससे अचि नो अ मिप्, चि धातु लङ्। अडागम श्नु प्रत्यय। तस्थस्थमिपां ताम् तं तामः से अमादेश। सार्वधातुकयो० से गुण अचिनो अम्। ओकार को आकार नहीं होगा। क्योंकि सुबन्त के अम् का ग्रहण है। अवादेश। अचिनवम्। ङसिङसोश्च, गोः, गवाम्, गवि, इत्यादि। वार्तिककार कहते हैं। 'ओतोणिदिति वाच्यम्', गो शब्द को ही णित्वत् न हो, किन्तु ओकारान्त शब्द को णिद्वत् हो, सुद्यो शब्द है, उसके सर्वनामस्थान को णिद्वत्। णित्वाद् वृद्धि। रुत्व विसर्ग। सुद्यौः सुद्यावौ सुद्यावः। औतोऽम्शसोः, सुद्याम्, सुद्यावौ, सुद्याः, सुद्योः इत्यादि। 'ओतो णित्' में ओतः यह विहित का विशेषण है, तो यह अर्थ होगा। ओकारान्त से विहित सर्वनामस्थान के परे णिद्वत् हो, हे भानो सु, यहाँ सु के परे परत्वात् आकार प्राप्त था। परन्तु विहित विशेषण होने से ओकारान्त से विहित सु नहीं है, किन्तु

उः स्मृतो येन सः । स्मृतौः स्मृतावः । स्मृताम् । इत्यादि । इत्योदन्ताः।
रायो हलि ।७।२।८५। आकारान्तादेशः स्याद्धलि विभक्तौ । अचि आयादेशः । राः रायौ रायः । राभ्यामित्यादि । इत्यैदन्ताः । ग्लौः, ग्लावौ, ग्लावः । इत्यौदन्ताः । इत्यजन्ताः पुँल्लिङ्गाः ।

भानु से विहित है। यदि एङ् ग्रहण सामर्थ्य से आत्व नहीं होगा, यह मानोंगे तो भानवः उदाहरण जानना। यदि 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्' इस परिभाषा से लाक्षणिक ओकार का ग्रहण नहीं लेंगे। तो "विहित विशेषणं च" व्यर्थ है। निरावश्यक है। उः स्मृतो येन। स्मृतो शब्द ओकरान्त, सुद्यो शब्द की तरह रूप होंगे। स्मृतौः, स्मृतावौ, स्मृतावः, स्मृताम्, स्मृताः, स्मृतोः, स्मृतवाम्, स्मृतोषु इति ओदन्ताः।

रै शब्द सु विभक्ति।

(रायो० इति) रायो हलि, रै शब्द को तथा रै शब्दान्त को आकार हो, हलादि विभक्ति के परे। आकार हो गया। रुत्व विसर्ग। राः, अजादि के परे आयादेश। रायौ, रायः, इत्यादि हलादि में आत्व. राभ्याम्, राभिः, इत्यादि। एवम्, सुरै शब्द के, सुराः, सुरायौ, सुरा-भ्याम्, सुराभिः, सुरासु हे सुराः। इत्यादि। इत्यैदन्ताः।

औकारान्त ग्लौ शब्द है। रुत्व विसर्ग, ग्लौः, अजादि के परे आवादेश। ग्लावौ, ग्लावः, ग्लावम्, ग्लौभ्याम्, ग्लौषु, इत्यादि। इत्यौदन्ताः ॥ इत्यजन्ताः पुलिङ्गाः।

अथ अजन्त स्त्रीलिङ्ग। रमा सु उकार इत्। 'यहाँ रमा शब्द आबन्त है, अतः 'हल्ङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' इससे सकार का लोप। रमा-रमा औ इस स्थिति में।

———

अथ अजन्तस्त्रीलिङ्गाः

रमा। औङ आपः।७।१।१८। शी स्यात्। औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा। रमे, रमाः। संबुद्धौ च।७।४।१०६। आप एकारः स्यात् संबुद्धौ। एङ्ह्रस्वादिति संबुद्धिलोपः। हे रमे, हेरमे, हेरमाः। स्त्रीत्वान्नात्वाभावः। रमाः। आङि चापः।७।३।१००। आङि ओसि चाप एकारः स्यात्। रमया, रमाभ्याम्, रमाभिः। याडापः।७।३।११३। ङिद्वचनस्येत्यर्थः।

(औङ इति) औङ आपः। औङ् यह प्रथमा द्वितीया के द्विवचन औकार की संज्ञा है, तो यह अर्थ होगा। आबन्त अङ्गसे पर जो औकार है उसे शी होगा, आबन्त अङ्गसे पर जो औकार है। उसे शी हो, अङ्गस्य का अधिकार है, आप् यह प्रत्यय है, अतः प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितः तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' से आबन्त का ग्रहण होगा, तो रमा यह आबन्त है। अतः औकार को शी। लशक्वतद्धिते से शकार की इत् संज्ञा, आद्गुणः से गुण। रमे रमा। जस्, सवर्ण दीर्घ, रुत्व-विसर्ग, रमाः, संबोधन में, रमा सु।

(सम्बुद्धाविति) संबुद्धौ च, आप को एकार हो, संबोधन में, तो आकार को एकार, 'एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः' से सु का लोप, हे रमे, औङ आपः, आद्गुणः,। हे रमे। शस् में। 'तस्माच्छसो नः पुंसि' में पुंसि इस उक्ति के कारण पुंलिङ्ग में न कार होता है यहाँ स्त्रीलिङ्ग है अतः नकार नहीं होगा। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। ससजुषो रुः। खरवसानयोर्विसर्जनीयः। रमाः। रमा-टा, इस स्थिति में।

(आङि इति) आङि च आपः। चकार से ओस्। तो यह अर्थ होगा। आङ् और ओस् के परे आबन्त अङ्ग को एकार हो। 'अलोऽन्त्यस्य' से आप के आकार को एकार होगा, 'एचोऽयवायावः' से अयादेश। रमया। 'आङिति टासंज्ञा प्राचाम्' प्रथम कह आये हैं, भ्याम् में, रमाभ्याम्। भिस्-रुत्व विसर्ग। रमाभिः। रमा-ङे।

(याडिति) याट् आपः। घेर्ङिति से ङित् की अनुवृत्ति। अर्थः

वृद्धिरेचि । रमायै । सवर्णदीर्घः । रमायाः । रमयोः रमायाम्, रमयोः रमासु । एवं दुर्गादयः । **सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च** ।७।३।११४। ङिति, याटोऽपवादः । सर्वस्यै, सर्वस्याः २ सर्वयोः २ सर्वासाम्, सर्वस्याम् । एवं विश्वादय आबन्ताः । **विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ**

पञ्चमी है, अतः 'तस्मादित्युत्तरस्य' से पर के याट् होगा । 'आद्यन्तौ टकितौ' से आदि में होगा । तो यह अर्थ होगा, आबन्त पर ङिद् वचन के आदि में याट् हो, टकार 'हलन्त्यम्' से ङकार 'लशक्वतद्धिते' से इत्, वृद्धिरेचि, रमायै । ङसिङस् में, ङ इत् । अकः सवर्णे दीर्घः । ससजुषो रुः । खरवसानयोर्विसर्जनीयः । रमायाः । रमा-ओस् । आङि चापः । अयादेश, रुत्वविसर्ग, रमयोः । रमा-आम् । आबन्तत्वात्, 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् । 'रषाभ्यां नोणः समानपदे' अट् कुप्वाङ् से नकार को णकार । रमाणाम् । रमा-ङि । आबन्तत्वात्, 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम् । 'याडापः' याडागम सवर्णदीर्घ । रमायाम्, रमयोः, रमासु । इसी प्रकार दुर्गा, गङ्गा, बाला, लता इत्यादि आबन्त शब्दों का साधुत्व जानना, सर्वादिकों के प्रथमा द्वितीया तृतीया संबोधन में पूर्ववत् जानना, ङित् वचन और आम् में विशेष है ।

सर्वा-ङे (सर्वेति) याडापः से याट् हो और आप्को ह्रस्व हो ङित् वचन के परे । स्याट् हो गया, सर्वा के आकार को ह्रस्व हो गया । ङकारटकार इत् । वृद्धिरेचि, सर्वस्यै । सवर्णदीर्घ, रुत्व विसर्ग, सर्वस्याः आम् के परे 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' से सुट् । अदन्त नहीं है अतः सर्वासाम् में एकार, भिस् में एत्व, एवम्, सर्वाभ्यः सर्वासु में एकार नहीं होगा । इसी प्रकार आबन्त विश्वादिकों के रूप जानना ।

उत्तरस्याः पूर्वस्याश्च दिशोः अन्तरालम् इस विग्रह में 'दिङ् नामान्यन्तराले' इससे बहुव्रीहि समास, उत्तरपूर्वा, उत्तरपूर्वे इत्यादि सर्ववत् । उत्तरपूर्वा-ङे इति स्थिते ।

(विभाषेति) दिक्वाचक शब्दों के बहुव्रीहि समास में सर्वनाम संज्ञा विकल्प से हो, जस् के परे सर्वनाम संज्ञा होने पर भी कोई

बाह्यायै इत्यर्थः।

।१।१।२८। उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै। बाह्येऽर्थे। अन्तरस्यै शालायै, गणसूत्रे अपुरीत्युक्तेर्नेह। अन्तरायै नगर्यै। **विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम्** ।७।३।११५। तीयस्य ङित्सूपसंख्यानादिदं सूत्रं त्यक्तुं

विशेष नहीं है, क्योंकि नित्यत्वात् टाप् दीर्घ हो जाने से अदन्त नहीं है। ङे के परे सर्वनाम होने से सर्वनाम्नः स्याड् ह्रस्वश्च से स्याट् आप्को ह्रस्व, वृद्धिरेचि से वृद्धि, उत्तरपूर्वस्यै, पक्ष में 'याडापः' से याट्। उत्तरपूर्वायै। पूर्वादि गण में, अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः में अपुरि कहा है अतः पुर् के विशेषण में नहीं होगा। अन्तरायां पुरि। सर्वनाम संज्ञा न होने से याट् होगा। बाह्य अर्थ में स्याट् होगा। अन्तरस्यै शालायै बाह्यायै इत्यर्थः। द्वितीय-तृतीय स्त्रीलिङ्ग में, तृतीया पर्यन्त रमा शब्दवत्। द्वितीया ङे इस स्थिति में।

(विभाषेति) द्वितीया तृतीया शब्द से ङित् वचन के विकल्प से स्याट् हो। तो टित्त्वात् ङे इत्यादि ङिद्वचन के आदि में स्याट्, टकार ङकार इत्, वृद्धिरेचि, द्वितीयस्यै पक्ष में याडापः से याट्; रमावत्; द्वितीयायै; एवं द्वितीयस्याः; द्वितीयायाः। द्वितीया-ङि। 'ङेराम् नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम्, स्याट्, ह्रस्व, सवर्ण दीर्घ, द्वितीयस्याम्, पक्ष में द्वितीयायाम्। इसी प्रकार तृतीया शब्द के जानना, द्वितीयस्मै द्वितीयाय इत्यादि प्रयोगों के लिये "तीयस्य ङित्सूपसंख्यानम्" वार्तिक आवश्यक है, तीय-

---

टिप्पणी—सर्वादिगण में सर्वादिक ह्रस्व अकारान्त पढ़े है, अतः आवन्त का ग्रहण न होने से सर्वनाम संज्ञा और सुट् नहीं होगा? उ०—'प्रातिपदिक ग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' से स्त्रीलिङ्ग बोधक आवन्त विशिष्ट सर्वा का सर्वादि में ग्रहण हो जायगा।

दिक् समास—'दिङ्नामान्यन्तराले' से हैं। 'लक्षण प्रतिपदोक्त' परिभाषा से प्रतिपदोक्त ही दिक् समास का ग्रहण होगा। अतः, योत्तरा सा पूर्वाऽस्या उन्मुग्धायाः, इस लाक्षणिक दिक् समास में सर्वनामता न होने से याट्। उत्तरपूर्वायै, यदि प्रतिपदोक्त ही दिक्समास का ग्रहण है तो फिर बहुव्रीहि ग्रहण मन्द प्रयोजन है।

शक्यम् । द्वितीयस्यै, द्वितीयायै । द्वितीयस्याः २, द्वितीयायाः २ । द्विती-यायाम् । शेषं रमावत् । एवं तृतीया । अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः । हे अम्ब हे अक्क ! हे अल्ल ! असंयुक्ता ये डलकास्तद्वतां ह्रस्वो न । अम्बाडे, हे अम्बाले, हे अम्बिके ! जरा । औङ शीभावाद् आमि नुटः परत्वाज्जरस् जरसी जरसामित्यादि । पक्षे हलादौ च रमावत् । औङ आप इत्यादौ आ आप इति प्रश्लेषात् आकाररूपस्यैवापो ग्रहणेन स्थानि

प्रत्ययान्त की ङित् वचनों में विकल्प से सर्वनामता हो, उक्त लिङ्ग विशिष्ट परिभाषा से सर्वनामता हो जायगी, फिर 'विभाषा द्वितीया तृतीयाभ्याम्' निष्प्रयोजन है ।

अम्बा अम्बे अम्बाः रमा शब्दवत् । सम्बोधन में, अम्बार्थनद्यो स्वः से ह्रस्व, हे अम्बसु । 'एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः' से सुलोप । हे अम्ब ! एवम् हे, अक्क ! हे अल्ल ! । 'भाष्य वार्तिक है । 'डलकवतीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः" इस वार्तिक स्वरूप में हे अक्क ! हे अल्ल ! में लकार ककार होने से ह्रस्व नहीं होगा । अतः 'द्वयच्कस्यैव अम्बार्थस्य ह्रस्व' ऐसा मानेंगे, उसी का फलितार्थ कहते हैं, असंयुक्ता ये डलकास्तद्वतां ह्रस्वो न । जैसे हे अम्बाडे ! हे अम्बाले ! हे अम्बिके ! । 'संबुद्धौ च' से एकार, 'एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' सुलोप ।

'जरासु आबन्तत्वात् हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' से लोप । जरा-औ, औङ आपः से शी आदेश, 'जराया जरसन्यतरस्याम्' से जरा शब्द को जरस् आदेश प्राप्त था, शी भाव से परत्वात् जरसौ । पक्ष में रमा शब्दवत् , शी आदेश शकार इत् , गुण, जरे, जरसः जराः । तृतीया में, जरसा जरया चतुर्थी—जरसे जरायै, इत्यादि आम् के परे नुट् से परत्वात् जरस् आदेश । जरसाम् , जराणाम् सप्तमी में जरसि जरायाम् , इत्यादि । तात्पर्य यह कि जरसादेश के अभाव में और हलादि विभक्तियों में रमा शब्द के समान रूपसाधुत्व जानना ।

पक्ष में 'जरे' इस साधुत्व में शी आदेश करने के अनन्तर आ ईकार के परे जरस् आदेश क्यों नहीं ? सन्निपात परिभाषा से

वद्भावेन शीयाडादिकं न । एवं हल्ङ्यादिसूत्रेऽपि ङी ई, आ आबिति प्रश्लेषात् निष्कौशाम्बिः अतिखट्वः इत्यादौ सुलोपो न । अतिखट्वाये-

---

सादेश नहीं । अस्तु । जरसौ यहाँ जरसादेश करने के अनन्तर स्थानिवद्भाव से जरा शब्द मानकर 'औङ आपः' से शी आदेश, इत्यादि ग्रहण से, टा के परे, 'आङि चापः' से एकार, ङे-ङसि-ङस् में 'याडापः' से याट्, आम् का 'ह्रस्व नद्यापो नुट्' से नुट्, ङि के परे 'ङेराम् नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम्, ये पाँच कार्य प्राप्त होते हैं । क्यों नहीं होते ? सब का उत्तर एक ही है । सर्वत्र आ-आप् व्याख्या होगी । स्थानिवद्भाव मे आप्त्व आजायगा, परन्तु आकाररूपता लाने में अल् विधि है, अतः आकार रूप होने में अनल्विधौ से निषेध हो जायगा, तो स्थानिवद्भाव न होनेसे शी-ए-याट्-नुट्-आम् ये नहीं होंगे । क्योंकि सर्वत्र तत्कार्यविधायक सूत्रों में आ-आप् का प्रश्लेष होगा । इसी प्रकार हल् ङ्याब्भ्यः० सूत्र में, ङी-ई, आ-आप् का प्रश्लेष करने से, अतिखट्वः में आबन्त मानकर सु लोप नहीं होगा, क्योंकि आबन्त को आकार रूपता लाने में 'अनल्विधौ' से निषेध हो जायगा । एवम् निष्कौशाम्बिः में दीर्घ ङी के स्थानिवद्भाव होने से ङ्यन्तत्वात् सुलोप प्राप्त था, परन्तु 'ईकार रूप ङी' का ग्रहण होगा, ईकाररूपता लाने में 'अनल्विधौ' से निषेध हो जायगा, अतः निष्कौशाम्बिः इत्यादि सिद्ध हो जाने पर भी 'अतिखट्वाय' यहाँ अति खट्वाङे । 'ङेर्यः' से य आदेश, सुपिच से दीर्घ । यहाँ स्थानिवद्भाव से 'आप्त्व लायँगे, और 'सुपिच' से दीर्घ होने से आकाररूपता स्वतः विद्यमान है, अतः आकार रूप आप् होने से याडापः से याट् प्राप्त था, ठीक । यहाँ 'अङ्गस्य' का अधिकार है अतः आबन्त अङ्ग से पर ङित् वचन के याट् होगा, यहाँ 'अतिखट्व' आबन्त अङ्ग नहीं है । और खट्वाम् अतिक्रान्तः यहाँ खट्वा आबन्त है, परंतु उसकी ङे के परे अङ्ग संज्ञा नहीं है । क्योंकि 'ङे प्रत्यय अतिखट्व शब्द से है, अतः ङे के परे अतिखट्व को ही अङ्ग संज्ञा है । खट्वा शब्द को नहीं ।

त्यत्र आबन्तं यदङ्गमिति व्याख्यानात् न याट्। पद्दन्न इति नासिकाया नस्। नसः नसा नोभ्यामित्यादि। पक्षे सुटि च रमावत्। निशाया निश्। निशः निशा। **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** ।८।२।३६। एषां षः स्याद् झलि पदान्ते च। षस्य जश्त्वेन डः। निड्भ्याम्, निड्भिः। सुपि। डः सि धुडिति पक्षे धुट्। चर्त्वम्। न पदान्ता-

नासिका शब्द, सु औ जस्, अम् औ, में रमा शब्द की तरह। नासिका, नासिके, नासिकाः। नासिकाम्, नासिके। नासिका-शस्। इस स्थिति में। पद्दनोमास्० से शसादि के परे नासिका को नस् आदेश हो गया, नसः, नसा, भ्याम् के परे नासिका-भ्याम्। नासिका को नस् आदेश। स्वादिष्वसर्वस्थाने से पद संज्ञा, पदान्त-त्वात् 'ससजुषो रुः, से सकार को रु! 'हशि च' से उ कार। आद्गुणः से गुण, नोभ्याम्, नोभिः। इत्यादि, पक्ष में जहाँ नस् आदेश नहीं होगा, निशा शब्द रहेगा, वहाँ शसादि लेकर सुप् पर्यन्त और सुट् के परे अर्थात्, आरम्भिक पाँच वचनों में रमा शब्दवत् रूप होंगे। निशा शब्दको निश् आदेश शसादि के परे विकल्प से, सुट्के परे रमाशब्दवत् निशः। निशा। निश् भ्याम्, यहाँ,

(व्रश्चेति) व्रश्च-भ्रस्ज-सृज-मृज-यज-राज-भ्राज, च्छशांषः। इन शब्दों को ष आदेश हो, झल् प्रत्याहार के परे और पदान्त में। इससे उभयान्यतर निमित्तमानकर 'श' को 'श' आदेश। झलां जशोन्ते से 'ष' को स्थानसाम्य होने से जश् में डकारादेश, निड्-भ्याम्, निड्भिः। सप्तमी के बहुवचन-सुप् के परे। षत्व, डत्व। निड्सु। इस अवस्था में डः सि धुट् से धुट्। उटावितौ, झलां जशोऽन्ते से 'ध' को 'द'। खरिच से 'ड' को 'ट' और धुडा-गम के धस्थानीय 'द' को 'त' आदेश। चयो द्वितीयाः शरि पौष्कर सादेरिति वाच्यम् से 'ट' को 'ठ' त को 'थ' क्यों नहीं होते। खरि च से उत्पन्न 'ट' 'त' असिद्ध हैं। 'न पदान्तात् टोरनाम्' से निषेध होने से निट्त्सु में तकार को ट और निट्सु में सकार को षकार नहीं होंगे।

दिति निषेधात् ष्टुत्वं न। निट्त्सु, निट्सु। षढोः कः सि।८।२।४१। इति तु न, जश्त्वं प्रत्यसिद्धत्वात्। केचित्तु व्रश्चादि सूत्रे धातोरित्यनुवर्तयन्ति। तन्मते जश्त्वेन जकारे निज्भ्याम्, निज्भिः। जश्त्वं श्चुत्वं चर्त्वम्। निच्शु। चोः कुरिति कुत्वं न भवति जश्त्व-

---

अस्तु, षत्व करने के अनन्तर सुप् के परे 'षढोः कः सि' से षकार को ककार क्यों नहीं होता ? 'झलां जशोऽन्ते' की दृष्टि में 'षढोः कः सि' असिद्ध है, अतः ड् हो जाने पर षकार नहीं है। निट्त्सु, धुट् के विकल्प में निट् सु, कोई आचार्य व्रश्चभ्रस्ज् सूत्र में धातोः की अनुवृत्ति मानते हैं, तो धातु संबन्धी शकार को षकार होगा। यहाँ निश्' शब्द का शकार धातु संबन्धी नहीं है, अतः षत्व नहीं होगा, किन्तु झलां जशोऽन्ते, से तालुस्थानीय शकार को तालुस्थानीय झश् प्रत्याहारान्तर्गत जकार होगा, निज्भ्याम्, निज्भिः। सुप् के परे झलां जशोऽन्ते से जकार स्तोः श्चुनाश्चुः से सुप् के सकार को शकार, 'खरि च' से जकार को चकार, निच् शु। यहाँ चोः कुः से चकार को ककार क्यों नहीं होता ?, पूर्वत्रासिद्धम् से शकार के स्थान पर उत्पन्न जो जकार है वह असिद्ध है। अतः चोः कुः की दृष्टि में शकार ही है, किन्तु जकार चकार नहीं है। पृतना आकारान्त-सु, रमा शब्द के समान सुट् के परे। पृतना, पृतने पृतनाः। इत्यादि। पृतना-शस्, मांसेति। मांस-पृतना-सानूनां मांस्-पृत्-स्नवो वाच्याः, मांस पृतना सानु शब्दों को शसादि के परे-विकल्प से क्रम से मांस् पृत् स्नु आदेश होते हैं। अनेकाल्त्वात् पृतना को पृत् आदेश हो गया। पृतः। पृता। 'झलां जशोऽन्ते' से तकार को दकार, पृद्भ्याम्। इत्यादि। पक्ष में 'जहाँ पृत् आदेश नहीं होगा, वहाँ पृतनाः। पृतनया पृतनाभ्याम् पृतनाभिः इत्यादि। रमाशब्द के समान होंगे, गोपा शब्द विश्वपा शब्द के समान होगा। गोपाः। आबन्त न होने से सुलोप नहीं होगा। गोपौ गोपाः। गोपाम् गोपौ। आतो धातोः। से आकार लोप। गोपः। गोपा गोपाभ्याम्, इत्यादि जनना। इति आदन्ताः।

स्यासिद्धत्वात् । मांसपृतनासानूनां मांसृपृत्स्नवो वाच्याः शसादौ वा * पृतः पृता पृद्भ्याम्। पक्षे सुटि च रमावत् । गोपा विश्वपावत् । मतिः प्रायेण हरिवत् । स्त्रीत्वान्नत्वाभावः । मतीः । अस्त्रियामित्युक्तेः, मत्या । ङिति ह्रस्वश्च ।१।४।६। इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ च इउवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति परे । आण् नद्याः । मत्यै, मतये, मत्याः, मतेः । इदुद्भ्याम् ।७।३

मतिशब्द सुट् के परे, अर्थात् सु-औ-जस् अम्-औ के परे हरि शब्द के समान होगा । मतिः मती मतयः । मतिम् मती । मति-शस् प्रथमयोः पूर्वसवर्णः । ह्रत्व विसर्ग । मतीः । 'तस्माच्छसो नः पुंसि' पुंलिङ्ग में ही नकार होता है अतः नकार नहीं होगा । मति-टा । 'आङो नाऽस्त्रियाम्' से ना आदेश अस्त्रियाम् इस उक्ति से स्त्रीलिङ्ग को छोड़ कर होता है, अतः ना आदेश नहीं होगा । इको यणचि । मत्या । मति-ङे स्थिति में ।

(ङितीति) ङिति ह्रश्वश्च । इयङ्-उवङ् स्थानी, अर्थात् जिसकी इयङ् उवङ् होने की योग्यता हो, स्त्रीशब्द भिन्न नित्यस्त्रीलिङ्ग ईत्-उत् अर्थात् दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त शब्द, और चकारात् ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में ङित् वचन के परे विकल्प से नदी संज्ञा हो । व्याख्यान से दो वाक्य करके व्याख्या करना । अन्यथा ह्रस्व इत् उत्में भी नित्यस्त्रीलिङ्ग मानने से त्रिलिङ्ग वाचक पटु मृदु इत्यादिकों की नदी संज्ञा नहीं होगी । अस्तु । नदीसंज्ञा होने से 'आण् नद्याः' से आट् का आगम । 'आटश्च' से वृद्धि इको यणचि, मत्यै पक्ष में, घेर्ङिति । एचोऽयवायावः । मतये । हरि शब्दवत् पक्ष में जानना । एवं मत्याः, मतेः । मति आम् ह्रस्वनद्यापो नुट् । नामि मतीनाम् । मति-ङि । ङितिह्रस्वश्च से नदी संज्ञा । नदी संज्ञा के पक्ष में 'औत्' से ङि को औ आदेश प्राप्त था ।

(इदुदिति) इदुद्भ्याम् । नदी संज्ञक इत् उत् से पर जो ङि उसे औत् हो, इससे ङि को आकार । आण् नद्याः, से आट् । आटश्च

।११७। नदीसंज्ञकाभ्याम् आभ्यां परस्य ङेराम् स्यात् । पक्षे अच्च घेः । मत्याम्, मतौ । एवं श्रुतिस्मृत्यादयः । **त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ** ।७।२।९९। स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतावादेशौ स्तो विभक्तौ परतः । **अचि र ऋतः** ।७।२।१००। तिसृचतसृ रेफः स्यादचि । गुणदीर्घोत्वानामपवादः । तिस्रः २ आमि नुमचिरेति नुट् । **न तिसृचतसृ** ।६।४।४। एतयोर्नामि

इकोयणचि, मत्याम्, पक्ष में 'शेषो घ्यसखि' से घि संज्ञा, अच्चघेः, से ङि को औकार, घिसंज्ञक 'इ' को अकार, वृद्धिरेचि, मतौ, इसी प्रकार श्रुति स्मृति इत्यादिक ह्रस्व इकारान्त के रूप जानना ।

त्रि+त्रिशब्द त्रित्व संख्या का वाचक है अतः नित्य बहुवचनान्त है, प्रकृति प्रत्यय का अभेदान्वय होता है अतः जस् होगा । त्रि-जस ।

(त्रि चतुरोरिति) त्रिचुतुरोः स्त्रियाम् तिसृचतसृ, स्त्रियाम्-यह त्रिचतुरोः का विशेषण है, तो यह अर्थ होगा, स्त्री लिङ्ग में विद्यमान त्रिचतुर् को क्रम से तिसृ चतसृ आदेश हों, अर्थात् त्रिशब्द को तिसृ और चतुर् शब्द को चतसृ, विभक्ति के परे । यहाँ जस् विभक्ति परे है, अतः त्रिशब्द को तिसृ आदेश हो गया । 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः' से गुण, 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से यहाँ और शस् के परे पूर्वसवर्ण दीर्घ, एवं ङसिङस् में 'ऋतउत्' से उकार प्राप्त था, उसका अपवाद सूत्र ।

(अचीति) अचिर ऋतः । त्रिचतुरोः की अनुवृत्ति है । त्रिचतुर् शब्द के ऋकार को रेफ हो, अच् के परे । तो जकार इत् है अतः अस् का अकार परे है, ऋ को रेफ हो गया । रुत्वविसर्ग, तिस्रः । शस् के परे, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त था, रेफ हो गया । तिसृभिः, तिसृभ्यः । तिसृ-आम्, अचि र ऋतः से रेफ प्राप्त था । 'नुमचिर तृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' यहाँ अचि के परे रेफ प्राप्त था, पूर्वविप्रतिषेध से नुट् हो गया । उटावितौ । नाम् परे है, अतः नामि से ऋकार को दीर्घ प्राप्त था ।

(नतिसृचिति) न तिसृ चतसृ । तिसृ चतसृ को नामि के परे दीर्घ न हो । 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' से नकार को णकार,

दीर्घो न स्यात्। तिसृणाम्। तिसृषु। स्त्रियामिति त्रिचतुरोर्विशेषणम्। त्रिचतुरोः स्त्रीत्वे एव तिसृचतस्रौ स्त इत्युक्तेर्नेह। प्रियास्त्रयस्त्रीणि वा यस्याः सा प्रियत्रिः। मतिवत्। अत्र त्रिशब्दस्य पुंसि नपुंसके च वर्तमानत्वान्न तिस्रादेशः। आमि तु प्रियत्रयाणामिति विशेषः। प्रियास्तिस्रो यस्य स इति विग्रहे प्रियतिसा, प्रियतिस्रौ, प्रियतिस्रः, प्रियतिस्रमित्यादि

तिसृणाम्, तिसृषु। प्रियास्त्रयः, प्रियाणि त्रीणि यस्याः सा, यहां अन्य पद प्रधान बहुव्रीहि समास है, और अन्य पद सूचक यस्याः सा यह स्त्रीलिङ्ग है अतः प्रियत्रि शब्द स्त्रीलिङ्ग होगा। परन्तु विग्रह वाक्य में निर्दिष्ट प्रियास्त्रयः यस्याः यहाँ त्रिशब्द पुंलिङ्ग है। एवं प्रियाणि त्रीणि यस्याः यहाँ त्रिशब्द नपुंसक लिङ्ग है, अतः त्रिशब्द को स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान न होने से तिस्रादेश नहीं होगा। तो प्रियत्रि शब्द मतिशब्द के समान होगा। प्रियत्रिः प्रियत्री प्रियत्रयः। शसि प्रियत्रीः। ङे-प्रियत्र्यै-प्रियत्रये। ङसिङसोः। प्रियत्र्याः प्रियत्रेः। आम् के परे। 'त्रेस्त्रयः' से त्रयादेश हो जायगा, ह्रस्वनद्यापो नुट्। नामि। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि। प्रियत्रयाणाम्। परन्तु यदि त्रिशब्द स्त्रीलिङ्ग होगा, तो तिस्रादेश हो जायगा। अन्य पद चाहे पुंलिङ्ग हो, अथवा स्त्रीलिङ्ग। यहाँ वक्ष्यमाण में त्रिशब्द स्त्रीलिङ्ग है अतः तिस्रादेश होगा जैसे प्रियाः तिस्रो यस्य सः। यहाँ स्त्रीलिङ्ग सूचक तिस्रः यह है, एवं त्रिशब्द स्त्रीलिङ्ग में है और अन्य पद प्रधानता सूचक यस्य सः पुंलिङ्ग है तब भी तिस्रादेश हो जायगा, तो प्रियत्रिसु। प्रियत्रि शब्द यद्यपि पुंलिङ्ग है, परन्तु विग्रह वाक्य में प्रदर्शित त्रिशब्द स्त्रीलिङ्ग है अतः तिस्रादेश होगा। प्रियतिसृ-सु। 'ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च' से अनङ्। हल्ङ्याब्भ्यो० से सुलोप, नलोपः प्राति० से नलोप प्रियतिसा। औ इत्यादि सर्वनाम स्थान में 'ऋतो ङि सर्वनामयोः' से गुण प्राप्त था गुण-दीर्घादि का अपवाद। 'अचिर ऋतः' से रेफ। प्रियतिस्रौ। जसशस् में प्रथमयोः पूर्व सवर्णः, अम् के परे अमिपूर्वः, ङसिङस् में ऋतउत्, ङि के परे ऋतोङि प्राप्त थे सबका अपवाद अचि र

प्रियास्तिस्रो यस्य तत्कुलं प्रियत्रि । स्वमोर्लुका लुप्तत्वेन प्रत्ययलक्षणाभावान्न तिस्रादेशः । न लुमतेति निषेधस्यानित्यत्वात्, पक्षे प्रियतिसृ । रादेशात्पूर्वविप्रतिषेधेन नुम् । प्रियतिसृणि । तृतीयादिषु वक्ष्यमाणपुंवद्भावविकल्पात्पर्यायेण नुम्रभावौ । प्रियतिस्रा, प्रियतिसृणा । इत्यादि,

ऋतः से रेफ हो जायगा । प्रियतिस्रः । प्रियतिस्रम् । ङसि ङस् । प्रियतिस्रः । प्रियत्रि-आम्, तिस्रादेश । 'अचि र ऋतः' प्राप्त था 'नुमचिर तृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' नुट् । नामि से दीर्घ प्राप्त था । 'न तिसृ चतसृ' से दीर्घ निषेध । ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् प्रियतिसृणाम् । अन्य पद नपुंसक लिङ्ग की प्रधानता में दिखाते हैं । प्रियाः तिस्रो यस्य तत् । प्रियत्रि । यहाँ त्रिशब्द स्त्रीलिङ्ग है, अन्य पद नपुंसक लिङ्ग है तब भी तिस्रा होगा । प्रियत्रि-सु, स्वमोर्नपुंसकात् से नित्यत्वात्, निरपेक्षत्वेन अन्तरङ्गत्वात् सु का लोप । प्रियत्रि । 'प्रत्यय लोपे प्रत्यय लक्षणम्' से सुप्रत्यय का लोप होने पर भी सुप्रत्यय मानकर सु विभक्ति के परे तिस्रादेश प्राप्त था 'न लुमताङ्गस्य' लुमान् लुक्शब्द से विहित सुलोप है, अतः तन्निमित्तक अङ्ग कार्य तिस्रादेश नहीं होगा । 'नलुमताङ्गस्य' से निषेध अनित्य है । इस पक्ष में तिस्रादेश, प्रियतिसृ । द्विवचन में, प्रियत्रि-औ, तिस्रादेश, वक्ष्यमाण 'नपुंसकाच्च' से औ को शी आदेश । शइत् । 'अचिर ऋतः' से रेफ प्राप्त था, पूर्वविप्रतिषेध से नुम् 'सवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्', प्रियतिसृणी । जसि । जश्शसोः शिः । शिसर्वनामस्थानम्' नुमि, नोपधायाः । णत्वम् । प्रियतिसृणि ।

टिप्पणः—'नलुमताङ्गस्य सूत्र अनित्य यह मानते हैं, इसमें प्रमाण 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र में अच् ग्रहण है । क्योंकि इकोऽचि सूत्र में अच् ग्रहण क्यों ? भ्यामादिक हलादि के परे नुम्' हो जायगा, उत्तर—वहाँ 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से नलोप हो जायगा । संबोधन हेवारि में नुम् हो जायगा । उत्तर—यहाँ भी नकार का लोप हो जायगा । नङि सम्बुद्ध्योः से न लोप का निषेध हो जायगा, सबुद्धि परे नहीं है । प्रत्यय

द्वेरत्वे सत्याप् द्वे २ द्वाभ्याम् ३ द्वयोः २। गौरी, गौर्यौ, गौर्यः। नदीकार्यम् हेगौरि। गौर्यै। इत्यादि। एवं वाणीनद्यादयः। प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणादनङ् णिद्वद्भावे च प्राप्ते। 'विभक्तौ लिङ्गविशिष्टस्याग्रहणम्'। सखी, सख्यौ, सख्यः। इत्यादि गौरीवत्। अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः। लक्ष्मीः। शेषं गौरीवत्। स्त्री हे स्त्रि। स्त्रियाः।६।४।७९। स्त्रीशब्दस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे। स्त्रियौ, स्त्रियः।

द्वितीयामें पूर्ववत्। प्रियत्रि—टा, 'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य' से विकल्प से अजादि के परे पुंवद् भाव। त्रिशब्द स्त्रीलिङ्ग से है, अतः तिस्रादेश। पुंवद्भावपक्ष में अचिर ऋतः से रेफ। प्रियतिस्रा, पक्ष में नुम्, णत्व। प्रियतिसृणा। इत्यादि। एवम्, प्रियतिस्रे प्रियतिसृणे। ङसि ङस में प्रियत्रि—ङसि। विकल्प से पुंवत्। उत्त्रापवाद। अचिर ऋतः से रेफ। प्रियतिस्रः। पक्ष में नुम्, णत्वात् प्रियतिसृणः। आमि में पुंवद्भाव। त्रिशब्द स्त्रीलिङ्ग में है अतः तिस्रदेश। प्रियतिसृ-आम्। त्रेस्त्रयः प्राप्त था परत्वात् तिस्रादेश होगा। नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' से नुट्। नामि प्राप्त था, नतिसृचतसृ' से दीर्घनिषेध, प्रियतिसृणाम्, पक्ष में नपुंसकलिङ्ग में उक्त वार्तिक से नुम्को बाधकर नुट्। प्रियतिसृणाम्। ङि में। ऋतोङि० से प्राप्त गुणापवाद रेफ। प्रियातिस्रि प्रियतिसृणि। इत्यादि।

द्वि शब्द द्वित्वसंख्याविशिष्ट का वाचक है, अतः नित्य द्विवचनान्त है। द्वि औ। त्यदादीनामः, से अकार। अजाद्यतष्टाप्।

लक्षण से सम्बुद्धि मानेंगे 'नलुमताङ्गस्य' से निषेध हो जायगा अतः प्रत्यय लक्षण से सम्बुद्धि परत्व आवेगा ही नहीं अतः नङि सम्बुद्ध्योः से न लोप का निषेध नहीं होगा। अथवा 'न लुमताङ्गस्य' निषेध हो जाने से विभक्त कत्व नहीं है अतः नुम् नहीं होगा। फिर अचिग्रहण क्यों किया? अचि ग्रहण सामर्थ्य से जानते हैं नलुमताङ्गस्य अनित्य है। अतः प्रत्यय लक्षण से विभक्ति मानकर तिसृ आदेश होगा।

सवर्ण दीर्घ। औङ आपः गुण्रमा शब्दवत्। द्वे २ द्वाभ्याम् ३ द्वयोः २। त्यदादीनां संबोधनं नास्तीत्युत्सर्गः। इति इदन्ताः।

दीर्घ ईकारान्त गौरी शब्द है। षिद्गौरादिभ्यश्च से ङीष्। हल्ङ्याब्भ्यो॰ से सुलोप। गौरी औ जस् आदि में प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त था। दीर्घाज्जसि च, से निषेध। गौर्यौ, गौर्यः। अमि पूर्वः। गौरीम्, गौर्यौ, शसि में प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। रुत्वविसर्ग। गौरीङे। यूस्त्र्याख्यौ नदी से नदी संज्ञा। आण् नद्याः। आटश्च इकोयणचि गौर्यै। आम् में, ह्रस्वनद्यापो नुट्। अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि। गौरी–ङि। ङेराम् नद्याम्नीभ्यः। आण् नद्याः। आटश्च। इकोयणचि। गौर्याम्। संबोधन में। अम्बार्थ नद्योर्ह्रस्वः। एङ् ह्रस्वात्संबुद्धेः। हे गौरि। इसी प्रकार वाणी नदी सरस्वती दण्डिनी इत्यादिकों के जानना। सखी, 'सख्यशिश्वीति भाषायाम्' से ङीष्। 'यस्येतिच से इलोप। सखी सु। 'प्रातिपदिक ग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' से सखि इस प्रातिपदिक के ग्रहण से स्त्रीलिङ्ग बोधक प्रत्यय विशिष्ट सखी का भी ग्रहण हो जायगा। अतः सखी शब्द को सुके परे 'अनङ् सौ' से अनङ् और अवशिष्ट सर्वनामस्थान में 'सख्युरसंबुद्धौ' से णिद्वद्भाव प्रास था। 'विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम्' विभक्ति में लिङ्ग विशिष्ट का अग्रहण है। अर्थात् प्रातिपदिकग्रहणे यह भाषा नहीं लगती। यहां सुविभक्ति मान अनङ और सर्वनाम स्थान का णिद्वद् भाव करना था तो सखिके ग्रहण से सखी का ग्रहण नहीं होगा। अतः अनङ् णिद्वद्भाव नहीं होगा। सुलोप। सखी, सख्यौ, सख्यः। इत्यादि गौरी शब्द की तरह रूप होंगे। लक्ष्मी, लक्ष-धातु। लक्षेरीमुट् च। से ई प्रत्यय मुडागम। लक्ष्मी, ङ्यन्त नहीं है, अतः हल्ङ्याब्भ्यो॰ से सुलोप नहीं होगा। रुत्व विसर्ग। लक्ष्मीः अन्य सब विभक्तियों में गौरी शब्द के समान रूप होंगे। लक्ष्म्यै, लक्ष्म्याः। लक्ष्मीणाम्। हे लक्ष्मि! इत्यादि।

स्त्री-शब्द सु। ङ्यन्त है अतः सुलोप। स्त्री यू। स्त्र्याख्यौ नदी से नदी संज्ञा। अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः। एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः। हे स्त्रि। स्त्री-औ। अजादि के परे।

वाऽम्शसोः ।६।४।८०। पूर्ववत् । स्त्रियम्, स्त्रीम्, स्त्रियौ, स्त्रियः स्त्रीः। स्त्रियै, स्त्रियाः । परत्वान्नुट् । स्त्रीणाम् । स्त्रियाम्, स्त्रियोः, स्त्रीषु। स्त्रियमतिक्रान्तः अतिस्त्रिः, अतिस्त्रियौ । गुणनाभावौत्वनुड्भिः परत्वात्पुंसि बाध्यते । क्लीबे नुमा च स्त्रीशब्दस्येयङित्यवधार्यताम् ।१। अतिस्त्रयः । हे अतिस्त्रे, हे अतिस्त्रियौ, हे अतिस्त्रयः । अतिस्त्रियम्, अति-

---

स्त्रियाः ! इति । स्त्री शब्द को इयङ् हो अजादि प्रत्यय के परे। ङिच्च से अन्त्य ई को इयङ् हो गया । 'वाऽमशसोः' अम्‌शस् के परे स्त्री शब्द को विकल्प सेइयङ् हो। जहां इयङ् हुआ वहां स्त्रियम्। पक्ष में अभिपूर्वः स्त्रीम् । स्त्रियौ । शस् के परे विकल्प से इयादेश। स्त्रियः, पक्ष में पूर्वसवर्ण दीर्घ. रुत्वविसर्ग, स्त्रीः, ङित् के परे। आण् नद्याः, आटश्च । 'स्त्रियाः' से इयङ् । स्त्रियै । स्त्रियाः, स्त्रियोः इयङा-देश । स्त्री-आम् । ह्रस्वनद्यापो नुट् । अट्कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि, से णत्त्व । स्त्रीणाम् । ङि में । 'ङेराम् नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम्। आण्नद्याः, आटश्च । 'इकोयणचि' को बाधकर 'स्त्रियाः' से इयङ्। स्त्रियाम्, स्त्रियोः स्त्रीषु ।

स्त्रियमतिक्रान्तः, 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' से समास। गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्व । कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा । स्वाद्युत्पत्ति । रुत्वविसर्ग । अतिस्त्रिः । अतिस्त्रि-औ । 'स्त्रियाः' से इयङ् आदेश । प्रश्न होता है, कि यहाँ 'स्त्री' शब्द कहाँ है, यहां तो ह्रस्व होकर स्त्रि शब्द हो गया है। एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति। एक देश से विकृत अन्य नहीं होता है किन्तु वही बना रहता है। तो यहाँ स्त्री शब्द को ह्रस्व होकर 'स्त्री' बन गया है, तब भी वह स्त्री शब्द ही कहावेगा। अतः इयादेश हो जायगा । स्त्रियौ । जस् के परे, जसि च से गुण, अयादेश । अतिस्त्रयः । अति स्त्री शब्द के सुस्पष्ट बाध्य बाधक परिज्ञान का अनुगम करके सुख प्रतिपत्ति के लिये कहते हैं । 'गुण नामावौत्वनुड्भिः' इत्यादि । जस् के परे जसि च,

त्रिम्। अतिस्त्रियौ। अतिस्त्रियः। अतिस्त्रीन्। अतिस्त्रिणा। घेर्ङिति। अतिस्त्रये। अतिस्त्रेः २। अतिस्त्रीणाम्। अच्च घेः। अतिस्त्रौ। ओस्यौकारे च नित्यं स्यादम्शसोस्तु विभाषया। इयादेशोऽचि नान्यत्र स्त्रियाः पुंस्युपसर्जने॥ क्लीबे तु नुम्। अतिस्त्रि, अतिस्त्रिणी अतिस्त्रीणि।

हे ङसि ङस् के परे घेर्ङिति से जायमान गुण से, आङो नाऽस्त्रियाम् के नाभाव से अच्चघेः के औत्व से एवं ह्रस्वनद्यापो० के नुट् से स्त्री शब्द को पुंलिङ्ग में उपसर्जने परत्वात् इन सूत्रों से 'स्त्रियाः' से प्राप्त इयङ् आदेश का बाध किया जाता है। क्योंकि गुणादि के विधायक जसिच इत्यादिक छहों सूत्र सप्तमाध्यायस्थ हैं, और स्त्रियाः षष्ठाध्यायस्थ है, अतः परत्वात् 'स्त्रियाः' का बाध करते हैं। एवम् इकोऽचि विभक्तौ यह भी सप्तमाध्यायस्थ है, अतः स्त्री शब्द को नपुंसक लिङ्ग में उपसर्जन होने पर परत्वात् षष्ठाध्यायस्थ 'स्त्रियाः' का बाध करेगा। अम् के 'वाऽम्शसोः' से विकल्प इयादेश, अतिस्त्रियम्। पक्षमें अमि-पूर्वः। अतिस्त्रिम्। अतिस्त्रियौ। शस् के परे विकल्प से इयादेश अतिस्त्रियः। पक्ष में। अतिस्त्रि पुंलिङ्ग है, अतः प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्व सवर्ण दीर्घ होने के अनन्तर 'तस्माच्छसो नः पुंसि' से नकार। अतिस्त्रीन्, अतिस्त्रिणा, आङो नाऽस्त्रियाम्, अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि, घेर्ङिति, अयादेश, अतिस्त्रये, घेर्ङिति, ङसिङसोश्च, रुत्वविसर्ग, अतिस्त्रेः, आम् में, ह्रस्वनद्यापों नुट्। नामि, अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि। अतिस्त्रीणाम्। अच्चघेः। वृद्धिरेचि, अतिस्त्रौ, आदेशप्रत्यययोः अतिस्त्रिषु। ह्रस्वस्य गुणः। एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः। हे अतिस्त्रे/ हे अतिस्त्रियौ, हे अतिस्त्रियः। अतिस्त्रिशब्दः, पुंलिङ्गः, स्त्रीशब्द को उपसर्जन होने पर कहाँ-कहाँ इयादेश हुआ यह कहते हैं।

ओस्यौकारे च नित्यं स्यात्, अम्शसोस्तु विभाषया।
इयादेशोऽचि नान्यत्र स्त्रियाः पुंस्युपसर्जने॥

स्त्री शब्द को उपसर्जन हो जाने पर पुंलिङ्ग में इयादेश, ओस् और औकार के परे नित्य और अम् शस् के परे विकल्प से होगा। अन्यत्र

ङेप्रभृतावजादौ वक्ष्यमाणपुंवद्भावविकल्पः। अतिस्त्रिणे, अतिस्त्रये
अतिस्त्रिणः२ अतिस्त्रेः। इत्यादि। स्त्रियां तु प्रायेण पुंवत्। ...

अजादि विभक्ति के परे इयादेश नहीं होगा, उक्त प्रक्रिया से गुणादि
बाध लेंगे।

नपुंसक लिङ्ग में अतिस्त्रि शब्द को उपसर्जन हो जाने से ...
का विशेषण होने पर अजादि के परे नुम् होगा, यथा स्त्रियम् अति-
क्रान्तं यत्कुलम्, अतिस्त्रि, स्वमोर्नपुंसकात् से सुलोप, औ में, 'नपुंस-
काच्च' से शी आदेश 'लशक्वतद्धिते' से शकार इत्। इकोऽचि
विभक्तौ से नुम्, 'आदेशप्रत्यययोः' से णकार अतिस्त्रिणी
जस्। 'जश्शसोः शिः' 'शिसर्वनामस्थानम्' अजन्तला...
'नपुंसकस्य झलचः' से नुम्। हलन्त्यम्, उपदेशेऽजनुनासिक इत्
म कार उ कार इत्, 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से दीर्घ। णत्व अति-
स्त्रीणि। द्वितीया में पूर्ववत्। टा के परे 'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुं-
गालवस्य' से विकल्पेन पुंवद्भाव, 'आङो नाऽस्त्रियाम्' से नादेश अ...
जहाँ पुंवद्भाव नहीं होगा, वहाँ इकोऽचि विभक्तौ' से नुम् उभ...
अतिस्त्रिणा समान रूप है। अतः चतुर्थी से भेद दिखाया है, अजा...
ङे इत्यादिकों में पुंवद्भाव होने से 'स्त्रियाः' का परत्वात् बाध...
'घेर्ङिति' से गुण, अयादेश। अतिस्त्रये, पक्ष में नुम् णत्व, अतिस्त्रिणे
पुंवद्भाव होने से पुंलिङ्ग में प्रक्रिया बता आये हैं और पक्ष में नपुंसक
लिङ्ग प्रयुक्त नुम्। अतिस्त्रेः, घेर्ङिति से गुण, ङसिङसोश्च। अति...
ओस्, स्त्रियाः से इयादेश, अतिस्त्रियोः, पक्ष में नुम्। णत्व अति-
स्त्रिणोः, आम् के परे पुंवद्भाव होने पर परत्वात् इयादेश को बाध...
नुट्, नामि, अट्कुप्वाङ्० से णत्व। अतिस्त्रीणाम्, पक्ष में नपुंसक
लिङ्ग में नुम् को बाधकर नुट्, अतिस्त्रीणाम्, समान होता है। ...
एकवचन ङि में पुंवद्भाव होने से इयादेश को बाधकर अच्च...
वृद्धिरेचि, अतिस्त्रौ। पक्ष में 'इकोऽचिविभक्तौ' अतिस्त्रिणि। ...
स्त्रियोः अतिस्त्रिणोः इत्यादि। सम्बोधन में, स्वमोर्नपुंसकात् से सुलोप

अतिस्त्रीः अस्त्रियामित्युक्तेः। अतिस्त्रिया। ङिति ह्रस्वान्तत्वप्रयुक्तो विकल्पः। अस्त्रीति तु इयङुवङ्स्थानावित्यस्यैव पर्युदासः, तत्संबद्धस्यैवानुवृत्तेर्दीर्घस्यायं निषेधो न तु ह्रस्वस्य। अतिस्त्रियै, अतिस्त्रये। अति-

हे अतिस्त्रि। 'नलुमताङ्गस्य' सूत्र अनित्य है, इस पक्ष में 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' से सुलोप को प्रत्यय मानकर 'ह्रस्वस्य गुणः' से गुण, हे अतिस्त्रे! इत्यादि।

स्त्रियमतिक्रान्ता या इस विग्रह में अतिस्त्रि शब्द का रूप साधुत्व प्रायः पूर्वोक्त पुंलिङ्ग के समान होगा। अतिस्त्रिः, अतिस्त्रियौ, अतिस्त्रियः, प्रायेण पद प्राप्त भेद को कहते हैं, अतिस्त्रीः। 'वाम्शसोः' से विकल्प पक्ष में अतिस्त्रि-अस्। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः, इससे पूर्वसवर्ण दीर्घ होने के अनन्तर 'तस्माच्छसो नः पुंसि' से नकार नहीं होगा, क्योंकि नकार पुंलिङ्ग में ही होगा, अतः ससजुषोरुः 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग। अतिस्त्रीः। ङित् के परे, अतिस्त्रि—ङे। 'ङिति ह्रस्वश्च' से विकल्प से नदी संज्ञा, आण्नद्याः, आटश्च, स्त्रियाः से इयङ्। अतिस्त्रियै, प्रश्न यह होता है कि नेयङुवङ्स्थानावस्त्री से 'इयङ् उवङ् के साथ अनुवृत्त' अस्त्री यह प्रतिषेध क्यों नहीं लगेगा? अर्थात् स्त्री शब्द से भिन्न की विकल्पेन नदी संज्ञा होगी, यहाँ स्त्री शब्द है अतः नहीं होना चाहिये।

उत्तर—ङितिह्रस्वश्च की व्याख्या में कह आये हैं कि—इयङ्-उवङ् स्थानी दीर्घ ईकार ऊकार के साथ अस्त्री यह पर्युदास प्रतिषेध है अतः दीर्घ स्त्री शब्द में अस्त्री यह प्रतिषेध लगेगा, ह्रस्व में नहीं। तो 'अतिस्त्रि' इस ह्रस्वान्त की नदी संज्ञा हो जायगी। ङसि ङस् में नदी संज्ञा आण् नद्याः; आटश्च, स्त्रियाः से इयङ्, अतिस्त्रियाः पक्ष में स्त्रिया से प्राप्त इयङ् को घेर्ङिति से गुण परत्वात् बाध लेगा, गुण, 'ङसिङसोश्च' रुत्वविसर्ग, अतिस्त्रेः अतिस्त्रियोः। अतिस्त्रि आम्। 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट्। 'नामि' से दीर्घ, 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से णकार, अतिस्त्रीणाम्। अतिस्त्रि-ङि ङितिह्रस्वश्च से नदीसंज्ञा

स्त्रियाः, अतिस्त्रेः । अतिस्त्रियाम्; अतिस्त्रौ । श्रीः श्रियौ, श्रियः । ने
ङुवङ्स्थानावस्त्री ।१।४।४। इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यावीदूतौ नदी
न स्तो न तु स्त्री । हे श्रीः । श्रियै, श्रिये । श्रियाः २ श्रियः २ । वाऽ

'ङेराम् नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम्, आण्नद्याः आटश्च, स्त्रियाः
इयङ् । स्त्रियाम्, पक्षमें 'स्त्रियाः' से प्राप्त इयङ् को बाधकर अच्
वृद्धिरेचि, अतिस्त्रौ, 'आदेशप्रत्यययोः' से षकार, अतिस्त्रिषु ।
अतिस्त्रि सु ह्रस्वस्य गुणः, एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः । हे अतिस्त्रे, हे अतिस्त्रि
हे अतिस्त्रियः ।

दीर्घ ईकारान्त श्रीशब्द है । यह ङ्यन्त नहीं है अतः सु
नहीं होगा रुत्वविसर्ग श्रीः । 'अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' से इयङ्
श्रियौ श्रियः । संबोधन में,

(नेयङिति) नेयङुवङ्स्थानावस्त्री, इयङ् उवङ् स्था
अर्थात् जिनमें इयङ् उवङ् आदेश हो स्त्रीवाचक ईकार
ऊकारान्त शब्द नदीसंज्ञक न हों, स्त्री शब्दको छोडकर, अर्थ
उक्त विशेषण-विशिष्ट स्त्री शब्द की भी नदी संज्ञा का निषेध प्र
था, उसके लिये अस्त्री यह कहा है । तो संबोधन में 'यूस्त्र्याख्यौ न
से नदीसंज्ञा 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' से ह्रस्व प्राप्त था, उक्तसूत्र से नदी
का निषेध हो गया, रुत्वविसर्ग, हेश्रीः । अचिश्नु० सूत्रसे इयङ्, हो
हेश्रियः । ङित् वचनमें, श्री-ङे 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' से नदी संज्ञा प्राप्त
उसका 'नेयङुवङ्स्थानावस्त्री' से निषेध प्राप्त था, 'ङिति ह्रस्व
से वैकल्पिक नदी संज्ञा, आण् नद्याः । आटश्च, अचिश्नुधातुभ्रुवां
श्रियै, पक्ष में, केवल इयङ् । श्रिये, एवम्, श्रियाः, श्रियः, आम्के
(वा मीति) वा आमि, इयङ्-उवङ् स्थानी स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान ई
रान्त ऊकारान्त शब्द आम्के परे विकल्पसे नदीसंज्ञक हो । यूस्त्र्या
नदी संज्ञा, नेयङुवङ्स्थानावस्त्रीसे निषेध प्राप्त था । 'वामि' से विक
नदीसंज्ञा, नदीसंज्ञक होनेसे 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् । अटकुप्वा
णकार, श्रीणाम् , पक्षमें इयङ् श्रियाम् . सप्तमी एकवचन, ङि, ने

।१।४।५। । श्रीणाम्, श्रियाम्, । श्रियाम्, श्रियि। पदान्तरं विनापि स्त्रियां वर्तमानत्वं नित्यस्त्रीत्वमिति वृत्तिकारादीनां मते प्रधीशब्दस्य लक्ष्मीवद्रूपम् । लिङ्गान्तरानभिधायकं तदिति कैयटमते पुंवद्रूपम् ।

स्थानावस्त्री से निषेध प्राप्त था, ङितिह्रस्वश्च से विकल्पेन नदीसंज्ञा। 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम्, आट्, वृद्धि, इयङ् श्रियाम्। पक्षमें श्रियि।

(पदान्तरमिति) नित्यस्त्रीत्वमिति वृत्तिकार-हरदत्तादि के मतसे और कैयट के मत से 'नित्यस्त्रीत्व' के लक्षण में भेद है, इस लक्षण-भेद के वैषम्य का फल प्रधी शब्द में स्पष्ट प्रतीयमान होता है, अतः उसके प्रकार को दिखाते हैं। प्रकृष्टं ध्यायतीति विग्रह में ध्यै धातुसे क्विप्, संप्रसारण, पूर्वरूप दीर्घादि निष्पन्न प्रधी शब्द है, यहाँ प्रवृत्तिनिमित्त क्या है ? प्रकर्षेण ध्यानकर्तृत्व, वह पुंलिंगादि तीनों में साधारण है अतः नित्य स्त्रीलिङ्ग नहीं है, तो नदी कार्य नहीं होगा। इसका समाधान देते हुए वृत्तिकारादि नित्य स्त्रीत्व का स्वरूप कहते हैं, कि हमलोग "पदान्तरं विनाऽपि स्त्रियां वर्तमानत्वं नित्यस्त्रीत्वं" यह मानते हैं। अर्थात् स्त्रीबोधक दूसरे शब्द के प्रयोग के बिना जो शब्द स्त्रीरूप अर्थ का बोधक हो वह नित्य स्त्रीलिङ्ग है। तो 'प्रकृष्टं ध्यायति' यहाँ अन्य पद के विना भी प्रकृष्ट ध्यान-कर्तृत्व स्त्री में भी है अतः नित्यस्त्रीत्व है। अतएव प्रधी शब्द के लक्ष्मी शब्द के सदृश रूप होंगे, अङ्यन्तत्वात् सुलोप नहीं होगा। प्रधीः। 'एरनेकाचोऽसंयोग-पूर्वस्य' से यण्। प्रध्यौ, प्रध्यः। अम्-शस् के परे लक्ष्मी शब्द में 'इकोयणचि' को बाधकर 'अमिपूर्वः' 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' लगता है, यहाँ दोनों को बाधकर एरनेकाचो॰ से यण् होगा, प्रध्यम्, प्रध्यः। ङित् वचन में इयङ् स्थानी नहीं है, यण् बाध लेगा, अतः विकल्प से नदी नहीं होगी किन्तु 'यू स्त्र्याख्यौ' से नित्य नदी संज्ञा। आट्-वृद्धि, यण्। प्रध्यै, प्रध्याः, प्रध्योः। नदीत्वात् 'ह्रस्वनद्यापो नुट्', प्रध्यीनाम्। ङेराम्नद्याम्नीभ्यः, प्रध्याम्। संबोधन में इयङ् स्थानी

प्रकृष्टा धीरिति विग्रहे तूभयमते लक्ष्मीवदेव। अमि शसि च प्रध्यम्, प्रध्यः इति विशेषः। एवं वृत्तिकारमते सुधीः श्रीवत्। मतान्तरे पुंवत्।

नहीं है अतः नेयङुवङ् से नदी संज्ञा का निषेध नहीं होगा। हे प्रधि! हे प्रध्यौ, हे प्रध्यः।

कैयट मत—'यूस्त्र्याख्यौ नदी' सूत्र की व्याख्या करते हुए कैयट कहते हैं कि 'स्त्र्याख्यौ' पद का शब्दार्थ 'स्त्री एव ययोस्तौ यू-ईदूतौ' स्त्री ही जिनकी आख्या हो ऐसे ईदन्त ऊदन्त नित्य स्त्रीलिङ्ग होंगे। स्पष्ट कहा है, स्त्रीलिङ्गान्यलिङ्गानभिधायकत्वमेव नित्यस्त्रीत्वम्। स्त्रीलिङ्ग से अतिरिक्त अन्य किसी लिङ्ग का अभिधायक न हो वह नित्य स्त्रीलिङ्ग कहाता है।' अतः कैयट के मत से प्रकृष्टं ध्यायति इससे निष्पन्न प्रधी शब्द पुंलिङ्गादि को भी कहता है, अतः पुंवत् रूप होंगे अर्थात् नदी संज्ञा प्रयुक्त 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' से ह्रस्व। आण्नद्याः से आट् ह्रस्व नद्यापो नुट् से नुट्, ङेराम् नद्याम्नीभ्यः से ङि को आम् नहीं होगा। प्रकृष्टा चासौ धीः प्रधीः इस विग्रह में उभय मत से नित्यस्त्रीत्व है, अतः पूर्वोक्त प्रक्रियानुकूल साधुत्व जानना।

सुष्टु ध्यायति इस विग्रह में अथवा सुष्टु धीर्यस्याः सा इस विग्रह में 'पदान्तरं विनापि स्त्रियां वर्त्तमानत्वं नित्यस्त्रीत्वम्' इस वृत्तिकारादि के मत से नदी संज्ञा होने से श्री शब्द के समान रूप होंगे। ङ्यन्त न होने से सुलोप नहीं, सुधीः। न भूसुधियोः से यण् का निषेध 'अचि श्नु धातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' से इयङ् सुधियौ, सुधियः। संबोधन में इयङ् स्थानी है अतः 'नेयङुवङ्स्थानावस्त्री' से नदी संज्ञा का निषेध हे सुधीः। पूर्वरूप, पूर्वसवर्ण दीर्घ को बाधकर इयङ्, सुधियम्, सुधियः। ङित् वचन में वृत्तिकार के मत से नदी संज्ञा, सुधियै, सुधियै, सुधियाः, सुधियः। नदीत्वात् वामि से नुट्। सुधीनाम्, सुधियाम्, ङि में। ङे-राम्नद्याम्नीभ्यः से आम्। सुधियाम्, सुधियि इत्यादि कैयट के मत से पुंलिग के समान। नदी संज्ञा न होने से तत्प्रयुक्त कोई कार्य नहीं होगा। हे सुधिः, सुधिये, सुधियः, सुधियाम्। सुधियि

स्त्री:

सुष्ठुधीरिति विग्रहे तूभयमते श्रीवदेव। ग्रामणीः, पुंवदेव। ग्रामनयनस्योत्सर्गतः पुंधर्मतया पदान्तरं विना स्त्रियामप्रवृत्तेः। एवं खलपवनादेरपि पुंधर्मत्वमौत्सर्गिकं बोध्यम्। धेनुर्मतिवद्। स्त्रियां च।७।१।९३। स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृज्वत्स्यात्।ऋन्नेभ्यो ङीप्।४।१।५। एभ्यः स्त्रियां ङीप्स्यात्। क्रोष्ट्री, क्रोष्ट्र्यौ, क्रोष्ट्र्यः। वधूर्गौरीवत्। भ्रूः श्रीवत्।

सुष्ठु धीः इस विग्रह में दोनों के मत से नदी संज्ञा होगी। रूप साधुत्व पूर्वोक्त वृत्तिकार के मत में कह आये हैं। श्री शब्द के समान है।

ग्रामणी शब्द पुंलिंग के समान ही होगा। क्योंकि कैयट के मत से नदी संज्ञा होगी ही नहीं, वृत्तिकार के मत से भी पदान्तर के विना स्त्रीलिंग की प्रतीति ही नहीं हो सकती, क्योंकि ग्रामणी-ग्रामनायकत्व स्वाभाविक पुरुष का ही धर्म है अतः ग्रामणी शब्द की विना विशेषण के स्त्री में प्रवृत्ति ही नहीं है। इसी प्रकार खलपू शब्द का भी पूर्वोक्तवत् उभय मत से नित्य स्त्रीत्व नहीं है। क्योंकि खलपवनत्वादि उत्सर्गतः पुंधर्म ही हैं, इससे न होने से पुंवत् खलपू कटप्रू इत्यादि शब्दों के रूप जानना। धेनु शब्द के समान जानना। 'ङिति ह्रस्वश्च' से विकल्पेन नदी संज्ञा। धेन्वै, धेनवे, धेन्वाः धेनोः २। धेनूनाम्, धेन्वाम्, धेनौ इत्यादि। उकारान्त स्त्रीलिंग क्रोष्टु शब्द है।

(स्त्रियामिति) स्त्रियां च। स्त्री वाची क्रोष्टु शब्द तृजन्त के समान हो। अतः ऋकारान्त मानकर—

(ऋन्नेभ्य इति) ऋन्नेभ्यो ङीप्। ऋकारान्त और नान्त शब्द से स्त्रीलिंग में ङीप् हो। ङकार, लशक्वतद्धिते से इत्। पकार हलन्त्यम्, से। इकोयणचि, ऋ को रकार। क्रोष्ट्री। नदी शब्द के समान। क्रोष्ट्र्यौ, क्रोष्ट्र्यः, इत्यादि। वधू शब्द में गौरी शब्द के समान विभक्तिकार्य होंगे। भ्रू शब्द श्री शब्द के समान है। खलपू कटप्रू इत्यादि पुंवत् होंगे, इत्यादि सकारण पूर्व में वर्णन किया है। पुनर्भू-औ। इकोयणचि, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः, दीर्घाज्जसिच अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ, एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य, न भूसुधियोः, से [illegible] क्रम

श्लो: ५७

खलपूः पुंवत् । पुनर्भूः । दृन्करेति यण् । पुनर्भ्वौ । उवङ्स्थानाभावा-न्निषेधो न । हे पुनर्भु । पुनर्भ्वम्, पुनर्भ्वः । **एकाजुत्तरपदे णः** ।८।४।१२। एकाच् उत्तरं पदं यस्य तस्मिन्समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य नित्यं णत्वं स्यात् । परत्वान्नुट् । पुनर्भूणाम् । वर्षाभू । कैयटमते हे वर्षाभु । 'भेक्यां पुनर्नवायां स्त्री

से बाधक होकर यण्निषेध प्राप्त था, 'दृन् कर पुनः पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः' यहाँ पुनः-पूर्वक भू है, अतः यण् वकार हो जायगा। पुनर्भ्वौ पुनर्भ्वः, । संबोधन में उवङ्स्थानी नहीं है अतः नेयङुवङ्स्थानावस्त्री से नदी संज्ञा का निषेध नहीं होगा, अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः से ह्रस्व । 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' से सुलोप, हेपुनर्भु । पुनर्भ्वौ, पुनर्भ्वः । इत्यादि । ङित्वचनमें उवङ् स्थानी नहीं है अतः ङितिह्रस्वश्च से वैकल्पिक नदी नहीं होगी किंतु 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' से नदी संज्ञा, आट्, वृद्धि । पुनर्भ्वै । पूर्वोक्त 'दृन्करपुनः पूर्वस्य भुवो यण्वक्तव्यः' से यण्, पुनर्भ्वाः२ । पुंनर्भू-आम्। परत्वात् नदीसंज्ञक होनेसे नद्यन्तत्वात् नुट् हुआ, उकार टकार इत्। समानपद नहीं है अतः णत्व अप्राप्त है ।

(एकाजिति) 'एकाजुत्तरपदे णः' एकः अच् यस्मिन्, एक अच् जिसमें हो, बहुव्रीहि समास, एकाच् उत्तरपदं यस्य सः, तस्मिन्, एकाजुत्तरपदे। एक अच्युक्त उत्तरपद जिस समासान्त पद के हो उस पद में पूर्वपदस्थनिमित्त अर्थात् रेफषकार ऋवर्ण से पर, प्रातिपदिकान्त अथवा नुम् संबन्धी अथवा विभक्तिस्थ नकार को नित्य णकार हो। यहाँ पुनर्भू शब्द में भूशब्दगत एकमात्र ऊकार अच् है और पूर्व पदस्थ रेफ निमित्त से पर है और टित् होने से आम् के आदि में हुआ है अतः विभक्तिस्थ भी है, तो नकार को नित्य णकार हो गया। 'प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च' से विकल्पेन णकार प्राप्त था। पुनर्भूणाम्, सप्तमी में पुनर्भ्वाम्, उवङ्स्थानी न होने से नित्य नदी संज्ञा । वर्षाभू-वर्षाभू औ, 'एरनेकाचो' से प्राप्त यण् का निषेध 'न भूसुधियोः' से प्राप्त था, उसको 'वर्षाभ्वश्च' से बाधकर यण् हो जायगा, वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः संबोधन

वर्षाभूर्दर्दुरे पुमान्।' इति यादवः। वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः। स्वयंभूः पुंवत्। न षट् स्वस्रादिभ्यः ।४।१।१०। षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च ङीप् न। स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा। याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः' अप्तृन्निति दीर्घः। स्वसा, स्वसारौ। माता पितृवत्, शसि मातः। द्यौर्गोवत्। राः पुंवत्। नौर्ग्लौवत्।

में, वृत्तिकारादि के मत से वर्षाभू जातिवाचक है अतः पदान्तर के बिना ही स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान है अत एव नित्य स्त्रीत्व है, हेवर्षाभु। अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः से ह्रस्व। कैयट के मत से लिङ्गान्तराभिधायक है, अतः नदी संज्ञा नहीं होगी, हेवर्षाभूः। पुनर्नवा अर्थ में कैयट और वृत्तिकारादि के मत से नित्यस्त्रीत्व है। 'क्योंकि भेक्यां पुनर्नवायां स्त्री वर्षाभूः' इस यादवकोष के प्रामाण्य से लिङ्गान्तरानभिधायकत्व है, अतः कैयट को कोई विरोध नहीं है। स्वयंभू शब्द पुंवत् होगा, क्योंकि ब्रह्मा अर्थ में रूढ़ है, अतः 'स्वयं भवति' इस यौगिक में भी बिना पदान्तर के नित्यस्त्रीत्व नहीं हो सकता अतः वृत्तिकारादि के मत से नदी संज्ञा नहीं है। लिङ्गान्तराभिधायक होने से कैयट मत से भी नहीं। स्वसृ शब्द स्त्रीलिङ्ग में, ऋदन्त होने से 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से ङीप् प्राप्त था।

(नेति) नषट् स्वस्रादिभ्यः। षट् संज्ञक और स्वस्रादिक सात शब्दों से ङीप् न हो। स्वस्रादिकों का परिगणन करते हैं, स्वसृ-तिसृ-चतसृ-ननान्दृ-दुहितृ-यातृ-मातृ, ये सात स्वस्रादिक हैं। स्वसृ-सु, 'ऋदुशनसपुरुदंसोऽनेहसां च' से अनङ् नोपधायाः। हल्ङ्याभ्यो० नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य, स्वसा। स्वसृ-औ। 'ऋतोङि सर्वनामस्थानयोः' से गुण। अप्तृन्तृच्स्वसृ० से दीर्घ। स्वसारौ, स्वसारः। इत्यादि कर्तृशब्दवत्। शस् के परे 'तस्माच्छसो नः पुंसि' से नकार पुंलिङ्ग में ही होता है, अतः प्रथमयोः पूर्वसवर्णः, रुत्वविसर्ग। स्वसॄः। मातृ-शब्द पितृ-शब्द के सदृश है, केवल शस् के परे पूर्वोक्त प्रक्रियानुकूल मातॄः

टिप्पणी—ङीप् टापाविति। षट्संज्ञकानां स्वस्रादीनां च अदन्तत्वाभावात् टापोऽप्राप्तौ तन्निषेधार्थं विहितो बालमनोरमाकृतः प्रयासश्चिन्त्यः।

अथाजन्तनपुंसकलिङ्गाः ।

अतोऽम् ।७।१।२४। अतोऽङ्गात्क्लीबात्स्वमोरम् । अमि पूर्वः । ज्ञानम् । हे ज्ञान । **नपुंसकाच्च** ।७।१।१९। औङः शी स्यात् भसंज्ञा । **यस्येति च** ।६।४।१४८। भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः स्यादीकारे तद्धिते च परे । औङः

होगा, द्योशब्द गोशब्द के सदृश है, प्रसिद्धत्वात् अथवा कार्यसाम्य से गोशब्द का उपादान है । वस्तुतः 'ओतोणिदिति वाच्यम्' इस वार्तिक से णिद्वद्भाव होता है, द्यौः द्यावौ द्यावः, औतोऽम्शसोः, द्याम् द्यावौ द्याः इत्यादि । रै शब्द पुंलिङ्गोक्त के समान है । नौ शब्द ग्लौ के समान है । नौः नावौ नावः, नावम् नावौ नावः इत्यादि । इत्जन्ताः स्त्रीलिङ्गाः।

अथाजन्तनपुंसकलिङ्गाः ।

ज्ञान-सु । (अत इति) अतोऽम्, अङ्गाधिकार है, अतः यह अर्थ होगा । नपुंसक लिङ्ग अकारान्त अङ्ग से पर सु अम् उसको अम् हो। अमिपूर्वः । ज्ञानम् । ज्ञान औ,

(नपुंसकाच्चेति) नपुंसक लिङ्ग से पर औङ् को शी हो । शकार इत् । 'यचिभम्' यकारादि अथवा अजादि प्रत्यय के परे पूर्वपद भसंज्ञक हो । यहाँ अजादि 'ई' परे है अतः पूर्वस्थ ज्ञानपद की भसंज्ञा होगी। भसंज्ञक होने से ।

(यस्येति) यस्य-ईति च । इश्च अश्च यम् तस्य । तपरत्वात् ईति, सप्तमी चकारात् तद्धिते । तो यह अर्थ होगा, भसंज्ञक इवर्ण अवर्ण का अर्थात् ह्रस्व दीर्घ इकार अकार का लोप हो । ईकार अथवा तद्धित प्रत्यय के परे, यहाँ ईकार परे है अतः ज्ञान शब्द के अन्त्य अकार का लोप प्राप्त हुआ, उसका निषेधक वार्तिक । "औङःश्यां प्रतिषेधो वाच्यः" औङ् के स्थान पर जायमान जो शी उसके परे अल्लोप का प्रतिषेध हो, इकारान्तादि शब्दों में नुम् बाध लेगा, अतः केवल अकार के लोप के प्रतिषेध को कहा है, आद्गुणः से गुण । ज्ञाने । ज्ञान जस् ।

श्यां प्रतिषेधो वाच्यः * ज्ञाने । जश्शसोः शिः ।७।१।२०। शि सर्वनामस्थानम् ।१।१।४३। नपुंसकस्य झलचः ।७।१।७२। नुमागमः स्यात्सर्वनामस्थाने परे । ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् । शेषं रामवत् । एवं धनवन-

(जसिति) जश्शसोः-शिः । नपुंसक लिङ्ग से पर जस् अथवा शस् को शि आदेश हो । यहाँ ज्ञान नपुंसक लिङ्ग शब्द है, उससे पर जस को शि आदेश हुआ शित्त्वात् 'अनेकाल शित्सर्वस्य' से सर्वादेश, लशक्वतद्धिते से शइत् ।

(शीति) 'शि सर्वनामस्थानम्' जस् शस् के स्थान में उत्पन्न 'शि' सर्वनामस्थान संज्ञक हो ।

(नपुंसकेति) 'नपुंसकस्य झलचः' झलन्त अथवा अजन्त नपुंसक लिङ्ग के नुम् का आगम हो, सर्वनामस्थान के परे । यहाँ अकारान्त अजन्त नपुंसक लिङ्ग ज्ञान है उसके नुमागम । 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से अन्त्य अच् नकाराकार से पर हो गया । मकार उकार इत् । 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से नान्त की उपधा अकार को दीर्घ हो गया । ज्ञानानि, एवं द्वितीया में भी जानना, अम् को अनेकाल्त्वात् संपूर्ण के स्थान में अमादेश होगा । अम् को अमादेश करने का फल; 'स्वमोर्नपुंसकात्' से अम् का लुक् प्राप्त था, नहीं होगा । प्रथमा के समान, ज्ञानम् ज्ञाने ज्ञानानि, तृतीयादि विभक्तियों में रामशब्द के समान जानना । यहाँ रेफ नहीं

टिप्पण—अद्डादेश में डित्करण क्यों ? केवल अद् आदेश हो । अतोगुणे से प्राप्त पररूप को बाधकर प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से दीर्घ हो जायगा, और संबोधन में डित्वात् अल्लोप करने पर ह्रस्वान्त अङ्ग से पर संबुद्धि का हल् नहीं है । क्योंकि 'यदङ्गं तत् टि—लोपात् ह्रस्वान्तं न । यद् ह्रस्वान्तम् अद्डादेशस्य अकारमाश्रित्य तदङ्गं नेति दकार लोपो नास्तीति भट्टोजिः । मत्वात्पूर्वसवर्णं दीर्घं बाधित्वा यस्येति चेत्यल्लोपेऽपि उभयरूपसिद्धिर्भविष्यति, नच स्थानिवत्त्वेन ह्रस्वान्तमाश्रित्य संबुद्धिलोपः स्यात् अनल्विधाविति निषेधात्, हल्परत्वाभावाच्चेति डित्प्रयोजनं चिन्त्यम् ।

फलादयः। **अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः** ।७।१।२५। एभ्यः क्लीवेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात्। **टेः** ।६।४।१४३। डिति परे भस्य टेर्लोपः स्यात्। वाऽवसाने। कतरत्, कतरद्। कतरे कतराणि पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्। कतमत्, अन्यत्, अन्यतरत्, इतरत्। अन्यतम शब्दस्य तु अन्यतम-

---

है अतः णत्व प्रसङ्ग नहीं है। इसी प्रकार ज्ञानशब्दवत् धन-वन-फल इत्यादिक शब्दों के रूप जानना। कतर शब्द सुविभक्ति है।

(अद्डिति) 'अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः' नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान डतरादिक पाँच से पर सु अम् को अद्ड् आदेश हो। डतरादिक पाँच, 'डतर डतम अन्य अन्यतर इतर' ये सर्वादिगण पठित डतरादिक पाँच हैं। डतर डतम प्रत्यय हैं अतः 'प्रत्यय ग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' से डतरान्त डतमान्त का ग्रहण होगा। अतः कतर कतम शब्द का ग्रहण होगा। तो कतर–सु। सु के स्थान में अद्ड् आदेश। अनेकाल्त्वात् सर्वादेश। अद्ड् डित् है, अतः।

(टेरिति) टेः। डित् संज्ञक के परे भसंज्ञक की टि का लोप हो। अतः 'अचोऽन्त्यादि टि' व्यपदेशवद्भाव से कतर शब्द का अन्त्याकार टि संज्ञक है, इसलिये उसका लोप हो जायगा। हलन्त्यम् से डकार इत्। 'वावसाने' से विकल्पेन दकार को तकार। कतरत्, कतरद्। कतरे। कतराणि। अट्कुप्वाङ् से णकार, पुनः द्वितीया में प्रथमा के समान, संबोधन में सु को अद्ड् आदेश डित्वात् टि लोप। हे कतरत्, यहाँ 'एङ् ह्रस्वात्संबुद्धेः' नहीं लगेगा। क्योंकि जो अङ्गसंज्ञक कतर है, वह टिलोप करने पर ह्रस्वान्त नहीं है, और जो ह्रस्वान्त अद्ड् के अकार के साथ 'कतर' है वह अङ्ग नहीं है। अतः द् का लोप नहीं होगा। हे कतरत्, हे कतरद्, हे कतरे, हे कतराणि। अवशिष्ट विभक्तियों में सर्व शब्दवत्, कतरस्मै, कतरस्मात्, कतरेषाम् कतरस्मिन् इत्यादि। इसी प्रकार कतम अन्य अन्यतम इतर शब्द के रूप जानना, अन्यतम शब्द डतम प्रत्ययान्त नहीं है, किन्तु अव्युत्पन्न

मित्येव। एकतरात्प्रतिषेधो वाच्यः। *। एकतरम्। अजरम्। अजरसी, अजरे। जरसि कृते झलन्तत्वान्नुम्। सान्तमहतः संयोगस्य।६।४।१०। अनयोर्नकारस्योपधाया दीर्घः स्यादसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे। अजरांसि,

---

प्रातिपदिक है, अतः ज्ञान शब्द के समान होगा। डतमान्त नहीं है अतः सर्वादि प्रयुक्त कार्य भी नहीं होंगे।

(एकतरादिति) एकतर-सु। डतर प्रत्ययान्त है, अतः अद्डादेश प्राप्त था। "एकतरात् प्रतिषेधो वक्तव्यः" एकतर शब्द से अद्डादेश का प्रतिषेध जानना। तो अद्डादेश नहीं होगा। एकतरम्, एकतरे, एकतराणि। इत्यादि। तृतीयादि में डतर प्रत्ययान्त है अतः सर्वादिवत् होगा। 'एकतरात्प्रतिषेधो वाच्यः' से अद्डादेश का निषेध होता है, सर्वादित्व का नहीं।

नास्ति जरा यस्य, यस्मिन् कुले वा। गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य से ह्रस्व, अजर शब्द है। अजर-सु। 'अतोऽम्' से सु को अम्, अजादि मानकर 'जराया जरसन्यतरस्याम्' से जरस् आदेश क्यों नहीं होता 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य'। अजर अदन्त को मानकर हुआ जो अमादेश है वह जरसादेश करके अजर की अदन्तता का नाश नहीं करेगा। अतः अमादेशानन्तर, 'अतोऽम्' अजरम्। अजरे। पूर्वोक्तवत्। अजर-जस्। 'जश्शसोःशिः' शित्त्वात्सर्वादेश। शकार इत्। 'जराया जरसन्यतरस्याम्' से विकल्पेन जरस्। झलन्तत्वसे 'नपुंसकस्य झलचः' से नुम्। मिदचोऽन्त्यात्परः, से अन्त्य रकारोत्तर अकार से पर नुम्। उकार मकार इत्। अजरन् स् इ, इस स्थिति में शि सर्वनामस्थानम्। शि की सर्वनामस्थान संज्ञा। न्-स् का संयोग है, तो,

(सान्तेति) "सान्त महतः संयोगस्य" 'सान्त' यह लुप्त षष्ठयन्त पद संयोगस्य के साथ अभेदेन अन्वित होता है। नोपधायाः की अनुवृत्ति है। उसका न लुप्तषष्ठयन्त है। तो यह अर्थ होता है। सान्त संयोग का, अथवा महत् शब्द का जो नकार है उसकी उपधा को दीर्घ हो,

अजराणि । अमि जरसि कृते सन्निपातपरिभाषया न लुक् । अजरसम्, अजरमित्यादि पूर्ववत् । पद्दन्न इति हृदयोदकास्यानां हृद् उदन् आसन् । हृन्दि हृदा हृद्भ्याम् । उदानि उद्ना उदभ्याम् । आसानि

संबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान के परे, तो यहाँ सान्त संयोग का 'जरनस्' में रेफोत्तर नकार है उसकी उपधा रेफोत्तर अकार है । उसको दीर्घ होगा । संबुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान संज्ञक शि परे है । 'नश्चापदान्तस्य झलि' से नकार को अनुस्वार । अजरांसि जरसादेश के पक्ष में । अजन्तत्त्वात् नुम् । नोपधायाः, अट्कुप्वाङ्' से णकार । अजराणि । अम् के परे, 'स्वमोर्नपुंसकात्' से लुक् प्राप्त था परत्वात् जरस् । निर्दिश्यमान परिभाषा से जर मात्र को जरस् होगा । जरसादेश करने पर लुक् क्यों नहीं होता ? सन्निपात परिभाषा से निषेध हो जायगा, क्योंकि अजादि अम् को मानकर हुआ जरसादेश अम् के विधान को नहीं करेगा । अजरसम् पक्ष में अतोऽम् । अमिपूर्वः । अजरम्, अजरे अजरांसि, अजराणि । पूर्वोक्त प्रक्रियावत् । शेष विभक्तियों में पुंवत् । हृदय शब्द, हृदयम्, हृदये, हृदयानि । ज्ञानशब्दवत् । हृदय-शस् । 'पदन्नोमासहृन्निशसन्०' से शसादि विभक्तियों के परे हृद् आदेश । 'नपुंसकस्य झलचः' से नुमागम । उकार मकार इत् । अनुस्वार पर सवर्ण हृन्दि । 'नकार को ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' से णकार क्यों नहीं ? 'नश्चापदान्तस्य' की दृष्टि में णत्व विधायक असिद्ध है । अतः अनुस्वार प्रथम हो जायगा, और फिर अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः से उत्पन्न नकार णत्व विधायक की दृष्टि में असिद्ध है अतः वह अनुस्वार ही देखता है । हृन्दि । तृतीया में हृदा , हृद्भ्याम् , हृद्भिः । इत्यादि, पक्ष में ज्ञान शब्दवत् । एवम् उदकशब्द शस् पर्यन्त ज्ञान शब्दवत् । शस् के परे उदन् आदेश शस् को शि आदेश, 'शि सर्वनामस्थानम्' से सर्वनामस्थान संज्ञा । नोपधायाः से दीर्घ । उदानि । टा के परे 'अल्लोपोऽनः' से अकार लोप, उद्ना । भ्याम् में, न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न लोप उदभ्याम् । पक्ष में उदकानि, उदकेन इत्यादि ज्ञान

आस्ना आसभ्याम्। मांसि, मांसा मान्भ्यामित्यादि। **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** ।१।२।४७। अजन्तस्य ह्रस्वः स्यात्। श्रीपं ज्ञानवत्। **स्वमोर्नपुंसकात्** ।७।१।२३। लुक् स्यात्। वारि। **इकोऽचि विभक्तौ** ।७।१।७३। इगन्ताङ्गस्य क्लीबस्य नुम् स्यादजादौ विभक्तौ। वारिणी।

शब्दवत्। इसी प्रकार आस्य शब्द को शसादि में आसन् आदेश करने पर उदन के समान पदसाधुत्व जानना, आसानि, अल्लोप, आस्ना, न लोप, आसभ्याम्, आसभिः इत्यादि। मांस शब्द शस्, जश्शसोः शिः। मांसपृतनासानूनां मांसपृत्स्नवो वाच्याः, से मांस् आदेश। झलन्तत्व से नुम्। मांसि, नुम् के नकार का श्रवण नहीं है भ्याम् के परे संयोगान्तस्य लोपः से सलोप। मान्भ्यामित्यादि। पक्ष में ज्ञानवत्। श्रीपा नपुंसक लिङ्ग में।

(ह्रस्व इति) 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' अजन्त प्रातिपदिक को नपुंसक लिङ्ग में ह्रस्व हो। तो अजन्त श्रीपा को ह्रस्व हो गया। श्रीपम्, श्रीपे, श्रीपाणि, श्रीपेण। श्रीपाय, इत्यादि ज्ञान शब्दवत् होंगे। इत्यादन्ताः।

इकारान्त नपुंसक लिङ्ग वारिशब्द सुविभक्ति है।

(स्वमोरिति) स्वमोर्नपुंसकात् नपुंसक लिङ्ग शब्द से पर सु अम् उसका लोप हो, तो सु का लोप हो गया वारि द्विवचन में औ। नपुंसकाच्च से औ को शी आदेश। शइत्।

(इक इति) इकोचि विभक्तौ। इगन्ताङ्ग नपुंसकलिङ्ग के नुम् का आगम हो अजादि विभक्ति के परे। अङ्ग संज्ञक इगन्त वारि है, उसके नुम् हो गया। अजादि ई परे है, अट् कुप्वाङ् से णकार। वारिणी, जस्, जश्शसोः। अजन्तत्वात्,

टिप्पणी—श्रीपाय 'इह यचिभम् इति भसंज्ञायाम् आतो धातोरिति संनिपात परिभाषया निरुध्यते। भट्टोजिना मांसशब्दस्य मांस् इति सान्तआदेशं विधाय मांसा, संयोगान्त लोपे मान्भ्याम् इत्यादि व्याख्यानमेवोपयुक्तं प्रतिभाति। अधिकं व्यर्थमायासकरमेवेति।

वारीणि। न लुमतेति निषेधस्यानित्यत्वात् पक्षे संबुद्धिनिमित्तो गुणः। हे वारे, हे वारि। घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते। वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन। *। वारिणे। वारिणः। नुमचिरेति नुट्। वारीणाम्। वारिणि। हलादौ हरिवत्। तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्

नुम्, नोपधायाः, णत्व, वारीणि। संबोधन में 'न लुमताङ्गस्य' को अनित्य मानकर संबुद्धिनिमित्तक ह्रस्वस्य गुणः से गुण। हे वारे। निषेध होने से गुण नहीं होगा, हे वारि। वारि, टा, शेषो घ्यसखि से घि संज्ञा, 'आङो नाऽस्त्रियाम्' से नादेश, णत्व, वारिणा। ङित् वचन में 'इकोऽचि विभक्तौ' से नुम् होगा। वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन। अतिसखीनि में सख्युरसंबुद्धौ से णिद्वद्भाव अचो ञ्णिति से वृद्धि प्राप्त थी। वारिङि में अच्च घेः से औत्व। प्रियक्रोष्टूनि में तृज्वत्क्रोष्टुः से तृज्वद्भाव। वारिणे में घेर्ङिति से गुण प्राप्त था इन सबको पूर्वविप्रतिषेध से बाधकर नुम् होगा। वारिणे। वारिणः वारिणोः यण् को बाधकर नुम्। वारि-आम्। नुम् प्राप्त था, "नुमचिर तृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन" से नुट्। नामि से दीर्घ। णत्व, वारीणाम्, नुम् करने से अदन्त अङ्ग से नाम् नहीं होगा अतः दीर्घ नहीं होगा। सप्तमी में ङि। 'अच्चघेः' से औत्व प्राप्त था उक्त वार्तिक से औत्व बाधकर नुम्, वारिणि। इत्यादि। नास्ति आदिर्यस्य तत्, अनादि, प्रथमा द्वितीया में वारि शब्दवत्। तृतीया में अनादि-टा, इस स्थिति में।

(तृतीयेति) तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य, प्रवृत्तिनिमित्त के ऐक्य होने पर भाषितपुंस्क हो अर्थात् जिस प्रवृत्तिनिमित्त से

टिप्पणी—भाषितपुंस्कत्वं नाम। नपुंसकत्वे लिङ्गान्तरे च यस्य एकमेव वाक्यतावच्छेदकं तत् शब्दस्य रूपं भाषितपुंस्कशब्देन विवक्षितम्। प्रकृते अनादि शब्दस्य उत्पत्त्यभावकमनादित्वं पुरस्कृत्य स्त्रीपुंनपुंसकवद् शक्ति प्रत्ययेन इति भवति तस्य प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कता इति तात्पर्यार्थः।

गालवस्य ।७।१।७४। प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीवं पुंवद् वा स्याट्टादावचि। अनादये अनादिने। इत्यादि। पीलुर्वृक्षः फलं पीलु पीलुने न तु पीलवे। वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं तज्जन्यत्वं फले पुनः ।१। पुंसि पीलुत्वम्, नपुंसके पीलु जन्यत्वमिति प्रवृत्तिनिमित्तभेदान्न पुंवत्। अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ।७।१।७५। शसादावचि अल्लोपोऽनः। दध्ना, दध्ने,। विभाषा ङिश्योः। दध्नि दधनि, एवमस्थिसक्थ्यक्षि। सुधि, सुधिनी, सुधीनि। हे सुधे हे सुधि, सुधिया, सुधिना।

पुंवाचकत्व भी उस शब्द का कहा जाता हो ऐसा इगन्त नपुंसक लिङ्ग टादि अच् के परे विकल्प से पुंवत् हो, टा में नादेश होने पर कोई भेद नहीं है। सुधिया, सुधिना में भेद है, अस्तु। ङे इत्यादि में पुंवद् भाव होने से घेर्ङिति से गुण अयादेश। अनादये, पक्ष में नुम्। अनादिने, अनादेः, अनादिनः। षष्ठी बहुवचन में नुम् को बाधकर नुट्। नामि। अनादीनाम्, पीलुशब्द वृक्ष वाचक पुंलिङ्ग है, और फलवाचक नपुंसक लिङ्ग है। अतः नपुंसक में प्रवृत्तिनिमित्तैक्य नहीं है, अतः नपुंसक लिङ्ग में पुंवद्भाव न होने से पीलुने एक ही होगा, पीलवे नहीं होगा। क्योंकि पीलुत्व और तज्जन्यत्व पुंनपुंसक में प्रवृत्ति-निमित्त भेद स्पष्ट है। दधि शब्द है, दधि दधिनी, वारि शब्दवत्। हे दधे, हे दधि। दधि-टा, इस स्थिति में।

अस्थीति। अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङ् उदात्तः। अस्थि दधि सक्थि अक्षि शब्द को अनङ् आदेश शसादि अच् के परे। ङित्व से अन्त्यादेश। अकार ङकार इत्। दधन्-टा, 'अल्लोपोऽनः' से अकार लोप। दध्ना, दध्ने, ङि के परे, अनङ् आदेश। 'विभाषा ङिश्योः' से विकल्पेन अन् के अकार का लोप। दध्नि। पक्षमें दधनि। इस प्रकार अस्थि सक्थि अक्षि शब्द का साधुत्व जानना।

सुधी-'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व। स्वमोर्नपुंसकात्, सुधि, सुधिनी सुधीनि। प्रथमा द्वितीया में वारिशब्दवत्। 'सुष्ठु ध्यायति' यहाँ पुंनपुंसक का प्रवृत्तिनिमित्तैक्य है अतः पुंवद्भाव हो जायगा

प्रध्या प्रधिना। मधु मधुनी, मधूनि। एवमम्ब्वादयः। सानुशब्दस्य स्नुर्वा। स्नूनि सानूनि। प्रियक्रोष्टु प्रियक्रोष्टुनी प्रियक्रोष्टूनि। प्रियक्रोष्ट्रे प्रियक्रोष्टवे प्रियक्रोष्टुने। आमि नुमचिरेति नुट्। प्रियक्रोष्टूनाम्।

'अचिश्नु धातुभ्रुवां' से इयङ्। नभू सुधियोः से यण् निषेध हो जायगा। सुधिया, सुधिना। सुधिये, सुधिने। इसी प्रकार प्रकृष्टा धीर्यस्य तत् प्रधि। प्रवृत्तिनिमित्त एक है अतः पुंवत् हो जायगा। प्रधि, प्रधिनी प्रधीनि। वारिवत्। टादि में पुंवत् होने पर 'एरनकाचो' से यण्। प्रध्या प्रधिना, संबोधन में। हे प्रधे, हे प्रधि, पूर्ववत्। उकारान्त मधु शब्द है। मद्य और पुष्परस में नपुंसक लिङ्ग, वसन्त और चैत्र मास अर्थ में पुंलिङ्ग है, अतः प्रवृत्तिनिमित्त एक नहीं है इसलिये पुंवद्भाव नहीं होगा। मधु मधुनी मधूनि। मधुने, मधुनः इत्यादि एक ही होगा। सानु शब्द पुंनपुंसक लिङ्ग में है, 'स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्', अतः प्रवृत्तिनिमित्तैक्य है। सानु सानुनी सानूनि। शस् के परे। 'मांसपृतनासानूनां' से स्नु आदेश, स्नूनि, सानूनि। सानवे सानुने। स्नु आदेश में। स्नवे स्नुने। यदि प्रस्थ वाचक स्नुशब्द पुंलिङ्ग भिन्न मानेंगे तो पुंवद्भाव का विषय नहीं है, क्योंकि स्नुशब्द नपुंसकलिङ्ग नहीं है।

प्रियक्रोष्टु-प्रियः क्रोष्टा यस्य तत्। यहाँ क्रोष्टुप्रियत्व प्रवृत्तिनिमित्तैक्य है अतः पुंवद्भाव विकल्प से होगा। प्रथमा द्वितीया में वारिशब्दवत्। जस्शस् को शि आदेश करने पर सर्वनामस्थान के परे तृज्वद्भाव क्यों नहीं होता? विप्रतिषेध से नुम् बाधलेगा। अच्छा नुम् होने के बाद फिर तृज्वद्भाव क्यों नहीं होता?, 'विप्रतिषेधेन यद् बाधितं तद् बाधितमेव' जब एक बार तृज्वद्भाव का बाध हो गया तो वह बाधित ही रहेगा। तृतीयादि में पुंवद्भाव। 'विभाषा तृतीयादिष्वचि' से विकल्पेन तृज्वद्भाव। प्रियक्रोष्ट्रा, तृज्वद्भाव के विकल्प में और नपुंसक लिङ्ग में भी 'आङो नाऽस्त्रियाम्' प्रियक्रोष्टुना। ङे के परे, पुंवद्भाव। तृज्वद्भाव, प्रियक्रोष्ट्रे, तृज्वद्भावाभाव में 'घेर्ङिति, प्रियक्रोष्टवे पुंवद् के अभाव में नपुंसक लिङ्ग में

सुलु, सुलुनी, । सुलूनि । सुल्वा सुलुना । हे धातः, हे धातृ । धात्रा धातृणा । एवं ज्ञातृकर्त्रादयः । एच इग्घ्रस्वादेशे ।१।१।४८। प्रद्यु, प्रद्युनी, प्रद्यूनि, प्रद्यवे, प्रद्युने, इति केचित् । प्रद्युना । प्ररि प्ररिणी

विभक्तौ' प्रियक्रोष्टुने । एवम्, प्रियक्रोष्टुः प्रियक्रोष्टोः, प्रियक्रोष्टुनः, षष्ठी बहुवचन में आम् । पुंवद् होने पर तृज्वद्भाव को और नपुंसक लिङ्ग में नुम् को बाधकर 'नुमचिर तृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' से नुट् । नामि । प्रियक्रोष्टूनाम् । एवं सुष्टु लुनाति सुलु । सुलुनी सुलूनि । सुलवनकर्तृत्व, प्रवृत्ति निमित्तैक्य है । अतः विकल्पेन तृतीयादि में पुंवत् । सुल्वा, सुलुना, सुल्वे, सुलुने, हेसुलो, हेसुलु । इसी प्रकार धातृ ज्ञातृ कर्तृ इत्यादिकों में प्रवृत्तिनिमित्तैक्य है, अतः धात्रा, धातृणा इत्यादि होंगे । संबोधन में न लुमताङ्गस्य के अनित्यत्व में लुक् होने के बाद भी ऋतोङि सर्वनामस्थानयोः से गुण, हे धातः, निषेध होने में । हे धातृ । प्रद्यो । प्रकृष्टा द्यौः यत्र । प्रद्यो शब्द नपुंसक लिङ्ग में । 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ओकार को ह्रस्व प्राप्त हुआ । अ-उ के संयाग से ओकार होता है, अतः

(एच इति ।) एच इग्ह्रस्वादेशे, एच के स्थान पर ह्रस्वादेश कर्तव्य रहते इक् हो, परिशेषात् अकार की निवृत्ति होने से यत् किंचित् स्थानसाम्य होने से ओकार को उकार होगा । प्रद्यु, सु का लुक् । प्रद्यु प्रद्युनी प्रद्यूनि । वारि शब्दवत् । प्रकृष्टा द्यौः यत्र, प्रवृत्तिनिमित्तैक्य है अतः टादि अजादि में पुंवद्भाव प्राप्त है, परन्तु प्रवृत्तिनिमित्तैक्य होने पर भी भाषित पुंस्क इगन्त क्लीब नहीं है, जो भाषितपुंस्क इगन्त प्रद्यो है वह क्लीब–नपुंसक लिङ्ग में नहीं है । नपुंसक लिङ्ग में प्रद्यु है । अतः वारि शब्दवत् प्रद्युना प्रद्युने इत्यादि होंगे । किसी आचार्य के मत से जो प्रद्यो पुंलिङ्ग में था वही ह्रस्व होने पर प्रद्यु नपुंसक लिङ्ग में 'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति' से प्रद्यो है, अतः पुंवद्भाव विकल्प से होगा । प्रद्यवा, प्रद्युना । प्रद्यवे, प्रद्युने इत्यादि होंगे । एवम् प्रै शब्द ऐकार को इकार होगा । प्ररि, प्ररिणी प्ररीणि । भ्याम् के परे

प्ररीणि। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद् रायो हलीत्यात्वम्। प्रराभ्याम्। संनिपातपरिभाषया नुड्यात्वं न, प्ररीणाम्। प्रराणामितिमाधवः। सुनु सुनुनी सुनूनि। सुनुना सुनुने। इत्यजन्ता नपुंसकलिङ्गाः।

अथ हलन्ताः पुंलिङ्गाः

हो ढः।८।२।३१। झलि पदान्ते च। जश्त्वचर्त्वे। लिट्, लिड्।

प्ररि-भ्याम् इस स्थिति में ह्रस्व हो जाने पर भी रै शब्द है, क्योंकि 'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति, अतः रायो हलि से आकार हो जायगा। प्रराभ्याम्, प्रराभिः, इत्यादि। आम् के परे ह्रस्व, ह्रस्वनद्यापो नुट्। नामि। प्ररीणाम्। यहाँ 'रायो हलि' से आकार क्यों नहीं होता। संनिपातपरिभाषा से बाध हो जायगा। ह्रस्व के आश्रय से हुआ नुट् उस प्ररि शब्द के ह्रस्व का विघातक नहीं होगा।[२] नामि से दीर्घ करने में नामि सूत्रारम्भ सामर्थ्य से संनिपातपरिभाषा नहीं लगती। माधव के मत से सन्निपात परिभाषा अनित्य[३] है, अतः आत्व हो जायगा, प्रराणाम् होगा, एवं सुष्टु नौः यत्र, सुनु शब्द प्रद्युशब्द के सदृश होगा। औकार को उकार होगा। इति अजन्त नपुंसक लिङ्ग।

अथ हलन्तपुंलिङ्गाः

हयवरट् पठित क्रमानुरूप हकारान्त लिह् शब्द है। कृत्तद्धित समासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा। प्रातिपदिकत्वात्, सु विभक्ति हलन्तत्वात्। हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्॰ से सुलोप। सुबन्तत्वात् 'सुप्तिङन्तं पदम्' से पद संज्ञा।

(होढ इति) हो ढः। हकार को ढ हो, झल् प्रत्याहार परे और पदान्त में। यहाँ पदान्तत्वात् 'ह' को ढ हो गया। झलां जशोऽन्ते, से ढ को ड। 'वावसाने' से अवसानस्थ ड् को विकल्प से ट्। लिट्, लिड्। लिहौ, लिहः। इत्यादि, भ्याम् के परे 'स्वादिष्व सर्वनामस्थाने' से पदसंज्ञा। पदान्तत्वात् 'झलांजशोऽन्ते' से आदेश। लिड्भ्याम्, लिड्भिः। सुप् के परे। झलां जशोऽन्ते डादेश। डः सि धुट्। पुनः 'झलां जशोऽन्ते' से ध को द आदेश

लिड्भ्याम् । लिट्त्सु, लिट्सु। दादेर्धातोर्घः ।८।२।३२। उपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः। तेन अधोक् । उपदेशाभावात् दामलिट् । एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ।८।२।३७। सकारे ध्वशब्दे पदान्ते च। झलीति निवृत्तं स्ध्वोर्ग्रहणसामर्थ्यात् । जश्त्व चर्त्वे । धुक्, धुग् । दुहौ, दुहः। धुग्भ्याम् ।

खरि च से द को त, और ड को ट । यहाँ 'चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्' से 'त' को थ, और 'ट' को 'ठ' क्यों नहीं होता ? उत्तर 'खरि च' से जो चर्त्व हुआ है, वह पूर्वत्रासिद्धम् से असिद्ध है, अर्थात् "चयो द्वितीया" की दृष्टि में ड–द हैं। चर् नहीं है, किन्तु झल् है। पुनः प्रश्न होता है, 'लक्ष्ये लक्षणं सकृदेव प्रवर्तते' एक प्रयोग में सूत्र एक ही बार लगता है, तो खरि च द् को त् करने के अनन्तर फिर ड को ट नहीं करेगा। उत्तर—'लक्ष्यभेदात् पुनः प्रवृत्तिः' लक्ष्य भेद से पुनः प्रवृत्ति होती है। जैसे प्रथम ड को ट करना है, पुनः द् को त् करना है, अतः लक्ष्यभेद से विषयभेद से पुनः प्रवृत्त होगा। 'न पदान्तात् टोरनाम्' से निषेध हो जाने से, लिट्त्सु में त् को ट् और लिट् सुमें स् को ष् नहीं होगा। हकारान्त दुह् शब्द है। पूर्ववत् सु लोप आदि।

(दादेरिति)। दादेर्धातोर्घः। 'हो ढः से हकार की अनुवृत्ति है। धातोः की आवृत्ति है, एक धातु ग्रहण उपदेश काल को बोधित करता है, और द्वितीय धातु पद सामानाधिकरण से अन्वित होता है, तो यह अर्थ होता है,उपदेशावस्था में दकारादि धात्ववयव हकार को घकार हो। अघोक्, में दुह धातु उपदेशावस्था में दकारादि है। दामलिह् में नामधातु है, औपदेशिक दकारादि नहीं है, तो दुह औपदेशिक दकारादि धातु है, अतः 'ह' को घ हो गया। सु लोपादि पूर्ववत्।

(एकेति)। 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' एकाचः यह झषन्तस्य का विशेषण है, और झषन्तस्य यह अवयव षष्ठी है। तो यह अर्थ होगा। एक अच्वाला झषन्त शब्द का अवयव जो बश् उसे भष् हो। सकार ध्व शब्द और पदान्त में, दुध् यह एकाच् झषन्त है, तदवयव

द्रुह् विग्रहम्

षत्वचर्त्वे। धुक्षु। वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्। ।८।२।३३। घत्वढत्वे वा स्तः, ध्रुक् ध्रुग् ध्रुट् ध्रुड्। द्रुहौ द्रुहः। एवम्। मुक् मुग् मुट् मुड्।

दकार है। उसे सावर्ण्यात् भष् में धकार हो गया। झलांजशोऽन्ते से घ को ग्। वावसाने। धुक् धुग्। दुहौ दुहः। भ्याम् के परे, दादेर्धातोर्घः। से ह को घ, एकाचो वशो भष० से ध् होगा। 'झलां जशोऽन्ते' धुग्भ्याम्। सप्तमी बहुवचन में अन्य कार्य पूर्ववत्। इण् को 'आदेश-प्रत्यययोः' यहाँ क वर्ग के घकार से प्रत्ययावयव सुप् का सकार है उसे षकार हो गया। खरि च से ककार। 'कषसंयोगे क्षः' से क्ष उच्चारण होता है धुक्षु। एवम्। द्रुह् सु। उकार उच्चारणार्थः। हल्ङ्याब्भ्यो से स लोप।

(वाद्रुहेति)। वाद्रुह मुह ष्णुहष्णिहाम्' इन धातुओं के हकार को विकल्प से घकार हो। द्रुह धातु में 'दादेर्धातोर्घः' से प्राप्त था इतर में अप्राप्त था, अतः प्राप्ताप्राप्त विभाषा है। तो विकल्पेन 'घ' आदेश। पक्ष में 'होढः' से ढ। दोनों 'एकाचो वशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' से द को ध। झलां जशोऽन्ते। वावसाने। ध्रुक् ध्रुग् ध्रुट् ध्रुड्। पूर्ववत्

टिप्पणी—झलि पद की अनुवृत्ति आ रही थी, तदन्तर्गत सकार धकार, दोनों आ जाते ही हैं, फिर 'स्ध्वोः' ग्रहण क्यों किया। उत्तर—स्ध्वोः ग्रहण यह सूचित करता है, कि झलि की अनुवृत्ति निवृत्त है। फल, झल् प्रत्याहार गत अन्य वर्ण के परे नहीं होगा जैसे दोघ्-तृ, झषस्तथोर्धः से तकार को ध यहाँ धकार के परे भष् द को ध नहीं हुआ, दुग्धा। दो

टिप्पणी—नियम यह है कि संभवति सामानाधिकरण्ये वैयधिकरण्या श्रयणस्य अन्याय्यत्वात्।'' यदि सामानाधिकरण्य से अन्वय हो सकता हो तो वैयधिकरण्य से अन्वय करना अनुचित है, तो यहाँ धातोः विद्यमान है उसी के साथ एकाचः झषन्तस्य का अन्वय होगा, तो यह अर्थ होगा, एकाच् झषन्त जो धातु तदवयव वश् को भष् हो, इस अर्थ में आचार क्विबन्त गदभ् शब्द में एकाच् नामधा तु गर्दभनहीं है, पूर्वोक्त अर्थ में एकाच् झषन्त दभ् है अतः भष् होगा, गर्धप् होगा। वस्तुतः ऐसे शब्दों का अनभिधान है अतः वैयधिकरण्य प्रयास व्यर्थ है।

मुहौ मुहः । उभयत्र विभाषेयम् । इग् यणः संप्रसारणम् ।१।१।४५। वाह ऊठ् ।६।४।१३२। भस्येत्यर्थः । संप्रसारणाच्च ।६।१।१०८। संप्रसारणादचि परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । एत्येधत्यूठ्सु । विश्वौहः,

---

घुग्भ्याम्, घ्रुड्भ्याम् । सुप् में वाद्रुहमुह से घ । एकाचोवशोभष्० से घ । इणकोः आदेशप्रत्यययोः से ष । घ्रुक्षु पक्ष में होढः । झलां जशोऽन्ते । डः सि धुट् । खरि च । 'खरि च' से उत्पन्न चर्त्व असिद्ध है अतः "चयो द्वितीयाः शरिपौष्करसादेरितिवाच्यम्" नहीं लगेगा । 'न पदान्तात् टोरनाम्' ष्टुत्व निषेध । घ्रुट्त्सु, ध्रुट्सु । इसी प्रकार मुह् शब्द के मुक् मुग् मुट् मुड् मुड्भ्याम् मुग्भ्याम् । मुक्षु मुट्त्सु मुट्सु । स्नुह् स्निह् भी इसी तरह जानना । विश्ववाह् शब्द है । स्वादि पाँच वचनों में लिह् शब्दवत् । होढः, हलङ्यादि लोप, जश्त्व, चर्त्व । विश्ववाट् विश्ववाड् विश्ववाहौ विश्ववाहः । इत्यादि । शस्में

(वाह इति) । वाह ऊठ् । भस्य का अधिकार है । वसोः संप्रसारणम् से संप्रसारण की अनुवृत्ति है । भ संज्ञक वाह् को संप्रसारण ऊठ् आदेश हो । संप्रसारण क्या ? अतः संप्रसारण का स्वरूप कहते हैं ।

(इगिति) । इग् यणः संप्रसारणम् । यण् के स्थान में जो इक् होता है वह संप्रसारण कहाता है, तो संप्रसारण नाम से जो इगादेश कहा जायगा । वह स्वतः सदृश स्थानी को ढूँढ लेगा । यहाँ वाह को ऊठ् इगादेश कहा गया, वह यण् गत वकार के स्थान में होगा । अतः अलोन्त्यस्य नहीं लगेगा । विश्व ऊठ् आह् शस् इस स्थिति में ठकार इत् ।

(संप्रसारेति) । संप्रसारणाच्च । संप्रसारण से अच् पर रहने से पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो । यहाँ संप्रसारण वकार को ऊकार हुआ है, उससे अच् प्रत्याहार गत आकार परे है, अतः ऊकार आकार मिलकर वाकार प्राप्त हुआ । 'एत्येधत्यूठ्सु' से ऊठ् परे है अतः अकार ऊकार मिलकर औकार हो गया । विश्वौहः । विश्वौहा, विश्ववाड्भ्याम् । हलादि में लिह् शब्दवत् । अनडुह् सु ।

विश्वौहा। विश्वसाड्भ्यामित्यादि। **चतुरनडुहोरामुदात्तः** ।७।१।९८। अनयोराम् स्यात्सर्वनामस्थाने। **सावनडुहः** ।७।१।८२। अवर्णात्परस्य नुम् स्यात्सौ। नुम् विधिसामर्थ्याद् दत्वं न। संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वा-न्नलोपो न। अनड्वान्। **अम् संबुद्धौ** ।७।१।९९। चतुरनडुहोरम् स्यात्संबुद्धौ। हे अनड्वन्। अनड्वाहौ, अनड्वाहः। अनडुहा। **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** ।८।२।३२। सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः

(चतुरिति)। चतुनडुहोरामुदात्तः। चतुर् अनडुह् शब्द के आम् हो सर्वनामस्थान के परे, और वह आम् उदात्त हो। 'मिदचोन्त्यात्परः' से अन्त्य अच् उकार से पर आम् हुआ। मकार इत्। इकोयणचि से यण् अनड्वाह्-सु इस अवस्था में।

(साविति)। सावनडुहः' सु के परे अनडुह् शब्द के आकार से पर नुम् का आगम हो। 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से आमागम के आकार से पर होगा। आम्-नुम् का परस्पर बाध्यबाधक भाव नहीं है। क्योंकि आमागम होने के बाद ही नुम् की प्रवृत्ति होगी, अतः उपजीव्य-उपजीवक भाव है। हल्ङ्यादित्वात् सु लोप। संयोगान्तस्य लोपः से हकार लोप, संयोगान्त लोप असिद्ध है अतः न लोपः प्रातिपदिका-न्तस्य से न लोप नहीं होगा। नुम् विधिसामर्थ्य से वक्ष्यमाणवसुस्रंसु० से नकार को दकार नहीं होगा। अनड्वान्। संबोधन में।

(अमिति)। अम् संबुद्धौ। चतुर अनडुह शब्द के अम् का आगम हो। संबोधन के एकवचन में। मित्त्वात् उकार से पर हुआ। सावन-डुहः से नुमागम। इकोयणचि हल्ङ्यादि लोप। संयोगान्त लोप। 'न लोपः प्रतिपदिकान्तस्य' की दृष्टि में संयोगान्त लोप असिद्ध है। न लोप विधायक की दृष्टि में हकार विद्यमान है अतः पदान्त नकार नहीं है। हे अनड्वान्। अनड्वाहौ, अनड्वाहः। हलादि भ्याम् के परे।

(वसु स्रंस्विति)। वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः। ससजुषोरुः से स की अनुवृत्ति है। येन विधिः से तदन्त विधि। वस्वन्त ही सान्त और असान्त हो सकता है, अतः' वस्वन्त का विशेषण है, अतः यह अर्थ होगा।

स्यात्पदान्ते। अनडुद्भ्यामित्यादि। **सहेः साडः सः** ।८।३।५६। अस्य मूर्धन्यादेशः स्यात्। तुराषाट् तुराषाड् तुरासाहौ, तुरासाहः। तुराषाड्भ्यामित्यादि। **दिव औत्** ।७।१।८४। सौ परे। सुद्यौः सुदिवौ सुदिवः। **दिव उत्** ।६।१।१३१। अस्य उत्स्यात्पदान्ते। सुद्युभ्याम्, सुद्युभिः। चत्वारः, चतुरः, चतुर्भिः। **षट् चतुर्भ्यश्च** ।७।१।५५।

सान्त वस्वन्त अर्थात् सकारान्त वसु प्रत्ययान्त शब्द और स्रंसादिक शब्दों को 'द' आदेश हो अलोऽन्त्यस्य से अनडुह् शब्द के अन्त्य 'ह्' को द् हो गया। अनडुद्भ्याम् अनडुद्भिः इत्यादि होते हैं। तुरासाह् शब्द है। सु विभक्ति। हल्ङ्यादि लोप। होढः से ढ आदेश। 'झलांजशोऽन्ते' से ढ को ड। तुरासाड् इस स्थिति में।

(सहेरिति) सहेः साडः सः। सह धातु का जो साड् स्वरूप है उसके सकार को मूर्धन्यादेश हो। तो यहाँ झलांजशोऽन्ते से ड आदेश करने पर साड् रूप हो गया है अतः मूर्धन्यादेश हो जायगा। वावसाने। तुराषाट् तुराषाड् तुरासाहौ, तुरासाहः। यहाँ साड् रूप नहीं है, अतः मूर्धन्यादेश नहीं होगा। पदान्त में साड् रूप हो जाने से मूर्धन्यादेश होगा। तुराषाड्भ्याम् तुराषाड्भिः इत्यादि। वकारान्त सुदिव् शब्द है। सुदिव् सु इस स्थिति में।

(दिव इति) दिव औत्। दिव्शब्द को औकार आदेश हो सु के परे। परत्वात्, नित्यत्वात् हल्ङ्यादि लोप बाधकर अलोऽन्त्यस्य से वकार को औकार हो गया। स्थानिवद्भाव से हलन्त मानकर सुलोप क्यों नहीं होता। अनल्विधौ से निषेध हो जायगा। रुत्व, विसर्ग, इको यणचि सुद्यौः। सुदिव्-भ्याम्।

(दिव इति) दिव उत्। दिवशब्द को उकार आदेश हो, पदान्तमें। स्वादिष्वसर्वनामस्थाने से पद संज्ञा, यण्, सुद्युभ्याम्, सुद्युभिः,इत्यादि।

रेफान्त चतुर् शब्द है। 'चार' का वाचक है, प्रकृति-प्रत्यय का अभेदान्वय होता है। अतः बहुवचनान्त ही है। चतुर् जस्। 'चतुरनडुहोराम् उदात्तः, से मिदचोऽन्त्यात्परः' से उकार से पर आम्।

षट्संज्ञकेभ्यश्चतुरश्च परस्यामो नुडागमः स्यात्। णत्वं द्वित्वम्। चतुर्णाम्। रोः सुपि ।८।३।१६। सप्तमीबहुवचने रोरेव विसर्जनीयो नान्यरेफस्य। षत्वम्। तस्य द्वित्वे प्राप्ते। शरोऽचि ।८।४।४८। न द्वे स्तः। चतुर्षु। प्रियचत्वाः। चतुर्भ्य इति बहुत्वनिर्देशाद् गौणत्वे न नुट्।

मकार इत्, उकार को वकार। चत्वारः। चतुरः। चतुर्भिः चतुर्भ्यः। चतुर्-आम् इस स्थिति में।

(षडिति) षट् चतुर्भ्यश्च। षट् संज्ञक और चतुर् शब्द से पर जो आम् उसके नुट् हो टित्वात् आम् के आदि में नुट्। रषाभ्यां नो णः। से णकार। 'अचो रहाभ्यां द्वे' से णकार द्वित्व। चतुर्णाम्। सप्तमी बहुवचन में, चतुर सु, 'खरवसानयोः०' से रेफ को विसर्ग प्राप्त था।

(रोः सुपीति) रोः सुपि। सुप् के परे अर्थात् सप्तमी के बहुवचन में 'रु' सम्बन्धी ही रेफ को विसर्ग होगा, अन्य रेफ को नहीं। तो यहां रु सम्बन्धी नहीं है अतः विसर्ग नहीं होगा, इण् प्रत्याहारान्तर्गत रेफ है, अतः आदेशप्रत्यययोः से सकार को मूर्धन्य षकार। उसे 'अचोरहाभ्यां द्वे' से द्वित्व प्राप्त था।

(शर इति) शरोऽचि, अच् के परे शर् को द्वित्व न हो। तो षकार को द्वित्व नहीं हुआ। चतुर्षु। प्रियाश्चत्वारः यस्यसः अन्य पद प्रधान बहुव्रीहि समास। सब विभक्तियाँ होंगी। प्रियचतुर् सु। 'चतुरनडुहोरामुदात्तः' से आम्। मकार इत्। यण् हल्ङ्यादि लोप। खरवसानयोर्विसर्जनीयः। प्रियचत्वाः। एवं प्रियचत्वारौ, प्रियचत्वारः। सर्वनामस्थान में आम् होगा। अन्यत्र कोई विशेष नहीं। प्रियचतुर् आम्। षट्चतुर्भ्यश्च से नुट् नहीं होगा क्योंकि 'चतुर्भ्यः' यह बहुत्व निर्देश है, अतः जहाँ बहुवचन ही चतुर् शब्द रहेगा, वहाँ नुट् होगा, यहाँ गौण् में अन्य पद प्रधान होने से बहुत्व संख्यावाचक नहीं है, अतः नुट् नहीं हुआ। प्रियचतुराम् इत्यादि, और जहाँ चतुरशब्द का प्राधान्य कर्मधारय समास में संख्यावाचकत्व रहेगा, वहाँ नुट् हो जायगा। जैसे परमचतुर् आम्। यहां नुट् हो जायगा, क्योंकि संख्या-

प्रियचतुराम्। प्राधान्ये तु स्यादेव, परमचतुर्णाम्। **मो नो धातोः** |८।२।६४| नः स्यात्पदान्ते। प्रशान्। नत्वस्यासिद्धत्वान्नलोपो न। प्रशामौ, प्रशामः, प्रशान्भ्याम्। प्रशान्त्सु। **किमः कः** |७।२।१०३| किमः कः स्याद्विभक्तौ। कः कौ के। इत्यादि सर्ववत्। **इदमो मः**

वाचकत्व है। उटावितौ। णत्वं द्वित्वम्। परमचतुर्णाम्। कमल इत्यादि शब्दों का काव्यादि में अनभिधान है, और कार्य, प्रयोग में वैलक्षण्य नहीं है, अतः उसका उपादान नहीं किया। प्रशाम् शब्द सु। हल्-ङ्यादि लोप।

(मोनो इति) मोनो धातोः। धातोर्मः नः स्यात्। धातु के मकार को नकार हो पदान्त में। तो शम धातु के 'म' को 'न' हो गया। प्रशान्। यहाँ नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य/से नलोप क्यों नहीं होता ?, (८।२।१) 'पूर्वत्रासिद्धम्' से नलोप असिद्ध है नलोपविधायक सूत्र की दृष्टि में मकार ही है। प्रशामौ, प्रशामः। भ्याम् के परे स्वादिष्वसर्वनामस्थाने से पद संज्ञा। पदान्तत्वात् मो नो धातोः से नकार, प्रशान्भ्याम्। सप्तमी बहुवचन में, पद संज्ञा। पदान्तत्वात् उक्त सूत्र से नकार। नश्च से धुट् विकल्प, जश्त्व, चर्त्व। प्रशान्त्सु। चर्त्वेन उत्पन्न तकार असिद्ध है अतः 'चयोः द्वितीया शरि०' से तकार को थकार नहीं होगा। मकारान्त किम् शब्द है।

(किम इति) किमः कः। किम्शब्द को क आदेश हो, विभक्ति के परे अर्थात् सभी विभक्तियों में क आदेश होगा। अनेकाल्त्वात् किम् को 'क' आदेश। सर्वादिगण में होने से, जसः शी, सर्वनाम्नः स्मै, ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ, आमि सर्वनाम्नः सुट् इत्यादि होंगे। कः कौ के। कस्मै, कस्मात्, केषाम्, कस्मिन्। इत्यादि होंगे। इदम् शब्द सु विभक्ति। त्यदादि में पाठ होने से 'त्यदादीनमः' प्राप्त था।

(इदेति) 'इदमो मः' इदम् शब्द को म आदेश हो सु के परे। अलोन्त्यस्य से म् को म् हो गया। 'म' को 'म' करने का फल, त्यदा-दित्वात् अकार नहीं होगा। इदम्-सु।

।७।२।१०८। सौ परे। त्यदाद्यत्वापवादः। इदोऽय् पुंसि ।७।२।१११। सौ परे। अन्यत्स्पष्टम्। अयम्। त्यदाद्यत्वं पररूपत्वं च। दश्च ।७।२।१०९। इदमो दस्य मः स्याद् विभक्तौ। इमौ, इमे। त्यदादीनां संबोधनं नास्तीत्युत्सर्गः। अनाप्यकः ।७।२।११२। अककारस्य इदम इदोऽन् स्यादापि विभक्तौ। अनेन। हलि लोपः ।७।२।११३। आद्यन्त-

---

(इदोऽयमिति) इदोऽय् पुंसि। इदम् शब्द के इद् को अय् आदेश हो। पुंलिङ्ग में सु के परे अनेकाल्त्वात् 'इद्' इस को अय् हो गया। हल्ङ्यादि लोप। अयम्। द्विवचन में इदम् औ, त्यदादीनामः से मकार को अकार। अतो गुणे से पररूप। इद-औ।

(दश्चेति) दश्च। इदम् शब्द के 'द' को 'म' हो विभक्ति के परे। म आदेश। वृद्धिरेचि से वृद्धि। इमौ। इदम्-अस्। त्यदादीनामः, अतोगुणे, दश्च। जसः शी, आद्गुणः। इमे। त्यदादिकों का संबोधन नहीं होता, क्योंकि स्वाभाविक अनुगम नहीं होता एवम्, इमम्, इमौ, इमान्। इदम्-टा इस स्थिति में।

(अनेति) अनाप्यकः। अन्-आपि-अकः। केन रहितः अकः। क से रहित अर्थात् अकच् प्रत्ययरहित इदम् शब्द के इद् भाग को अन् आदेश हो, आप् के परे, अर्थात् टा-के आ से लेकर सुप् के 'प' पर्यन्त। तो इद् को अन् आदेश हो गया। टा को इनादेश, गुण, अनेन। इदम्-भ्याम्। त्यदादीनामः। अतो गुणे। इद-भ्याम्, अनाप्यकः से इद् को अन् प्राप्त था। उसका अपवाद।

(हलीति) हलिलोपः। सकार रहित इदम् शब्द के इद् भाग का लोप हो, हलादि विभक्ति के परे। इद् का लोप हो गया। प्रश्न होता है, अलोऽन्त्यस्य से केवल द् का लोप क्यों नहीं होता? उत्तर—"नानर्थकेऽलोन्त्यविधिः अनभ्यासविकारे" अभ्यास विकार को छोड़कर अनर्थक में अलोन्त्य विधि नहीं होती है, तो इद् यह अनर्थक है अतः अलोन्त्यविधि नहीं होगी। इद् का लोप हो गया। सुपि च से अदन्ताङ्ग अकार को दीर्घ

वदेकस्मिन् ।१।१।२१। आभ्याम्। नेदमदसोरकोः ।७।१।११। भिस ऐस् न स्यात्। एत्वम्। एभिः। हलि लोपः। अस्मै, एभ्यः। इत्यादि सर्वशब्दवत्। ककारयोगे तु अयकम्, इमकौ, इमकेन, इमकाभ्याम्, इमकैः। इत्यादि। इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ।२।४।३२।

होगा, प्रश्न होता है, सुपि च से दीर्घ कर्तव्य में अवशिष्ट केवल अकार अङ्ग है, परंतु वह तदन्त अङ्गान्त नहीं हो सकता, इसलिए सूत्रारम्भ है।

(आद्यन्ते ति) 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' एक में अर्थात् तदादि अथवा तदन्त में क्रियमाण जो कार्य हो वह तदादि और तदन्त में तथा केवल में भी हो, तो यहाँ क्रियमाण दीर्घ कार्य है, तो अन्तवत् मानकर अवशिष्ट अकार अङ्ग है उसे दीर्घ हो गया, आभ्याम्। तृतीया बहुवचन भिस्। त्यदादीनामः, अतोगुणे, हलिलोपः। अतो भिस् ऐस् प्राप्तथा।

(नेदमिति) नेदमदसोरकोः। अकोः—ककार रहित इदम् अदस् शब्द के भिस् को ऐस् न हो, इससे ऐस् नहीं हुआ। बहुवचने झल्येत्। एभिः इद होने पर सर्वनाम्नः स्मै। हलिलोपः, अस्मै। आभ्याम्, एभ्यः, इत्यादि पूर्ववत् जानना। ककार के योग में, अर्थात् जहाँ 'अव्यय सर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः' से अकच् हो जायगा, वहाँ अयकम्, इमकौ इमके इत्यादि पूर्वोक्त प्रक्रिया से होंगे, अजादि में अन्, हलादि में इद लोप, भिस् में ऐसादेश का निषेध नहीं होगा। अतः इमकेन इमकाभ्याम्, इमकैः इत्यादि होंगे। अत्र अन्वादेश में इदम् शब्द को कहते हैं।

(इदम इति) इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ। 'अन्वादेशे' वैषयिक सप्तमी है। अन्वादेश विषयक इदम् शब्द को अश् आदेश हो तृतीयादि विभक्तियों के परे, और वह अश् उदात्त संज्ञक हो। अश् का शित्, 'अनेकाल् शित्सर्वस्य' से अकच् सहित इदम् शब्द को अश् आदेश हो एतदर्थं है। द्वितीया में—

स्पष्टम् । अश्वचनं साकच्कार्थम् । द्वितीयाटौस्स्वेनः । २ । ४ । ३४।
द्वितीयायां टौसोश्च परत इदमेतदोरेनादेशः स्यादन्वादेशे । किञ्चित्कार्यं
विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः । यथा अनेन
व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय । अनयोः पवित्रं कुलम्, एनयोः
प्रभूतं स्वम् । एनम् एनौ एनान् । एनेन एनयोः । परत्वादुपधादीर्घः,
हलङ्यादि लोपः । ततो न लोपः । राजा । न ङिसम्बुद्धयोः।८।२।८।

(द्वितीयेति) द्वितीयाटौस्स्वेनः । द्वितीया—अम् औ शस् और टा ओस् के परे इदम् और एतत् शब्द को एन आदेश हो अन्वादेश में, अन्वादेश का स्वरूप कहते हैं (किञ्चिदिति) 'किञ्चित् कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानम् अन्वादेशः । अनु आदेशः अन्वादेशः । जैसे किसी कार्य के लिये प्रथम उसका ग्रहण किया हो, और फिर दूसरे कार्य के लिये उसी का ग्रहण हो वह अन्वादेश कहाता है । जैसे अनेन व्याकरणम् अधीतम् एनं छन्दोऽध्यापय, इसने व्याकरण पढ़ लिया है, अब इसको छन्दःशास्त्र पढाओ । यहां व्याकरणाध्ययन में अनेन पद से उपादान है, अब पुनः छन्दोऽध्यापन के लिये इदम् का उपादान है अतः अन्वादेश है, कर्मणि द्वितीया से द्वितीया, अनेकाल्त्वात्सर्वादेश, अमिपूर्वः, एनम् । पुनः ओस् का द्वितीय उदाहरण कहते हैं । अनयोः पवित्रं कुलम्, संबन्ध में षष्ठी है, कुल के संबन्धी अनयोः वह इदम् शब्द का उपादान है, फिर प्रभूत स्वम् के लिये उपादान है अतः एन आदेश हो जायगा, एनयोः । इनके पूर्वोक्तों के प्रभूत धन है पुनः उपादान होने से अन्वादेश है । एनम्, एनौ एनान्, ये द्वितीया के हैं, और एनेन, एनयोः, ये टा ओस् के हैं। सुगण् इत्यादि का काव्यादि में प्रयोग न होने से और द्वितीय सुगण् क्विबन्त को व्रीडा व्यञ्जक अश्लील होने से उपादान नहीं किया । नकारान्त राजन् शब्द है । सुविभक्ति । हल् ङ्यादि लोपापेक्षया 'सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ' पर है, अतः प्रथम उपधा दीर्घ । फिर हल्ङ्यादि

नस्य लोपो न स्यात् ङौ संबुद्धौ च । हे राजन् । ङौ छन्दस्युदाहरणम् । ङावुत्तरपदे प्रतिषेधः । ॐ । चर्मतिलः । राजानौ राजानः । राजानम् , राजानौ । अल्लोपोऽनः । श्चुत्वम् , राज्ञः राज्ञा । नलोपः सुप्स्वरसंज्ञा-

से सुलोप । 'विप्रतिषेधेन यद् बाधितं तद् बाधितमेव' इस नियम से हल्ङ्याबादिलोप का बाध होने पर फिर लोप नहीं होना चाहिये ? उत्तर– यह नियम सार्वत्रिक नहीं है, अथवा पुनः प्राप्त होने से लोप होजायगा। नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य से नलोप, राजा । संबोधन में उपधा दीर्घ नहीं होगा, क्योंकि असम्बुद्धौ-सम्बुद्धि भिन्न में दीर्घ होता है । हल्-ङ्याभ्यो० से सुलोप । नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य से नलोप प्राप्त है,

(नङीति) 'न ङिसम्बुद्ध्योः ।' ङि और संबुद्धि में नकार का लोप नहीं होगा, तो यहाँ संबोधन है अतः नलोप नहीं होगा, हे राजन्, ङि के परे नलोपाभाव का उदाहरण वेद में है, जैसे "परमे व्योमन् सर्वा भूतानि" व्योम्नि का व्योमन् है । चर्मणि तिलः समास है, सप्तमी का लुक् । चर्मन्-तिल, स्थानिवद्भाव से सप्तमी ङि मानकर 'न ङि सम्बुद्ध्योः' से नलोप का निषेध प्राप्त था । 'ङावुत्तरपदे प्रतिषेधः' उत्तर पद पर रहने पर ङि के परे न लोप विषयक निषेधका प्रतिषेध होता है, अर्थात् समास संबन्धी उत्तर पद तिल है उसके परे ङि के आश्रित न ङिसम्बुद्ध्योः से निषेध प्राप्त था वह निषेध नहीं होगा, तो नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य से नलोप हो जायगा । चर्मतिलः । राजानौ राजानः । राजानम् राजानौ में सर्वनामस्थाने० से उपधा दीर्घ, राजन्शस्, शकार इत् 'यचिभम्' से भ संज्ञा, अल्लोपोऽनः से अकारलोप । स्तोः श्चुना श्चुः से नकार को ञ । राज्ञः, राज्ञा । भ्याम् के परे, स्वादिष्वसर्वनामस्थाने से पद

टिप्पणी—राज्ञः इत्यादि में राजन् अस् । इस स्थिति में श्चुत्व कर्तव्य में 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' से अल्लोप का स्थानिवद्भाव हो जायगा, क्योंकि पूर्वस्मात् दृष्टस्य विधौ कर्तव्य अल्लोप से पूर्व जकार उससे दृष्ट नकार को ञकार करना है, अतः स्थानिवद्भाव होने से अकार व्यवधान है, श्चुत्व अप्राप्त है, उत्तर पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत् पूर्वत्रा-

तुग्विधिषु कृति ।८।२। एष्वेव नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र। तेन पथिषु राजाश्व इत्यादौ नासिद्धत्वम्। नलोपस्यासिद्धत्वादात्वमेत्व-मैत्वं च न। राजभ्याम्, राजभिः, राजभ्यः। राज्ञः राज्ञोः राज्ञाम्। राज्ञि राजनि। प्रतिदीव्यतीति प्रतिदिवा प्रतिदिवानौ

संज्ञा, पदत्वात् नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य से नलोप। राजभ्याम्। 'पूर्व-त्रासिद्धम्' से नलोप असिद्ध है, अतः, सुपिच अतो भिस ऐस् बहुवचने झल्येत् नहीं लगेंगे। तो पथिषु में षत्व राजाश्वः में दीर्घ कैसे? अकः सवर्णे० से दीर्घ कर्तव्य रहते आदेशप्रत्यययोः से षत्व कर्तव्य रहते नलोप असिद्ध क्यों नहीं?, अतः नलोप असिद्ध का नियम सूत्र कहते हैं,

(न लोप इति) न लोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति। "द्वन्द्वान्ते श्रूय-माणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते" द्वन्द्व समास के अन्त पर श्रूयमाण विधि पदका प्रत्येक समासीय पदके साथ सम्बन्ध होता है। तो यह अर्थ होगा, सुप् विधि, स्वर विधि संज्ञा विधि और कृदन्त में तुक् विधि कर्तव्य रहते ही न लोप असिद्ध है, अन्यत्र नहीं, 'पूर्वत्रासिद्धम्' से असिद्ध सिद्ध था यह नियम करता है कि न लोप सुप् विधि में अर्थात् सुप्त्व के उद्देश्य से क्रियमाण विधि में असिद्ध है। मूर्धन्यादेश षकार सुबाश्रित विधि नहीं अतः उसके कर्तव्य में असिद्ध नहीं होगा, एवम् स्वरविधि संज्ञा विधि, कृदन्तमें तुग्विधि कर्तव्य रहने पर ही न लोप असिद्ध होगा अन्यत्र नहीं, क्योंकि इतर व्यावृत्ति के लिये ही नियम सूत्र होता है,

---

सिद्धीय कार्य कर्तव्य रहते स्थानिवद्भाव नहीं होता। यहाँ पूर्वत्रासिद्धीय श्चुत्व कर्तव्य है स्थानिवद्भाव नहीं होगा। अस्तु 'असिद्ध' बहिरन्तरंगे अन्तरङ्ग कार्य कर्तव्य रहने पर बहिरङ्ग असिद्ध होता है। यहाँ अन्तरङ्ग श्चुत्व कर्तव्य होने पर नसंज्ञादि अनेक निमित्त सापेक्षत्वात् बहिरङ्ग अल्लोप असिद्ध हो जायगा अतः अकार व्यवधान है। उत्तर-यथोद्देश संज्ञा परिभाषम्। इसका स्थान 'वाह ऊठ्' है अतः पूर्वत्रासिद्धम् है श्चुत्व को देखता ही नहीं है अतः अन्तरङ्ग होते हुए भी प्रवृत्त नहीं होगा तो श्चुत्व निर्बाध हो जायगा।

भस्याल्लोपे कृते । हलि च । ८।२।७७। रेफवान्तस्य धातो-रुपधाया इको दीर्घविधौ निषेधान्न स्थानिवत्त्वम्। प्रतिदीव्नः, प्रतिदीव्ना। यज्वा यज्वानौ यज्वानः। न संयोगाद्वमन्तात्। ६। ४।१३७। अस्मा-त्परस्यानोऽकारस्य लोपो न स्यात्। यज्वनः यज्वना। यज्वभ्यामित्यादि।

तो राज-अश्वः यहाँ विधियाँ नहीं हैं अतः न-लोप असिद्ध नहीं होगा, किन्तु दीर्घ हो जायगा। राजभ्याम् इत्यादि में सुप् विधि है, इससे दीर्घ ऐस् ऐत् नहीं होंगे। राजभिः राज्ञे पूर्ववत्। राज्ञः राज्ञा राज्ञाम्। सप्तमी एकवचन, राजन् ङि। विभाषा ङिश्योः से विकल्पेन अकार लोप स्तोः श्चुनाश्चुः राज्ञि, पक्षमें राजनि। प्रतिदीव्यतीति, क्विप् लोपादि। प्रतिदिवन् शब्द है, सुट् में राजन् शब्दवत्। प्रतिदिवा, प्रतिदिवानौ, प्रतिदिवानः। प्रतिदिवानम्, प्रतिदिवानौ। प्रतिदिवन् शस्, अल्लोपोऽनः से अल्लोप।

(हलीति) हलिच, रेफान्त धातु अथवा वकारान्त धातुके उपधा इक् को दीर्घ हो, हल् प्रत्याहार के परे। यहाँ वकारान्त दिव् धातु है, उसका उपधा इक् दकारोत्तरवर्ती इकार है उसको दीर्घ हो गया। हल में नकार परे है। यहाँ अचः परस्मिन् पूर्वविधौ से अल्लोप का स्थानिवद्भाव क्यों नहीं होता?, 'न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोप-स्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु' यहाँ दीर्घविधि कर्तव्य है, अतः स्थानिवद्भाव नहीं हुआ। दीर्घ, प्रतिदीव्नः। प्रतिदीव्ना, प्रतिदिव-भ्याम्, प्रतिदिवभिः। ङि के परे विभाषा ङिश्योः से विकल्पेन अकार लोप, दीर्घ। प्रतिदीव्नि पक्ष में, प्रतिदिवनि। यज्वन् शब्द है। सर्व-नामस्थान में राजन् शब्दवत्। शसादि भसंज्ञा के विषय में, अल्लोऽपनः से अल्लोप प्राप्त था।

(न संयोगादिति) 'न संयोगाद् वमन्तात्' वकार-मकारान्त संयोग से पर जो अन् का अकार उसका लोप न हो। तो अकार का लोप नहीं हुआ, यज्वनः। यज्वभ्याम् में, न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य से न लोप, इसी तरह से ब्रह्मन् शब्द के रूप होंगे यहाँ हकार-मकार के संयोग के

ब्रह्मणः ब्रह्मणा। इन्हन्पूषार्यम्णां शौ। ६ ४ १२। एषां शावेवो-पधादीर्घो नान्यत्र। सौ च।६।४।१३। असंबुद्धौ सावपि तथा। वृत्रहा, एकाजुत्तरपदे णः। वृत्रहणौ, वृत्रहणः। हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ७।३।५४। एषु हनो हस्य कुत्वं स्यात्। नकारे परे कुत्वविधिसामर्थ्यादल्लोपो न स्थानिवत्। हन्तेः।८।४।२१। उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य हन्तेर्नस्य णः

अन्तपर अन् है अतः उसका लोप नहीं होगा। अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि से णकार। ब्रह्मणः, ब्रह्मणा, ब्रह्मभ्याम् इत्यादि होंगे। ब्रह्महन् शब्द है। सु विभक्ति। सर्वनामस्थाने० से दीर्घ सिद्ध था।

(इन् हनिति) इन् हन् पूषार्यम्णां शौ। इन्नन्त हन् पूषन् अर्यमन् इनकी उपधा को शि के परे ही दीर्घ हो अन्यत्र नहीं। तो सु के परे भी दीर्घ अप्राप्त था तदपवाद सूत्र।

(सौ च) इन्नादिक की उपधा को दीर्घ हो सम्बुद्धिभिन्न सु के परे। तो उपधा को दीर्घ। हल्ङ्यादि लोप। नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य से न लोप। ब्रह्महा। ब्रह्महन् औ, उक्त नियम से दीर्घ नहीं होगा, समान पद नहीं है अतः रषाभ्यां नो णः० से णत्व अप्राप्त था। 'एकाजुत्तरपदेणः' एकाच उत्तर पद हन् है उसको पूर्वपदस्थ निमित्त रेफ है उससे पर नकार को णकार हो गया। वृत्रहणौ, वृत्रहणः इत्यादि। वृत्रहन्-शस्। 'अल्लोपोऽ नः' से अकार लोप।

(हो हन्तेरिति) एषु-ञ्णिन्नेषु। ञित् णित् अर्थात् ञकार णकार जिसके इत् ऐसे प्रत्यय के परे और नकार के परे हन् धातु के हकार को कुत्व हो। पाँचों प्राप्त थे, हशः संवारः, द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणः संवार प्रयत्न, महाप्राण प्रयत्नवाले हकार को तादृश, वर्ग का चतुर्थ अक्षर घ हो गया। प्रश्न—स्थानिवद् भाव से कुत्व कर्तव्य रहते अकार का व्यवधान है। उत्तर—नकार के कुत्वविधिसामर्थ्य से अल्लोप को स्थानिवद् भाव नहीं होगा। वृत्रघ्नः। यहाँ—

(हन्तेरिति) हन्तेः। उपसर्गस्थ निमित्त से पर हन् धातु के नकार को णकार हो प्रपूर्वक लिङ् लकार विधिलिङ्। प्रहण्यात्। सर्वत्र हन् के 'न' को 'ण' प्राप्त था अतः।

स्यात्, प्रहण्यात्। अत्पूर्वस्य। ८।४।२२। हन्तेरत्पूर्वस्यैत् नस्य णत्वम्, नान्यस्य। प्रघ्नन्ति। योगविभागात्, एकाजुत्तरपदे णः इतिणत्वमपि निवर्तते। वृत्रघ्नः, वृत्रघ्ना। एवं शार्ङ्गिन् यशस्विन्नर्यमन्पूषनादयः। अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्तीति दीर्घः। यशस्वी, यशस्विनौ यशस्विनः। अर्यम्णि, अर्यमणि। पूष्णि,

---

(अत्पूर्वेति) अत् पूर्वस्य। पूर्वसूत्र से णत्व सिद्ध था, नियमार्थ यह सूत्र है। हन् धातु के नकार को णकार हो तो अत्पूर्वक को ही हो। प्रघ्नन्ति। यहाँ अकार पूर्व में नहीं है, किन्तु घकार है.अतः णकार नहीं हुआ। अस्तु। हन्तेः से न हो, परंतु 'एकाजुत्तरपदे णः' से हो जाना चाहिए। क्योंकि ऐसा नियम है, 'अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधो वा' अनन्तर—सर्वथा जो पास होता है उसी का विधि और प्रतिषेध होता है, तो अत्पूर्वस्य यह नियम हन्तेः का ही प्रतिषेध करेगा। 'एकाजुत्तरपदे णः' का नहीं। ठीक है, परन्तु हन्तेरत्पूर्वस्य एकही साथ कहना था, योग विभाग जो किया है उसके सामर्थ्य से उक्त न्याय का बाध करके सभी णत्वविधायकों का नियम कर देगा। अतः प्र से घ्नन्ति यह एकाच् उत्तरपद है तो उससे भी णत्व ही होगा। क्योंकि अत्पूर्वक नकार नहीं है। इसी तरह शार्ङ्गिन् यशस्विन् पूषन् में उक्त नियम से केवल शि और सु के परे दीर्घ होगा। सब सवनामस्थान में नहीं। शार्ङ्गी शार्ङ्गिणौ, अट् कुप्वाङ् से णकार। शार्ङ्गिणः। यशस्वी। यहाँ यशस् शब्द से अस्त्यर्थ में विन् प्रत्यय अस्मायामेधास्रजो विनिः से है। तो 'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम्' इस परिभाषा से अर्थवान् विन् के ग्रहण में अनर्थक इन्का ग्रहण नहीं होगा, तो यशस्वी में दीर्घ नहीं होगा, इसलिए वचन है। 'अनिनस्मन् ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति' अन् इन् इत्यादिकों का ग्रहण अर्थवान् और अनर्थक के साथ भी तदन्तविधि को करते हैं तो यहाँ विन् में पठित इन् अनर्थक है तो भी तदन्त है, अतः दीर्घ हो जायगा। यशस्वी, यशस्विनौ, यशस्विनः

पूषणि । **मघवा बहुलम्** । ६ । ४ । १२८ । मघवन् शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः स्यात् । ऋ इत् । **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** । ७ । १ । ७० । स्पष्टम् । बहुलग्रहणेन संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वं न भवतीत्युपधादीर्घः । मघवान् । मघवन्तौ मघवन्तः । हेमघवन् मघवद्भ्यामित्यादि । तृत्वाभावे मघवा मघवानौ मघवानः । सुटि राजवत्, श्वयुव

इत्यादि । अर्यमा, अन्यत्र औ इत्यादि में दीर्घ नहीं होगा । अर्यमणौ अर्यमणः । वृत्रहन् शब्दवत् अल्लोऽनः । अर्यम्णः, अर्यम्णा । अर्यमन् ङि । 'विभाषा ङिश्योः' से विकल्पेन अल्लोप । अर्यम्णि, अर्यमणि । इसी तरह पूषन् शब्द को भी जानना । मघवन् शब्द सु विभक्ति है।

(मघवेति) मघवा बहुलम् । 'अर्वणस्त्रसावनञः' से तृ की अनुवृत्ति है । तो यह अर्थ हुआ मघवन् शब्द को विकल्प से तृ यह अन्तादेश हो । तृ में ऋ इत् है ।

(उगिदिति) उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः । 'अचाम्' यह न लोपी अञ्च धातु का उपादान है, अतः न लोपी अञ्च का ग्रहण होगा । अञ्च धातु ही है अतः अधातोः अञ्च का विशेषण नहीं होगा । तो यह अर्थ होगा । धातु भिन्न जो उगित् अर्थात् उक् प्रत्याहार उ-ऋ-लृ जिसके इत् हो और न लोपी अञ्च के नुम् का आगम हो सर्वनामस्थान के परे । यहाँ ऋ इत् । अतः नुम् मिदचोऽन्त्यात्परः से अन्त्य अच् वकाराकार से पर हो गया । नुम् के उकार मकार इत् हैं । 'मघवन् त् स्' इस स्थिति में हल्ङ्याभ्यो से सु लोप । संयोगान्तस्य लोपः से त लोप । सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ से उपधा दीर्घ । पठन् के समान यहाँ भी संयोगान्त लोप असिद्ध होना चाहिये । ठीक है । परन्तु वैकल्पिक मात्रके लिए वा पढ़ना था । बहुल ग्रहण जो किया उससे जानते हैं दीर्घ करने पर संयोगान्त लोप असिद्ध नहीं है । न लोप कर्तव्य में असिद्ध होगा । मघवान् । नुम् , मघवन्तौ मघवन्तः मघवद्भ्याम् इत्यादि । संबोधन में असंबुद्धौ विशेषण है अतः

मघोनामतद्धिते ६।४।११३। अन्नन्तानां भसंज्ञकानामेषामतद्धिते परे संप्रसारणं स्यात्, संप्रसारणाच्च। मघोनः मघोना, मघवभ्यामित्यादि। शुनः। शुना श्वभ्यामित्यादि। युवन्शब्दे वस्योत्वे कृते। न

दीर्घ नहीं होगा। हे मघवन्। तृत्वाभाव पक्ष में सर्वनामस्थान के परे राजन् शब्दवत्। शसादि में मघवन्-शस्, 'यचिभम्' से भ संज्ञा।

(श्वयुवेति) श्वयुवमघोनामतद्धिते। अन्नन्त भसंज्ञक श्वन् युवन् मघवन् इनको तद्धित भिन्न प्रत्यय के परे संप्रसारण हो। संप्रसारण होने से मघउ अन् शस् हुआ। संप्रसारणाच्च से उअ मिलकर उ हो गया। आद्गुणः से गुण, मघोनः, मघोना। न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य। मघवभ्याम् इत्यादि। श्वन् शब्द है। सुट् के परे राजन् शब्दवत्। शसादि अच् के परे यचिभम् से भसंज्ञा, उक्तसूत्र से व को उ संप्रसारण, शुनः, शुना, न लोप, न लोप असिद्ध है, इसलिये आत्व ऐस्त्व एत्व नहीं होगा। श्वभ्याम्, श्वभिः इत्यादि। युवन् शब्द सुट् में राजन् शब्दवत्। शस्। उक्त सूत्र से 'व' को 'उ' संप्रसारण। संप्रसारणाच्च से पूर्वरूप। पुनः उक्त सूत्र से यकार को संप्रसारण होना चाहिये। लक्ष्ये लक्षणं सकृदेव प्रवर्तते लक्ष्य में सूत्र एक ही बार लगता है, अतः फिर नहीं लगेगा। यह ठीक है, परंतु 'लक्ष्यभेदात्पुनः प्रवर्तते' लक्ष्यभेद से दुबारा भी लगता है। प्रथम वकार को उकार करना था, अब यकार को इकार करना है, अतः युवन् के यकार को इकार उक्त सूत्र से प्राप्त हुआ।

टिप्पणी—श्वन् युवन् मघवन् अन्नन्त ही मिलेंगे, फिर अन्नन्त विशेषण क्यों? ठीक है, परन्तु जहाँ तृ आदेश करेंगे, मघवतः, मघवता, वहाँ संप्रसारण न हो इसलिये अन्नन्त विशेषण है। अस्तु अन्नन्त विशेषण करने पर भी 'एकादेश विकृतमनन्यवद्भवति' इस न्याय से तृ आदेश करने पर भी अन्नन्त मघवन् है। परन्तु अन् अनुवृत्ति सामर्थ्य से श्रूयमाण अन्नन्त लिया जायगा। यहाँ श्रूयमाण अन्नन्त नहीं है। अतः संप्रसारण नहीं होगा।

संप्रसारणे संप्रसारणम् ६ । १ । ३७ । यूनः, यूना, । युवभ्यामि-त्यादि । अर्वा, हेअर्वन् । **अर्वणस्त्रसावनञः** । ६ । ४ । १२७ उगित्वान्नुम् । अर्वन्तौ अर्वन्तः । अर्वतः अर्वता अर्वद्भ्यामित्यादि । **पथिमथ्यृभुक्षामात्** । ७ । १ । ८५ । सौ परे । आ आदिति प्रश्लेषे

(नसंप्रेति) न संप्रसारणे संप्रसारणम्, संप्रसारण के परे पूर्व यण् को संप्रसारण नहीं होता, इसी ज्ञापक से पूर्व यण् को संप्रसारण नहीं होता। अन्यथा यदि पूर्व यकार को संप्रसारण करते तो यह सूत्र निर्विषय हो जाता। अतः एतत्सामर्थ्य से ही पर को संप्रसारण होता है. यूनः, यूना इत्यादि। नकारान्त अर्वन् शब्द है। हल्ङ्यादि लोप, सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ से उपधादीर्घ, न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य से न लोप। अर्वा हे अर्वन् न ङिसम्बुद्ध्योः से न लोप निषेध। अर्वन् औ।

(अर्वेति) अर्वणस्त्रसावनञः। अनञः अर्वणः तृ असौ। नञ् समास रहित अर्वन् शब्द को तृ आदेश हो, सुभिन्न सभी विभक्तियों के परे। तो नकार को तृ आदेश। ऋइत्। उगिदचां सर्व-नामस्थाने धातोः से नुम्। उमइत्। नश्चापदान्तस्य झलि। अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः, अर्वन्तौ, अर्वन्तः शसादि असर्वनामस्थान में नुम् नहीं होगा। तृ आदेश अज्झीनं परेण संयोज्यम्, अर्वतः, अर्वता। हलादि भ्याम् इत्यादिकों में पद संज्ञा। पदत्वात् झलां जशोऽन्ते, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भिः। इत्यादि। नकारान्त पथिन् शब्द है। पथिन्-सु।

(पथीति) पथिमथ्यृभुक्षामआत्। पथिन्-मथिन्-ऋभुक्षिन् इनको आकार आदेश हो, सु के परे। अलोन्त्यस्य से नकार को होगा, सानु-नासिक आकार क्यों नहीं होता? 'आत्' में आ-आत् यह छेद है, आकार स्वरूप अनुनासिक रहित आकारादेश होगा तो पथि आ-सु स्थित हुआ।

टिप्पण—पथिमथ्यृभुक्षामात्, में सानुनासिकएकारादेशनिवृत्यर्थं आ छेद व्यर्थ है क्योंकि भाव्यमानोऽण् सवर्णान् गृह्णाति इससे सवर्ण ग्रहण का निषेध हो जायगा। स्थानि न्यनुनासिके पि

शुद्धैवाकारः। इतोऽत्सर्वनामस्थाने। ७।१।७६। थो न्थः। ७।१।७७। स्पष्टम्। पन्थाः पन्थानौ पन्थानः। पन्थानम्। पन्थानौ। भस्य टेर्लोपः। ७।८।८। भसंज्ञकस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात्। पथः पथा पथिभ्यामित्यादि। एवं मन्थाः ऋभुक्षाः। आत्वं नपुंसके न

(इतोदिति) इतोत्सर्वनामस्थाने। अर्थ स्पष्ट है। इन पथ्यादिकों की इकार को अत् ह्रस्व अकार हो। सर्वनामस्थान के परे। तो इकार को अकार हो गया।

(थोन्थः इति) थोन्थः, ऋभुक्षिन् में थकार नहीं है। अतः पथिन् मथिन् दो का ही ग्रहण होगा। पथिन्-मथिन् शब्द का जो थकार है उसे न्थ आदेश हो, थ को न्थ होगया। पन्थ-आ-सु ऐसा हुआ, अकः सवर्णे दीर्घः, रुत्व विसर्ग। पन्थाः। औ के परे। इतोऽत्सर्वनामस्थाने से इकार को अकार। 'थोन्थः' से थ को न्थ। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से उपधादीर्घ। पन्थानौ, पन्थानः। संबोधन में पूर्ववत्। हेपन्था हेपन्थानौ हेपन्थानः। पन्थानम् पन्थानौ। अजादि में, यचिभम् से भसंज्ञा,

(भस्येति) भस्य टेर्लोपः। भसंज्ञक पथ्यादिकी टि का लाप हो, तो टि संज्ञक इन् का लोप हो गया। पथः, पथा, हलादि में 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से पद संज्ञा, पदत्वात् न लोपः प्रातिपदिकस्य। पथिभ्याम्। पथिषु। आदेशप्रत्यययोः से षत्व होगा 'न लोपः सुप्स्वर०' से न लोप असिद्ध नहीं होगा, क्योंकि सुप्स्वाश्रित विधि नहीं है। इसी तरह मथिन् ऋभुक्षिन् के जानना। मन्थाः, मन्थानौ मन्थानः। मथः मथा मथिभ्यामित्यादि। ऋभुक्षाः, ऋभुक्षाणौ। यहाँ थकार नहीं है, अतः थोन्थः नहीं लगेगा, 'अट्कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि' से न को ण। ऋभुक्षाणः, ऋभुक्षः, ऋभुक्षा ऋभुक्षिभ्याम्, इत्यादि। स्त्रीलिङ्ग में नान्त-

टिप्पणी—आकारादेश को स्थानिवद्भावेन नान्त मानकर हल्ङ्यादि लोप क्यों नहीं? अनल्विधौ से निषेध होने से हलन्त नहीं है, अतः सुलोप नहीं होगा। 'भस्यटेर्लोपः' के स्थान पर 'आङित्' सूत्र है डित्वात् 'टेः' से लोप, पथः पथा इत्यादि सु सिद्ध हो जायँगे।

भवति, न लुमतेति निषेधात् । सुपथि वनम् । संबुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः । हेसुपथि, नलोपस्यासिद्धत्वाद् ह्रस्वस्य गुणो न ! द्विवचने भत्वाट्टिलोपः । सुपथी । शौ सर्वनामस्थानत्वात् सुपन्थानि । सुपथा सुपथे, सुपथिभ्यामित्यादि । **ष्णान्ता षट् १ । १ । २४ ।** ष्णान्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् । षड्भ्यो लुक् । पञ्चभ्यः २ । षट्चतुर्भ्यश्चेति नुट् । नोप-

---

त्वात्ङीप् 'भसंज्ञा' टिलोप, सुपथी । प्रकरण प्राप्त नपुंसक लिङ्ग को कहते हैं । सुपथि वनम् । स्वमोर्नपुंसकात् से सुब्लुक्, नपुंसक-लिङ्ग में उक्त सूत्र से 'आत्' नहीं होगा । क्योंकि नलुमताऽङ्गस्य से प्रत्यय लक्षण का निषेध होने से सु पर नहीं है । न लोपः प्रातिपदिका-न्तस्य से न लोप । संबोधन में सु का लुक्, न लोपः प्राति० से न लोप प्राप्त है प्रत्यय लक्षण मानकर 'नङिसंबुद्ध्योः' से निषेध नहीं होगा क्योंकि 'नलुमताऽङ्गस्य' से प्रत्ययलक्षण नहीं होगा अतः नित्य न लोप प्राप्त था । अतः विकल्पार्थ वार्तिक 'संबुद्धौ नपुंसकानां न लोपो वा वाच्यः' नकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों का संबोधन में नकार का लोप विकल्प से हो । तो न लोप होने से सुपथि, और जहाँ न लोप नहीं हुआ वहाँ हेसुपथिन्, न लोप पक्ष में 'ह्रस्वस्य गुणः' से गुण क्यों नहीं होता ? 'पूर्वत्रासिद्धम्' से न लोप असिद्ध है । द्विवचन में नपुंसकाच्च से शी, यचिभम् । भत्वात्, 'भस्य टेर्लोपः' से लोप । सुपथी, जस्-शस् में, 'जश्शसोः शिः' से शि । शि सर्वनामस्थानम्, से सर्वनामस्थान संज्ञा, 'इतोऽत्सर्वनामस्थाने' से इकार को अकार, 'थोन्थः' से न्थादेश । 'सर्व-नामस्थाने चासंम्बुद्धौ' से उपधादीर्घ ।-सुपन्थानि सुपथा सुपथे । सुपथिभ्याम्, इत्यादि पुंवत् । 'पाँच' संख्यावाचक नकारान्त पञ्चन् शब्द है, प्रकृति प्रत्यय का अभेदान्वय होता है, अतः बहुवचन होगा । पञ्चन् पञ्चन्-जस् ।

टिप्पणी—शतानि सहस्राणि में नपुंसकस्य झलचः से नुम् करने पर नान्त संख्या होने से जस् शस् का लुक् क्यों नहीं ? सन्निपात परिभाषा से बाध होगा । जस् शस् को मानकर हुआ नुम्, जस् शस् का विघातक नहीं होगा ।

धायाः ६।४।७। नान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात्, नामि परे। पञ्चानाम्। पञ्चसु। एवं सप्तन् नवन् दशन्। गौणत्वे तु न लुग्-नुटौ। प्रियपञ्चानः प्रियपञ्चानाम्। अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८४। अस्य आत्वं स्याद् हलादौ विभक्तौ वैकल्पिकं चेदमष्टन आत्वम् अष्टनो दीर्घादत्र दीर्घग्रहणात् नित्ये आत्वे तु व्यावर्त्याभावाद् दीर्घं व्यर्थं

(ष्णान्ता इति) ष्णान्ता, षट्। ष्णान्त संख्या अर्थात् संख्यावाचक षकारान्त नकारान्त शब्द षट् संज्ञक हों, पञ्च संख्याक पञ्चन् की षट् संज्ञा, षड्भ्यो लुक् से जस् शस् का लुक्। पञ्च २। भिस् भ्यस् में 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न लोप। पञ्चभिः। पञ्चभ्यः। आम् के परे 'षट् चतुर्भ्यश्च' से टित्त्वात् आम् के आदि में नुट्। ष्णान्ता षट् से षट् संज्ञा है। पञ्चन् नाम् इस स्थिति में।

(नोपधेति) नोपधायाः। नान्त शब्द की उपधा को दीर्घ हो, नाम् के परे। तो नान्त पञ्चन् शब्द की उपधा अकार है उसको दीर्घ होगा नाम् परे है। न लोप पञ्चानाम्। पञ्चसु। गौण में लुक् नुट् नहीं होंगे। क्योंकि 'षड्भ्यो लुक्, षट्चतुर्भ्यश्च' में बहुवचननिर्देश है, इससे जहाँ बहुत्व संख्या वाचक रहेगा वहीं लुक् नुट् होंगे। गौण में संख्यावाचकत्व नहीं रहता। विशेष्यनिघ्न हो जाता है अतः प्रिय पञ्चन् के रूप, साधुत्व आदि राजन् शब्दवत् होंगे। और प्राधान्य में परमपञ्चन् शब्द में लुक् नुट् होंगे। परमपञ्च २ परमपञ्चानाम्। इसी तरह सप्तन् नवन् दशन् शब्द हैं। अष्टन् शब्द में विशेष है। अष्टन् आठ संख्या का वाचक है अतः बहुवचनान्त है अष्टन्-जस्।

(अष्टन इति) अष्टन आ विभक्तौ। अष्टन् शब्द को विकल्प से आकार हो, हलादि विभक्ति के परे। विभाषा-वा इनकी अनुवृत्ति न होने पर भी यह आकार वैकल्पिक होता है क्योंकि 'अष्टनो दीर्घात्' में दीर्घ ग्रहण से जानते हैं, यदि नित्य आत्व होता, तो व्यावर्त्य

स्यादिति। अष्टाभ्य औश्।७।१।२१। कृताकारादष्टनः परयो-र्जश्शसोरौश् स्यात् शित्त्वात्सर्वादेशः, परत्वादादेः परस्येत्यस्य बाधः। अष्टौ अष्ट अष्टाभिः अष्टभिः। अष्टानामित्यादि। अष्टाभ्य इति बहुत्वनिर्देशात् प्राधान्ये एव औश्। आत्वं तु गौणत्वेऽपि। पूर्वस्मादपि विधावल्लोपस्य स्थानिवद्भावान्न ष्टुत्वम्। प्रियाष्ट्नः। प्रियाष्ट्ना।

ह्रस्व होता ही नहीं अतः 'दीर्घात्' व्यर्थ हो जाता। इससे जानते हैं, आत्व वैकल्पिक है। वैकल्पिक होने से—

(अष्टाभ्य इति) अष्टाभ्य औश्। कृताकार अष्टन् शब्द, अर्थात् आकार के वैकल्पिक होने से जहाँ आकार हुआ हो वहाँ अष्टन् शब्द के जस् शस् को औश् हो। यद्यपि आकार हलादि में ही होता है, परन्तु लाघवात् 'अष्टभ्य औश्' पढ़ना था कृतात्व 'अष्टाभ्य औश्' जो पढ़ा है इससे कल्पना करते हैं जस् शस् के परे भी आत्व होता है। तो नकार को आत्व और जस् को औश्, शित्वात् सर्वादेश, परत्वात् आदेः परस्य का भी बाधक है। आत्वादेश को अष्टन के आकार से दीर्घ, वृद्धिरेचि से वृद्धि। अष्टौ। पक्ष में षड्भ्यो लुक्। अष्ट। एवं शस् के परे अष्टौ अष्ट। हलादि में विकल्प से आकार, अष्टाभिः, अष्टभिः। अष्टाभ्यः अष्टभ्य इत्यादि। आम् के परे उभयत्र अष्टानाम्। अष्टासु अष्टसु। समास होने पर गौण में प्रियाष्टन् शब्द से सब विभक्तियाँ होंगी, प्रियाष्टा, प्रियाष्टानौ प्रियाष्टानः, इत्यादि राजन् शब्दवत् होंगे। प्रश्न होता है, कि यहाँ 'षड्भ्यो लुक्' से जस् शस् का लुक्, एवम् 'अष्टाभ्य औश्' से औश् आदेश क्यों नहीं होते ? उत्तर-प्रथम कह आये हैं कि उक्त सूत्रों में बहुवचन का निर्देश है अतः जहाँ बहुत्व संख्यावाचक होगा वहाँ जस् शस् का लुक् औश् आदेश होगा, प्रियाष्टन् शब्द विशेष्यनिघ्न होने से बहुत्व संख्यावाचक नहीं रहता है, अतएव औश् आदि नहीं होता, और जहाँ प्राधान्य में बहुत्व संख्यावाचक रहता है वहाँ औश् लुक् होता है, जैसे परमाष्टन् का परमाष्टौ, परमाष्ट इत्यादि, और जिस जिस कार्य के लिये

प्रियाष्टाभ्याम्। प्रियाष्टभ्यामित्यादि। भष्भावः, जस्त्वचर्त्वे। भुत् भुद् बुधौ बुधः। भुद्भ्याम्, भुत्सु इत्यादि। ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च। ३। २५९। एभ्यः क्विन् स्यात्। अलाक्षणिकमपि किंचित्कार्यं निपातनाल्लभ्यते। युजेः क्विन्। कनावितौ। कृदतिङ्। ३। १। ९३। धातोर्विहितस्तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्स्यात्। वेरपृक्तस्य। ६। १ ६७। लोपः स्यात्। कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वात्स्वादयः। युजेरसमासे। ७। १। ७१। युजेः सर्वनामस्थाने नुम्

सूत्र में बहुत्व निर्देश नहीं है वह गौण में भी होगा, जैसे—'अष्टन आ विभक्तौ' यहाँ अष्टनः एक वचन है अतः गौण में भी आकार होगा। प्रियाष्टाभ्याम्, प्रियाष्टभ्याम् इत्यादि। राजन् शब्द के समान रूप होंगे हलादि में वैकल्पिक आत्व होगा। धकारान्त बुध् शब्द है। सु का हल्ङ्यादि लोप। एकाचो बशोभष् झषन्तस्य स्ध्वोः से भ आदेश। झलां जशोऽन्ते। वावसाने। भुत् भुद् बुधौ बुधः। सुप् में झलांजशोऽन्ते खरि च। जश्त्व असिद्ध है, अतः चयोः द्वितीयाः शरि० नहीं लगेगा। भुत्सु, युज् धातु। युनक्ति इति, कर्ता में।

(ऋत्विगिति) ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च। इनसे क्विन् प्रत्यय हो, इनके स्वरूप में अलाक्षणिक-सूत्र से अनिष्पन्न कार्य निपातनात् हो जाता है जैसे ऋत्विग् यज् धातु व्रश्च भ्रस्ज० से प्राप्त षत्वापवाद, कुत्व, दधृग् में द्वित्व एवम् अन्यत्र भी अलाक्षणिक कार्य निपात से है, तो निरुपपद युज् धातु से क्विन्। कनावितौ। लशक्वतद्धिते। हलन्त्यम्। इकार उच्चारणार्थ। अब क्विन् की कृत्संज्ञा कहते हैं

(कृदिति) कृदतिङ्। धातु से विहित तिङ् भिन्न प्रत्यय कृत्संज्ञक हो। तो क्विन् की कृत्संज्ञा।

(वेरिति) वेरपृक्तस्य। अपृक्त व का लोप हो। अपृक्त एकाल् प्रत्ययः से 'व' की अपृक्त संज्ञा है, अतः वकार का लोप हो गया। युज् की कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा, प्रातिपदिकत्वात् स्वाद्युत्पत्ति। युज् सु इस अवस्था में।

स्यादसमासे । सुलोपः । संयोगान्तलोपः । **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** । ८ । २ । ६२ । पदान्ते, नस्य कुत्वेन ङः । युङ् । नश्चापदान्तस्येति नुमोऽनुस्वारः, परसवर्णः । तस्यासिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वं न । युञ्जौ युञ्जः । **चोः कुः** । ८ । २ । ३० । झलि पदान्ते च । युग्भ्यामित्यादि । सुयुक् सुयुग् सुयुजौ सयुजः । खन् खञ्जौ खञ्जः । इत्यादि । व्रश्चेति षत्वम् ।

(युजेरिति) । युजेरसमासे । युज् शब्द के सर्वनामस्थान के परे नुम् हो । असमासे । समासमें नुम् नहीं हो । मिदचोऽन्त्यात्परः से उकारोत्तर नुम् हुआ । मकार इत् उकार उच्चारणार्थ । युन् जस् । हल्ङ्याब्भ्यो से सु लोप । संयोगान्तस्य लोपः, से जकार लोप ।

(क्विनित्ति) । क्विन् प्रत्ययस्य कुः । क्विन् प्रत्ययो यस्मात्सः क्विन् प्रत्ययः, तस्य क्विन्प्रत्ययस्य । बहुव्रीहि समास है, क्विन् प्रत्यय जिससे हो उसको पदान्त में कवर्गादेश हो, तो यहाँ युज् से क्विन् प्रत्यय हुआ है, अतः सानुनासिक नकार को सानुनासिक कुत्वङकार हो गया । युङ् । द्विवचनादि औ जस् आदि में । युजेरसमासे नुम् । उभौ इतौ । नश्चापदान्तस्य झलि से अनुस्वार । अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः से अनुस्वार को ञकार । युञ्जौ । यहाँ झल् प्रत्याहारान्तर्गत जकार पर होने से चोः कुः से 'ञ' को 'ङ' क्यों नहीं होता है । पूर्वत्रासिद्धम् से चोः कुः की दृष्टि में अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः असिद्ध है । अतः वह अनुस्वार ही देखता है । भ्याम् के परे ।

(चोः कुरिति) चोः कुः । चवर्ग को कवर्ग हो झल् प्रत्याहार के परे और पदान्त में, स्वादिष्वसर्वनामस्थाने से पद संज्ञा । झल् भी परे है । क्विन् प्रत्ययस्य कुः यह 'चोः कुः' की दृष्टि में असिद्ध है, अतः चोः कुः से कुत्व होगा । युग्भ्यामित्यादि । सुयुज् पूर्ववत् क्विन् लोपादि । 'युजेरसमासे' से नुम् असमास में होता है, यहाँ समास है अतः नुम् नहीं होगा । चोः कुः से कुत्व । सुयुकु सुयुग् इत्यादि । खञ्जस् हल्ङ्याब्भ्यो से सु लोप, संयोगान्त लोप । संयोगान्त लोप असिद्ध है, अतः नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य से न लोप नहीं होगा ।

जस्त्वचर्त्वे । राट् राड् । राजौ राजः । राट्त्सु राट्सु । एवं विभ्राट् षत्वविधौ राजूसाहचर्यात् टुभ्राजृदीप्ताविति फलादिरेव गृह्यते यस्तु एजृभाजृदीप्ताविति तस्य कुत्वमेव । विभ्राक् विभ्राग् । विभ्राग्भ्यामि-

त्वन् खञ्जौ खञ्जः । इत्यादि । राज् शब्द है । कृदन्तत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा सु प्रत्यय का हल्ङ्याभ्यो से लोप । 'व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराज-भ्राजच्छशां षः' इससे राज् शब्द के जकार को षकार । यद्यपि चोः कुः की दृष्टि में यह असिद्ध है, परन्तु सूत्रारम्भसामर्थ्य से कुत्व का अपवाद है, अतः ष होगा । झलां जशोऽन्ते से 'ड' वावसाने । राट् राड् । खरि च । राट्सु । चर्त्व असिद्ध है, अतः 'चयोः द्वितीयाः' नहीं लगेगा । इसी प्रकार विभ्राज् का भी जानना । विभ्राट् विभ्राड् । विभ्राजौ विभ्राजः । विभ्राड्भ्याम् । राज् के साहचर्य से टुभ्राजृ दीप्तौ यह फलादिगण पठित ही को षत्व होगा, और जो एजृभ्राजृदीप्तौ की भ्राज् है उसे कुत्व ही होगा । विभ्राक् विभ्राग् विभ्राग्भ्याम् इत्यादि होंगे । देवेज् । विश्वसृज् शब्दों से सु । हल्ङ्यादि लोप व्रश्चभ्रश्च से षत्व जश्त्व चर्त्व । देवेट् देवेड् इत्यादि । एवं विश्वसृज् का विश्वसृट् विश्वसृड् विश्वसृड्भ्याम् इत्यादि होंगे । प्रश्न यह होता है—क्विन् प्रत्ययो यस्मात् यह बहुव्रीहि समास है । अतः ऋत्विक् में यज् धातु

टिप्पणी—भट्टोजि-दीक्षितजी ने 'प्रादूहोढोढ्यैषैष्येषु' इस वार्तिक में पठित ऊढ के ग्रहण में प्रौढः के समान प्र-ऊढवान् में भी क्तवतु प्रत्ययान्त के अर्धभाग मात्र ऊढ को लेकर प्र-उपसर्ग से पर ऊढ के वृद्धि की आशङ्का कर 'अर्थवद्ग्रहणेनानर्थकस्यग्रहणम्' अर्थवत् ऊढवान् के ग्रहण में अनर्थक उसका एकादेश ऊढ का ग्रहण नहीं होगा अतः प्रोढवान् में वृद्धि नहीं । यहाँ तक तो ठीक है, परन्तु राजसाहचर्य से विभ्राट् में षत्वफल रहते हुए राज् से पृथक् भ्राज् के सामर्थ्य से परिभाषा में प्रामाण्य कहना, विभ्राट् विभ्राक् भिन्न प्रयोग साहचर्य का फल मानना अयुक्त है । परि-भाषा का प्रामाण्य चिन्त्य है । फल रहते ज्ञापन कैसा यह बड़ा सन्देह ।

त्यादि। सृजियज्योः पदान्ते षत्वं कुत्वापवादः। देवेट् देवेड् देवेजौ देवेजः। विश्वसृट्, विश्वसृड् विश्वसृजौ विश्वसृजः। इत्यादि। परौ व्रजेः षःपदान्ते।*। परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्याद्दीर्घश्च, पदान्तविषये षत्वं च परिव्राट् परिव्राड्। परिव्राजौ परिव्राजः। विश्वस्य वसुराटोः। ६। ३। १२८। दीर्घः स्यात्। विश्वावसुः। राडिति पदान्तोपलक्षणम्।

और स्रक् में सृज् धातु है, इस लिये 'क्विन् प्रत्ययस्य' कुः' से कुत्व क्यों नहीं? निरवकाशत्व होकर अपवाद है। पूर्वत्रासिद्धम् से कुत्व विधायक सूत्र व्रश्च भ्रस्ज० की दृष्टि में असिद्ध है, और 'सृजिदृशोः', और 'काम्यच्च' सूत्र के भाष्य में विश्वसृड्भ्याम् उपयट्काम्यति प्रयोगों से जानते हैं इन शब्दों में कुत्व का अपवाद षत्व है। सर्वं परित्यज्य व्रजति इस विग्रह में परिपूर्वक व्रज से क्विप् प्रत्यय 'परौ व्रजेः षः पदान्ते' परि पूर्वक व्रज् धातु से क्विप् प्रत्यय हो और व्रज को दीर्घ हो, यह पदान्त और अपदान्त दोनों में होगा। और 'षः पदान्ते' पदान्त में ष आदेश हो। यह वैषम्य मूलक व्याख्या भाष्यकार और वार्तिककार के व्याख्यान से जानना। तो क्विप् प्रत्यय और दीर्घ। परिव्राज-सु। हल्ङ्यादि लोप। 'चोः कुः' से कुत्व प्राप्त था उसको बाधकर ष हो गया। जश्त्वचर्त्वादि पूर्वानुसार। परिव्राट् परिव्राड्। परिव्राजौ परिव्राजः इत्यादि में पदान्त नहीं है, परन्तु दीर्घ होगा। षत्व नहीं होगा। विश्वराज् शब्द। सु-हल्ङ्यादि लोप।

(विश्वस्येति) 'विश्वस्य वसुराटोः' विश्व शब्द को दीर्घ हो वसु और राट् के परे। वसु यह साधारणतया शब्द मात्र का बोधक है, और राट् यह पदान्त का उपलक्षण है। अतः विश्वं वसु यस्य सः भानु शब्दवत्। विश्वावसुः विश्वावसवः, विश्वावसुना, विश्वावसवे इत्यादि होंगे विश्वराज्-सु। हल्ङ्यादि लोप। व्रश्च भ्रस्ज् से षकार, झलां जशोऽन्ते। ड्। उक्त सूत्र से दीर्घ। वावसाने। विश्वाराट् विश्वाराड्। विश्वराजौ विश्वराजः। इत्यादि में पदान्त में। हलादि में स्वादिष्व-सर्वनामस्थाने से पद संज्ञा होगी। अतः हलादि में दीर्घ होगा।

विश्वाराट्, विश्वाराड् विश्वराजौ विश्वराजः। विश्वाराड्भ्यामित्यादि।
स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ।८।२।२९। पदान्ते झलि च परे संयोगाद्योः सकारककारयोर्लोपः स्यात्। भृट्, भृड्। सस्य श्चुत्वेन शः तस्य जश्त्वेन जः। भृज्जौ भृज्जः। यजेः क्विन्। क्विन्नन्तत्वात्कुत्वम्। ऋत्विक्, ऋत्विग्। ऋत्विजौ ऋत्विजः। रात्सस्येति नियमान्न संयोगान्तलोपः।

विश्वाराड्भ्याम् विश्वाराड्भिः इत्यादि अजादि शसादि में भ संज्ञा पद संज्ञा का बाधक है, अतः वहाँ दीर्घ नहीं होगा। विश्वराजा विश्वराजे इत्यादि भ्रस्ज पाके क्विप् प्रत्यय। ग्रहिज्या० से संप्रसारण। संप्रसारणाच्च से पूर्वरूप, क्विप् का लोप। कृदन्तत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा। भृस्ज से स्वादि। हल्ङ्याादि लोप।

(स्कोरिति) स्कोः संयोगाद्योरन्ते च। संयोगाद्योः स्कोः। संयोग के आदि में विद्यमान सकार ककार का लोप हो झल् प्रत्याहार के परे और पदान्त यहाँ पदान्त में विद्यमान संयोगादि सकार का लोप होगा। व्रश्चभ्रस्ज से षत्व, जश्त्व चर्त्व। भृट् भृड्। भृस्ज औ। स्तोः श्चुनाश्चुः से सकार को शकार। झलां जश् झशि से शकार को जकार। भृज्जौ भृज्जः। स्तोः श्चुना श्चुः की दृष्टि में झलां जश् झशि असिद्ध है। परन्तु झलां जश् झशि की दृष्टि में स्तोः श्चुनाश्चुः असिद्ध नहीं है। अतः शकार को जकार हो जायगा। हलादि षत्व। भृड्भ्यामित्यादि। अजादि में पदान्त न होने से संयोगादि लोप नहीं होगा। भृज्जः भृज्जा इत्यादि होंगे। ऋत्विग्दधृक् से क्विन् लोप ऋत्विज् सु। हलङ्याादि लोप। क्विन् प्रत्ययस्य कुः से कुत्व। जश्त्व चर्त्व। ऋत्विक् ऋत्विग् इत्यादि सुयुज् शब्दवत् होंगे। ऊर्ज् शब्द से सु। हल्ङ्याादि लोप। संयोगान्तस्य लोपः से जकार का लोप प्राप्त था। 'रात्सस्य' रेफ से पर सकार का ही लोप होता है। अन्य का नहीं। अतः ज कार का लोप नहीं होगा। चोः कुः से ज कार को गकार। वावसाने ऊर्क् ऊर्ग्। ऊर्जौ ऊर्जः। ऊर्ग्भ्यामित्यादि। त्यद् शब्द। स्वादि विभक्ति। सर्वत्र नित्यत्व से और परत्व से त्यदादीनामः से अलोऽन्त्यस्य से द

ऊर्क् ऊर्ग् ऊर्जौ ऊर्जः। त्यदाद्यत्वं पररूपत्वं च। तदोः सः सावनन्त्ययोः।७।२।१०६। त्यदादीनामित्यर्थः। स्यः त्यौ त्ये। सः तौ ते। इत्यादि सर्ववत्। द्विपर्यन्तानामेवेति नेह। त्वम्। एषः एतौ एते। अन्वादेशे तु एनम् एनौ एनान्। एनेन एनयोः २। ङे प्रथमयोरम्। ७।२।२८। युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङेरित्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः।

को 'अ' अतो गुणे से पररूप। स्थानिवद्भाव से हलन्त मानकर सु लोप नहीं होगा। अनल्विधौ से निषेध हो जायगा। अतः त्यसु ऐसा स्थित है।

(तदोरिति) तदोः सः सावनन्त्ययोः त्यदादिकों के अनन्त्य अन्त पर स्थित नहीं ऐसे तकार दकार को सकार हो सु के परे। 'त' को 'स' हो गया। रुत्व विसर्ग सः तौ ते। सर्व शब्द के समान। तस्मै, तस्मात् तेषाम् तस्मिन् इत्यादि होंगे। त्यदादिकों का संबोधन नहीं होता; भाष्यकार ने 'हे सः' संबोधन में उदाहरण दिया है परन्तु वस्तुतः वह अनुगम विरुद्ध है। द्विपर्यन्त ही त्यदादिकों का ग्रहण होता है इससे त्वम् में सकारादेश नहीं होगा। त्वाहौ सौ में तकारोच्चारण सामर्थ्य से नहीं होगा, अतित्वम् गौण में तकारोच्चारण चरितार्थ है। क्योंकि संज्ञा में और गौण में सर्वादि कार्य तदन्तर्गत अत्व सत्व नहीं होते हैं। एतद् शब्द स्वादिक विभक्तियां 'त्यदादीनामः' से अन्त्यादेश, अतो गुणे, तदोः सः सावनन्त्ययोः से सकार, आदेशावयव सकार है, अतः 'आदेशप्रत्यययोः' से सकार को मूर्धन्य षकार। एषः। औ इत्यादि में त्यदाद्यत्व पररूप करने के अनन्तर सर्व शब्दवत् रूप होंगे। एतौ एते। एतस्मै एतस्मात् एतेषाम् एतस्मिन् इत्यादि। अन्वादेश में 'द्वितीया टौस्वेनः' से एन आदेश, एनम्, एनौ इत्यादि होंगे। युस्मद् शब्द सु।

(ङे इति) ङे प्रथमयोरम्। युष्मद् शब्द से पर ङे और प्रथमा द्वितीया को अम् आदेश हो, सु को अम् हुआ।

स्यात्। मपर्यन्तस्य।७।२।९१। इत्यधिक्रियते। युष्मदस्मदोरितीहानुवर्तते। त्वाहौ सौ ७।२।९४। स्पष्टम्। शेषे लोपः।७।२।९०। आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ परतो युष्मदस्मदोरन्त्यस्य लोपः स्यात्। अतो गुणे शेषेलोपे। त्वम् अहम्। स्त्रियां न टाप्। अतो गुणे कृते मपर्यन्ताच्छेषस्य अद् इत्यस्य लोपे अदन्तत्वाभावात्। युवावौ द्विवचने

(मपर्येति) मपर्यन्तस्य। इसका अधिकार है, और युष्मदस्मदोः का भी अधिकार है, तो युष्मद् अस्मद् को जो आदेश होंगे वे मपर्यन्तको होंगे।

(त्वाहाविति) त्वाहौ सौ। अर्थ स्पष्ट है। मपर्यन्त युष्मद् अस्मद् को त्व अह आदेश हों, तो युष्म अस्म को त्व अह क्रम से हो गया। त्व अद् अम्, अह अद् अम् ऐसा स्थित हुआ।

(शेष इति) शेषे लोपः। शेष में अर्थात् आकारादेश की निमित्तभूत जो विभक्तियाँ कही हैं, एवं यकारादेश की निमित्तभूत जो विभक्तियाँ कहीं है उन विभक्तियों के अतिरिक्त विभक्ति के परे—तात्पर्य यह कि आकारादेश यकारादेश जहाँ न हो ऐसी विभक्ति के परे युष्मद् अस्मद् के अन्त्य का लोप हो। 'द्' का लोप। अतोगुणे से पररूप। अभिपूर्वः। त्वम्। अहम्। यदि शेष अद् भाग का लोप करेंगे तो अमिपूर्वः नहीं लगेगा। स्त्रीलिङ्ग में टाप् नहीं होगा क्योंकि युष्मद् अस्मद् का कोई लिङ्ग नहीं है, परन्तु त्वम् स्त्री अहं स्त्री इत्यादि प्रयोग देखने से स्त्रीलिङ्ग है और अलिङ्गे जो कहते हैं वह स्त्रीलिङ्गादि प्रयुक्त कार्यों के न होने से वैसा मानकर कहा है। अतः टाप् प्राप्त है। उसका उत्तर यह है, कि शेषे यह सप्तमी है अतः अन्त्य का लोप नहीं होगा, किन्तु मपर्यन्त से अवशिष्ट अद् भाग का लोप होगा, अतः अदन्त नहीं है इससे टाप् नहीं होगा। त्व अह आदेश को अदन्त मानकर टाप् हो जाय। अन्तरङ्गत्वात् प्रथम अतो गुणे फिर शेषे लोपः। द्विवचन में औ। ङे प्रथमयोरम् से अम्।

(युवावाविति) युवावौ द्विवचने। द्वयोर्वचनम् द्विवचनम्। द्वित्वविशिष्ट अर्थ का वाचक युष्मद् अस्मद् को द्विवचन पद से ग्रहण

।७।२।६२। द्वयोर्वचनं द्विवचनम्। द्वित्वविशिष्टार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ। प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ।७।२।८८। युष्मदस्मदोराकारोऽन्तादेशः स्यात्। औङीत्येव सुवचम्। युवाम्, आवाम्। मपर्यन्ताधिकारात् युवकाभ्यां। यूयवयौ जसि

होगा, किन्तु द्विवचन विभक्ति का ग्रहण नहीं होगा। इसका फल अतियुष्मदादि शब्द में कहेंगे। तो यह अर्थ होगा, कि द्वित्वविशिष्टार्थवाची युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को युव आव आदेश हों, विभक्ति के परे, तो युष्म् को युव अस्म् को आव आदेश हो गया।

(प्रथमेति) प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्। प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन के परे युष्मद् अस्मद् को आकार अन्तादेश हो, भाषा में अर्थात् लोक में। तो अन्त्य द् को आकार हो गया। अवशिष्ट अकार और युव-आव का अतोगुणे से पररूप अकः सवर्णे दीर्घः। अमिपूर्वः से पूर्वरूप। यहाँ टाप् क्यों नहीं होता। अदन्त नहीं है, आदन्त है। मपर्यन्त ग्रहण क्यों है? युवकाभ्याम् में अकच्विशिष्ट को युव आदेश न हो एतदर्थ है। एवम् आवकाभ्याम् में भी जानना। बहुवचन में जस् युस्मद् जस् अस्मद् जस्, ङे प्रथमयोरम् से जस् को अम्। अनेकाल्त्वात् सर्वादेश।

(यूयेति) यूयवयौ जसि। युस्मद् अस्मद् शब्द को जस् के परे यूय वय क्रम से आदेश हो। तो युष्मद् के मपर्यन्त को यूय और अस्मद् के मपर्यन्त को वय आदेश हो गया, अन्तरङ्गत्वात् अतो गुणे

टिप्पणी—भट्टोजिदीक्षित जी ने 'मपर्यन्तस्य किम्' यह प्रश्न करके इसके तीन प्रत्युदाहरण दिये हैं। युवकाम् आवकाम् (१) त्वया मयेति त्व्या म्या इति मा भूत् (२)युवकाभ्याम् आवकाभ्यामिति न सिद्ध्येद्(३) क्रमशः पूर्व पूर्व प्रत्युदाहरणों में परिहार देखते हुए उत्तरोत्तर प्रत्युदाहरण दिये हैं। परिहार इस प्रकार हैं, यदि 'मपर्यन्त' ग्रहण न करते तो युवकाम् आवकाम् में अकच्विशिष्ट को युव आव आदेश होते। निराकरण यह है कि अकच् का नियम है—ओकार सकार भकारादौ सुपि

मपर्यन्तयोरेव

।७।२।९३। यूयम्, वयम्। **त्वमावेकवचने** ।७।२।९७। एकत्वविशिष्टार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ। **द्वितीयायाञ्च** ।७।२।८७। अनयोराकारः स्यात्। त्वाम्। माम्। युवाम् आवाम्। शसो

ने पर रूप। शेषे लोपः से अद्‌भाग का लोप। अज्झीनं परेण संयो-
यम्, यूयम्, वयम्। द्वितीया में द्वितीया एकवचन, युष्मद् अम्,
अस्मद् अम्।

(त्वमाविति) त्वमावेकवचने। एकत्वविशिष्टार्थवाचक युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त भाग को त्व, म, आदेश हों विभक्ति के परे। प्रकृति प्रत्यय का अभेदान्वय होता है अतः एकत्वविशिष्टार्थवाचक युष्मद् अस्मद् हैं उनके मपर्यन्त युष्म् अस्म् को त्व, म, आदेश हो गया। त्व-अद् अम्। म-अद् अम् ऐसा स्थित हुआ।

(द्वितीयेति) द्वितीयायां च। अनयोः–युष्मद् अस्मद् को आकारादेश हो, द्वितीया के परे। तो अलोन्त्यस्य से 'द्' को 'आ' होगा। अतोगुणे, अकः सवर्णे दीर्घः। अमि पूर्वः। त्वाम्। माम्। द्विवचन में पूर्ववत्। युवावौ द्विवचने। प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्। अतोगुणे। अकः सवर्णे दीर्घः। अमिपूर्वः। युवाम्, आवाम्। बहुवचन में शस्, द्वितीयायां च। से युष्मद् अस्मद् को अलोन्त्यस्य से 'द' को आकार। अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ। युष्मा-अस्, अस्मा-अस्।

सर्वनाम्नष्टेः प्राक् अन्यत्र सुबन्तस्य प्राक्। तो युवाम् आवाम् यह सुबन्त सिद्ध हो जाने पर इसकी टि से पूर्व अकच् होगा, अतः ककार का श्रवण होगा एवं युवकाम् आवकाम् को निर्दोष देखकर त्वया मया प्रत्युदाहरण कहा। मपर्यन्त ग्रहणाभाव में 'त्वमावेकवचने' से युष्मद् अस्मद् पूरे को त्व-म, आदेश करने पर त्व-आ, म-आ, इस स्थिति में 'योऽचि' यकारादेश अन्त्य अकार को होगा, तो त्व्या म्या हो जायगा। परिहार–योऽचि के स्थान पर 'अच्ये' पढ़ेंगे। युष्मद् अस्मद् को अचि के परे अन्त्य को एकार हो, तो अकार को एकार करने पर 'एचोऽयवायावः' से अयादेश, त्वया मया सिद्ध हो जायगें, अतः युवकाभ्याम् आवकाभ्याम् दिये।

न ।७।१।२९। स्पष्टम् । आदेः परस्य । युष्मान्, अस्मान् । योऽचि ।७।२।८९। अनयोर्यकारः स्यादनादेशेऽजादौ परतः । त्वया मया । युष्मद्-

---

(शसो इति) शसो न, युष्मद् अस्मद् शब्द से पर जो शस् उस को 'न' आदेश हो । आदेः परस्य से अकार को नकार हो गया। संयोगान्तस्य लोपः से सकार का लोप । युष्मान्, अस्मान् । तृतीया में टा । त्व-मावेकवचने से मपर्यन्त युष्म् को त्व, अस्म को म, अतोगुणे।

(यो चीति) योऽचि । युष्मद् अस्मद् को यकारादेश हो अनादेश

टिप्पणी—यहाँ मकारादि भ्याम् विभक्ति के परे युष्मद् अस्मद् शब्द की टि से पूर्व अकच् होगा, एवम् युष्मकद्-भ्याम्, अस्मकद्-भ्याम् इस स्थिति में तन्मध्यपतित न्याय से अकच् विशिष्ट युष्मद् अस्मद् को युव आव हो जायँगे । तो युवकाभ्याम्, आवकाभ्याम् में अकच् का श्रवण नहीं होगा ।...विभिन्न तीन उदाहरण देकर अरुचि दिखाना छात्रों का समय यापन मात्र ही फल है ।

यूयम् वयम् में शेषे लोपः से अन्त्य दकार का लोप करने पर जसः शी से शी क्यों नहीं होता । 'अङ्गकार्ये कृते पुनर्नाङ्गकार्यम्' अङ्ग कार्य करने के अनन्तर फिर अङ्ग कार्य नहीं होता । शेषे लोपः अङ्ग कार्य करने के अनन्तर शीभाव अङ्ग कार्य नहीं होगा । परन्तु ऐसा मानने से द्वाभ्याम् में त्यदादीनामः से अकारादेश अंग कार्य करने पर सुपि च से दीर्घ अंग कार्य नहीं होगा । निर्देशादि से परिभाषा को अनित्य मानना अनुचित मार्ग है, वस्तुतः 'अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः' इस परिभाषा का तात्पर्य यह है, 'अङ्गाधिकरणे विहिते पुनरङ्गाधिकरणवृत्तौ अविधिः । अतः शीभाव अङ्गाधिकार विहित है परन्तु अङ्गाधिकरणक नहीं है, अतः शीभाव प्राप्त है, अतः ङे प्रथमयोरम् में मकार का प्रश्लेष करके 'अम्म्' मानेंगे मकार का सयोगान्त लोप । प्रश्लेष का फल मान्त एवावशिष्यते, मान्त ही रहेगा अतः शीभाव नहीं होगा । यूयम् । वयम् ।......भट्टोजि दीक्षित का अन्त्य लोप मानकर प्रयास करना छात्रों का समय यापन मात्र है।

स्मदोरनादेशे ।७।२।८६। अनयोराकारः स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ। युवाभ्याम् आवाभ्याम् । युष्माभिः अस्माभिः । तुभ्यमह्यौ ङयि।७।२.९५। स्थम् शेषे लोपः । तुभ्यम् । मह्यम् । आवाभ्याम् । भ्यसोऽभ्यम् ।७।१।३०। युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् । एकवचनस्य च ७ १.३२। आभ्यां पञ्चम्येकवच-

---

अजादि विभक्ति के परे। अनादेश अजादि विभक्ति टा परे है। अलोऽन्त्यस्य से 'द्' को य् हो गया। त्वया, मया। द्विवचन, भ्याम्। युवावौ द्विवचने से युव-आव मपर्यन्त को होंगे। अतोगुणे से पररूप। युवद्भ्याम्, आवद् भ्याम्। इस स्थिति में।

(युष्मदिति) युष्मदस्मदोरनादेशे। इन युष्मद् अस्मद् को आकार हो अनादेश हलादि विभक्ति के परे। 'द्' को आकार। अकः सवर्णे दीर्घः। युवाभ्याम्, आवाभ्याम्। भिस् में, पूर्ववत् 'द' को आ। दीर्घ। युष्माभिः। अस्माभिः। चतुर्थी में ङे। त्वमावेकवचने से त्वत् मत् प्राप्त थे। पूर्वविप्रतिषेध से।

(तुभ्येति) तुभ्यमह्यौ ङयि। मपर्यन्त युष्मद् अस्मद् को क्रम से तुभ्य मह्य आदेश हो। शेषे लोपः। ङे प्रथमयोरम् से ङे को अम्। अमिपूर्वः। तुभ्यम्, मह्यम्। युवाभ्याम्, आवाभ्याम्। पूर्ववत्, बहुवचन में भ्यस्।

(भ्यसो इति) भ्यसोऽभ्यम्। युष्मद् अस्मद् से पर जो भ्यस् उसको अभ्यम् आदेश हो। आदेः परस्य से आदि को प्राप्त था अनेकाल् शित्सर्वस्य पर है अतः अनेकालत्वात् सर्वादेश। शेषे लोपः से अद् का लोप। युष्मभ्यम्, एवम् अस्मभ्यम्। कोई भ्यम् आदेश मानते हैं, और शेषे लोपः में अन्त्य द् का लोप मानते हैं उनके पक्ष में बहुवचने झल्येत् से प्राप्त एत्व का अङ्गकार्ये कृते नाङ्गकार्यम् से निराकरण करते हैं, यह गौरवात् त्याज्य है। यूयम् के टिप्पण पर निराकरण इस पक्ष का है।

पञ्चमी के एकवचन में ङसि। त्वमावेकवचने से मपर्यन्त को त्वत् मत् आदेश पररूप।

नस्य अत् स्यात् । त्वत्, मत् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । पञ्चम्या अत् ।७।१।३१। पञ्चम्या भ्यसोऽत् स्यात् । युष्मत्, अस्मत् । तवममौ ङसि ७।२।९६। मपर्यन्तस्यैतौ स्तः । युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ।७।१।२७। स्पष्टम् । तव, मम । युवयोः । आवयोः । साम आकम् ७।१।३३। युष्माकम्, अस्माकम् । त्वयि, मयि युवयोः, आवयोः । युष्मासु, अस्मासु

(एकेति) एकवचनस्य च । युष्मद् अस्मद् से पर जो पञ्चमी का एकवचन उसे अत् हो, अनेकाल्त्वात् ङसि को अत् । शेषे लोपः । वावसाने । त्वत् त्वद् । मत् मद् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् पूर्ववत् । भ्यस् में । युष्मद् भ्यस्, अस्मद् भ्यस् ।

(पञ्चम्या इति) पञ्चम्या अत् । युष्मद् अस्मद् शब्द से पर जो पञ्चमी का भ्यस् उसको अत् आदेश हो । भ्यस् को अत्, शेषे लोपः से अद् का लोप । युस्मत् (द्) अस्मत् (द्) षष्ठी में ङस् ।

(तवेति) तव ममौ ङसि । मपर्यन्त युष्मद् अस्मद्को तव मम आदेश हों । तो युष्मद् को तव अस्मद् को मम आदेश । अतो गुणे से पररूप ।

(युष्मदिति) युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश । युष्मद् अस्मद् से पर जो ङस् उसको अश् हो, शित्वात्सर्वादेश । शेषे लोपः से अद्का लोप । तव मम । द्विवचन में ओस् । युवावौ द्विवचने से युव, आव आदेश, अतो गुणे । योऽचि, से दकार को यकार । युवयोः आवयोः । बहुवचन में आम् युष्मद्–आम् ।

(साम इति) साम आकम्, युष्मद् अस्मद् शब्द से पर जो साम् उसको आकम् हो । यहाँ साम् कहाँ है ? साम् तो शेषे लोपः से दकार लोप होने के अनन्तर सुट् करने पर होगा । और शेषे लोपः हो नहीं सकता, क्यों कि अनादेश यकारादेश का निमित्त अच् है । फिर भी ससुट् का जो निर्देश है वह आकम् आदेश होने के अनन्तर शेषे लोपः से दकार लोप होने पर सर्वादित्वात् 'आमिसर्वनाम्नः' से प्राप्त सुट् सहित का निर्देश है । अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ, यदि अद् भाग का लोप होगा, तो कुछ नहीं होगा । अङ्भान परेण संयोजितम् । युष्माकम्

त्वाम् अतिक्रान्त इति विग्रहे युष्मच्छब्दस्य त्वामित्यस्य एकत्वविशिष्टार्थवाचित्वात् त्व इत्यादेशः एवं मामतिक्रान्त इति विग्रहे म इत्यादेशः, सुजसङेङस्सु परतः आदेशाः स्युः सदैव ते । त्वाहौ यूयवयौ तुभ्यमह्यौ तवममावपि ।१। एते परत्वाद् बाधन्ते युवावौ विषये स्वके त्वमावपि प्रबाधन्ते पूर्वविप्रतिषेधतः ।२। अतित्वम् अतित्वाम् । अतियूयम् । अतित्वाम् २ अतित्वान् अतित्वया अतित्वाभ्याम्, अतित्वाभिः । अतितुभ्यम् अतित्वाभ्याम् अतित्वभ्यम् । अतित्वत् अतित्वाभ्याम् अतित्वत् । अतितव अतित्वयोः अतित्वाकम् । अतित्वयि । अतित्वयोः । अतित्वासु । एवं मामतिक्रान्तः । अत्यहम् अतिमाम् अतिवयम् । अतिमाम् २ अतिमानित्यादिकं बोध्यम् । युवाम् आवाम् वा अतिक्रान्त इति विग्रहे युष्मदस्मदो द्वित्वविशिष्टार्थवाचित्वात् युवावौ स्तः । सुजसङेङस्सु पूर्ववत् । अत्यहम् अत्यावाम् अतिवयम् । अत्यावाम् २ अत्यावान् । अत्यावया, अत्यावाभ्याम्

कम् । अस्माकम् । सप्तमी में ङि । त्वमावेकवचने से त्व, म, आदेश । अतोगुणे । योऽचि । त्वयि मयि । ओस् में युवावौ द्विवचने' से युव आव । अतोगुणे । योऽचि । युवयोः आवयोः । सुप् में 'युष्मदस्मदोरनादेशे' से द् को आ अकः सवर्णे दीर्घः । युष्मासु, अस्मासु ।

अब उपसर्जन में युष्मद् अस्मद् के रूप साधुत्व का बीज कहते हैं । उपसर्जन में त्वादिक आदेश न हो इस में बहुवचन निर्देश आदि प्रमाण नहीं है । अतः उपसर्जन में भी त्वादिक आदेश होंगे । परंतु एकवचन यह एकत्व विशिष्ट युस्मद् अस्मद् का बोधक है । तात्पर्य यह है, कि एकत्व विशिष्ट युष्मद् अस्मद् हो, विभक्ति कोई भी हो तो त्व-म-आदेश हो जायँगे । एवं युवावौ द्विवचने में द्वित्व विशिष्ट युष्मद् अस्मद् हो विभक्ति कोई भी एकवचन की अथवा बहुवचन की हो तव युव आव आदेश हो जायँगे क्योंकि एकवचन यह एक त्ववाचक युष्मद् अस्मद् का बोधक है विभक्ति का नहीं । अब केवल युष्मद् शब्द का आश्रय लेकर कहते हैं, उसी प्रकार अस्मद् शब्द में कल्पना कर लेना

अत्यावाभिरित्यादि । युष्मानस्मान् वा अतिक्रान्त इति विग्रहे, युष्मदस्मदोर्बहुत्वविशिष्टार्थवाचित्वात् न युवावौ नापि त्वमौ स्तः । सुजस्ङेङस्सु पूर्ववत् । अतित्वम् । अतियुष्माम् अतियूयम् । अतियुष्माम् २ अतियुष्मान् । अतितुभ्यम् अतितव, अतियुष्मयोः । अतियुष्माकम् । इत्यादि । पदस्य ।८।१।१६। पदात् ।८।१।१७ अनुदात्तं सर्वमपादादौ ।८।१।१८ इत्यधिकृत्य । युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ८।१।२०। पदात्परयोरपादादौ स्थितयोरनयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयो-

---

चाहिये । जैसे—त्वाम् अतिक्रान्तौ, यहाँ त्वाम् युष्मद् शब्द का एकवचन है अतः एकत्वसंख्याविशिष्ट युष्मद् शब्द है अतः त्व आदेश एकवचन द्विवचन बहुवचन सब विभक्तियों के परे हो जायगा, प्रकृतिप्रत्यय का अभेद द्विवचन में कैसे होगा ? इन विभक्तियों की प्रकृति अतियुष्मद् है, तो अभेद तो अतियुष्मद् शब्द से होगा । ये त्व-म, युव आव आदेश सब विभक्तियों में होंगे, परन्तु सुजस्–ङे ङस् में तत् तत् आदेश पूर्वविप्रतिषेध से एकत्वविशिष्ट युष्मद् अस्मद् के त्व-म, को, और द्वित्व विशिष्ट युष्मद् अस्मद् के युव आव को परत्वात् जस्–ङे ङस् में तत् तत् आदेश को बाधते हैं । प्रयोग मूल में निर्दिष्ट हैं । अब युष्मद् अस्मद् शब्द के सिद्ध प्रयोगों के षष्ठी चतुर्थी द्वितीया में आदेशों को कहते हैं ।

(पदस्येति) पदस्य, पदात्, अनुदात्तं सर्वमपादादौ । इन तीनों सूत्रों का अधिकार है पदस्य का अपदान्तस्य मूर्धन्यः के पूर्व तक । पदात् का 'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ' के पूर्व तक । और अनुदात्तं सर्वम् अपादादौ इन तीनों पदों का पाद समाप्तितक ।

(युष्मदिति) युष्मदस्मदोः षष्ठी चतुर्थी द्वितीयास्थयोर्वान्नावौ । पद से पर, पाद श्लोक का चरण उस की आदि में स्थित न हो और वे षष्ठी चतुर्थी द्वितीया में स्थित हों अर्थात् उक्त तीन विभक्तियों के सिद्धरूप इन युष्मद् अस्मद् को वाम् नौ आदेश हों, और वे वाम् नौ अनुदात्त हों । उदाहरण आगे दिखाते हैं ।

वांनावित्यादेशौ स्तस्तौ चानुदात्तौ। बहुवचनस्य वस्नसौ ।८।१।२३। पूर्ववत्। तेमयावेकवचनस्य ८।१।२२। स्पष्टम्। त्वामौ द्वितीयायाः ।८।१।२३।

श्रीशस्त्वाऽवतु माऽपीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः ।१।

(बह्विति) बहुवचनस्य वस् नसौ। प्रथम सूत्रवत्। पद से पर अपादादिस्थ षष्ठीचतुर्थी द्वितीयास्थ युष्मत् अस्मद् के उक्त तीनों विभक्तियों के बहुवचन के सिद्ध रूपों को वस् नस् आदेश हों। और वे अनुदात्त हों।

(ते मयाविति) ते मयावेकवचनस्य, पद से पर पादादिस्थ नहीं षष्ठ्यादि विभक्तियों के एकवचन के सिद्ध रूपों को ते मे आदेश हों और वे अनुदात्त हों।

(त्वामाविति) त्वामौ द्वितीयायाः। उक्तविशेषणविशिष्ट द्वितीया के एकवचन को त्वा मा आदेश हों, उदाहरण श्लोकोपनिबद्ध में दिखाते हैं।

श्रीशः त्वा-त्वाम् अवतु। यहाँ अवतु क्रिया के कर्म युष्मद् अस्मद् हैं। अतः कर्मणि द्वितीया से द्वितीया है, श्रीशः इस पद से पर अपादादिस्थ द्वितीया का एकवचन युष्मद् शब्द का त्वाम् है, उसको त्वामौ द्वितीयायाः, से त्व आदेश हो गया, एवम् अस्मद् शब्द के माम् को मा आदेश होगा, माऽपी ह। इह माम् अपि अवतु कर्मत्वात् द्वितीया है।

चतुर्थी के एकवचन का उदाहरण—सः ते मेऽपि शर्म दत्तात्। यहाँ शर्म कल्याण के दान पात्र संप्रदान युष्मद् अस्मद् हैं, अतः चतुर्थी है, उसके एकवचन का तुभ्यम्, मह्यम् रूप है, उक्त विशेषण विशिष्ट है, अतः तुभ्यम् को ते, एवम् मह्यम् को मे आदेश हो गया।

षष्ठी के एकवचन में, स्वामी ते मेऽपि स हरिः। स्वामी के साथ युष्मद् अस्मद् का सम्बन्ध है, अतः 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी है। तव

सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ।
सोऽव्याद् वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः ।२।

स्थग्रहणाच्छ यूमाणविभक्तिकयोरेव। नेह। युष्मत्पुत्रो ब्रवीति।

स्वामी मम स्वामी का स्वामी को पूर्व में पढ़ने से स्वामी ते मेऽपि स हरिः। पद से पर है पाद के आदि में भी नहीं है अतः षष्ठी के एकवचन तव को ते, और मम को में आदेश हो जायगा।

अब द्विवचन में द्वितीयादि विभक्तियों के आदेश कहते हैं। 'पातु वामपि नौ हरिः' यहाँ द्वितीया के द्विवचन कर्म युवाम् आवाम् को वाम्, और नौ आदेश हो गये। युवाम् को वाम्, आवाम् को नौ हुए। चतुर्थी का उदाहरण। 'सुखं वां नौ ददात्वीशः' दानपात्र युष्मद् अस्मद् का द्विवचन है, पूर्ववत् चतुर्थी है। युवाभ्याम् को वाम्, आवाभ्याम् को नौ आदेश हुए। 'पतिर्वामपि नौ हरिः' यहाँ पति के साथ स्वस्वामिभाव में सम्बन्ध में षष्ठी है। युष्मद् शब्द के युवयोः षष्ठ्यन्त द्विवचन को वाम्, एवम् अस्मद् शब्द के षष्ठ्यन्त द्विवचन आवयोः का नौ आदेश होगा।

अब बहुवचन के उदाहरण देते हैं। 'सोऽव्याद्वोनः' पूर्ववत्। अव्यात् क्रिया का कर्म युष्मद् का बहुवचन युष्मान् को वस्, एवम् अस्मद् शब्द का बहुवचन अस्मान् को नस् आदेश होगा। 'शिवं वो नो दद्यात्' यहाँ दान का कर्म शिव कल्याण है, उससे अभिप्रेत युष्मद् शब्द के चतुर्थी बहुवचन युष्मभ्यम् को वस् आदेश। एवम् अस्मद् शब्द के चतुर्थी बहुवचन अस्मभ्यम् को नस् आदेश होगा। षष्ठी बहुवचन में "सेव्योऽत्र वः स नः" यहाँ "कृत्यानां कर्तरि वा" से कर्ता में षष्ठी है। युष्मद् शब्द के षष्ठी बहुवचन युष्माकम् को वस् एवम् अस्मद् शब्द के षष्ठी बहुवचन अस्माकम् को नस् आदेश होगा। सर्वत्र उक्त विशेषण विशिष्ट युष्मद् अस्मद् हैं।

उक्त सूत्र में अर्थात् षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः में जो स्थग्रहण किया है, उसका यह तात्पर्य है कि उक्त विभक्तियों में युष्मद् अस्मद्

समानवाक्ये निघातयुष्मदादेशा वक्तव्याः। एकतिङ्वाक्यम् *। तेनेह न। ओदनं पच, तव भविष्यति। इह तु स्यादेव। शालीनां ते ओदनं दास्यामि। एते वां नावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः।*। धाता ते भक्तोऽस्ति, धाता तव भक्तोऽस्ति वा। अन्वादेशे तु नित्यम्।

स्थित हों तो आदेश होंगे अन्यथा नहीं। जैसे समास होने पर विभक्ति का लुक् हो जाने से विभक्ति में स्थिति नहीं है अतः आदेश नहीं होगा, जैसे युष्मत्पुत्रः, युष्माकं पुत्रः षष्ठी का लुक्। रामः युष्मत्पुत्रः। शिवः मत्पिता में नहीं होगा। विभक्ति में स्थित नहीं है।

(समानेति) समानवाक्ये निघातयुष्मददिशा वक्तव्याः। एक वाक्य होने पर पदात्परत्व होगा, संबद्ध होने पर भी दूसरे वाक्य के पदों से पदात्परत्व नहीं होगा। एक तिङन्त प्रत्यय युक्त वाक्य कहाता है। तो ओदनं पच, तव भविष्यति, यहाँ नहीं होगा क्यों कि 'ओदनं पच' यह भिन्न वाक्य हैं, और 'तव भविष्यति' यह भिन्न है, यहाँ तव को ते आदेश नहीं होगा क्योंकि पद से पर नहीं है, और ओदनं पच भिन्न वाक्य है, एक वाक्य न होने से ओदनं पच इन पदों का ग्रहण नहीं होगा, और जहाँ एक वाक्य होगा वहाँ युष्मदादेश हो जायँगे। जैसे 'शालीनां ते ओदनं दास्यामि' यहाँ शालीनां से पर 'तुभ्यम्' को ते आदेश हो गया।

(एते इति) 'एते वां नौ आदय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः' ये वां नौ इत्यादि आदि पद से 'ते मे त्वा मा वस् नस् का ग्रहण है', आदेश अनन्वादेश में विकल्प से हो, परिशेषात् सिद्ध है, कि अन्वादेश में नित्य हों', उदाहरण, धाता ते भक्तः होगा, और धाता तव भक्तः भी होगा। अन्वादेश—जैसे–योऽग्नहंव्यग्राट्, तस्मै ते नमः। यहाँ तस्मै से पर तुभ्यम् है और अन्वादेश होने से 'तस्मै ते नमः' यही होगा, 'तस्मै तुभ्यं नमः' नही होगा। अन्वादेश का स्वरूप—"किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं बोधयितुं पुनरुपादानमन्वादेशः" कह सकते हैं।

तस्मै ते नम इत्येव । **न चवाहाहैवयुक्ते** ।८।१।२४ एषां योगे नैते आदेशाः स्युः । हरिस्त्वां मां च रक्षतु । कथं त्वां मां वा न रक्षेदित्यादि । **पश्यार्थैश्चानालोचने**।१।८।२५। अचाक्षुषज्ञानार्थैर्धातुभिर्योगे नैते आदेशाः स्युः । चेतसा त्वां समीक्षते । परंपरासंबन्धेऽप्ययं निषेधः। भक्तस्तव रूपं ध्यायति । **सपूर्वायाःप्रथमाया विभाषा**।८।१।२६। अन्वा-

---

(न चेति) न चवाहाहैव युक्ते । च-वा-हा-अह-एव, इनसे युष्मद् अस्मद् का योग होने पर, ये, ते-मे-त्वा-मा, इत्यादि आदेश नहीं होंगे। जैसे–'हरिः त्वां मां च रक्षतु' यहाँ रक्षतु क्रिया का कर्म त्वां मां है, और इन दोनों का समुच्चायक च से योग है, अतः त्वा मा आदेश नहीं हुआ । कथं त्वां मां वा न रक्षेत् , यहाँ वा से योग है । युक्त ग्रहण से परंपरा सम्बन्ध से योग होने पर निषेध नहीं होगा। जैसे–हरो हरिश्च मे स्वामी, यहाँ चकार हरि हर का समुच्चायक हैं, और वे स्वामी के विशेषण हैं, और स्वामी ते–तव, से संबन्ध है इस प्रकार तव से परंपरा से सम्बन्ध है, अतः निषेध नहीं होगा ।

(पश्यार्थैरिति) 'पश्यार्थैश्चानालोचने' पश्य–दृश-का निपातन आदि से सिद्ध है, आलोचन–चाक्षुष ज्ञान, न आलोचनम् अनालोचनम् तस्मिन् अनालोचने, ज्ञानातिरिक्त अर्थात् पश्यार्थक सामान्य ज्ञानार्थक धातु से योग रहते, ये ते मे इत्यादि आदेश न हों। जैसे–'चेतसा त्वां समीक्षते' यहाँ चित्त से ईक्षण है, अतः अचाक्षुष ज्ञानार्थक है इसलिये त्वां को त्वा नहीं होगा । यह निषेध परंपरा सम्बन्ध में भी होगा, क्योंकि साक्षात् सम्बन्ध का सूचक युक्तादि पद नहीं है । अतः भक्तः तवरूपं ध्यायति । यहाँ तव का रूप के साथ और रूप का ध्यायति से है, तव का ध्यायति से सम्बन्ध रूप के द्वारा है, अतः परंपरा से सम्बन्ध होने पर भी तव को ते नहीं हुआ ।

(सपूर्वेति) सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा । अनन्वादेश में वैकल्पिक आदेश सिद्ध थे अन्वादेशार्थ सूत्र है । पूर्वेण सहितायाः प्रथमायाः अर्थात् प्रथमान्त को पूर्व में विद्यमान रहने पर ये आदेश विकल्प से

देशार्थमिदम्। भक्तस्त्वमप्यहं तेन हरिस्त्वां त्रायते स माम्। त्वामेति वा। **सामन्त्रितम्** ।२।३।४८। संबोधने या प्रथमा तदन्तमामन्त्रितसंज्ञं स्यात्। **आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्** ।८।१।७२। स्पष्टम्। अग्ने तव। देवास्मान् पाहि। सर्वदा रक्ष देव नः, इत्यत्र देवेत्यस्याविद्यमानवद्भावेऽपि ततः पूर्वं रक्षेत्येतदाश्रित्यादेशः। **नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्** ।८।१।७३। सामान्यवचनं विशेष्यमित्यर्थः। हरे दयालो

हो। जैसे–भक्तस्त्वम् अपि अहम् अपि। तेन स हरिः त्वाम् त्रायते, मां त्रायते। यहाँ भक्तत्व का पूर्व वाक्य से विधान है, पुनः द्वितीय वाक्य से त्राण के लिये ग्रहण है, अतः अन्वादेश है। हरिः प्रथमान्त पूर्व में है, इससे त्वम्, और त्वा, एवम् माम् मा दोनों होंगे।

(साममिति) 'सामन्त्रितम्' सा-सम्बोधन में जो प्रथमा है तदन्त आमन्त्रित संज्ञक हो।

(आमन्त्रितमिति) आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्। स्पष्ट है। आमन्त्रित–सम्बोधन का प्रथमान्त पूर्व में हो तो वह अविद्यमानवत्। अविद्यमानवत् होने से पद से पर नहीं होगा तो ते में इत्यादि आदेश नहीं होंगे। जैसे अग्ने। तव; अग्ने यह सम्बोधन की प्रथमा है अतः आमन्त्रित है और आमन्त्रित होने से अविद्यमानवत् हो जायगा, अविद्यमानवत् होने से पद से पर नहीं है। एवम् देव! अस्मान् पाहि यहाँ अस्मान् को नस् आदेश नहीं होगा। क्योंकि देव यह अविद्यमानवत् है अतः पद से पर नहीं है। यदि सम्बोधन से अन्य भी पूर्व पद होगा तो सम्बोधन की अविद्यमानता होते हुए अन्य पद के पूर्व में विद्यमान होने से उसको मानकर आदेश हो जायगा। जैसे–'सर्वदा रक्ष देव! नः' यहाँ देव पद के अविद्यमान होने पर भी रक्ष पद को मानकर आदेश हो जायगा।

(नामन्त्रिते इति) नामन्त्रिते समानाधिकरणे समान्यवचनम्। विशेषण की अपेक्षा विशेष्य सामान्य होता है, तो यह अर्थ होगा। समानाधिकरण विशेषण आमन्त्रित सामने पर विशेष्य अविद्यमान

नः पाहि। विभाषितं विशेष्यवचने ।८।१।७४। बहुवचन एवेति भाष्यम्। बहुवचनान्तं विशेष्यं समानाधिकरणे आमन्त्रिते विशेषणे परे अविद्यमानवद्वा। इहान्वादेशेऽपि वैकल्पिका आदेशाः यूयं प्रभवः देवाः शरण्याः। युष्मान्भजे, वो भजे इति वा। सुपात् सुपाद् सुपादौ सुपादः। पादः पत् ।६।४।१३०। पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस

वत् न होय। जैसे हरे! दयालो! नः पाहिं। यहाँ विशेषण दयालो! यह सम्बोधन पर है अतः विशेष्य हरे! यह अविद्यमानवत् नहीं होगा, तो हरे इस पद से परे अस्मान् को नस् आदेश हो जायगा। दयालो यह अविद्यमान वत् होगा उसको मानकर आदेश नहीं होगा।

(विभाषितमिति) विभाषितं विशेषवचने। भाष्यकार कहते हैं यह वैकल्पिक अविद्यमानवद्भाव बहुवचन में ही होता है, तो यह अर्थ होगा, समानाधिकरण आमन्त्रित विशेषण पर रहने पर बहुवचनान्त विशेष्य विकल्प से अविद्यमानवद् हो। यह वैकल्पिक अविद्यमानवद्भाव अन्वादेश में भी होगा। जैसे-यूयं प्रभवः! देवाः! शरण्याः, यहाँ शरण्याः इसके लिये प्रथम उपात्त है, पुनः भजन के लिये उपादान है, अतः अन्वादेश है। प्रभवः देवाः! बहुवचन विशेषण पर है अतः विशेष्य यूयम् का विकल्प से अविद्यमानवद्भाव होगा, तो युष्मान् भजे, अविद्यमानवद्भाव में। पक्ष में वस् आदेश हो जायगा, जब अविद्यमानवद् भाव नहीं होगा तब वो भजे।

शोभनौ पादौ यस्य सः, 'संख्या सुपूर्वस्य', पाद शब्द के अकार का लोप। सुपाद् शब्द है हल्ङ्यादि लोप। वावसाने। सुपात् सुपाद् सुपादौ सुपादः। सुपाद् शस् इतिस्थिते।

(पाद इति) पादः पत्। पाद् शब्दान्त भसंज्ञक जो अङ्ग तदवयव पाद् शब्द को पद् आदेश हो। यचिभम् से भसंज्ञा है, अतः तदवयव पाद को पद् आदेश हो गया। सुपदः। टा-में, सुपदा सुपाद्भ्याम् इत्यादि। प्रपूर्वक अञ्चधातु से ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च' से क्विन्

पूर्ववत् क्विनका-लोप, प्रातिपदिक संज्ञा, प्राञ्चसु स्थित हुआ।

पदादेशः सुपदा सुपद्भ्यामित्यादि। अञ्चेः सुप्युपपदे ऋत्विगित्यादिना क्विन्। अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति।६।४।२४। नस्य लोपः स्यात्। अन्यत्स्पष्टम्। उगिदचामिति नुम्। संयोगान्तलोपः। नुमो नकारस्य क्विन्प्रत्ययस्य कुरिति ङकारः। प्राङ्। अनुस्वारपरसवर्णौ। प्राञ्चः। अचः।६।४।१३२। लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य लोपः स्यात्। चौ ॥६।३।१३८। अवशिष्टचकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः स्यात्। प्राचः

(अनिदिति) अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति।' अनिदित् अर्थात् इकार जिन के इत् नहीं हलन्त अङ्ग संज्ञक धातुकी उपधाभूत नकार का लोप हो, कित् ङित् के परे, तो यहाँ क्विन् प्रत्यय हुआ है, अतः कित् परे है, नकार का लोप होगया। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से अच के मिदचोऽन्त्यात्परः से प्रके पर हुआ। उकार नकार इत्। हल्ङ्याब्भ्यो से सुलोप। संयोगान्तस्य लोपः से चलोप, संयोगान्तस्य लोपः की दृष्टि में अनुस्वार विधायक असिद्ध है। अतः चलोप। क्विन् प्रत्ययस्य कुः से सानुनासिक नकार को सानुनासिक ङ्-कार हो गया। प्राङ्औ इत्यादि में नुम्, नश्चापदान्तस्य झलि। अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः। प्राञ्चौ प्राञ्चः। इत्यादि, शसादि अजादि में यचि भम् से भसंज्ञा।

(अच इति) अञ्च धातु है लुप्तनकारक अचः का प्रयोग किया है, अतः यह अर्थ होगा। लुप्त नकारक भसंज्ञक अच् धातु के अकार का लोप हो गया।

(चाविति) चौ। जिसके अकार नकार का लोप हो गया, अर्थात् अवशिष्ट चकारमात्र अञ्चधातु के परे पूर्वअण् को दीर्घ हो, तो प्रके अकार को दीर्घ हो गया। प्राचः, प्राचा। यद्यपि प्र-अच् सवर्ण दीर्घ से प्राचः प्राचा, इत्यादि सिद्ध थे, परंतु प्रतीचः समीचः, इत्यादि के लिये दोनों सूत्र आवश्यक हैं, पर्जन्यवत् यहाँ भी लगेगा। प्रत्यञ्च शब्द है। अनिदितां से न लोप। पूर्ववत्, हल्ङ्यादि लोप, संयोगान्त लोप क्विन् प्रत्ययस्य कुः, प्रत्यङ्। औ इत्यादि सर्वनामस्थान में नुम्, अनु-

प्राचा प्राग्भ्यामित्यादि। प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ प्रत्यञ्चः। प्रतीचः अकृतव्यूहा इति स्थिते। **विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये** ।६।३।९२। विष्वग्देवयोः सर्वनाम्नश्च टेरद्र्यादेशः स्यात् अप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परतः अञ्चूइति स्थिते। यण्। **अदसोऽसेर्दादुदो मः** ।८।२।८०। असान्तस्यादसो

स्वार परसवर्ण, प्रत्यञ्चः इत्यादि। शसादि अजादि में भसंज्ञा। प्रति-अच् शस्। अचः से अकार लोप। प्रतिकी इकार को यण् अल्लोप से पूर्व क्यों नहीं होता? 'अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः। न कृतः व्यूहः विशेषेण ऊहः यैस्ते' अर्थात् "निमित्तं विनाशोन्मुखं दृष्ट्वा तत्प्रयुक्तं कार्यं न कुर्वन्ति।" यद्यपि अन्तरङ्गत्यात् यण् प्राप्त था, परन्तु यण् का निमित्त अकार का अचः से लोप होने से विनाशोन्मुख देखकर तन्निमित्तक यण् नहीं होगा। तो चौ से इकार को दीर्घ। प्रतीचा। प्रत्यग्भ्याम्, में चोः कुः से कुत्व, क्योंकि क्विन् प्रत्ययस्य कुः इसकी अपेक्षा असिद्ध है। एवं प्रत्यग्भिः इत्यादि। अमुम् अञ्चति इस विग्रह में, अञ्च् से क्विन् प्रत्यय, समास, विभक्ति लोप, अदस् अञ्च्, अनिदितां से नलोप। अदस् अच् सु इस स्थिति में।

(विश्वगिति) 'विश्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये।' विश्वक्, देव और चकार से सर्वनाम की जो टि है उसे अद्रि आदेश हो अप्रत्ययान्त अश्रूयमाण प्रत्यय अर्थात् क्विन्वादिक प्रत्यय जिसमें विद्यमान न हो ऐसे अञ्चधातु के परे। तो यहाँ क्विन् का सर्वापहारी लोप हो गया है। ऐसा अञ्च धातु परे है, तो अदस् सर्वनाम की टि अस् है, उसको अद्रि हो गया। अदद्रि अच् सु हुआ, इकोयणचि से यण्।

(अदस इति) अदसोऽसेर्दादुदो मः। असेः अदसः। असान्त

टिप्पणी—यद्यपि प्रति अच्, शस्, इत्यादि में अन्तरङ्गत्वात् यण् प्राप्त है, इसलिये "अकृतव्यूहा" परिभाषासे यण् का निषेध है। वस्तुतः 'चौ' सूत्रारम्भसामर्थ्य से यण् नहीं होगा, क्यों कि यदि यण् हो जाय, तो दीर्घ किस किसको होगा। प्राचः यह सवर्ण दीर्घ से सिद्ध हो जायगा। 'वार्णादाङ्गं बलीयः' अनित्य है अतः प्राचः सिद्ध हो जायगा।

दासरस्य उदूतौ स्तो दस्य मश्च । उ इति ह्रस्वव्यञ्जनयोर्ह्रस्व उकारः, दीर्घस्य च दीर्घ ऊकारः अमुमुयङ्, अमुमुयञ्चौ, अमुमुयञ्चः । उत्वस्या-

अदस् शब्द के 'द' से पर जो वर्ण है उसे ह्रस्व दीर्घ उकार-ऊकार हो और 'द' को 'म' हो । उ से दोनों उकार का ग्रहण है उश्च ऊश्च अनयोः समाहारः । (उ इति) आन्तरतम्य से अर्धमात्रिक व्यञ्जन को एकमात्रिक ह्रस्व उकार होगा, और ह्रस्व अकारादि को ह्रस्व उकार दीर्घ को दीर्घ ऊकार । तो अदद्रि अच् सु है, द से पर अकार को उकार, 'द' को 'म' और लक्ष्यभेद से पुनः प्रवृत्ति होने से 'द्रि' के 'द' से पर रेफ को ह्रस्व उकार । और 'द' को 'म' आदेश । तो अमुमु इ अच् । इको यणचि से यण्, नुम्, हल्ङ्यादि लोप । संयोगान्त लोप, क्विन् प्रत्ययस्य कुः से ङकार । अमुमुयङ् । नुम् अनुस्वार परसवर्ण, अमुमुयञ्चौ, अमुमुयञ्चः इत्यादि । उकार मकार पूर्ववत् । अमुमु इ अच्शस् । भसंज्ञा अचः से अकार का लोप, चौ से इकार को दीर्घ अमुमुईचः अमुमुईचा इत्यादि । इको यणचि से 'मु' के उकार को यण् क्यों नहीं होता अच् में ईकार परे है । 'पूर्वत्रासिद्धम्' से इको यणचि की दृष्टि में अदद्रि के रेफ को उत्पन्न उकार असिद्ध है, वह रेफ ही देखता है, इससे यण् नहीं होगा किसी-किसी का मत कि अदसोऽसेर्दादु दो मः में अदसः यह अवयव षष्ठी नहीं है, किन्तु स्थानषष्ठी है, अलोन्त्यस्य से अन्त उपस्थित होगा । तो यह अर्थ

टिप्पणी—यद्यपि सवर्णग्राहकता अविधीयमान अण की है, क्योंकि अप्रत्ययः पठित है । परन्तु उकार के विधीयमान को भी सवर्ण ग्राहकता है, 'भाव्यमानोऽप्युकारः सवर्णान् गृह्णाति' भाव्यमान उकार सवर्णों का ग्रहण करता है । यदि यह नहीं मानेंगे तो अदसो मात् सूत्र व्यर्थ हो जायगा । क्योंकि–उकार की सवर्णग्राहकता होगा नहीं तो दीर्घ ऊकार आदेश नहीं होगा, अतः अदसो मात् व्यर्थ हो जायगा, इसलिये उसके सामर्थ्य से जानते हैं, भाव्यमान उकार सवर्ण ग्राहक है । अतः अमो अमून् इत्यादि सिद्ध होंगे ।

सिद्धत्वान्न यण् । अमुमुईचः । अमुमुईचा । अदस इति स्थानषष्ठीमाह। ततश्च दात्परस्य अदसोऽन्त्यस्येत्यर्थे । अन्त्यबाधेऽन्त्यसदेशस्यैवेति परिभाषया परस्यैव मुत्वम् । अदमुयङ् । अः सेः—सकारस्य स्थाने यस्य सः असिरिति व्याख्यानात् त्यदाद्यत्वविषय एव मुत्वं नान्यत्रेति पक्षे अदद्र्यङ् उक्तं च । अदसो ऽद्रेः पृथङ्मुत्वं केचिदिच्छन्ति लत्ववत् । केचिदन्त्यसदेशस्य नेत्येकेऽसेर्हि दृश्यते । इति । उदङ् उदञ्चः । शसादावचि।

उद ईत् ।६।४।१३९। उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य

होगा । असन्त अदस् शब्द के अन्त्य–द से परे उसे उकार हो और 'द' को 'म' हो । तो 'अदद्रि' में 'द' से पर जो रेफ् है, वह अन्त्य नहीं है, और जो अन्त्य इकार है वह 'द' से पर नहीं है, तो अन्त्य बाधे अन्त्यसदेशस्यैव' अन्त्य का बाध होने पर अन्त्य के समीप वर्ण को ही होगा, अन्य को नहीं । तो अदद्रि में अन्त्य इकार का दात् पर न होने से बाध है अतः अन्त्य इकार के समीप जो रेफ् है उसी को होगा, अन्य प्रथम दकार को मत्व और तद्गत अकार को उकार नहीं होगा, उनके मत से अदमुयङ् अदमुयञ्चौ अदमुयञ्चः । अदमुईचः, इत्यादि होंगे । साधुत्वपूर्ववत् ।

अन्य आचार्यों का मत है, कि—'असेः' अः सेः सकारस्य स्थाने यस्य सः असिः, तस्य असेः । जिस अदस् शब्द के सकार के स्थान में अकार हुआ हो वहाँ यह सूत्र लगेगा, यहाँ नहीं, उनके मत से अदद्र्यङ् । साधुत्व पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार है । 'तीनों मतों का सार यह है। 'अदसो, द्रेः पृथङ्मुत्वम्' चलीक्लृप्यते के समान। अन्य व्याख्यात है।

उद्अञ्चति क्विन् , क्विन् का पूर्वोक्तवत् लोप, उदञ्च् सु । नलोप, नुम् , हल्ङ्यादि लोप, संयोगान्त लोप । क्विन् प्रत्ययस्य कुः । उदङ्। नुम् अनुस्वार, परसवर्ण, उदञ्चौ, उदञ्च इत्यादि । उदञ्च-शस् । न लोप । भसंज्ञा । अचः प्राप्त था ।

(उद इति) उद ईत् । उत् शब्द से पर, लुप्त नकार भसंज्ञ अञ्च शब्द के अकार को ईकार हो, ईकार हो गया । उदीचः उदीचा।

चोः कुः । उदग्भ्याम् इत्यादि । सम्यञ्चु ।

इत्यात् । उदीचः । उदीचा, उदग्भ्यामित्यादि । **समः समि** ।६।३।६३। अप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे । सम्यङ् सम्यञ्चौ, सम्यञ्चः समीचा । **सहस्य सध्रिः** ।६।३।६५। सध्र्यङ् । **तिरसस्तिर्यलोपे** ।६।३।६४। स्पष्टम् । तिर्यङ्, तिर्यञ्चौ तिर्यञ्चः । तिरश्चः, तिरश्चा । तिर्यग्भ्यामित्यादि । **नाञ्चेः पूजायाम्** ।६ । ३ । ३० । पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न स्यात् । अचामित्युक्तेर्लुप्तनकारस्यैवाञ्चतेर्ग्रहणम् । पूजायामलुप्तनकारत्वान्न नुम् । प्राङ् प्राञ्चौ प्राञ्चः । नलोपाभावादकारलोपो न प्राञ्चः । प्राङ्भ्याम् ।

(सम इति) समः समि । सम् को समि आदेश हो, अविद्यमान प्रत्यय अञ्च के परे । इको यणचि से यण् । साधुत्व पूर्ववत् । सम्यङ् सम्यञ्चौ, शस् में अचः । चौ । समीचः, इत्यादि ।

(सहेति) सहस्य सध्रिः । अविद्यमान प्रत्यय अञ्च के परे सह को सध्रि आदेश हो । यण् । सध्र्यङ्, सध्र्यञ्चौ । शसादि अच में, अचः, चौ, सध्रीचः । सध्रीचा । इत्यादि ।

(तिरस इति) तिरसस्तिर्यलोपे । अलोप-लोप रहित अर्थात् जहाँ अचः से अकार लोप न हुआ हो, भसंज्ञक रहित अञ्च के परे तिरस को तिरि आदेश हो, तो सर्वनामस्थान और हलादि के परे तिरि आदेश हो जायगा, यण्, अन्य कार्य पूर्ववत् । तिर्यङ् तिर्यञ्चौ-तिर्यञ्चः । शस् में अचः । स्तोः श्चुनाश्चुः । तिरश्चः । तिरश्चा । भ्याम् के परे, तिरि आदेश, यण् । चोः कुः । तिर्यग्भ्याम् । इत्यादि ।

(नाञ्चेरिति) नाञ्चेः पूजायाम् । पूजा अर्थ में अञ्च धातु के उपधाभूत नकार का लोप न हो । प्राञ्च्सु । अनिदितां से न लोप प्राप्त था, पूजा अर्थ में निषेध हो गया । हल्ङ्यादि लोप । क्विन् प्रत्ययस्य कुः । प्राङ् प्रअञ्च, अञ्चधातु के स्वाभाविक नकार को अनुस्वार परसवर्ण । प्राञ्चौ, प्राञ्चः । यहां 'उगिदचाम्' से नुम् क्यों नहीं होता ? 'उगिदचां' में अचां यह लुप्त नकारक का निर्देश है, अतः लुप्त नकारवाली गत्यर्थक अच् धातु के नुम् होगा, पूजाअर्थ में नहीं । प्राञ्चः । प्राञ्चा । अचः से अल्लोप नहीं होगा क्योंकि लुप्तनकार नहीं है । प्राङ्भ्याम्, संयोगा-

प्राङ्क्षु, प्राङ्ख्षु प्राङ्षु। एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः। क्रुञ्चेति नकारोपधः। नकारोपधत्वे, नलोपाभावो निपातनात्। क्रुङ् क्रुञ्चौ क्रुञ्चः। क्रुङ्भ्यामित्यादि। चोः कुः। पयोमुक्-पयोमुग्। व्रश्चेति षत्वम्। स्कोरिति सलोपः। जश्त्वचर्त्वे। सुवृट् सुवृड्। सुवृश्चौ, सुवृश्चः। सुवृट्सु, सुवृट्त्सु। वर्तमाने पृषन्महद्बृहद्जगच्छतृवच्च। स्पष्टम्। उगित्वान्नुम्। सान्तमहत इति दीर्घः। महान्, महान्तौ, महान्तः। महद्भ्यामित्यादि।

न्तस्य लोपः। चोः कुः। एवं प्राङ्भिः। सुप् के परे। 'ङ्णोः कुक्टुक् शरि' से कुक्। उकार ककार इत्। 'चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्' से पौष्करसादि के मतसे ककार को ख्। तीनों प्रयोगों में आदेशप्रत्यययोः से सकार को मूर्धन्य। प्राङ्ख्षु, प्राङ्क्षु प्राङ्षु। इसी प्रकार पूजा अर्थ में प्रत्यञ्च शब्द के रूप जानना। प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ प्रत्यञ्चः प्रत्यञ्चा प्रत्यङ्भ्याम् इत्यादि। क्रुञ्च 'ऋत्विग्दधृक्०' से क्विन् प्रत्यय। 'अनिदिताम्' से उपधास्थ नकार का लोप प्राप्त था उक्त सूत्र से न लोपाभाव भी निपातनात् जानना। भाष्यकार का मत है, क्रुञ्च में नकार जन्य ञकार नहीं है किन्तु स्वाभाविक ञकार ही है, अतः न लोप का प्रसंग ही नहीं है। क्रुञ्च् स्। हल्ङ्यादि लोप। संयोगान्त लोप, क्विन् प्रत्ययस्य कुः, ञकार को ङकार। क्रुङ्। क्रुञ्चौ क्रुञ्चः। क्रुञ्चा क्रुङ्भ्याम्, चोः कुः से कुत्व। पयोमुच् सु। हल्ङ्यादि लोप। चोः कुः। झलांजशोऽन्ते। वावसाने। पयोमुक्, पयोमुग् पयोमुचौ पयोमुचः, व्रश्च धातु से क्विप्। क्विप् का लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, इकार उच्चारणार्थः। वेरपृक्तस्य एवं सर्वापहारी लोप। ग्रहिज्या से संप्रसारण। सुवृश्च् स्। हलङ्याभ्यो से सु के सकार का लोप। व्रस्च् धातु है, स्तोः श्चुनाश्चुः से शकार है, श्चुत्व विधायक असिद्ध है, अतः श्चुत्व से पूर्व 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' सलोप। व्रश्चभ्रस्ज सृज मृज से चकार को षकार, झलांजशोऽन्ते, वावसाने। सुवृट्, सुवृड्। सुवृश्चौ सुवृश्चः, सुप् में, व्रश्चभ्रस्ज० से ष, झलांजशोऽन्ते से ड्। डः सि धुट्। जश्च। खरि च। सुवृट्त्सु सुवृट्सु। 'नपदान्ता

अत्वसन्तस्य चाधातोः। ६।४।१४। अत्वन्तस्य धातुभिन्नासन्तस्य चोपधाया दीर्घः स्यादसंबुद्धौ सौ परे। आदौ दीर्घः। ततो नुम्। धीमान् धीमन्तौ धीमन्तः। धीमद्भ्यामित्यादि। भातेर्डवतुः। भवान् भवन्तौ भवन्तः। शत्रन्तस्य अत्वन्तत्वाभावान्न दीर्घः। भवन्। उभे अभ्यस्तम् ।६।१।५। षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे

टोरनाम्' से ष्टुत्व निषेध। महत् शब्द सु। वर्तमाने पृषन्महद् बृहद्० इससे शतृवत् भाव, शतृवद्भाव होने से नुम्, सान्तमहतः संयोगस्य से दीर्घ। हल्ङ्यादिलोप संयोगान्त तकार का लोप। महान्। संयोगान्त लोप असिद्ध है इससे नलोप नहीं होगा। महान् महान्तौ, नुम् दीर्घ अनुस्वार परसवर्ण, महान्तः। भ्याम् झलां जशोऽन्ते, महद्भ्याम् इत्यादि। मतु प्रत्ययान्त धीमत् शब्द है सुप्रत्यय।

(अत्विति) अत्वसन्तस्य चाधातोः। अत्वन्त-अतुप्रत्ययान्त, और धातुभिन्न असन्त की उपधा को दीर्घ हो, संबुद्धि भिन्न सु के परे। यहाँ अत्वन्त के अकार को दीर्घ हो गया। 'तदनन्तर उगिदचाम्' से नुम्। हल्ङ्यादि लोप। संयोगान्त लोप। धीमान्। संयोगान्त लोप असिद्ध है अतः नलोप नहीं होगा, धीमन्तौ। नुम् अनुस्वार परसवर्ण। धीमद्भ्याम् झलां जशोऽन्ते। भा धातु औणादिक भातेर्डवतुः डित्वादभस्यापि टेर्लोपः। भवत् अत्वन्त है, अतः अत्वसन्तस्य लोप असिद्ध है इससे न लोप नहीं होगा, भवन्तौ भवन्तः। नुम् अनुस्वार परसवर्ण। भवता भवद्भ्याम्। झलां जशोऽन्ते। भवद्भिः इत्यादि।

भूधातु से शतृ प्रत्ययान्त भवत् का सु के परे भवन् होगा, अन्य भवन्तौ भवन्तः इत्यादि पूर्ववत् होंगे। दाधातु शतृ प्रत्ययान्त ददत् ददत् सु उगित्वात् नुम् प्राप्त।

(उभे इति) उभे अभ्यस्तम्। षाष्ठ द्वित्व प्रकरण में अर्थात् छठे अध्याय के द्वित्त्व प्रकरण में जो द्वित्व हुए हैं, वे दोनों अभ्यस्त संज्ञक होते हैं। अभ्यस्त संज्ञक होने से।

स्तः। **नाभ्यस्ताच्छतुः** ।७।१।७८। नुम् न स्यात्। ददत्, ददद्, ददतौ, ददतः। **जक्षित्यादयः षट्** ।६।१।६। जक्षितेः पराः षट् सप्तमो जक्षितिश्च एते अभ्यस्तसंज्ञाः स्युः। जक्षत् जक्षद् जक्षतौ जक्षतः। जक्षजागृदरिद्राश्च दीधीवेव्यौ च छान्दसौ। चकास्शास्ती सप्तैते जक्षादय उदाहृताः। एवं जाग्रत्, दरिद्रत्, चकासत्, शासदित्यादि। गुप् गुब् गुपौ गुपः इत्यादि। **त्यदादिषु दृशो ऽनालोचने कञ्च** ।३।२।६०। त्यदादिषूपपदेष्वज्ञानार्थाद् दृशेः कञ् स्यात्, चात् क्विन्। **आ सर्वनाम्नः** ।६।३।६१। अस्याऽऽत्वं स्यात्, दृग्दृश्वतुषु। कुत्सित्या-

---

(नाभ्यस्तेति) अभ्यस्त संज्ञक से पर जो शतृ प्रत्यय उससे नुम् नहीं होगा। तो नुम् नहीं हुआ। हल्ङ्यादि लोप झलां जशोऽन्ते वावसाने जश्त्व, चर्त्व, ददत् ददद् ददतौ ददतः। इत्यादि।

(जक्षितीति) जक्षित्यादयः षट्। जक्षिति और अन्य तदादि छः। एवं ये सात धातु अभ्यस्त संज्ञक हों। अभ्यस्त संज्ञा होने से 'नाभ्यस्ताच्छतुः' से नुम् का निषेध हो जायगा। जक्षत् जक्षद्। जक्षतौ, जक्षतः इत्यादि ददत् वत् होंगे। जक्षित्यादिक सात कौन हैं, वे कहते है। (१) जक्ष (२) जागृ (३) दरिद्रा (४) वैदिक-दोधी, (५) वेवी (६) चकास् (७) शास् ये सात जक्षादिक हैं, इनको नुम् नहीं होगा। पकारान्त गुप् शब्द है। सु उसका लोप। जश्त्व, चर्त्व। गुप् गुब् गुपौ गुपः। झलां जशोऽन्ते। गुब्भ्याम्। इत्यादि। स इव अयं पश्यति ज्ञानविषयो भवति। विभक्ति लोपादि। तद्दृश् इस अवस्था में।

(त्यदादिष्विति) त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च। आलोचन-सामान्य ज्ञान। अनालोचन-अज्ञान। तो यह अर्थ होगा, त्यदादिकों को उपपद रहते अज्ञान अर्थ में विद्यमान, अर्थात् अज्ञानार्थक दृश् से कञ् प्रत्यय हो, और चकार से क्विन्। क्विन् का लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, वेरपृक्तस्य से सर्वापहारी लोप हो जायगा। इकार उच्चारणार्थक।

(आसर्वेति) आ सर्वनाम्नः। अस्य इस सर्वनाम को आकार आदेश हो दृ(श्)ग्-दृश और वतु प्रत्यय के परे। 'अलोऽन्त्यस्य' से ह को

सिद्धत्वाद् वृश्चेति षः तस्य जश्त्वेन डः। तस्य कुत्वेन गः। तस्य चर्त्वेन कः। तादृक् तादृग् तादृशौ तादृशः। व्रश्चेति षत्वम् जश्त्वचर्त्वे विट् विड्। विशौ विशः। **नशेर्वा** ।८।२।६३। पदान्ते वा कुत्वम्। नक् नग् नट् नड्। नशौ नशः नग्भ्याम् नड्भ्यामित्यादि। **स्पृशोऽनुदके क्विन्** ।३।२।५८। स्पष्टम्। घृतस्पृक् घृतस्पृग्। क्विन्प्रत्ययो यस्मादिति बहुव्रीह्याश्रयणात् क्विप्यपि कुत्वम् षडगकाः प्राग्वत्। स्पृक् स्पृग्। धृष्णो-

---

आकार। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ। तादृश् हुआ। कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रादिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय का हल्ङ्यादि लोप। क्विन् प्रत्ययस्य कुः प्राप्त था। उसको बाधकर व्रश्च भ्रस्ज सृज मृज० से शकार को मूर्धन्य षकार। झलां जशोऽन्ते से ड् क्विन् प्रत्ययस्य कुः से गकार। वावसाने, तादृक् तादृग्। तादृशौ तादृशः। तादृग्भ्याम्। क्विन् प्रत्ययस्य कुः से कुत्व। शकारान्त विश् शब्द है। व्रश्च भ्रस्ज से षत्व जश्त्व चर्त्व। विट् विड् विशौ विशः। इत्यादि। नश् शब्द है।

(नशेर्वेति) नशेर्वा। नश् को विकल्प से ककार हो पदान्त में, सु लोप। शकार को विकल्प से वाह्य प्रयत्न साम्य से ख। उसको झलां जशोऽन्ते। वावसाने से जश्त्व, चर्त्व। नक् नग्। पक्ष में व्रश्च भ्रस्ज से षत्व। नट् नड्। हलादि में पद संज्ञा, नग्भ्याम्, नड्भ्याम् इत्यादि। घृतं स्पृशति इति।

(स्पृश इति) स्पृशोऽनुदके क्विन्। उदक भिन्न उपपद रहते स्पृश् धातु से क्विन् प्रत्यय हो, यहाँ घृत उपपद है अतः क्विन् प्रत्यय, क्विन् का पूर्ववत् लोप। सु का हल्ङ्यादि। कुत्व असिद्ध है, अतः व्रश्च भ्रस्ज से ष, झलां जशोऽन्ते। क्विन् प्रत्ययस्य कुः। वावसाने। घृतस्पृक् घृतस्पृग्। घृतस्पृशौ। घृतस्पृग्भ्याम्। अनुपपद स्पृश् धातु से क्विप्। क्विप् का पूर्वोक्त प्रक्रिया से क्विन् के समान लोप। स्वादि। 'सु' का हल्ङ्यादि लोप। व्रश्च भ्रस्ज से ष। झलां जशोऽन्ते से ड्। क्विन् प्रत्ययस्य कुः से ग्। यहाँ क्विन् प्रत्यय कहाँ हुआ है। ठीक है, परंतु 'क्विनः कुः' ऐसा ही पढ़ना था, प्रत्यय ग्रहण जो किया है वह

तीति दधृक् दधृग् दधृषौ दधृषः। रत्नमुट् रत्नमुड्। रत्नमुषौ रत्नमुषः। षड्भ्यो लुक्। षट् षड् षड्भिः, षड्भ्यः २ षट्चतुर्भ्यश्चेति नुट्। अनामित्युक्तेर्न ष्टुत्वनिषेधः। प्रत्यये भाषायामित्यनुनासिकः। षण्णाम्, षट्त्सु षट्सु। रुत्वं प्रति षत्वस्यासिद्धत्वात्ससजुषोरुरिति रुत्वम्॥

'क्विन् प्रत्यय' पद में बहुव्रीहि समास सूचनार्थ है। तो यह अर्थ होगा। 'क्विन् प्रत्ययो यस्मात्' क्विन् प्रत्यय जिससे हुआ हो। यद्यपि केवल स्पृश से क्विन् प्रत्यय नहीं हुआ है परंतु अनुदक उपपद रहते हुआ है, अतः केवल स्पृश में भी कुत्व हो जायगा। वावसाने, स्पृक् स्पृग्, स्पृशौ स्पृशः। स्पृग्भ्यामित्यादि।

धृष्णोतीति दधृष् शब्द है। ऋत्विग् दधृक् स्रग्दिगुष्णि॰ से निपात से सिद्ध है। उससे क्विन् प्रत्यय, क्विन् का पूर्ववत् लोप। स्वादिक, सु का हल्ङ्यादि लोप। जश्त्व चर्त्व। दधृक् दधृग्। दधृषौ, दधृषः। इत्यादि। रत्नमुष् शब्द। जश्त्व चर्त्व। रत्नमुट् रत्नमुड्। रत्नमुषौ रत्नमुषः। इत्यादि। षष् शब्द 'छ' संख्या का वाचक है। इससे नित्य बहु वचनान्त है, षष् जस्। ष्णान्ताः षट्। यहाँ षान्त 'छ' इस संख्या का वाचक षष् शब्द है उसकी षट् संज्ञा। षड्भ्यो लुक् से जस् शस् का लुक्। जश्त्व, चर्त्व। षट् षड्। शस् में जस्वत्। षड्भिः। जश्त्व। षष् आम्। षट् चतुर्भ्यश्च से नुट्। उदावितौ। ष्टुनाष्टुः से नकार को णकार। अनाम् नाम् भिन्न इस कथन से न पदान्तात् टोरनाम् से निषेध नहीं होगा। झलां जशोऽन्ते से ड। 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' से विकल्पेन णत्व प्राप्त था। 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' यहाँ प्रत्यय आम् गत नाम् परे है, अतः नित्य णत्व होगा। षण्णाम्। सुप् में झलां जशोऽन्ते। ङःसिधुट्। जश्त्व। खरि से चर्त्व। धुट्त्सु, धुट् सु, न पदान्तात् टोरनाम् से ष्टुत्व निषेध। खरि च से चर्त्व असिद्ध है अतः चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादे रिति वाच्यम् नहीं लगेगा, तदन्त विधि होने से परम षष्, प्रिय षष् शब्द का साधुत्व परमचतुर् प्रियचतुर् शब्दवत् जानना। ससजुषोरु

र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ।८।२।७६। पदान्ते, पिपठीः, पिपठिषौ पिपठिषः । पिपठीर्भ्यामित्यादि । वा शरि । **नुम्विसर्जनीयशर्व्यवाये ऽपि** ।८।३।५८। एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इणकुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः

षट् चतुर्भ्यश्च में बहुत्वनिर्देश होने से प्रधान में लुक् नुट् होंगे, गौण में नहीं। जैसे—परम षट् परमषण्णाम्, गौण में नहीं, प्रियषषाम् इत्यादि।

पठितुमिच्छति पिपठिषति । पिपठिषतीति पिपठिष् सन्नन्त क्विबन्त । प्रातिपदिक संज्ञा स्वादिक । सु का हल्ङ्यादि लोप । पिपठिष् । षत्व विधायक आदेशप्रत्यययोः' ससजुषो रुः की दृष्टि में असिद्ध है । अतः ससजुषो रुः से रेफ् ।

(र्वोरिति) र्वोरुपधाया दीर्घ इकः । रेफान्त अथवा वकारान्त धातु के उपधा इक्को दीर्घ हो पदान्त में यहाँ सत्व करने पर रेफान्त पिपठिर् के उपधा इकार को दीर्घ हो गया । पदान्त है । खरवसानयो-र्विसर्जनीयः से विसर्ग । पिपठीः । पिपठिषौ, पिपठिषः । भ्याम् के परे स्वादिष्वसर्वनामस्थाने से पद संज्ञा । षत्व असिद्ध है, अतः ससजुषो रुः से रु । उकार इत् । र्वोरुपधाया॰ से दीर्घ । पिपठीर्भ्याम् । सुप् के परे । षत्व असिद्ध है । रुत्व, दीर्घ विसर्ग । वाशरि से विकल्पेन सकार

(नुमिति) नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि । प्रत्येक नुमादिकों से व्यवधान होने पर भी इण् कवर्ग से पर जो सकार उसे मूर्धन्यादेश हो । तो पिपठिस् सु । सकार से व्यवधान है फिर भी ईकार से पर सुप् के सकार को मूर्धन्यादेश हो गया, पूर्व सकार को ष्टुनाष्टुः से ष होगा, आदेश-प्रत्यययोः से नहीं, क्योंकि अपदान्तस्य का अधिकार है । यहाँ पदान्त

टिप्पण—नुम्विसर्जनीय का व्यवधान एक का ही लिया जायगा । षट् कुप्वाङ् के समान यथासंभव अनेक का नहीं लिया जायगा । इसमें भाष्य व्याख्यान प्रमाण है । नुम् शर्व्यवायेऽपि, एतावन्मात्र सूत्र उचित है । विसर्जनीय ग्रहण 'अनुस्वार विसर्ग जिह्वामूलीयो॰ इत्यादि से शर् प्रत्याहार से यतार्थ है । यह भाष्य में है । वस्तुतः स्पष्टार्थ है ।

स्यात् । ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः । पिपठीष्षु, पिपठीः षु । प्रत्येकमिति व्याख्यानान्नेह । निंस्स्व । नुम्ग्रहणं नुम् स्थानिकानुस्वारोपलक्षणार्थं व्याख्यानात्, तेनेह न । सुहिन्सु, पुंसु । रात्सस्येति सलोपे विसर्गः । चिकीः, चिकीर्षौ, चिकीर्षः । षत्वस्यासिद्धत्वाद् रुत्वविसर्गौ । दोः, दोषौ, दोषः । पद्न्निति वा दोषन् । दोष्णः दोषः । दोष्णि, दोषणि, दोषि । विश प्रवेशने । सन्नन्तात् क्विप् । कत्वस्यासिद्धत्वात्संयोगान्तलोपः ।

सकार है । एक के व्यवधान में होगा अनेक के व्यवधान में नहीं । तो निंस्स्व यहाँ अनुस्वार सकार दो का व्यवधान है, अतः मूर्धन्यादेश नहीं होगा । यहाँ नुम्ग्रहण-नुम् स्थानिक अनुस्वार का बोधक है । यह व्याख्यान से जानना, क्योंकि 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्' यह सिद्धान्त है तो सुहिन्स् सुप् । संयगान्तस्य लोपः से सलोप । ✓यहाँ नुम् से व्यवधान है, परन्तु नुम् स्थानिक अनुस्वार नहीं है, पदान्त है इसलिये 'नश्चापदान्तस्य झलि' से अनुस्वार नहीं होगा । पुंसु । यहाँ अनुस्वार है, परंतु वह नुम् स्थानिक नहीं है, किंतु मस्थानिक है अतः मूर्धन्यादेश नहीं होगा । चिकीर्ष् स् । हल्ङ्यादि । रात्सस्य की दृष्टि में आदेशप्रत्यययोः से उत्पन्न षकार असिद्ध है, अतः रात्सस्य से सलोप । खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग । चिकीः । दोष्शब्द है । सु हल्ङ्यादि लोप । षत्व असिद्ध है अतः ससजुषोरुः से रु । उकार इत् । खरवसानयोः से विसर्ग । दोः । दोषौ दोषः । दोष् शस् । पद्न्नो मास् से दोष् को दोषन् । भसंज्ञा अल्लोपोऽनः से अकार का लोप । रषाभ्यां नो णः समानपदे से णकार । रुत्वविसर्ग । दोष्णः । पक्ष में दोषः । दोष्णा दोषा । भ्याम् में । दोषन् आदेश । न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य से नलोप । नलोप असिद्ध है, अतः आत्व ऐत्व एत्व नहीं होगा । ङि के परे । दोषन् आदेश । विभाषा ङिश्योः से विकल्पेन अल्लोप । णत्व । दोष्णि, अल्लोपाभाव में अट्कुप्वाङ्० से णकार दोषणि, जहाँ दोषन् आदेश नहीं हुआ, वहां दोषि । सन्नन्त विश धातु से क्विप् अल्लोप, विविश् स् । हल्ङ्यादि लोप । विविश् से

व्रश्चेति षः। जश्त्वचर्त्वे। विव्रिट् विविड् विविचौ, विविचः। स्कोरिति कलोपः तट् तड् तक्षौ तक्षः। पिसगतौ। रुत्वे, र्वोरुपधाया दीर्घ इकः। सुपीः, सुपिसौ, सुपिसः। सुपीर्भ्याम्, सुपीःषु सुपीष्षु। विद्वान्, विद्वांसौ, विद्वांसः। विद्वांसम् विद्वांसौ। **वसोः संप्रसारणम्।६।४।१३१।** वस्वन्तस्य भस्य संप्रसारणं स्यात्। पूर्वरूपम्। षत्वम्। विदुषः, विदुषा।

व्रश्चभ्रस्ज के अनन्तर 'षढोः कःसि' से उत्पन्न ककार संयोगान्तस्य लोपः की दृष्टि में असिद्ध है अतः संयोगान्तस्य लोपः से षकार का लोप, 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्यापि निवृत्तिः' से षकार का अपाय होनेसे षढोः कःसि से जात ककार की भी निवृत्ति हो गई। झल् परत्व नहीं रहा, इससे शकार की भी निवृत्ति होकर शकार रहा। उसे व्रश्च भ्रस्ज से षकार। कत्व चर्त्व। विविट् विविड्। विविचौ विविचः, विविड्भ्याम् पूर्ववत् साधुत्व। 'तक्ष् सु। सु का लोप, स्कोः संयोगाद्योरन्ते च, से संयोगान्त लोपापवादक लोप। जश्त्व चर्त्व। तट् तड् तक्षौ तक्षः। तड्भ्यामित्यादि। सुपिस् शब्द सु। हल्ङ्यादि लोप। ससजुषो रुः से स उकार इत्। र्वोरुपधाया दीर्घ इकः से इकार को दीर्घ, रेफ को ससजुषो रुः से विसर्ग। सुपीः। सुपिसौ सुपिसः। आदेश अथवा प्रत्ययावयवसकार नहीं है अतः मूर्धन्यादेश नहीं होगा। सुपीर्भ्याम्। रुत्व-दीर्घ। सुप् में सकार को रेफ दीर्घ विसर्ग। वा शरि से विकल्पेन सकार। सुपीस्सु सुपीः सु। विद्वस् सु। उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः से नुम्। उमावितौ। हलन्तत्वात् सुलोप। सान्तमहतः संयोगस्य से उपधादीर्घ। संयोगान्तस्य लोपः सलोप। संयोगान्तलोप असिद्ध है। अतः न लोप नहीं होगा। विद्वान्। सर्वनामस्थान में नुम्। सान्तमहतः से दीर्घ, अपदान्तत्वात् नश्चापदान्तस्य झलि से अनुस्वार। विद्वांसौ विद्वांसः। विद्वांसम् विद्वांसौ। विद्वस्-शस्। यचिभम् से भसंज्ञा।

(वसोरिति) वसोः संप्रसारणम्। वसु प्रत्यय है अतः प्रत्यय ग्रहण परिभाषा से तदन्त होगा। भस्य का अधिकार है। तो यह अर्थ होगा। वसु प्रत्ययान्त भसंज्ञक को संप्रसारण हो। इग्यणः संप्रसार-

वसुस्रंस्विति दत्वम् । विद्वद्भ्यामित्यादि । सेदिवान्, सेदिवांसौ, सेदिवांसः । अकृतव्यूहपरिभाषया नेट् । संप्रसारणम्, पूर्वरूपम्, षत्वम् सेदुषः, सेदुषा, सेदिवद्भ्यामित्यादि । महच्छब्दसाहचर्यात्सान्तसंयोगः प्रातिपदिकस्यैव । नेह । सुहिन्, सुहिंसौ सुहिंसः सुहिन्सु सुहिन्षु ।

णम् से व को उ हो गया । संप्रसारणाच्च से पूर्वरूप । विदुषः विदुषा, भ्याम् के परे । वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहांदः । सान्त वस्वन्त है अतः सकार को 'द' हो गया विद्वद्भ्याम् । अजादि शसादि में संप्रसारण । हलादि में आदेश । सम्बोधन में हे विद्वन् । सान्त महतः से दीर्घ सम्बोधन में नहीं होगा । सेदिवस् शब्द है । सर्वनामस्थान में विद्वस् शब्द के समान सुलोपनुम् सान्तमहतः, संयोगान्त लोप । सेदिवान् सेदिवांसौ सेदिवांसः इत्यादि । शस् में सेदिवस् शस् । वसोः संप्रसारणम् से संप्रसारण, सेद् वस् इस स्थिति को मानकर संप्रसारण से इडागम अन्तरङ्ग है फिर भी अकृत व्यूह परिभाषा से वकार को शसादि भसंज्ञक में विनाशोन्मुख देखकर संप्रसारण के विषय में इट् नहीं होगा । अथवा निमित्तापाये नैमित्तकस्याप्यपायः इस न्याय से वकार की निवृत्ति होने से अर्थात् वलादित्व के अपाय होने से इट् की भी निवृत्ति हो जायगी । संप्रसारणाच्च से पूर्वरूप । प्रत्ययावयव होने से आदेशप्रत्यययोः से षत्व । सेदुषः । सेदुषा । भ्याम्के परे वसुस्रंसु० इससे दकार । सेदिवद्भ्याम् । सेदिवद्भिः, इत्यादि । हिंसि हिंसायाम् । इदितोनुम्धातोः से नुम् । अनुस्वार । क्विबादि, कृत्वात् प्रातिपदिक । सु हल्ङ्यादि लोप । नकार सकार का संयोग है अतः सान्तमहतः संयोगस्य से दीर्घ प्राप्त था । परंतु महत् शब्द के साहचर्य से सान्तसंयोग प्रातिपदिक का लिया जायगा, यहां धातु का है, अतः दीर्घ नहीं होगा । संयोगान्तस्य लोपः से सलोप । सुहिन् । संयोगान्त लोप असिद्ध है, अतः न लोप उपधा दीर्घ नहीं होगा । सुहिन् सुहिंसौ सुहिंसः । भ्याम् के परे संयोगान्त सलोप । सुहिन्भ्याम्, सुहिंस् सुप् । संयोगान्तत्वात्स लोप । सकार निवृत्ति होने से अनुस्वार निवृत्ति । नकार को पुनः अनुस्वार क्यों नहीं

ध्वत्, ध्वद्, ध्वसौ ध्वंसः। ध्वद्भ्यामित्यादि। एवं स्रत्। पुंसोऽसुङ् ७।१।८९। सर्वनामस्थाने परतः। पुमान्, पुमांसौ पुमांसः। पुंसः पुंसा; पुंभ्याम् पुंसु। ऋदुशनेत्यनङ्। उशना उशनसौ उशनसः। अस्य संबुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वक्तव्यः *। हे उशनन्, हेउशन, हेउशनः।

होता। पदान्त है। नश्च से धुट्। जश्त्व चर्त्व। सुहिन्सु सुहिन्सु। ध्वंसुक्विप् अनिदित् है अतः अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति से न लोप। ध्वस् सु। सुलोप स्रंसुध्वंसु० से सकार को द। वावसाने। ध्वत् ध्वद् ध्वसौ ध्वसः इस प्रकार स्रस् का भी जानना। पुंस् शब्द पूजा-डुमसुन्। उकार इत्।

(पुंस इति) पुंसोऽसुङ्। पुंस् शब्द को असुङ् आदेश हो सर्वनामस्थान के परे। सुडनपुंसकस्य से सुट् प्रत्याहार पाँच वचन की सर्वनामस्थान संज्ञा। ङिच्च से सकार को असुङ्। ङकार इत् उकार उच्चारणार्थ है। उगिदचाम्, से नुम्, सान्तमहतः संयोगस्य से दीर्घ। हल्ङ्यादि लोप। संयोगान्त लोप। संयोगान्त लोप असिद्ध है अतः नलोप नहीं होगा। पुमान्, पुमांसौ। असुङ्। नुम् दीर्घ। नकार को नश्चापदान्तस्य झलि से अनुस्वार। पुमांसः। पुंभ्याम्। संयोगान्त लोप। मोऽनुस्वारः। वा पदान्तस्य। पुंभ्याम्। इत्यादि। उशनस् शब्द सु। ऋदुशनस्पुरुदंसोनेहसां च से अनङ्। ङित्वात् अन्त्यादेश अकार उच्चारणार्थ। ङ कार इत्। अतोगुणे। उशनन् सु। सुलोप। सर्वनामस्थाने से उपधादीर्घ। नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य। से नलोप। उशना। उशनसौ उशनसः। संबोधन में 'अस्य संबुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वक्तव्यः' इससे विकल्पेन ङिच्च से अन्त्य सकार को अनङ् हो गया। ङकार इत्। अकार उच्चारणार्थ है। जहाँ अनङ् होगा वहाँ 'नलोपश्च वा वक्तव्यः' से विकल्पसे नकार का लोप हो जायगा। तो जहाँ नकार लोप नहीं हुआ वहाँ हेउशनन्, जहाँ नकार लोप हो गया वहाँ हेउशन और जहाँ अनङ् आदेश नहीं हुआ, रुत्व विसर्ग, हेउशनः। उशनसभ्याम्। ससजुषोरुः। हशि च आद्गुणः,

उशनोभ्यामित्यादि । अनेहा । अनेहसौ, अनेहसः हे अनेहः । वेधाः वेधसौ, वेधसः । अधातोरित्युक्तेर्न दीर्घः । सुवः, सुवसौ । पिण्डग्रः पिण्डग्रसौ इत्यादि । **अदस औ सुलोपश्च** ।७।२।१०७। स्पष्टम् । तदोः सः साविति दस्य सः । असौ । औत्वप्रतिषेधः साकच्कस्य

उशनोभ्याम् इत्यादि । इसी प्रकार पुरुदंसस्, अनेहस् में सु के पर अनङ् । सुलोप, दीर्घ, नलोप । पुरुदंससौ पुरुदंससः । हे पुरुदंसः । अनङ् संबुद्धि भिन्न सु में होगा । इसी प्रकार अनेहा, अनेहसौ, अने-होभ्याम् । हे अनेहः । वेघस् शब्द + सु । असन्त है, अतः अत्वसन्तस्य चाधातोः से दीर्घ । सुलोप । रुत्व विसर्ग । वेधाः, वेघसौ, वेधसः । वेधोभ्याम्, हेवेधः । वसू आच्छादने । लुग्विकरण । सुवस् सु । सुलोप । अत्वसन्तस्य चाधातोः में अधातोः है, यहाँ धात्ववयव अस् है, अतः दीर्घ नहीं होगा । रुत्वविसर्ग सुवः सुवसौ सुवसः । सुवोभ्याम् । एवं ग्रसु अदने, पिण्डग्रः, पिण्डग्रोभ्याम् । पिण्डग्रस्सु पिण्डग्रःसु । हे पिण्डग्रः इत्यादि । अदस् सु । त्यदादीनामः प्राप्त था ।

(अदस इति) अदस औ·सुलोपश्च । अदस् शब्द को औकार अन्त्या-देश हो । अलोन्त्यस्य से सकार को औ हो गया । हलन्त नहीं है, अतः 'सुलोपश्च ।' सु का लोप हो । सु का लोप हुआ । तदोः सः सावन-न्त्ययोः से द को स आदेश । असौ । अकच् विशिष्ट में विशेषता है । "औत्वप्रतिषेधः साकच्कस्य वा वक्तव्यः, सादुत्वं च ।" अकच् सहित अदस् शब्द के औ का विकल्प से प्रतिषेध हो और सकार से पर अकार को उकार हो । तो 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः' से अकच् हुआ । अदकस्-सु । तन्मध्यपतितन्याय से अकच् विशिष्ट का अदस् ग्रहण से 'अदस औ सुलोपश्च' प्राप्त था, उसका "औत्व प्रतिषेधः सा-कच्कस्य वा वक्तव्यः सादुत्वंच" अकच् विशिष्ट अदस् शब्द के औकार का विकल्प से प्रतिषेध हो और सकार से पर को उकार हो । हो त्यदादीनामः से अकार । अतो गुणे । तदोः सः सावनन्त्ययोः से

वा वक्तव्यः, सादुत्वं च *। असुकः। सन्नियोगशिष्टत्वादौत्वप्रतिषेधाभावे उत्वमपि न। असकौ। त्यदाद्यत्वं, पररूपत्वम्, पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्त्यादिकार्यं प्राक् वृद्धिः, पश्चादुत्वमुत्वे। अमू। एत ईद्बहुवचने। ८। २। ८१। अदसो दात्परस्यैत ईत्स्याद्दस्य मश्च बह्वर्थोक्तौ। अमी। अमुम्, अमू, अमून्। मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभवः। न मुने। ८।२।३। ना भावे कर्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः। अमुना, अमूभ्याम् अमीभिः।

सकार। असक् सु। औत्व प्रतिषेध सकार से पर अकार को उकार। रुत्वविसर्ग असुकः। पक्ष में जहाँ औत्व प्रतिषेध नहीं हुआ वहाँ सकार से पर को उकार भी नहीं होगा। क्योंकि 'सन्नियोगशिष्टानां सहैव प्रवृत्तिः निवृत्तिश्च' तो औत्व प्रतिषेध नहीं हुआ अतः उकार भी नहीं होगा। असकौ। अदस् औ। त्यदादीनामः से सर्वत्र विभक्ति कार्य प्रथम होगा। तो वृद्धिरेचि। अदौ हुआ। अदसो से० दीर्घ औकार को दीर्घ ऊकार, द को म। अमू। जस् में आकार। जसः शी। आद्गुणः। अदे, इस स्थिति में।

(एत इति) एत ईद् बहुवचने। अदस् शब्द के एकार को ईकार हो और द को म हो। बहुत्व की उक्ति में। अर्थात् बहुवचन में। तो एकार को ई हो गया और द को म हो गया। अदम् सिद्ध करने पर उकार द को म। अमुम् अमू अमून्। टा विभक्ति में अद टा—इस स्थिति में। अदसो सेर्दादु दोमः से उकार 'टा ङसिङसामिनात्स्याः' प्रथम विभक्ति कार्य होना चाहिये, क्योंकि मुत्व असिद्ध है।

(नमुने इति) नमुने सप्तमी है, अतः ना भाव कर्तव्य हो अथवा किया हुआ हो तो 'मु' आदेश असिद्ध नहीं होगा। यदि असिद्ध मानोगे तो 'नमुने' सूत्र ही व्यर्थ हो जायगा, अतः मुभाव कर्तव्य होते हुए असिद्ध नहीं हुआ। तो अकार को उ और द को म हो गया। 'शेषोध्यसखि' से घिसंज्ञा। घिसंज्ञा कर्तव्य रहते मुभाव असिद्ध

अमुष्मै अमीभ्यः २। अमुष्मात्। अमुष्य अमुयोः २, अमीषाम्। अमुष्मिन् अमीषु। इति हलन्ताः पुंल्लिङ्गाः।

नहीं होगा। 'अङो नाऽस्त्रियाम्' से टा को ना आदेश अमुना। मुत्व असिद्ध है, अतः सुपिच से दीर्घ प्राप्त था। तो कृते कहा है, ना आदेश करने के बाद भी मुभाव असिद्ध नहीं होगा असिद्ध न होने से अदन्त नहीं है। अमुना। भ्याम् के परे अदाभ्याम् सिद्ध करने के बाद दीर्घ आकार को दीर्घ ऊकार होगा और द को म आदेश। अमूभ्याम्। भिस् में त्यदादीनामः, अतो गुणे अद-भिस् इस स्थिति में अतो भिस् ऐस् से भिस् को ऐस् प्राप्त था। 'नेदमदसोरकोः' से ऐस् का प्रतिषेध हो गया। अतः बहुवचने झल्येत्, से अकार को एकार हो गया अदे भिस् इस अवस्था में, 'एत ईद् बहुवचने' अदस् शब्द के द से पर एकार को ई, और द को म हो गया। रुत्व विसर्ग। अमीभिः। ङे में। त्यदाद्यत्व पर रूप। सर्वनाम्नः स्मै, से ङे को स्मै, उक्त सूत्र से उत्व मत्व। आदेशप्रत्यययोः से षकार। अमुष्मै। अमूभ्याम्। पूर्ववत्। भ्यस् अकार, पररूप। बहुवचने झल्येत् से एकार। एत ईद् बहुवचने। रुत्व विसर्ग अमीभ्यः। ङसि में ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ से ङसि को स्मात् होगा। अन्य कार्य पूर्ववत्। अमुष्मात् अमूभ्याम्, अमीभ्यः। ङस् में। ङस् को टा ङसि० से स्य आदेश। उत्व, मत्व, मूर्धन्यादेश पूर्ववत्। अमुष्य। अमुयोः। अदस् अहम्। त्यदादीनामः, अतोगुणः। आमि सर्वनाम्नः सुट्। बहुवचने झल्येत्। एतईद् बहुवचने। अमीषाम्। अमुष्मिन्। अमुष्मात् के समान। अमुयोः ओसि च एकार अयादेश। अदसोऽसे० उकार द को म आदेश। सुप् में। त्यदाद्यत्व, पररूप। बहुवचने झल्येत् से एकार। एतईद् बहुवचने से एकार को ईकार द को म आदेश। आदेशप्रत्यययोः से मूर्धन्यादेश। अमीषु।

इति हलन्ताः पुंल्लिङ्गाः।

अथ हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः

नहो धः। ८।२।३४। नहो हस्य धः स्यात् झलि पदान्ते च। उपानत् उपानद्, उपानहौ, उपानहः। उपानद्भ्याम्। क्विन्नन्तत्वा-त्कुत्वेन हस्य घः। जश्त्वचर्त्वे। उष्णिक् उष्णिग्। द्यौः दिवौ दिवः। गीः, गिरौ। चतुरश्चतस्रादेशः। चतस्रः। चतसृणाम्। किमः कादेशे

अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

हकारान्त उपानह् शब्द है। प्रातिपदिक संज्ञा। स्वादिक। उपानह् सु, सुलोप।

(नह इति) नहो धः। नह् के ह को ध हो। झल् प्रत्याहार के परे अपदान्त में। यहाँ सुबन्तत्वात् पदान्त है, होढः से ढ प्राप्त था, उसका अपवाद ध हो गया। झलां जशोऽन्ते वावसाने, उपानत् उपानद्। भ्याम् के परे। स्वादिष्वसर्वनामस्थाने से पद संज्ञा। पदान्तत्वात् धकार। पुनः झलां जशोऽन्ते, से द्। उपानद्भ्याम् इत्यादि। ऋत्विग् दधृक् स्रग्दिगुष्णिगञ्चु० इत्यादि से क्विन्। पूर्ववत् क्विन् का लोप। प्रातिपदिक संज्ञा, सु, हल्ङ्यादि लोप। क्विन् प्रत्ययस्य कुः। संवार प्रयत्न महाप्राण प्रयत्न हकार को कवर्ग का चतुर्थ वर्ण घकार हो गया। पूर्ववत्, जश्त्व चर्त्व, उष्णिक् उष्णिग्। इत्यादि। दिव् शब्द, पूर्वोक्त सुदिव् शब्दवत्। दिव् औत्। यण् द्यौः दिवौ दिवः। दिव उत्। द्युभ्याम्। गिर् शब्द। हल्ङ्यादि लोप। र्वोरुपधाया दीर्घ इकः। खरवसानयोर्विसर्जनीयः। गीः गिरौ गिरः। गीर्भ्याम्। रोः सुपि। यहाँ रु का रेफ नहीं अतः विसर्ग नहीं होगा। गीर्षु। चार संख्या का वाचक चतुर् शब्द नित्य बहुवचनान्त। जस् विभक्ति। त्रिचतुरोः स्त्रियाम् से चतसृ आदेश। अचि र ऋतः से र्, ऋतोङि सर्वनाम-स्थानयोः, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः का अपवाद है। चतस्रः २। चतुर् आम्। परत्वात् 'षट्चतुर्भ्यश्च' से प्राप्त नुट् को बाधकर उक्त सूत्र से चतसृ आदेश। नुट्। नामि से प्राप्त दीर्घ का 'न तिसृचतसृ' से निषेध। ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् चतसृणाम्। किम् शब्द है। किमः कः से 'क' आदेश। सब विभक्तियों में होगा। 'अजाद्यतष्टाप्', से टाप्।

टाप् सर्वावत् । का के काः । यः सौ ।७।२।११०। इदमो दस्य यः स्यात् सौ परे । इदमो मः । इयम् , त्यदाद्यत्वं टाप् । दश्चेति मः । इमे इमाः । अनाप्यकः अनया । हलि लोपः । आभ्याम् । आभिः । अस्यै, अस्याः २, अनयोः आसामित्यादि । अन्वादेशे एनाम् , एने, एनाः । एनया एनयोः, ऋत्विगित्यादिना क्विन् । स्रक् , स्रग् । स्रजौ, स्रजः । त्यदा-

---

अकः सवर्णे दीर्घः । सर्वा शब्दवत्, का के काः । ङित् वचन में सर्व-नाम्नः स्याड् ह्रस्वश्च । कस्यै कस्याः इत्यादि । इदम् शब्द है, इदमु॥

(यः साविति) यः सौ । इदम् शब्द के दकार को यकार हो सु के परे । तो द को य हो गया । 'त्यदादीनामः' प्राप्त था उसे बाधकर 'इदमोमः' से 'म' को म ही बना रहा । हलङ्यादि लोप । इयम् । द्विवचनादि में । त्यदादीनामः । अजाद्यतष्टाप् । सवर्ण दीर्घ । दश्च से द को म आदेश । सर्वा शब्दवत् । इमे इमाः । तृतीयैकवचन । अनाप्यकः । अनया । भ्याम् के परे । अदाभ्याम् होने पर हलि लोप से इद् का लोप । आभ्याम् आभिः । ङित् वचन में 'सर्वनाम्नः स्याड् ह्रस्वश्च' से स्याट्, अकार को ह्रस्व । स्याट् होने से हलादि होगया, अतः हलि लोपः से इद् का लोप, अस्यै अस्याः । आम् के परे । 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' से सुट् । हलादि होने से हलि लोपः । आसाम् । ङि विभक्ति में 'ङे राम् नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम् । स्याट् पूर्व को ह्रस्व । स्याट् होने से हलादि है, अतः हलि लोपः से लोप । अस्याम् आसु । अन्वादेश में 'द्वितीया टौस्स्वेनः' से द्वितीया और टा ओस् में एन आदेश । अजाद्यतष्टाप् । सवर्णदीर्घ । शेष कार्य सर्वावत् । एनाम् एने एनाः । एनया एनयोः । इत्यादि । स्रज् शब्द है, 'ऋत्विग् दधृक् स्रग्०' इससे क्विन् प्रत्यय । क्विन् का लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, इकार उच्चारणार्थः । वेरपृक्तस्य से सर्वापहारी लोप । कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा । हल्ङ्यादि लोप । क्विन् प्रत्ययस्य कुः । जश्त्व चावसाने । स्रक् स्रग् । स्रजौ स्रजः । त्यद् शब्द है । त्यदादीनामः से अकार, अतो गुणे, अजाद्यतष्टाप् से टाप् । अकः सवर्णे दीर्घः । 'तदोः

त्वं टाप्। स्या त्ये त्याः। एवं तद् यद् एतद्। अप् शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। आपः अपः। अपो भि। ७। ४। ४८। अपस्तकारः स्यात् भादौ प्रत्यये। अद्भिः। अद्भ्यः। दिक् दिग् दिशौ दिशः। त्यदादिष्विति दृशेः क्विन्विधानादन्यत्रापि कुत्वम्। दृक् दृग्। त्विट् त्विड् त्विषौ त्विषः। ससजुषो रुः। सजूः सजूर्भ्याम् सजूःषु सजूष्षु। षत्वस्या-

तः सावनन्त्ययोः' से तकार को सकार। आबन्तत्वात् सुलोप। स्या। शेष विभक्तियों में सर्वा शब्दवत् कार्य होंगे। त्ये त्याः। त्यस्यै। सर्वनाम्नः स्याड् ह्रस्वश्च। इसी प्रकार तद् का सा ते ताः। एतद् शब्द में सकारादेश होने के बाद, आदेशप्रत्यययोः से षकार एषा एते एताः। सर्वा शब्दवत्, साधुत्व है। अप् शब्द नित्य बहुवचनान्त है। जस् विभक्ति। अप् तृन् तृच्॰ से उपधा दीर्घ। रुत्व, विसर्ग। आपः, अपः। भिस् में, अप् भिस् इस स्थिति में

(अपोभीति) अपो भि। अप् शब्द को तकार हो, भादि प्रत्यय के परे। अलोन्त्यस्य, से पकार को तकारादेश। झलां जशोऽन्ते, 'द'। अद्भिः। अद्भ्यः। अप्-सुप्। झलांजशोऽन्ते। खरि च। अप्सु। चर्त्व असिद्ध है अतः 'चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्' नहीं लगेगा। दिश् सु। 'ऋत्विगूदधृक्स्रक्' से क्विन् का पूर्ववत् लोप। हलन्तत्वात्सुलोप। व्रश्च भ्रस्ज से ष। झलां जशोऽन्ते से ड। क्विन् प्रत्ययस्य कुः से ग, वावसाने। दिक् दिग्। दिशौ दिशः। दिक्षु। आदेशप्रत्यययोः से षकार। खरिच, कषसंयोगे क्षः। दृश् शब्द सु। हल्ङ्यादि लोप। व्रश्च भ्रस्ज से ष। जश्त्व, ड्। क्विन् प्रत्ययस्य कुः से ड को ग आदेश। यद्यपि त्यदादिक उपपद रहते ही दृश् से क्विन् होता है तभी क्विन् प्रत्ययस्य कुः लगेगा। परन्तु क्विन् प्रत्ययस्य में क्विन् प्रत्ययो यस्मात् यह बहुव्रीहि समास है अतः उस दृश् से त्यदादि उपपद न रहते हुए भी अर्थात् केवल दृश को भी कुत्व होता है, तो कुत्व गकार। वावसाने। दृक् दृग् दृशौ दृशः। त्विष् शब्द है। सु का हल्ङ्यादि लोप। जश्त्व चर्त्व। त्विट् त्विड्। त्विषौ त्विषः। सजुष् सु। हलन्तत्वात् सुलोप। ससजुषो रुः से रु।

सिद्धत्वाद् रुत्वम् । आशीः आशिषौ आशिषः । असौ, त्यदाद्यत्वं टाप् । औङः शी । उत्वमत्वे । अमू अमूः । अमूम् अमू अमूः । अमुया अमूभ्याम् अमूभिः । अमुष्यै अमूभ्यः २ । अमुष्याः २ अमुयोः २ अमूषाम् । अमुष्याम् अमूषु । इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

उकार इत् । 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' से दीर्घ । रेफ को विसर्ग । सजुषौ । भ्याम् के परे उक्त सूत्रों से रुत्व दीर्घ, सजूर्भ्याम् । सुप् में, ससजुषो रुः । र्वोरुपधायाः० खरवसानयोः० से विसर्ग । वाशरि से विकल्पेन सकार । नुम्विसर्जनीयशर् व्यवायेऽपि । से विसर्ग के व्यवधान में और शर् के व्यवधान में भी मूर्धन्य षकार । ष्टुना ष्टुः से पूर्व सकार को षकार, सजूःषु सजूष्षु । आशिष् शब्द से सु । सु का लोप । ससजुषोरुः की दृष्टि में 'शासिवसिघसीनां च' से उत्पन्न षकार असिद्ध है । अतः सकार मानकर रुत्व, र्वोरुपधाया से दीर्घ । विसर्ग । आशीः, आशिषौ । आशीर्भ्याम् । आशीःषु आशीष्षु । पूर्ववत् । अदस् सु । 'अदस औ सुलोपश्च' से अन्त्य स् को औकारादेश । सु का लोप । वृद्धिरेचि । अदौ इस स्थिति में तदोः सः सावनन्त्ययोः से सकार । असौ । द्वितीयादि में प्रथम विभक्ति कार्य । त्यदादीनामः । अतोगुणे अजाद्यतष्टाप् । सवर्ण दीर्घ औङ आपः से शी । लशक्व तद्धिते आद्‌गुणः । अदे ऐसा न होने पर । 'अदसोऽसेर्दादुदो मः' से एकार को दीर्घ ऊकार और द को म । अमू । एकार ह्रस्व नहीं होता क्योंकि वह दीर्घ ही है । अतः उसके स्थान में दीर्घ ऊकार होगा । अमूः, विभक्ति कार्य होने पर द को म, और आकार को ऊकार अमूः । टा में आङि चापः से एकार अयादेश उत्व मत्व । अमुया । भ्याम् में अमूभ्याम् । ङे के परे । सर्वनाम्नः स्याड् ह्रस्वश्च अमुष्यै । आमि सर्वनाम्नः सुट् । अदासाम् होने पर ऊत्व, मत्व । आदेश प्रत्यययोः अमूषाम् । ङि में 'ङेराम् नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम् । अन्य कार्य टाप् दीर्घ, स्याडादिक पूर्ववत् । अदसोऽसेर्दादुदो मः आदेशप्रत्यययोः अमुष्याम् अमूषु । इति हलन्तः स्त्रीलिङ्गः ।

अथ हलन्ताः नपुंसकलिङ्गाः

स्वमोर्लुक। दत्वम्। स्वनडुत्(द्)स्वनडुही। चतुरनडुहोरित्याम्। स्वनड्वांहि शेषं पुंवत्। दिव उत्। विमलद्यु अहः। उत्तरपदत्वे चापदादिविधौ प्रतिषेधः। विमलदिवी विमलदिवि। वाः वारी वारि। चत्वारि।

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

अब हलन्त नपुंसक लिङ्ग शब्द-साधुत्व कहते हैं। हकारान्त स्वनडुह् शब्द से सु प्रत्यय। नपुंसकात्स्वमोर्लुक् से सु का लुक्। वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः से द् आदेश। वावसाने। स्वनडुत् स्वनडुद्। औ में नपुंसकाच्च से औ विभक्ति को शी स्वनडुहि। सुडनपुंसकस्य में अनपुंसकस्य है अतः सर्वनामस्थान संज्ञा नहीं होगी। जस् में। जश्शसोः शिः से शित्वात् सर्वादेश, शि सर्वनामस्थानम् से सर्वनामस्थान संज्ञा। चतुरनडुहोरामुदात्तः से आम्। नपुंसकस्य झलचः से नुम्। नश्चापदान्तस्य झलि से अनुस्वार। इको यणचि से उकार को वकार। स्वनड्वांहि। द्वितीया में। प्रथमावत्। स्वनडुत् स्वनडुद्। स्वनडुही स्वनड्वांहि। शेष विभक्तियों में पुंवत्। विमलदिव् से सु। नपुंसकात्स्वमोर्लुक् से 'सु' का लुक्। दिव उत्। इको यणचि। विमलद्यु। दिव औत् से औकार क्यों नहीं होता? न लुमताङ्गस्य से प्रत्यय लक्षण का निषेध हो जायगा, अतः सु परे नहीं है, विमला द्यौः ययोः ते, विमलदिव् औ, नपुंसकाच्च से औकार को शी आदेश, विमलदिवी। यहाँ पूर्वपद की लुप्तविभक्ति को मानकर राजपुरुषः इत्यादिक में जैसे प्रत्यय लक्षण से पदत्व मानकर न लोप होता है इसी प्रकार उत्तरपद को भी लुप्त विभक्ति को प्रत्यय लक्षण मानकर पद संज्ञक है। अतः दिवउत् से उकार नहीं होता। न लुमताङ्गस्य, से निषेध हो जायगा। न लुमताङ्गस्य से निषेध अङ्गधर्माश्रित में होता है। पदसंज्ञा सुबन्तधर्माश्रित है। अन्यथा राजपुरुषः में भी नलोप नहीं होगा। अतः उत्व प्राप्त है। एतदर्थं वार्तिक है "उत्तरपदत्वे चापदादिविधौ प्रतिषेधः" समास

नलुमतेति कादेशो न। किम् के कानि २। इदम् इमे इमानि। अन्वादेशे नपुंसके एनद् वक्तव्यः।* एनत् (द्) एने एनानि २ एनेन, एनयोः। ब्रह्म ब्रह्मणी ब्रह्माणि। संबुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः।

होंने पर उत्तर खण्ड की पद संज्ञा कर्तव्य रहते प्रत्यय लक्षण का प्रतिषेध होता है। पदादिविधि को छोड़कर, तो यहाँ उत्तर खण्ड को प्रत्यय लक्षणेन पद संज्ञा कर्तव्य है अतः उसका प्रतिषेध हो जायगा। विमलदिवी। जस् में जश्शसोः शिः से शि। झलन्त नहीं है अतः नुम् नहीं होगा। विमलदिवि। द्वितीया में प्रथमावत्। तृतीयादि में सुदिव् शब्द पुंवत्। वाः वारी। वारि। चतुर् शब्द जस्। जश्शसोः शिः। चत्वारि। किम् शब्द से सु, स्वमोर्नपुंसकात् से सु का लुक्। 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' से सु मानकर किमः कः से कादेश प्राप्त था। "न लुमताङ्गस्य" से प्रत्यय लक्षण का निषेध हो जायगा अतः क आदेश नहीं होगा। किम्। द्विवचन में, किमः कः। नपुंसकाच्च। आद्गुणः। के। जस् में, कादेश, जश्शसोः शिः। अजन्तत्वात् नपुंसकस्य झलचः से नुम्। शि सर्वनामस्थानम् से सर्वनामस्थान संज्ञा है, नान्तत्वात् सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ से दीर्घ। कानि। द्वितीया में प्रथमावत्। किम् के कानि। अवशिष्ट तृतीयादिक विभक्तियों में पुंवत् इदम् शब्द से सु। स्वमोर्नपुंसकात् से सु का लुक्। न लुमताङ्गस्य से निषेध होने से त्यदादीनामः, दश्च नहीं लगेंगे। इदम् औ में। त्यदादीनामः, दश्च। अन्य कार्य किम् शब्दवत्। इमे इमानि, द्वितीया प्रथमावत्। अन्वादेश में, अन्वादेशे नपुंसके एनद् वक्तव्यः इससे एनत् आदेश, अम् का लुक् जश् वावसाने। एनत् एनद्, औट् शस् टा ओस् में द्वितीया टौस्स्वेनः से एन आदेश। भाष्य-शेखर में यही सिद्धान्तित है। एने, एनानि, एनेन, एनयोः, इत्यादि ब्रह्मन् शब्द सु। पूर्ववत् सुलोप। नलोपः प्रतिपादिकान्तस्य से न लोप, ब्रह्म। द्विवचन में नपुंसकाच्च से शी आदेश। विभाषाङिश्योः से विकल्पेन अल्लोप प्राप्त था। नसंयोगाद् वमन्तात् से अल्लोप का निषेध हो जायगा।

हे ब्रह्मन्, हे ब्रह्म। रोऽसुपि। अहर्भाति। विभाषा ङिश्योः अह्नी, अहनी। अहानि। अहन् ।८।२।६८। रुः स्यात्पदान्ते। अहोभ्याम्। इह रत्वरुत्वयोरसिद्धत्वान्नलोपे प्राप्ते। अह्नो नलोपप्रतिषेधः।* यद्वा अहन् इत्यावर्त्य एकेन नलोपाभावं निपात्य द्वितीयेन रुर्वि-

---

अट्कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि से णत्व, ब्रह्मणी। जस् में। जश्शसोः शिः। शि शर्वनामस्थानम्। सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ से उपधा दीर्घ। ब्रह्माणि, संबोधन में, सम्बुद्धौ नपुंसकानां न लोपो वा वाच्यः। संबोधन में नकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के नकार का लोप विकल्प से हो। जहाँ लोप नहीं हुआ वहाँ हे ब्रह्मन्। अन्यत्र हे ब्रह्म। प्रश्न यह है कि 'न लुमताङ्गस्य' सूत्र का नपुंसक लिङ्ग संबोधन में वैकल्पिक अनित्यत्व होता है, अतः एक पक्ष में 'न ङिसंबुद्धयोः' से न लोप का निषेध। अन्यत्र नलोप, इस प्रकार दो रूप सिद्ध हैं, अतः वार्तिक फल चिन्त्य है। अहन् शब्द से सु। स्वमोर्नपुंसकात् से सु का लुक्। अहन् से रुत्व प्राप्त था उसका अपवाद 'रोऽसुपि' इससे सुप्-भिन्न में रेफ हो जायगा, प्रत्ययलक्षणत्वेन सुप्त्व लाने में न लुमताङ्गस्य से निषेध हो जायगा। रेफ खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग, अहः। रेफादेश और रुत्व में क्या भेद है? अहर्भाति यहाँ रुत्व होने पर हशिच से उकार हो जायगा, अहोभाति हो जायगा। द्विवचन में अहन्-औ। नपुंसकाच्च, से शी आदेश, 'विभाषा ङिश्योः' से विकल्पेन उपधा अकार का लोप। अह्नी, पक्ष में अहनी। जस् में पूर्ववत् अहानि। द्वितीया में प्रथमावत्। अह्ना। अल्लोपोऽनः। भ्याम् के परे अहन्-भ्याम्।

(अहन्निति) अहन् यह लुप्तषष्ठीक है, तो यह अर्थ होगा। अहन् शब्द को रु आदेश हो, पदान्त में, स्वादिष्वसर्वनामस्थाने से पद संज्ञा, अलोन्त्यस्य से नकार को रु, हशिच, आद्गुणः। अहोभ्याम्। प्रश्न यह है कि—यहाँ अहः, अहोभ्याम् इत्यादि में 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' की अपेक्षा रोऽसुपि, अहन् दोनों असिद्ध हैं अतः नलोप प्राप्त है उसके निषेधार्थ वार्तिक है 'अह्नो नलोपप्रतिषेधः' अहन् शब्द के न लोप

धेयः । तदन्तस्यापि रुत्वरत्वे । दीर्घाणि अहानि यस्मिन् स दीर्घाहा निदाघः । इह हल्ङ्यादिलोपे प्रत्ययलक्षणेन असुपीति निषेधाद् रुः तस्यासिद्धत्वान्नान्तलक्षण उपधादीर्घः । संबुद्धौ तु हे दीर्घाहो निदाघ । दीर्घाहानौ दीर्घाहोभ्याम् । दण्डि दण्डिनी । इन्हन्निति दीर्घः ।

का प्रतिषेध हो । तो न लोप नहीं होगा, अहः अहोभ्याम् इत्यादि सिद्ध है । यहाँ भाष्यकारादि इस वार्तिक का खण्डन करते हुए 'अहन्' सूत्र की आवृत्ति करते हैं, 'पुनः पठनमावृत्तिः' अर्थात् 'हलन्त्यम्' के समान दो बार पढ़ते हैं, एक से नलोपाभाव, और द्वितीय अहन् से रु आदेश मानते हैं, वस्तुतः इस प्रक्रियागौरव की अपेक्षा वार्तिक मानना उचित है ।

(तदन्तेति) 'पदस्य' के अधिकारस्थ रत्व रुत्व विधायक ये दोनों सूत्र हैं, अतः 'पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्यापि' इससे तदन्त को भी अर्थात् अहन् शब्द जिसके अन्त पर है उसको भी रत्व रुत्व होंगे । तो दीर्घाणि अहानि यस्मिन् सः अन्य पद प्रधान बहुव्रीहि समास दीर्घाहन् सु, हलन्तत्वात्, हल्ङ्याभ्यो से सु लोप। 'रोऽसुपि' से रेफ प्राप्त था 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' से सु लोप को मानकर सुप् परे है, अतः रेफ नहीं होगा, किन्तु अहन् से रु होगा, वह सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ की दृष्टि में असिद्ध है अतः नान्त लक्षण उपधा दीर्घ होगा । उकार इत् । खरवसानयोः से विसर्ग । दीर्घाहाः । सम्बोधन में असम्बुद्धौ कहा है अतः दीर्घ नहीं होगा । हशि च से उकार गुण हे दीर्घाहो निदाघ, रुत्वादेश का फल दिखाने के लिये निदाघ कहा है । औ जस् आदि में सर्वनामस्थाने से उपधादीर्घ, 'इन हनपूषा० सौच' से नियम क्यों नहीं लगता । क्योंकि यहाँ हन् है, अर्थवद् ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम् अर्थवान् हन् के ग्रहण में अनर्थक अहन् शब्द के हन् का ग्रहण नहीं होगा । अतः दीर्घ हो जायगा । दीर्घाहानौ दीर्घाहानः । समान पद नहीं है अतः णत्व नहीं होगा । भ्याम् आदि में अहन् से रु । हशि च आद्गुण । दीर्घाहोभ्याम् ।

दण्डीनि। बहुवृत्रघ्नी अस्यतेरौणादिके ऋच् प्रत्यये। असृक् असृग्। असृजी असृञ्जि २। पद्दन्निति वा असन्। असानि। अस्ना, असृजा।

डो, विभाषा ङिश्योः। दीर्घाह्नि दीर्घाहनि। दण्डिन् शब्द से सु। स्वमोर्नपुंसकात्। न लुमताङ्गस्य से प्रत्यय लक्षण का निषेध होने से सु परे नहीं है, अतः 'सौ च' से उपधादीर्घ नहीं होगा। नपुंसकाच्च। दण्डिनी। जस् में। जश्शसोः शिः। शिसर्वनामस्थानम्। इन् हन् पूषार्यम्णां शौ से उपधादीर्घ। दण्डीनि। शेषं पुंवत्। इसी प्रकार स्रग्विन्, वाग्मिन्, बहुवृत्रहन् के रूप जानना। सु लोप। न लोप। बहुवृत्रह औ में। नपुंसकाच्च। अल्लोपोऽनः। होहन्तेर्ञ्णिन्नेषु से हकार को घकार बहुवृत्रघ्नी। हन्तेः अत्पूर्वस्य का नियम है अतः णत्व नहीं होगा। बहुवृत्रहाणि। जश्शसोः शिः। शिसर्वनामस्थानम्। इन् हन् पूषार्यम्णां शौ से उपधादीर्घ। एकाजुत्तरपदे णः से णकार। बहुवृत्रहाणि। इसी प्रकार बहुपूषन्, बह्वर्यमन् का साधुत्व जानना। असृज् शब्द अस् धातु से औणादिक ऋज्। सु लोप। जश्त्वचर्त्व। असृक् असृग् असृजी असञ्जि। शस् में विकल्प से असन् आदेश। जश्शसोः शिः। शिसर्वनामस्थानम्। सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ से उपधादीर्घ। असानि। पक्ष में असृञ्जि। टा में असन् आदेश, अल्लोपोऽनः। अस्ना। असृजा। असभ्याम्, असृग्भ्याम् इत्यादि। ऊर्क् जश्त्वचर्त्व।

टिप्पणी—नञ् पूर्वक सृज धातु से क्विप् करके असृग् शब्द भट्टोजि दीक्षित ने माना है, उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है—असृज् सु, सु का लुक्। क्विन् प्रत्ययस्य कुः से पदान्त में कुत्व प्राप्त था, उसका चोः कुः बाधकर प्राप्त था, उसको बाधकर व्रश्च भ्रस्ज० से षकार हो गया, उस मूर्धन्य षकार को बाह्य प्रयत्न साम्य से विवार महाप्राण प्रयत्नवान् षकार को विवार महाप्राण प्रयत्नवान् खकार क्विन् प्रत्ययस्य कुः से हुआ। जश्त्व चर्त्व। असृक्, यहाँ असृज से क्विन् नहीं है, तो कुत्व कैसे ? क्विन् प्रत्ययो यस्मात् इस बहुव्रीहि समास से क्विन्नन्त है, क्योंकि सृज से क्विन् प्रत्यय का विधान है। अतः असृज भी क्विन्नन्त है, तो फिर विश्वसृज् शब्द में भी कुत्व होना चाहिये; विश्वसृट् विश्वसृड् नहीं

असभ्याम्, असृग्भ्यामित्यादि। ऊर्क्, ऊर्ग्। ऊर्जी ऊर्न्जि। नरजानां संयोगः। बहूर्जिनुम् प्रतिषेधः अन्त्यात्पूर्वो वा नुम्। बहूर्ञ्जि, बहूर्ञ्जि वा कुलानि। त्यत्, त्यद् त्ये त्यानि। एवं तद् यद् एतद्।

ऊर्ग्। संयोगान्त लोप प्राप्त था। 'रात्सस्य' नियम से उसका बाध हो जायगा। क्योंकि रेफ से पर सकार का ही लोप हो जाता है, ऊर्जी, जस् शस् में जश्शसोः शिः शिसर्वनामस्थानम्। झलन्तत्वात् नपुंसकस्य झलचः से नुम्। ऊर्ञ्ज। यहाँ ञ् र् ज का संयोग है, क्योंकि नुम् जो होगा वह मिदचोऽन्त्यात्परः से अन्त्य अच् ऊकार से पर होगा। नकार को अनुस्वार झल परक न होने से नहीं होगा। रेफ परे है। नकार रेफ का संयोग है अतः श्चुत्व भी नहीं होगा। नरजानां संयोगः यह सिद्ध कथन मात्र है। बहूर्क् बहूर्ग्। बहूर्जी। जस्: जश्शसोः शिः। 'बहूर्जि नुम् प्रतिषेधः अन्त्यात् पूर्वो वा नुम्' बहूर्ज, शब्द में नुम् का प्रतिषेध हो। किन्तु अन्त्य वर्ण जकार से पूर्व विकल्प से नुम् हो। तो 'ज' से पूर्व नुम् हुआ। नश्चापदान्तस्य की दृष्टि में श्चुत्व असिद्ध है, अतः नुम् के नकार को अनुस्वार। अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः से ञकार। तो र ञ जानां संयोगः है, बहूर्ञ्ज। पक्ष में बहूर्जि। त्यद् शब्द सु। स्वमोर्नपुंसकात् से सु का लुक्। न लुमताङ्गस्य से प्रत्यय लक्षण का निषेध। अतः विभक्ति पर नहीं है, इसलिए त्यदादीनामः नहीं लगेगा। वावसाने। त्यद् त्यत्। औ में। त्यदादीनामः।

होंगे। ठीक है, भाष्यकार ने रज्जुसृड्भ्याम् का प्रयोग सृजिदृशोर्झल्यमकिति सूत्र में किया है इससे विश्वसृडादि में कुत्व नहीं होगा। अथवा 'सृजियज्योः पदान्ते षत्वं कुत्वापवादः। इस अपूर्व वचन को मानकर सब प्रयोग हो जायँगे। स्रग् ऋत्विक् शब्द का निपातन से कुत्व होगा। असृज् शब्द सृज् शब्द से प्रकृति प्रत्यय भेद से सर्वथा भिन्न है। परंतु इस भट्टोजि दीक्षित के प्रयास से प्रयोग वैषम्य सूत्र लाघव तो कहीं पर है, किन्तु छात्रोंको भ्रमजाल में डालना और उनका समय नष्ट करना मात्र फल है।

अन्वादेशे तु एनत्। वेभिद्यतेः क्विप्, वे भिद्-त् वेभिदी वेभेदि।
तिर्यक् (ग) तिरश्ची, तिर्यञ्चि। पूजायां तु तिर्यङ् तिर्यञ्ची तिर्यञ्चि।

नपुंसकाच्च, आद्गुणः। त्ये। जस्-त्यदादीनामः। जश्शसोः शिः। नपुंसकस्य झलचः। शि सर्वनामस्थानम्। सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ से उपधादीर्घ। त्यानि। द्वितीया में प्रथमावत्। तृतीयादि में पुंवत्। एवं तद् यद् एतद् के भी रूप, साधुत्व जानना। एतद् शब्द के अन्वादेश में विशेष है। द्वितीया टौस्वेनः से एन आदेश होगा। अन्य कार्य पूर्ववत्। एनत् एनद् एने एनानि। एनेन एनयोः इत्यादि पुंवत्। वेभिद्। यङन्त वेभिद्य से क्विप्। क्विप् का पूर्वोक्त प्रक्रिया से लोप। अतो लोपः, यस्य हलः से यकार का लोप। कृदन्तत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा। वेभिद् सु। स्वमोर्नपुंसकात्। वावसाने। वेभिद् वेभित्। नपुंसकाच्च। वेभिदी। वेभिद् जस्। जश्शसोः शिः। झलन्तत्वात् नुम् प्राप्त था। अल्लोप का 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' से स्थानिवद्भाव हो जायगा, अतः झलन्त नहीं है। अस्तु। अल्लोप का जो स्थानिवद्भाव हुआ है, उसे मानकर अजन्तत्वात् नुम् हो जाय। अजन्तता लाने में अल् विधि है अतः अनल्विधौ से निषेध हो जायगा। अचः परस्मिन् का विषय नहीं है। स्थानिभूत अकार से पूर्वत्वेन दृष्ट दकार को विधि कर्तव्य नहीं है। एवम्। वेभिदि। द्वितीया में प्रथमावत्। इसी प्रकार चेच्छिद् इत्यादिकों के रूप जानना। तिरस् अञ्च् सु। सुलुक्। अनिदितां से नलोप। तिरसस्तिर्यलोपे से तिरि आदेश, इकोयणचि, चोः कुः तिर्यक तिर्यग्। औ में नपुंसकाच्च, से शी। भसंज्ञा। 'अचः' से अल्लोप। अल्लोप हुआ है, अतः तिरि आदेश नहीं होगा। तिरश्ची, स्तोः श्चुना श्चुः, से शकार। जस् में जश्शसोः शिः। शि सर्वनामस्थानम्। नपुंसकस्य झलचः, से नुम्, नश्चापदान्तस्य० से अनुस्वार, अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः, तिर्यञ्चि। पूजा अर्थ में 'नाञ्चेः पूजायाम्' से न लोप का निषेध। स्वमोर्नपुंसकात् से सु लुक्। संयोगान्तस्य लोपः से च लोप। क्विन् प्रत्ययस्य कुः से न को ङ्। तिरसस्तिर्यलोपे से तिरि आदेश

एवम् प्रकृतिभावावङ्पूर्वरूपैः गो अक् गोअग्, गवाक् (ग्) गोक् गोग्। पूजायां गोअङ् गवाङ् गोङ् प्रकारैः कल्पनीयानि। यकृत्, (द्)

यण्। तिर्यङ्। नपुंसकाच्च से शी, अचः नहीं लगेगा, क्योंकि लुप्त नकार नहीं है, नाञ्चेः पूजायाम् से निषेध है, तिर्यञ्ची, तिर्यञ्चि, शेषं पुंवत्। गाम् अञ्चति। गो पूर्वक अञ्च। अञ्च धातु गति पूजा अर्थ में है। पूजाअर्थ में न लोप का निषेध, गति अर्थ में न लोप होगा। गो अच् सु। स्वमोर्नपुंसकात् से सु लुक् गो अच् चोः कुः जश्त्व चर्त्व, सर्वत्र विभाषा गोः, से विकल्पेन प्रकृतिभाव, उसके विकल्प में अवङ् स्फोटायनस्य से पाक्षिक अवङ्। उसके अभाव में एङः पदान्तादति से पूर्वरूप। इस प्रकार गो अक् गवाक् गोक् चर्त्वाभाव में गो अग्, गोवाग् गोग्। पूजा अर्थ में सु लुक्, संयोगान्त लोप, प्रकृति-भाव, अवङ् पूर्वरूप पूर्वोक्तवत्। गोअङ् गवाङ् गोङ्। द्विवचन में शी आदेश। गति अर्थ में लुप्त नकार है अतः अचः से धातु के अकार का लोप हो जायगा अच् नहीं परे है इसलिए अवङ् आदि का विकल्प नहीं होगा। गोची। पूजा अर्थ में न लोप नहीं होगा, इसलिये अचः से अल्लोप भी नहीं होगा। तो अत् परे है, इसलिये प्रकृतिभाव, अवङ् पूर्व रूप होंगे। गो अञ्ची गवाञ्ची गोञ्ची। जस् में जश्शसोः शिः, नपुंसकस्य झलचः, अनुस्वार परसवर्ण, गोअञ्च् पूजा अर्थ में न लोप न होने से गोअञ्च् उभयत्र समस्वरूप है। अतः प्रकृतिभाव अवङ् पूर्वरूप से गो अञ्चि गवाञ्चि गाञ्चि, गति पूजा अर्थ में वैषम्याभाव है। द्वितीया में प्रथमावत्। इसी पूर्वोक्त प्रक्रिया से सब विभक्तियों में यथास्थान प्रकृतिभावादि की कल्पना कर लेना। विशेष टिप्पण में स्फुट है।

टिप्पणी—गो पूर्वक अञ्च, गो अञ्च प्रकृतिभाव, अवङ् के विकल्प में पूर्वरूप करने से, गो अक् गवाक् गोक्। चर्त्व के विकल्प से ६, उक्त प्रक्रिया से पूजा अर्थ में तीन। इस प्रकार सु अम् में नौ २। द्विवचन गति अर्थ में अल्लोप होने से गोची। पूजा अर्थ में न लोप न होने से

यकृती, यकृन्ति २ पद्दन्निति वा यकन्। यकानि। यक्ना, यकृता।

यकृत् शब्द सु स्वमोर्नपुंसकात् से सु का लुक्। जश्त्व, चर्त्व विकल्प से, यकृत् यकृद्, नपुंसकाच्च, यकृती। जस्, जश्शसोः शिः। नपुंसकस्य झलचः। अनुस्वार परसवर्ण। यकृन्ति। शस् में विकल्प से पद्दनो मास० से यकन् आदेश, जश्शसोः शिः। शि सर्वनामस्थानम्। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से उपधा दीर्घ। यकानि। पक्ष में

अल्लोप नहीं होगा। अतः अत् परे है, गो अञ्ची गवाञ्ची गोञ्ची। द्वितीया में प्रथमावत्। तृतीया में गति अर्थ में गोचा। पूजा में गोअञ्चा गवाञ्चा गोञ्चा। गति में नुम् न होने से। गो अग्भ्याम् गवाग्भ्याम् गोग्भ्याम्। यह प्रकृतिभाव अवङ् पूर्वरूप का विकल्प अच्सन्धि में कहे हुए गो अग्रम्, गवाग्रम् गोग्रम् की प्रक्रियानुकूल कल्पना होती है। इसी आधार पर कहा है।

> गवाक् शब्दस्य रूपाणि क्लीबेऽर्चागतिभेदतः।
> असन्ध्यवङ् पूर्वरूपे नवाधिकशतं मतम्।
> स्वम्सुप्सु नव, षड्भादौ षट्केस्युस्त्रीणि जश्शसोः।
> चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय।

पूर्व श्लोक का अर्थ स्पष्ट है। द्वितीया का, सुअम् सुप् में प्रत्येक के नव-नव। और षट्के भादौ, भकारादि छ में, भ्याम् भिस् भ्याम् भ्यस्, भ्याम् भ्यस्। इन छ में प्रत्येक के छ २ होंगे। जस् शस् में तीन तीन और अवशिष्ट दश विभक्तियों में, औ, औ, टा ङे ङसि ङस् ओस् आम् ङि ओस् इन दश में प्रत्येक के चार-चार होंगे, इस प्रकार सर्व संकलन से (१०९) एक सौ नौ होंगे।

२७ = सु अम् सुप् में, नौ को तीन से गुणन से।
३६ = भादि छ में प्रत्येक के छ। छ को छ से गुणा करने पर।
६ = तीन तीन जस् शस् में, २ को तीन से गुणन से।
४० = अवशिष्ट दश में चार-चार दश को चार से गुणन करने पर।

१०९ सर्वसंकलन से।

जस् वत्, यकृन्ति। टा में। विकल्पेन यकन् आदेश। अल्लोऽपोऽनः।

यह गणना सूत्रानुसारी है, वस्तुतः पूजा अर्थ में 'ङ्णोः कुक् टुक् शरि' से कुक् करने पर उकार उच्चारणार्थ अन्त्य ककार इत्, कुक् के अवशिष्ट ककार को 'चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्', से ककार को द्वितीय वर्ण खकार हो जायगा। अस्तु यहाँ वार्तिक को बाधकर 'झलां जशोऽन्ते' से जश् गकार क्यों नहीं होता! जश् विधायक की दृष्टि में कुक् असिद्ध है, उसकी दृष्टि में कुक् हुआ ही नहीं। तो इस प्रकार गति में तीन, पूजा अर्थ में नव। गत्यर्थ में 'चयो द्वितीयाः' क्यों नहीं लगता ?, वार्तिक की दृष्टि में चर्त्व असिद्ध है वह गकार ही देखता है। इस प्रकार वार्तिककार के तीन रूपों को मिलाकर एक सौ बारह होंगे, इन एक सौ बारह में अनचिच से द्वित्व, अणो-प्रगृह्यस्यानुनासिकः से अनुनासिक विकल्प होने से पाँच सौ सत्ताइस रूप होंगे। कहा है।

ऊह्यमेषां द्विर्वचनानुनासिकविकल्पनात्।
रूपाणयश्वाद्वि भूतानि (५२७) भवन्तीति मनीषिभिः।

१८ प्रथमा के सु में गति और पूजा अर्थ में नव कहे हैं उन नवों के अन्त्य वर्ण को अनचिच से द्वित्व करने पर अठारह होंगे।

७ प्रथमा द्विवचन, गति में एक, पूजा अर्थ में अनचिच से अद्वित्व, संकलनसे सात।

१२ जस में तीनों के नकार को अनचिच से विकल्पेन द्वित्व ६, इन छहों में अणोऽप्रगृह्यस्य से अनुनासिक विकल्प से, बारह होंगे।

३७ सर्व संकलन से प्रथमा में सैंतीस।

३७ इसी प्रकार द्वितीया में भी सैंतीस।

तृतीया के एक वचन में पूजा अर्थ के तीनों में अद्वित्व होने से ६, एक गति अर्थ में।

१४ इन सातों में अणोऽप्रगृह्यस्य से अनुनासिक विकल्प होने से चौदह।

शकानि शकृन्ति, शकृता शक्ना। ददत् (द्) ददती। **वा नपुंसकस्य** ।७।१।७९। अभ्यस्तात्परो यः शतृप्रत्ययस्तदन्तस्य क्लीबस्य नुम् वा स्यात् सर्वनामस्थाने। ददन्ति, ददति। तुदत्। **आच्छीनद्योर्नुम्** ।७।१।८०। अवर्णान्तादङ्गात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्याङ्गस्य नुम् वा स्याच्छीनद्योः परतः। तुदन्ती। तुदती झलन्तत्वान्नुम्। तुदन्ति। भात्। भान्ती

यक्ना। पक्ष में यकृता। शकृत् शब्द। यकृत् शब्द के समान। शस् में शकन् आदेश उपधा दीर्घ, शकानि पक्ष में शकृन्ति। तृतीया में पूर्ववत् शक्ना, शकृता इत्यादि। ददत् सु, सु का लुक्, जश् वावसाने ददत् ददद्। 'नपुंसकाच्च' से शी। ददती। ददत् जस्। जश्शसोः शिः। शिसर्वनामस्थानम्। नपुंसकस्य झलचः से नित्य नुम् प्राप्त था, उसको बाधकर।

(वेति) वा नपुंसकस्य। अभ्यस्त से पर जो शतृ प्रत्यय तदन्त जो क्लीब अर्थात् शतृ प्रत्ययान्त जो नपुंसक लिङ्ग शब्द उससे विकल्प से नुम् हो सर्वनामस्थान के परे। तो शतृ प्रत्ययान्त नपुंसक लिङ्ग ददत् शब्द है, उससे सर्वनामस्थान संज्ञक शि परे है, नुम् हो गया। अनुस्वार पर सवर्ण ददन्ति पक्ष में ददति। तुदत् सु। स्वमोर्नपुंसकात्, जश्त्व चर्त्व। तुदत् तुदद्। तुदत् औ। 'नपुंसकाच्च' से शी आदेश, तुदत् शी।

(आच्छीति) आच्छीनद्योर्नुम्। अवर्णान्त अङ्ग से पर जो शतृ प्रत्यय का अवयव तदन्त जो अङ्ग उसके विकल्प से नुम् हो, शी और नदी के परे। अर्थात् शी और ङीप् ङीष् आदि नदी संज्ञक के परे। तो शतृ प्रत्यय, अवर्णान्त तुद अङ्ग से पर है क्योंकि 'तुदादिभ्यः शः' से श प्रत्यय होने से अवर्णान्त अङ्ग है उससे शतृ प्रत्यय पर है तदन्त अङ्ग तुदत् है इससे नुम् होगा, यहाँ शी परे है। मिदचोन्त्यात्परः से दकार गत अकार से पर विकल्पेन नुम् हुआ। नश्चापदान्तस्य झलि, अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः। तुदन्ती। नुम् के अभाव में तुदती। जस् में जश्शसोः शिः। नपुंसकस्य झलचः। तुदन्ति। आच्छी-

भाती भान्ति। पचत्। शप्श्यनोर्नित्यम् ।७।१।८१। स्पष्टम्। पचन्ती, पचन्ति। दीव्यत् दीव्यन्ती दीव्यन्ति। स्वप् स्वब् स्वपी। प्रतिपदोक्तत्वान्नुमः प्रागप्तृन्निति दीर्घः। स्वाम्पि। अपोभि स्वद्भ्याम् स्वद्भिः।

दयोर्नुम् के दीर्घ का उदाहरण, भात् भाद् पूर्ववत्। भात् औ यहाँ आकारान्त भा अङ्ग से शतृ प्रत्यय है तदवयव तकार है उससे नुम् होगा, मिदचोऽन्त्यात्परः से आकारोत्तर नुम्। अनुस्वार परसवर्ण, भान्ती-भाती। भान्ति। पचन् सु। स्वमोर्नपुंसकात् से सु का लुक्। जश्त्व, चर्त्व। पचत् पचद्। औ में, पचत् औ।

(शप्श्यनोरिति) शप्श्यनोर्नित्यम्। शप् श्यन् प्रत्यय के अकार से पर शतृ प्रत्यय हो, तो तदन्त अङ्ग से नित्य नुम् होगा। नदी के परे। पच् धातु। कर्तरि शप् से शप् प्रत्यय होगा। क्योंकि शतृ प्रत्यय शित् होने से 'तिङ् शित्०' से सार्वधातुक है। तो यहाँ शप् से पर शतृ प्रत्यय है अतः नित्य नुम् हो गया शी परे है अन्य कार्य पूर्ववत्। पचन्ती। जस् में, जश्शसोः शिः। नपुंसकस्य झलचः। पचन्ति। दीव्यत् शब्द में दिवादिभ्यः श्यन् से श्यन् हुआ है। अतः श्यन् से पर शतृ प्रत्यय है तदन्त दीव्यत् से शी के परे नित्य नुम् होगा। दीव्यत् दीव्यद्। दीव्यन्ती। दीव्यन्ति। स्वप्-सु। सुलुक्। जश्त्व चर्त्व। स्वप् स्वब्। स्वपी। जस् में 'जश्शसोः शिः।' 'शि सर्वनामस्थानम्' से सर्वनामस्थान संज्ञा। परत्वात् नित्यत्वात्, 'नपुंसकस्य झलचः' से प्राप्त नुम् को बाधकर 'प्रतिपदविधिकतया शीघ्रोपस्थितिकं प्रतिपदोक्तम्' इस प्रतिपदोक्त का लक्षण मानकर अप्तृन् तृच् से प्रथम दीर्घ होगा, तदनन्तर नुम् अनुस्वार परसवर्ण। अप् शब्द के कथन मात्र से शीघ्र उपस्थित होता है। स्वाम्पि। कई आचार्य भाष्यानुसारी निरवकाशत्वं प्रतिपदोक्तत्वम् मानकर 'आपः' में दीर्घ के सावकाश होने से नुम् को मानते हैं अतः उपधा अकार न होने से दीर्घ नहीं होगा स्वम्पि होगा। भकारादि भ्यामादिक में 'अपोभि' से पकार को तकार। पदान्तत्वात् जश्त्व, स्वद्भ्याम्, स्वद्भिः इत्यादि।

धनेरुस्। रुत्वम्। धनुः। धनुषी। सान्तेति दीर्घः। नुम्विसर्जनीयेति षत्वम्। धनूंषि। धनुषा। धनुर्भ्याम्। एवं चक्षुर्हविरादयः। पिपठिषतेः क्विप्। र्वोरिति दीर्घः। पिपठीः, पिपठिषी। अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वाज्झलन्तलक्षणो नुम् न। स्वविधौ स्थानिवत्त्वाभावादजन्तलक्षणोऽपि नुम् न। पिपठिषि। पिपठीर्भ्यामित्यादि। पयः पयसी पयांसि। पयोभ्याम्।

धन से औणादिक उस् प्रत्यय, प्रातिपदिकत्वात् सु प्रत्यय। लुक् रुत्व विसर्ग। धनुः। रुत्व कर्तव्य रहते 'आदेशप्रत्यययोः' असिद्ध है। औ में नपुंसकाच्च। आदेशप्रत्यययोः से षत्व। धनुषी। जस्। जस् को शि आदेश, शि की सर्वनामस्थान संज्ञा, 'नपुंसकस्य झलचः' से नुम्। 'सान्तमहतः संयोगस्य से उपधा दीर्घ। 'नुम् विसर्जनीय शर्व्यवायेऽपि' से मूर्धन्यादेश। 'नश्चापदान्तस्य०' से अनुस्वार, धनूंषि। द्वितीया में प्रथमावत्। धनुर्भ्याम्, धातु का रेफ नहीं है, अतः 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' से दीर्घ नहीं होगा। इसी प्रकार चक्षुष् हविष् के रूप जानना। चक्षुः चक्षुषी, चक्षूंषि। हविः हविषी हवींषि। पिपठिस् सन्नन्त से क्विप् प्रत्यय। अतो लोपः। वेरपृक्तस्य। पिपठिस् से स्वादिक सु का लुक्। षत्व असिद्ध है अतः ससजुषोरुः। यहाँ धातु संबन्धी इक् है, अतः 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' से दीर्घ होगा, खरवसानयोर्विसर्जनीयः। पिपठीः पिपठिषी। जस्। जस् को शि आदेश। शि की सर्वनामस्थान संज्ञा। झलन्तत्वात् 'नपुंसकस्य झलचः' से नुम् प्राप्त है। 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' पर निमित्तक अच् के स्थान में आदेश-लोप है, क्योंकि 'लोपोऽप्यादेशः' उससे पूर्वत्वेन दृष्ट झलन्त के नुम् कर्तव्य है, अतः अकार के स्थानिवद्भाव होने से झलन्तता नहीं है अकार मानने में अनल्विधौ से निषेध हो जायगा। अतः। पिपठिषि होगा। एवं द्वितीया में भी, पिपठीः पिपठिषी पिपठिषि। भ्याम् के परे षत्व असिद्ध है अतः। सकार को रु। उत्। "र्वोरुपधाया दीर्घ इकः" से दीर्घ। पिपठीर्भ्याम्, इत्यादि। पयस् शब्द सु का लुक् सकार को रुत्व विसर्ग। पयस् औ को शी आदेश, पयसी। जस्। शि आदेश, झलन्तत्वात्

सुपुम् सुपुंसी, सुपुमांसि। अदः विभक्तिकार्यम्, उत्वमत्वे। अमू अमूनि। शेषं पुंवत्। इति हलन्ता नपुंसकलिङ्गाः।

अथ अव्ययप्रकरणम्

स्वरादिनिपातमव्ययम् ।१।१।३७। स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञाः

नुम्। सान्तमहतः संयोगस्य से अकार दीर्घ। अनुस्वार, पयांसि। भ्याम् के परे। ससजुषोरुः। हशि च। आद्गुणः। पयोभ्याम्। सुपुंस्-सु। सु का लुक्। संयोगान्तस्य लोपः सलोप। सुपुम्। नपुंसकाच्च। सुपुंसी, जस्–जश्शसोः शिः। पुंसोऽसुङ् से सकार को असुङ् क्योंकि सर्वनामस्थान शि पर है उगित्वात् उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः से नुम्। सान्तमहतः संयोगस्य से उपधा दीर्घ। नश्चापदान्तस्य झलि। सुपुमांसि। द्वितीया में प्रथमावत्। अदस्-सु। स्वमोर्नपुंसकात् से सु का लुक्। सान्त है अतः 'अदसोऽसेर्दादु दोमः' नहीं लगेगा नलुमताङ्गस्य से निषेध होने से प्रत्यय लक्षण नहीं होगा। अतः त्यदादीनामः नहीं लगेगा। रुत्व विसर्ग। अदः। द्विवचन में त्यदादीनामः। अतोगुणे। अद औ, विभक्ति कार्य, प्रथम होंगे। क्योंकि 'अदसोऽसेर्दादुदोमः' असिद्ध है। नपुंसकाच्च। आद्गुणः। अदे। सिद्ध होने पर। अदसोऽसेः० से एकार को दीर्घ ऊकार और द को म। अमू। जस् में त्यदादीनामः अतोगुणे। जश्शसोः शिः। नपुंसकस्य झलचः। सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ। अदानि सिद्ध होने पर 'अदसोऽसेर्दादु दो मः' से आकार को ऊकार और द को म। अमूनि। द्वितीया में प्रथमावत्। अन्य विभक्तियों में पुंवत्। इति हलन्त नपुंसकलिङ्गप्रकरणम्।

अथ अव्ययप्रकरणम्

(स्वरादीति) स्वरादिनिपातमव्ययम्। स्वरादि-स्वर् अन्तर् प्रातर् इत्यादि और निपात अद्रव्यार्थक च वा ह इत्यादिक अव्यय संज्ञक होते हैं। स्वरादि और निपात के पृथक् २ पढ़ने का तात्पर्य यह है कि स्वरादि सत्ववाचक हों अथवा असत्त्व वाचक हों दोनों की अव्यय संज्ञा होगी, क्योंकि 'चादयोऽसत्त्वे' असत्त्व वाचक हों चादिक निपात

स्थुः। स्वर्, अन्तर्, प्रातर्, पुनर्, उच्चैस्, नीचैस्, ऋते, युगपत्, आरात्, पृथक्, ह्यस्, श्वस्, दिवा, रात्रौ, सायम्, चिरम्, मनाक्, ईषत्, जोषम्, तूष्णीम्, बहिस्, समया, निकषा, स्वयम्, वृथा, नक्तम्, नञ्, इद्धा, अद्धा, सामि, सना, सनत्, सनात्, तिरस्, अन्तरा, अन्तरेण, शम्, सहसा, विना, नाना, स्वस्ति, स्वधा, अलम्, वषट्, श्रौषट्, वौषट्, अन्यत्, अस्ति, दोषा, मृषा, मिथ्या, मुधा, पुरा, मिथो,

---

कहाते हैं। अब प्रसिद्ध–सर्वसाधारण प्रयुक्त स्वरादि निपातों का परिगणन मूल में है, और अप्रसिद्ध क्वाचित्क प्रयुक्त स्वरादि निपात मय अर्थ के टिप्पणी में हैं।

स्वर् स्वर्गे, परलोके च। अन्तर् मध्ये। प्रातर् प्रत्यूषे। पुनर् अप्रथमे, विशेषे च। उच्चैस् महस् महति। नीचैस् अल्पे। ऋते वर्जने। युगपत् एककाले। आरात् दूरसमीपयोः। पृथक् भिन्ने। ह्यस् अतीतेऽह्नि। दिवा दिवसे। रात्रौ निशि। सायम् निशामुखे। चिरम् बहुकाले। मनाक् ईषत् इदं द्वयमल्पे। जोषम् सुखे मौने च। तूष्णीम् मौने। बहिस् बाह्ये। समया समीपे मध्ये च। निकषा अन्तिके। स्वयम् आत्मनेत्यर्थे। वृथा व्यर्थे। नक्तम् रात्रौ। नञ् निषेधे। 'तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः'। इद्धा प्राकाश्ये। अद्धा स्फुटावधारणयोः, तत्त्वातिशयत्वेश्च। सामि अर्धे जुगुप्सिते च। सना–सनत्–सनात्, एतत् त्रयं नित्ये। तिरस् अन्तर्धौ, तिर्यगर्थे पराभवे च। अन्तरा मध्ये, विनार्थे च। अन्तरेण वर्जने। वस्तुतस्तु भाष्यादौ अन्तरा अन्तरेण एतौ निपातायुक्तौ, स्वरादिषु पाठः प्रक्षिप्तः। शम् सुखे। सहसा आकस्मिकाविमर्शयोः। विना वर्जने। नाना अनेकविनार्थयोः। स्वस्ति मङ्गले। स्वधा पितृ हविर्दाने। अलम् भूषण-पर्याप्त-शक्ति-वारणनिषेधेषु। वषट् श्रौषट् वौषट् एतत् त्रयं देवहविर्दाने। अन्यत् अन्यार्थे। अस्ति सत्तायाम्। 'उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च' इति चाद्यन्तर्गणस्थादेव अस्ति शब्दस्य विभक्तिप्रतिरूपस्य अव्ययत्वसिद्धेरिह स्वरादि

मिथस्, प्रायः, मुहुः, अभीक्ष्णम्, साकम्, सार्धम्, नमस्, धिक्, अम्, आम्, मा, माङ्। आकृतिगणोऽयम्। च, वा, ह, अह, एव, एवम्,

गणे तस्य पाठो व्यर्थ इति मतुप्सूत्रे भाष्यकैयटयोः स्थितम्। दोषा रात्रौ। मृषा मिथ्या इदं द्वयं वितथे। मुधा व्यर्थे। पुरा अविरते, चिरातीते, भविष्यदासन्ने च। मिथो मिथस् इदं द्वयं रहसि सहार्थे च। प्रायस् बाहुल्ये। मुहुस् पुनरर्थे। अभीक्ष्णम् पौनःपुन्ये। साकम् सार्धम् इदं द्वयं सहार्थे। नमस् नतौ। धिक् निन्दायाम्। अम् शैघ्र्ये अल्पे च। आम् अङ्गीकारे। मा माङ् एतौ निषेधे आकृतिगणोऽयम्।

अथ चादयः। "चः समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहारेषु। वा स्याद्विकल्पोपमयोरिवार्थेऽपि समुच्चये"। ह प्रसिद्धौ। अह अद्भुते, खेदे च। एव अवधारणे, 'अनवक्लृप्तौ च। एवम् उक्त परामर्शे। नूनम्

टिप्पणी—सुनुतर्-अन्तर्धाने। शनैस् क्रियामान्द्ये। ऋधक् सत्ये, वियोग् शैघ्र्य सामीप्य लाघवेषु च। अवस् बाह्ये। हेतौ निमित्ते। वत् इत्यनेन 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः, तत्र तस्येव। तदर्हम् इति वति प्रत्ययो गृह्यते, 'उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे' इति वतिस्तु न गृह्यते। वस्तुतस्तु तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' इत्येव सिद्धे 'वत्' ग्रहणं व्यर्थमेव। ब्राह्मणवत्, क्षत्रियवत् वतिप्रत्ययान्तस्योदाहरणम्। उपधा भेदे। ज्योक् काल भूयस्त्वे प्रश्ने, शीघ्रार्थे, सम्प्रति इत्यर्थे च। कम् वारिमूर्धनिन्दासुखेषु उपांशु अप्रकाशे, उच्चारणे, रहस्ये च। क्षमा क्षान्तौ। विहायसा आकाशे। प्रबाहुकम् समकाले, ऊर्ध्वार्थे च। प्रबाहिका इति पाठान्तरम्। आर्यहलम् बलात्कारे। शाकटायनस्तु आर्येति प्रतिबन्धे। हलमिति निषेधानुवादयोरित्याह। हिरुक् वर्जने। प्रताम् ग्लानौ। प्रशाम् समानार्थे। प्रतन् विस्तारे। आकृतिगणोऽयम्। तेन अन्येऽपि एवं जातीयकाः स्वरादिगणे ज्ञातव्याः। तद्यथा-कामम् स्वाच्छन्द्ये। प्रकामम् अतिशये। भूयस् पुनरर्थे। साम्प्रतम् न्याय्ये। परम् किन्त्वर्थे। साक्षात् प्रत्यक्षे, साचि तिर्यगर्थे सत्यम् अर्धाङ्गीकारे। मङ्क्षु-आशु इदं द्वयं शैघ्र्ये संवत् वर्षे। अवश्यम् निश्चये। सपदि शैघ्र्ये, बलवत् अतिशये। प्रादुस्-आविस् इदं

नूनम्, शश्वत्, युगपत्, भूयस्, चेत्, कच्चित्, किंचित्, यत्र, हन्त, माङ्, नञ्, यावत्, तावत्, स्वाहा, स्वधा, तम्, तथाहि, खलु, किल, अथो, अथ, सुष्ठु, स्म, उपसर्ग-विभक्ति-स्वरप्रतिरूपकाश्च अवदत्तम्

निश्चये, तर्के च। शश्वत् पौनःपुन्ये नित्ये, सहार्थे च। युगपत् एककाले भूयस् पुनरर्थे आधिक्ये च चेत् यद्यर्थे। कच्चित् इष्टप्रश्ने। यत्र अनवक्लृप्त्यमर्ष गर्हाश्चर्येषु। हन्त हर्षे विवादे अनुकम्पायां वाक्यारम्भे च। यावत् तावत् इदं द्वयं साकल्यावधिमानावधारणेषु। स्वाहा देवहविर्दाने। स्वधा पितृदाने। तुम् तुंकारे तथाहि निदर्शने। खलु निषेधवाक्यालंकारनिश्चयेषु। किल इवार्थे। वार्तायाम् अलीके च। अथो अथ इदं द्वयं मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्याधिकारप्रतिज्ञासमुच्चयेषु। अमौस्वरादावपि बोध्यौ। तेन मङ्गलवाचकस्य सत्वार्थत्वेऽपि अव्ययत्वम्। सुष्ठु प्रशंसायाम्, शोभनार्थे च। स्म अतीते पादपूरणे च। "उपसर्ग विभक्ति स्वर प्रतिरूपकाश्च" यह चादिगण का गणसूत्र है। उपसर्ग प्रतिरूप। अर्थात् उपसर्गवत् सर्वथा प्रतीयमान। जैसे—अवदत्तम्। यहाँ अव यह उपसर्ग प्रतिरूपक है परन्तु उपसर्ग नहीं है। अतः 'अच उपसर्गात्तः' से 'त' आदेश नहीं होगा। 'अवत्तम्' नहीं होगा। अव उपसर्ग से अवत्तम्, होगा। विभक्ति प्रतिरूपक–अहंकार अर्थ में 'अहम्' है, अहं शुभमोर्युस्

प्रकाशे। "अनिशम्, नित्यम्, सदा, अजस्रम्, सन्ततम्" एतत्पञ्चकं सातत्ये, उषा रात्रौ। रोदसि द्यावापृथिव्यर्थे। ओम् अङ्गीकारे ब्रह्मणि च। अ, उ, म्, चेति समाहारे ओम् शब्दः ब्रह्मविष्णुशिवात्मक ब्रह्मवाचकः। भूः पृथिव्याम्। भुवर् अन्तरिक्षे। झटिति, द्राक्, तरसा इदं त्रयं शैघ्र्ये। सुष्ठु प्रशंसायाम्। दुष्टु निकृष्टे। सु पूजायाम्। आः आश्चर्ये। कुत्सिते, ईषदर्थे च। अञ्ज सातत्ये, शीघ्रार्थेच। अस्तं विनाशे। स्थाने युक्तार्थे। ताजक् शैघ्र्ये। चिराय चिररात्राय चिरस्य चिरेण चिरं चिरात् इदं षट्कं विलम्बार्थकम्। वरम् ईषदुत्कर्षे। आनुषक् आनुपूर्व्ये। अनुषक् अनुमाने, अमेनः शीघ्रसांप्रतिकयोः। सुदि शुक्लपक्षे। वदि कृष्ण पक्षे। इति स्वरादयः।

अहंयुः, अस्तिक्षीरा। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अङ्ग, है, हे, भोः, अये, एकपदे। चादिरप्याकृतिगणः। तद्धितश्चासर्व-

से मत्वर्थीय युस् प्रत्यय है यदि अस्मद् शब्द का प्रथमैकवचन 'अहम्' मानेंगे, तो "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च" से मत् आदेश होकर 'मद्युः' हो जायेगा, 'विभक्ति' 'सुप् तिङ्' रूप होते हैं, सुबन्त विभक्ति का अहंयुः उदाहरण कहा। और तिङन्त विभक्ति प्रतिरूपक अस्ति क्षीरं यस्याः सा 'अस्ति क्षीरा' यहाँ तिङन्त प्रतिरूपक 'अस्ति' अव्यय है, यदि अस्ति को अस् धातु का मानें तो बहुव्रीहि समास नहीं होगा। स्वर प्रतिरूपक अ आ इत्यादि अव्यय हैं।

अ इति संबोधने। आ वाक्यस्मरणयोः। इ संबोधनजुगुप्सा-विस्मयेषु। ई उ ऊ ए ऐ ओ औ एतत्सप्तकं संबोधने। अङ्ग है हे भोः अये एते पञ्चापि संबोधने। एकपदे अकस्मादित्यर्थे। चादिर-प्याकृतिगणः।

(तद्धितश्चेति) तद्धितश्चासर्वविभक्तिः। चशब्दः अप्यर्थे। असर्वविभक्तिः तद्धितोऽपि अव्ययं स्यात्। सर्वा वचनत्रयात्मिका विभक्तिः

चादयः स्वल्प प्रसिद्धाः। कूपत् प्रश्ने, प्रशंसायाम् च। कुवित् भूयर्थे, प्रशंसायां च। नेत् शंकायाम्, प्रतिषेधविचारसमुच्चयेषु च। न ह प्रत्यारम्भे। माकि, माकिम्, नकिः इदं त्रयं वर्जने। त्वै विशेष वितर्कयोः, द्वै न्वै वितर्के। रै दाने, अनादरे च। श्रौषट् वौषट् देवहविर्दाने। आदर उपक्रम हिंसा कुत्सनेषु च। पशु सम्यगर्थे। शुकम् शैघ्रये। यथा-कथा च इति समुदितः अनादरे। पाट् प्याट् द्वावपि संबोधने। घ हिंसा प्रातिलोम्यपादपूरणेषु। विषु नानार्थे। युत् कुत्सायाम्। आतः इतोऽर्थे, चादिराकृतिगणः। तेन—यत् तत् द्वयं हेतौ। आहोस्वित् विकल्पे। सम् सर्वतोभावे। कम् पाद पूरणे, सुकम् अतिशये। अनुवितर्के। सम्वत् अन्तः करणे, आभिमुख्ये च। व पादपूरणे, इवार्थे च। चटु चाटु द्वयं प्रियवाक्ये। हुम् मत्सने। इव सादृश्ये। अद्यत्वे इदानीम् इत्यर्थे। इति चादयः।

विभक्तिः ।१।१।३८। परिगणनं कर्तव्यम्। तसिलादयः प्राक् पाशपः। शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः। अम् आम्, कृत्वोर्थाः, तसिवती, नानाञाविति। तेनेह न। पचतिकल्पम्, पचतिरूपम्। कृन्मेजन्तः

यस्मान्नोत्पद्यते, किन्तु एकवचनान्येवोत्पद्यन्ते स तद्धितोऽप्यव्ययं स्यात् इति। भावार्थ यह है कि नास्ति सर्वा विभक्तयो यस्मात्, यह वचनान्त-समास ठीक नहीं है। क्योंकि अव्यय से सातों विभक्तियाँ मानते हैं। द्वित्वैकत्वादि की प्रतीति नहीं है, तो एकवचन द्विवचन बहुवचन सूचक विभक्ति कैसे ? 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र के स्थानपर 'एकवचनम्। द्वयोर्द्विवचनम्, बहुषुबहुवचनम्, उत्सर्गतः एकवचन द्वित्वबहुत्वादि की अ-प्रतीति में भी सातों विभक्तियों में तीनों वचनों में एक वचन होगा। द्वित्वादि प्रतीति में 'एकवचनम्' के उक्त सूत्र बाधक होंगे अस्तु, परन्तु पचति कल्पम् में 'ईषदपरिसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' से कल्पप् प्रत्ययान्त से, पचतिरूपम् में 'प्रशंसायां रूपप्' से रूप प्रत्यय है, तो उक्त रूपप्रत्ययान्त से, उभय शब्दस्य द्विवचनं नास्ति, उभयो मणिः, उभये मणिः, उभये देवमनुष्याः, 'उभयोऽन्यत्र', अन्यत्र द्विवचनपरत्वाभावे उभयः' इति प्रतिपादक कैयट के मत से उभयशब्दमें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि ईषत् पचति, प्रशस्तं पचति इत्याद्यर्थ में द्विवचन बहुवचन नहीं होगा, अतः इनका भी अव्ययत्व हो जायगा, इसलिये वार्तिक है।

(परीति) परिगणनं कर्तव्यम्। परिगणन करना चहिये। अर्थात् किनरतद्धित प्रत्ययों का अव्ययत्व है, इसका परिगणन करना चाहिये। उसका परिगणन करते हैं, 'पञ्चम्यास्तसिल्'से लेकर 'द्वित्रोश्चधमुञ्'पर्यन्त, एवं "बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्" से लेकर 'अव्यक्तानुकरणाद्-द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्' इस डाच् प्रत्यय पर्यन्त। तथा अम्, आम्, 'अमुचच्छन्दसि' से विहित अम्, तथा किमेत्तिङव्ययघाद् आमु अद्र-व्यप्रकर्षे' से विहित आम्। और 'कृत्वोऽर्थक—कृत्वसुच् सुच् धा' ये तीन प्रत्यय। तसि और वति। तसिश्च से विहित 'तसि' तेन तुल्यम् से विहित 'वति'। 'विनञ्भ्यां नानाञौ नसह' से विहित नानाञ्। इन

। १ । १ । ३९ । मान्त एजन्तश्च कृदन्तमव्ययं स्यात् । स्मारम् स्मारम् । जीवसे । पिबध्यै । क्त्वातोसुन्कसुनः । १ । १ । ४० । स्पष्टम् । कृत्वा, उदेतोः, विसृपः । अव्ययीभावश्च । १ । १ । ४१ । अधिहरि । अव्ययादाप्सुपः । २ । ४ । ८२ । अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक् स्यात् । तत्र शालायाम् । विहितविशेषणान्नेह । अत्युच्चैसौ । सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ।१। इति

असाव विभक्तियों की अव्यय संज्ञा होगी, अन्य की नहीं । अतः पचतिकल्पम्, पचतिरूपम् उभय शब्दकी एतत्बहिर्भूत होने से अव्यय संज्ञा नहीं प्राप्त है

(कृदिति) कृन्मेजन्तः । मकारान्त, और एजन्त, कृदन्त अव्यय संज्ञक हो, 'आभीक्ष्णये णमुल्च' सेणम् वृद्धिः, मान्त स्मारम्, स्त्रवम्, 'तुमर्थे से सेन' इत्यादिसे विहित 'असे' प्रत्ययान्त जीवसे, और शध्यै प्रत्ययान्त पिबध्यै, इन एजन्तों की अव्यय संज्ञा है ।

(क्त्वेति) क्त्वा तोसुन् कसुनः । क्त्वा प्रत्ययान्त, तोसुन् और कसुन प्रत्ययान्त अव्यय संज्ञक हों । कृत्वा, समानकर्तृकयोः पूर्वं काले से त्वा है। उदेतोः उत्पूर्वक इ (ण्) 'भावलक्षणे० ।' ३।४।१६ से तोसुन् । गुण, उदेतोः । विसृपः । 'सृपितृदोः कसुन्' से कसुन् । इनकी अव्यय संज्ञा हुई।

(अव्येति) अव्ययीभावश्च । अव्ययीभाव समास अव्यय संज्ञक हो, अधिहरि । अव्यय संज्ञा का फल ।

(अव्ययादिति) अव्यय से विहित जो आप् अथवा सुप् उस का लुक् हो । 'तत्र' शालायाम् , स्त्रीलिङ्ग सूचनार्थ शालायाम् का उपादान है । तत्र अव्यय है । सप्तम्यर्थ में त्रल् प्रत्यय है, आप् और सप्तमी विभक्ति का लुक् हो गया । तत्र, अव्यय से विहित यदि विभक्ति होगी तो लुक् होगा । अन्यथा नहीं, उच्चैः अतिक्रान्तौ, अत्युच्चैसौ। यहाँ उच्चैस् अव्यय से द्विवचन औ पर है, विहित नहीं । विहित अत्युच्चैस् से है, वह अव्यय नहीं है ।

(सदृशमिति) तीनों लिङ्गों में सब विभक्तियों में और सब वचनों

लिङ्गकारकसंख्यानामभावपरत्वम्। वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः। आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा। अवगाहः, वगाहः। अपिधानम् पिधानम्। इत्यव्यायानि।

अथ स्त्री-प्रत्ययप्रकरणम्

स्त्रियाम् ।४।१।३। अधिकारोऽयम्। **अजाद्यतष्टाप्**। ४। १। ४। अजादीनामकारान्तस्य च स्त्रीत्वे द्योत्ये टाप् स्यात्। अजाद्युक्तिर्ङीषो

में 'यत् न व्येति' जो विकार को न प्राप्त हो वह अव्यय, अर्थात् स्त्री पुं नपुंसक लिङ्गों का कर्ता कर्म करण संप्रदानादि कारकों का सूचक एवम्-एकत्वद्वित्वबहुत्व का सूचक विकार को जो प्राप्त न हो तात्पर्य यह कि लिङ्ग कारक संख्या प्रत्यायक विकार रहित अव्यय होता है, लिङ्ग कारक संख्या की प्रतीति मूलक अभ्रत रहता है। प्रकरण प्राप्त अव अपि उपसर्गों का विशेष कहते हैं।

(वष्टीति) भागुरि नाम के आचार्य अव अपि उपसर्ग के अल्लोप को मानते हैं। और हलन्त कुछ शब्दों के आप प्रत्यय को मानते हैं, जैसे-वाच् शब्द से वाचा, निश् शब्द से निशा, दिश् शब्द से दिशा। यह आप् प्रायः तथाभूत प्रसिद्ध शब्दों से ही होगा, सर्वसाधारण-राजन् अनुडुह इत्यादिकों से नहीं होगा, अल्लोप् का उदाहरण अवगाहः अल्लोप होने पर 'वगाहः' "पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य" इत्यादि अपिधानम् अल्लोप में 'पिधानम्' पिहितमपि निरीक्षते संयोगात् इत्यादि। इत्यव्ययानि॥

अथ स्त्री-प्रत्ययप्रकरणम्

(स्त्रियामिति) स्त्रियाम्। यह अधिकार सूत्र है, इसका अधिकार 'समर्थानां प्रथमाद्वा' पर्यन्त है, जितने विहित प्रत्यय होंगे वे स्त्रीत्व विवक्षा में होंगे, प्रत्येक सूत्र के साथ स्त्रियाम् का संबन्ध होगा, अव स्त्रीत्व बोधक प्रत्ययों को कहते हैं, तदनुषङ्ग से अन्य सूत्रों को।

(अजादीति) अजाद्यतष्टाप्। अजादिक शब्दों के और अकारान्त शब्दों के स्त्रीत्व द्योत्य रहते टाप् प्रत्यय हो। चुटू से टकार की इत्संज्ञा।

ङीपश्च बाधनाय। अजा। एडका। बाला। वत्सा। अतः खट्वा। संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्। *। संफला। भस्त्रफला। ङ्यापोरिति ह्रस्वः। सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्। *। सत्पुष्पा, प्राक्पुष्पा,

---

अजादिक अज एडक चटक अश्व, एवं बाल वत्स इत्यादिक अकारान्त हैं इसलिये अदन्तत्वात् इनसे टाप् सिद्ध था, फिर अजादिगण में जो पाठ है वह 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' से जातिवाचकत्वेन प्राप्त जो ङीष् है उसका अपवादत्वेन बाधार्थ है, एवम्-बाल वत्स इत्यादिकों में वयसि प्रथमे से प्राप्त जो ङीप् है उसके बाध के लिये है, तो अज एडक बाल इत्यादिक शब्दों से टाप्। टकार इत्, अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ। अजा एडका बाला इत्यादि रमाशब्दवत् होंगे। अतः अदन्त का उदाहरण खट्व अदन्त से, स्त्रीत्व द्योत्य होने पर टाप्, दीर्घ, खट्वा। दीर्घादि पूर्वोक्त प्रक्रियावत्।

(संभस्त्रेति) सम् भस्त्र अजिन शण पिण्ड इनसे फल पर हो तो टाप् होगा। पाक कर्ण पर्ण ।४।१।६४। से ङीष् प्राप्त था उसको बाधकर टाप् होगा, संफला, भस्त्रफला, अजिनफला इत्यादि, भस्त्रफला में भस्त्रा इव फलानि यस्याः सा, यहाँ भस्त्रा शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग है, भाषितपुंस्क नहीं है स्त्रियाः पुंवत् ।६।३।३४। से पुंवद्भाव न होने से ह्रस्व नहीं होगा, अतः स्मरणार्थ, ङ्यापोः कहा है। ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम् से ह्रस्व होगा।

(सदजिति) सत् गत्यर्थक अञ्च धातु काण्ड प्रान्त शत् एक इन से पुष्पशब्द पर हो तो टाप् हो, पाककर्ण। ।४।१।६४ से ङीष् प्राप्त था, उसको बाधकर टाप् होगा। सत्पुष्पा, प्राक्पुष्पा, यहाँ अञ्च का अच् पूर्व है। एवम् प्रत्यक् पुष्पा,

---

टिप्पण—पञ्चाज यहाँ स्त्रीत्व है टाप् क्यों नहीं ?, अजादिकों से स्त्रीत्व द्योत्य होने पर टाप् होता है, यहाँ 'पञ्चानाम् अजानां समाहारः' इस समासार्थ से समाहार गत स्त्रीत्व है। अजशब्द द्योत्य स्त्रीत्व नहीं है अतः टाप् नहीं होगा, किन्तु संख्यापूर्वत्वात् द्विगोः से ङीप् होगा।

प्रत्यक्पुष्पा। शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः। *। पुंयोगे तु शूद्री। मूलान्नञः। *। अमूला। ऋन्नेभ्यो ङीप्। कर्त्री, दण्डिनी। उगितश्च ।४।१।६। ङीप्स्यात्। पचन्ती, भवन्ती, दीव्यन्ती। उगिदचामिति सूत्रे अजग्रहणात् धातोश्चेदुगित्कार्यं तर्ह्यञ्चतेरेवेति नियमात्, उखास्रत्

(शूद्रेति) जिससे महत् शब्दपूर्व नहीं हो ऐसे शूद्र शब्द से टाप् हो यदि जाति वाच्य हो शूद्रा शूद्र जातीया, यदि जाति वाच्य नहीं है, किन्तु पुंयोग है, शूद्र की स्त्री, अन्य जातीया भी हो सकती है अतः पुंयोग में ङीष् होगा। और महत्पूर्वक से जाति लक्षण ङीष् होगा। आभीरी तु महाशूद्री जातिपुंयोगयोः समा, पुंयोग मे स्वतः ङीप् ही होगा।

(मूलादिति)। नञ् से पर मूलशब्द से भी टाप् होगा। अमूला। ऋन्नेभ्यो ङीप्। ऋदन्त और नकारान्त स्त्री वाचक शब्द से ङीप् हो, कर्तृ ऋकारान्त है, दण्डिन् नान्त है ङीप्, इको यणचि। कर्त्री, नान्त दण्ड।

(उगिदिति) उगितश्च, उक्-उऋलृ जिसके इत् हों उससे भी ङीप् हो। शतृ प्रत्ययान्त पचत् शब्द है, ऋकार इत है अतः उगितश्च से ङीप्। लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, पचत् ई। यूस्त्र्याख्यौ नदी से ई की नदी संज्ञा। शप्श्यनोर्नित्यम् से नदी संज्ञक ई परे है, अतः नित्य नुम् होगा, आच्छीनद्योः० से विकल्प नहीं होगा, एवम् भवतृ ऋकारेत्संज्ञक से ङीप् नुम्। भवन्ती। भातेर्डवतुः से निष्पन्न भवत् शब्द उगित् होने से ङीप् होगा, किन्तु अवर्णान्त अंग से पर नदी संज्ञक नहीं है अतः नुम् नहीं होगा। दीव्यन्ती। यहाँ दीव्यत् ई। श्यन् से पर नदीसंज्ञक है अतः नित्य नुम् होगा गौरी शब्दवत्। स्रंसुधातु है, उखायाः स्रंसते, उखा-कुण्डी, क्विप् न लोप, उखास्रस् उगित्वात् उगितश्च से ङीप् प्राप्त था, उगिदचां सर्वनामस्थाने धातोः सूत्र में अच् ग्रहण क्यों किया, क्योंकि अञ्चुधातु के उगित्वात् नुम् सिद्ध था, फिर अच् ग्रहण नियम करता है, कि धातु संबन्धी उगित् को मानकर यदि कार्य हो तो अञ्च् धातु को ही हो। अतः स्रंसुध्वंसु इत्यादिकों के

इत्यादौ न। अञ्चतेस्तु स्यादेव। प्राची, प्रतीची। **वनो र च** ।४।१।७। वन्नन्तात् वन्नन्ततराच्च प्रातिपदिकात् ङीप् अश्चान्तादेशः। वनिति ङ्वनिप् क्वनिप् वनिपां सामान्यग्रहणम्। शर्वरी। प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्। प्रातिपदिकविशेषणात्तदन्तान्तमपि लभ्यते। अतिसुत्वरी। अतिधीवरी। वनो न हश इति वक्तव्यम्।

उगित् को मानकर ङीप् नहीं होगा, सुल्लोप, वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः। चर्त्व। उखास्रत्, एवं पर्णध्वत्। अञ्चधातु से ङीप् होगा ही, प्राच् ङीप् भसंज्ञा, अचः चौ। प्राची। एवं प्रतिअच् ङीप्। पूर्ववत् प्रतीची। विभक्ति साधुत्व, गौरी शब्दवत्। शृधातु अन्येभ्योऽपि दृश्यते से वनिप् इकार वकार इत्। गुण शर्वन् स्त्रीत्वविवक्षा में नान्तत्वात् ऋन्नेभ्यो ङीप्।

(वनो इति) वनो र च। प्रातिपदिकात् का अधिकार है वन् प्रत्यय है, अतः 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य च ग्रहणम्' का अर्थ है कि "यस्मात् प्रकृतिभूतात् शब्दात् यः प्रत्ययो विहितः, तदादेः सः प्रकृतिभूतः शब्दः आदिर्यस्य तस्य, तदन्तस्य सः प्रत्ययः अन्तो यस्य समुदायस्य, तस्य च ग्रहणम्' भावार्थ यह है कि प्रकृतिप्रत्यय समुदाय का और तन्मध्यवर्ती का ग्रहण होगा। प्रातिपदिक का अधिकार है, इससे येन विधिस्तदन्तस्य से तदन्तविधि होगी, तो यह अर्थ होगा, वन्नन्त से और वन्नन्त जिसके अन्त पर है तदन्त प्रातिपदिक से ङीप् रकार अन्त्यादेश हो। अलोन्त्यस्य से अन्त्य उपस्थित है। तो वन्नन्त शर्वन् है उसके ङीप् और अन्त्य न कार को रेफ हो गया, शर्वरी, ङीप् और रेफ दोनों इसी सूत्र से ङीप् संनियोगसे रेफ होगा प्रातिपदिक का विशेषण होने से वन्नन्तान्त से ङीप् और रेफ होगा, शर्वरी में नहीं होना चाहिये क्योंकि यहाँ वन्नन्तान्त नहीं है। उत्तर—स्वरूपं शब्दस्याशब्द-संज्ञा से स्वं की अनुवृत्ति विभक्ति विपरिणाम करके 'स्व' के अर्थात् वन्नन्त के और वन्नन्तान्त के अर्थ हो जायगा। अथवा व्यपदेशिवद्भाव से वन्नन्तान्त मान लिया जायगा।

सुत्वानमतिक्रान्ता। अतिसुत्वन्- यहाँ वन्नन्त है अतः ङीप्

ङीप् रश्च न। ओणृ अपनयने। वनिप् विड्वनोरित्यात्वम्। अवावा। ब्राह्मणी। राजयुध्वा। बहुव्रीहौ वा। *। बहुधीवरी, बहुधीवा, पक्षे

और रेफ अन्तादेश अतिसुत्वरी। धा धातु अन्येभ्योऽपि दृश्यते क्वनिप् घुमास्थागापा से ईं कार, धीवानम् अतिक्रान्ता अतिधीवन् यहाँ भी वन्नन्तान्त है, अतः ङीप् तत्संनियोग में रकारादेश, यहाँ वनिप् नहीं है, किन्तु क्वनिप् है, तो ङीप् रेफ कैसे होगा उत्तर निरनुबन्धकग्रहणे सामान्यग्रहणे निरनुबन्धक—अर्थात् उत्सृष्टानुबन्ध के ग्रहण में सामान्य का ग्रहण होगा, चाहे अनुबन्ध रहित हो अथवा अनुबन्ध सहित हो। अतिधीवरी में ककारानुबन्ध सहित है, तब भी वन् के ग्रहण से ग्रहण होगा।

(वनो इति) 'वनो न हश इति वक्तव्यम्' हशन्त धातु से विहित जो वन् तदन्त से और तदन्तान्त से ङीप् और रकार अन्तादेश न हो। ओणृ अपनयने। ऋ इत्। ओण्धातु से अन्येभ्योऽपि दृश्यते से वनिप्, 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्' से णकार को आकार 'एचोऽयवायावः' से अवादेश, अवावन् ङीप् और रेफान्तादेश नहीं होगा। अवावा ब्राह्मणी। स्त्रीत्व सूचनार्थ ब्राह्मणी विशेषण है। हशन्तान्त का उदाहरण राजानं योधितवती 'राजनियुधिकृञः' से क्वनिप्। हशन्त युध धातु से क्वनिप् हशन्त युध्वन् हशन्तान्त राजयुध्वन् है, इससे ङीप् रेफादेश नहीं होगा, राजयुध्वा, झांसी राज्ञी लक्ष्मीबाई। यज्वन् शब्दवत् रूप होंगे। बहवः धीवानो यस्यां नगर्यां सा। बहुधीवन् अनो बहुव्रीहेः से ङीप् निषेध प्राप्त था, तदपवाद यह वार्तिक है। 'बहुव्रीहौ वा' बहुव्रीहि समास में ङीप् और रेफादेश विकल्प से हो तो रेफ और ङीप् होने से बहुधीवरी, पक्ष में 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' से डाप्। डित्वात् टिलोप। बहुधीवा, रमाशब्दवत्। डाप् के अभाव में राजन् शब्दवत्।

टिप्पणी—बहुपर्वन् शब्द में 'बहुव्रीहौ वा' वार्तिक नहीं लगेगा, क्योंकि 'अल्लोपोऽनः' का विषय ही वार्तिक का विषय है। बहुपर्वन् में 'न संयोगाद् वमन्तात्' से अल्लोप का निषेध हो जायगा।

डाब् वक्ष्यते । पादोऽन्यतरस्याम् ।४।१।८। द्विपदी, द्विपात् । टाबृचि ।४।१।९। द्विपदा, ऋक् । एकपदा । न षट्स्वस्रादिभ्यः । पञ्च चतस्रः । मनः ।४।११। मन्नन्तान्न ङीप् । सीमा, सीमानौ । अनो बहुव्रीहेः ।४।१।१२। स्पष्टम् । बहुयज्वा बहुयज्वानौ । डाबु-

---

(पादः इति) पादोऽन्यतरस्याम् । प्रातिपदिकात् अधिकार है, अतः येन विधिस्तदन्तस्य से तदन्त ग्रहण होगा । पाद् दकारान्त, समास करके अल्लोप होने पर ही मिलेगा, तो यह अर्थ होगा, दकारान्त, पाद् शब्द अर्थात् कृतसमासान्त तदन्त प्रातिपदिक से ङीप् विकल्प से हो। ङीप् होने पर भसंज्ञा । पादः पद्, से पदादेश, द्विपदी । ङीप् के अभाव में द्विपाद् पुंवत् । एकः पादो यस्याः ऋचः । एकपाद् शब्द है,ङीप् विकल्प से उक्त सूत्र से प्राप्त था ।

(टाबिति) टाबृचि । ऋचा अर्थ वाच्य रहते पात् शब्दान्त से टाप् हो, पूर्व सूत्रोक्त ङीप् का अपवाद है 'द्वौ पादौ यस्याः' संख्या सु-पूर्वस्य से पाद शब्द के अकार का लोप द्विपाद् टाप् टकार इत्। भसंज्ञा । पादःपद् । द्विपदा ऋक् । एवम् एकः पादो यस्याः सा एक-पदा । पूर्ववत् साधुत्व । पञ्चन् स्त्रीलिङ्ग में नान्तत्वात् ऋन्नेभ्यो ङीप् से ङीप् प्राप्त था, एवम्, चतुर् शब्द को 'त्रिचतुरोः स्त्रियाम्' से चतसृ आदेश करने पर ऋदन्तत्वात् ङीप् प्राप्त था। न षट्स्वस्रादिभ्यः षट् संज्ञक और स्वस्रादिक से ङीप् टाप् नहीं होते हैं। 'ष्णान्ताः षट्' से नान्त संख्यावाचक पञ्चन् की षट् संज्ञा है । और चतसृ स्वसा तिसृश्चत-सृश्च परिगणित स्वस्रादिकमें है । अतः ङीप् नहीं होगा । पञ्च पुंवत् । चतस्रः अचि र ऋतः । सीमन् शब्द है नान्तत्वात् ङीप् प्राप्त था ।

(मन इति) मनः । मन्नन्त से ङीप् न हो । सीमन् मन्नन्त है ङीप् नहीं हुआ । सीमा सीमानौ । राजन् शब्दवत् । बहवः यज्वानः यस्याः सा । बहु यज्वन् शब्द है, नान्तत्वात् ङीप् प्राप्त है ।

(अन इति) अनो बहुव्रीहेः । अर्थ स्पष्ट है । अनः बहुव्रीहेः अन्नन्त

भाभ्यामन्यतरस्याम् ।४।१।१३। सीमा। सीमे, सीमानौ। दामा। दामे दामानौ। बहुयज्वा। बहुयज्वे, बहुयज्वानौ। अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ।४।१।२८। अन्नन्ताद्बहुव्रीहेरुपधालोपिनो वां

बहुव्रीहि समास प्रातिपदिक के ङीप् न हो। बहुयज्वा, बहुयज्वानौ। यज्वन् शब्दवत्।

(डाबिति) डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्। उभाभ्याम्, पूर्वोक्त मनः और अनो बहुव्रीहेः। इनसे अर्थात् मन्नन्त अन्नन्त बहुव्रीहि से डाप् विकल्प से हो। सीमन् से डाप्। डित्वात् 'टेः' से टि लोप। सीमा, सीमे सीमाः। रमा शब्दवत्। पक्ष में। हल्ङ्यादि लोप। दीर्घ। न लोप सीमा सीमानौ। राजन् शब्दवत्। मनः का उदाहरणान्तर। दामन् डाप्, टिलोप। दामा दामे। रमा शब्दवत्। पक्ष में, दामा, दामानौ। राजन् शब्दवत्। अन्नन्त बहुव्रीहि बहुयज्वन्, अनो बहुव्रीहेः से निषेध हुआ है, अतः डाप् होगा। टि लोप, बहुयज्वा, रमावत्। पक्ष में बहुयज्वा, बहुयज्वानौ। शस् में बहुयज्वनः। न संयोगाद् वमन्तात् से अल्लोप का निषेध होगा। उपधालोपी न होने से 'अन उपधा०' से ङीप् नहीं होगा। बहवो राजानो यस्यां नगर्याम्। बहुराजन् स्त्रीलिङ्ग में।

(अन इति) अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्। उपधा लोपी, अर्थात् जिस अन्नन्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक के अल्लोपोऽनः से आकार का लोप होता हो उससे ङीप् विकल्प हो। तो बहुराजन् उपधा लोपी अन्नन्त से ङीप् हो गया। अल्लोपोऽनः। स्तोः श्चुना श्चुः। जञोर्ज्ञः। बहुराज्ञी। गौरीवत्। पक्ष में 'अनो बहुव्रीहेः' से ङीप् निषेध। 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' से डाप्। डित्वात् टि लोप। बहुराजा, बहुराजे। रमावत्।

टिप्पणी—पञ्च-यहाँ पञ्चन् शब्द का नकार 'नलोपः सुप्स्वर संज्ञा-तुग्विधिषु कृति' यहां 'ष्णान्ताः षट्' से षट् संज्ञा करनी है अतः संज्ञा विधि में असिद्ध हो जायगा। तो नान्तत्वात् षट् संज्ञा होने से 'न षट् स्वस्रादिभ्यः' से ङीप् निषेध होगा।

ङीप् स्यात् पक्षे डाबूनिषेधौ। बहुराज्ञी। बहुराज्ञ्यौ, बहुराजे, बहुराजानौ। प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः।७।३।४४। प्रत्ययस्थात्ककारात्पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि परे, स आप् सुपः परो न चेत्। सर्विका, कारिका। मामकनरकयोरुपसंख्यानम्। *। मामिका, नरिका।

जहाँ डाप् नहीं हुआ, ङीप् निषेध हुआ वहाँ राजन् शब्दवत्। बहुराजा। प्रथमा के एकवचन में उभयत्र डाप् ङीप् निषेध में बहुराजा। द्विवचनादि में बहुराजानौ बहुराजानः। इत्यादि। सर्व शब्द। अव्यय सर्वनाम्नाम्० से अकच्, अतो गुणे। अजाद्यतष्टाप् से टाप्। अकः सवर्णे दीर्घः। सर्वका इस स्थिति में।

(प्रत्ययेति) प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः। प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व जो लोप होने से षट् संज्ञा नहीं होगी तो ङीप् होगा।

अत् ह्रस्व अकार उसे इकार हो आप् के परे। परंतु वह आप् सुप् से पर न हो। सर्व क आप्। यहाँ अकच् प्रत्यय से ककार है उससे पूर्व सर्व शब्द के आकार को इकार हो जायगा। अदन्तत्वात् कृत, स्त्रीलिङ्ग का टाप् का आप् परे है। तो इकार होने से सर्विका। कारक स्त्रीलिङ्ग में टाप्, यहाँ ण्वुल् प्रत्यय है, 'वु' को 'युवोरनाकौ' से अकादेश। अतः प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व रेफगत अकार है उसे इकार हो गया आप् परे है और वह आप् सुप् से परे नहीं है।

(मामकेति) मामक नरक शब्द का ग्रहण करना। अर्थात् इनके ककार से पूर्व आकार को इकार हो। मम इयम्। युष्मदस्मदोरन्यतरस्यांखञ्च। चकार से अण् 'तवकममकावेकवचने' से ममक आदेश। णित्त्वात् आदि वृद्धि। अणन्तत्वात् 'टिड्ढाणञ्०' से ङीप् क्यों नहीं होगी। केवल मामक० ।४।१।३०। संज्ञा और छन्दस् में ही होगी। अतः अदन्तत्वात् अजाद्यतष्टाप् से टाप्। यहाँ प्रत्ययस्थ ककार नहीं है।

टिप्पणी—प्रत्ययस्थात् सूत्र के प्रत्युदाहरण बुद्धिविकाश-प्रतिरोधक है अतः नहीं कहे हैं।

त्यक्त्यपोश्च। *। दाक्षिणात्यिका, इहत्यिका। न यासयोः।७।३।४५। यत्तदोरस्येन्न स्यात्। यका, सका। यकाम् तकाम्। त्यकनश्च निषेधः। *। अधित्यका, उपत्यका। आशिषि वुनश्च न। *। जीवका,

किन्तु मामक शब्द का ककार है। इत्व हो गया। मामिका, एवम् नरान् कायति। कैधातु। आत्व, आतोऽनुपसर्गे कः। आतो लोप् इटि च। उपपद समास। सुप् का लुक्। टाप्। यहाँ भी प्रत्ययस्थ ककार नहीं है किन्तु धातु का है, अतः इस वार्तिक से अकार को इकार हो गया, नरिका।

(त्यक् त्यपोश्च) त्यक् और त्यप् प्रत्ययके अकार को प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व होने पर इकार होगा। दक्षिणा से 'दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्' से त्यक् प्रत्यय। आदि वृद्धि। दाक्षिणात्य से टाप्, स्वार्थ में कप्, केऽणः। दाक्षिणात्यक से टाप्। उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः' से विकल्पेन इत्व प्राप्त था। इससे नित्य इकार होगा। दाक्षिणात्यिका। एवम्, इह अव्यय से अव्ययात् त्यप् से त्यप्। टाप्। स्वार्थ में कप्। केऽणः पुनः इहत्यक से टाप्। वैकल्पिक इत्व को बाधकर उक्त वार्तिक से नित्य इकार हो गया, इहत्यिका। यद् तद् शब्द से स्वार्थ में अव्यय सर्वनाम्नाम०' से अकच्, त्यदाद्यत्व पररूप टाप्। 'प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्य०' से इकार प्राप्त था।

(नयेति) न यासयोः। या सा के अर्थात् यत्तद् शब्द के आकार को इकार न हो। यका। यद् शब्द के आकार को इकार नहीं हुआ। सका। 'तदोः सः सावनन्त्ययोः' से सकार। न यासयोः से इत्व निषेध। 'नयासयोः' को प्रथमानुकरण न समझें इसलिये, यकाम्, तकाम्, द्वितीया का भी दिया। (त्यकनश्च निषेधः) त्यकन् प्रत्यय के आकार को 'प्रत्ययस्थात्० से इकार न हो। उप-अधि उपसर्ग से। 'उपाधिभ्याम्' ५।२।३४। से त्यकन् प्रत्यय, इत्व प्राप्त था। निषेध हो गया। अधित्यका, उपत्यका। (आशिषि वुनश्चन) आशिष अर्थ में जो वुन् प्रत्यय उसके आकार को इकार न हो। जीवतात् इति जीव धातु से 'आशिषि च।'

भवका। उत्तरपदलोपे न। *। देवदत्तिका, देवका। क्षिपकादीनां च। *। क्षिपका ध्रुवका, कन्यका, चटका। तारका ज्योतिषि। *। अन्यत्र तारिका। वर्णका तान्तवे। *। अन्यत्र वर्णिका। वर्तका शकुनौ प्राचाम्। *। उदीचां तु वर्तिका। अष्टका पितृदैवत्ये। *।

३।१।१५०। वुञ् वु को अकादेश। टाप्। उक्त वार्तिक से 'प्रत्ययस्थात्' से प्राप्त जो इत्व था उसका निषेध हो गया। जीवका। एव भववात् इति। यहाँ दोनों में तुह्योस्तातङ् से आशिष अर्थ में तातङ् से विग्रह दिखाया। इत्व का निषेध। भवका। 'उत्तरपदलोपे न।' उत्तरपद का लोप होने पर इत्व न हो। देवदत्ता एव। 'संज्ञायां कन्' से कन्। 'अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्यः' इससे उत्तरपद दत्त का लोप। स्त्रीत्व विवक्षा में देवक से अजाद्यतस्टाप् से टाप्, 'प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुपः' से इकार प्राप्त था। 'उत्तरपद लोपे न' से निषेध हो गया। देवका। 'क्षिपकादिनां च। क्षिपकादिकों के 'प्रत्ययस्थात्' अकार को इकार न हो। क्षिप धातु। 'इगुपध' होने से क प्रत्यय। कित्वात् गुण निषेध, क्षिपा शब्द से 'स्वार्थे कः' 'केऽणः' पुनः टाप्। क्षिपका। उक्त सूत्र से इकार प्राप्त था, निषेध हो गया। क्षिपका एवं ध्रुवका, कन्यका, चटका इत्यादि क्षिपकादि गणपठितों में इकार न होगा। क्षिपकादि आकृति गण है, इससे अलका, इष्टका इत्यादिकों में भी इत्व नहीं होगा। (तारका ज्योतिषि) ज्योतिष् अर्थ में तारका। अर्थात् उक्त सूत्र से इत्व न हो। ज्योतिष् शब्द से प्रकाशमान नक्षत्र, प्रकाश सूचिका आँख की कनीनिका का ग्रहण है, नक्षत्रमृक्षं भं तारं, तारकाऽपि, तथा "तारकाऽक्ष्णः कनीनिका" अमर कोश है, अन्यत्र इन अर्थों के अतिरिक्त तारण करनेवाली अर्थ में तारिका, इत्व होगा। (वर्णका तान्तवे) तन्तुओं का विकार अर्थात् तन्तुओं से निर्मित इस अर्थ में इत्व नहीं होगा, वर्णका होगा। प्रावरण विशेष, अर्थात् रावटी, तवई। अन्यत्र वर्णिका, स्तुति करने वाली, स्तोत्री। (वर्तका शकुनौ प्राचाम्)

अष्टिकाऽन्या। सूतकापुत्रिकावृन्दारकाणां वेति वाच्यम्। *। इह वा अ इतिच्छेदः। कात्पूर्वस्याकारादेशो वेत्यर्थः। तेन पुत्रिकाशब्दे ङीन इवर्णस्य पक्षेऽकारः। पुत्रका, पुत्रिका। अन्यत्र इत्त्वबाधनार्थमकारस्यैव पक्षेऽकारः, सूतका सूतिका। उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः।७।३।४३। यकपूर्वस्य आतः स्थानिकस्य कात्पूर्वस्याकारस्येद्वा टापि परे। आर्यका, आर्यिका। चटकका, चटकिका। धात्वन्तय-

---

के मत से शकुनी-पक्षि के अर्थ में इत्त्व नहीं होगा। वर्तका, वत्तक नाम से प्रसिद्ध पक्षी। उदीचों के मत से शकुनि अर्थ में इत्त्व होगा। वर्तिका, वर्तनेवाली इस अर्थ में उभय मत से इत्त्व होगा। वर्तिका, (अष्टका पितृदेवत्ये) पितरों के और देवताओं के लिए श्राद्ध इस अर्थ में अष्टका इत्त्व नहीं होगा। अष्टका, अन्वष्टका श्राद्ध, अन्यत्र अष्टिका, इत्व होगा। आठ अध्यायों से निर्मित, अष्टाध्यायी। सूतक शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में टाप्। प्रत्ययस्थत् से नित्य इकार प्राप्त था।

(सूतकेति) 'सूतका पुत्रिका वृन्दारकाणां वेति वक्तव्यम्' 'वेति' में वा-अ-इति, यह पदच्छेद है। तो यह अर्थ होगा। सूतका वृन्दारका इनके ककार से पूर्व वर्ण को अकार विकल्प से हो। सूतिका और वृन्दारका में प्राप्त इकार को बाधकर अकार को अकार होगा। पक्ष में प्रत्ययस्थात् से इकार होगा। पुत्रिका में विकल्प से इकार को अकार होगा, पक्ष में इकार ही रहेगा। पुत्रिका शब्द शार्ङ्गरवादित्वात् ङीन् प्रत्ययान्त पुत्री शब्द से स्वार्थ में कप् प्रत्यय। ह्रस्व, पुत्रिका होगा। इकार को विकल्पेन अकार पुत्रका, अन्यत्र पुत्रिका। सूतका सूतिका, का साधुत्व कह आये हैं। आर्यका, नित्य इत्व प्राप्त था।

(उदीचामिति) उदीचमातः स्थाने यकपूर्वायाः। यकार अथवा ककार जिसके पूर्व ऐसे आतः स्थानिक अर्थात् आकार के स्थान में उत्पन्न और ककार से पूर्व विद्यमान अकार को इकार विकल्प से हो आप् के परे, उदीचां इससे वैकल्पिकत्व फलितार्थ कथन है। देशपरक नहीं है। आर्यका, यकारपूर्वक आतः स्थानी यकार से पूर्व अकार

कोस्तु नित्यम् । * । सुनयिका सुपाकिका। भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वाणामपि । ७ । ३ । ४७ । स्वेत्यन्तं लुप्तषष्ठीकं पदम् । एषामत इद् वा स्यात् । आङ्गत्वात्तदन्तविधिनैव सिद्धेः नञ्पूर्वाणामिति स्पष्टार्थम् भस्त्राग्रहणमुपसर्जनार्थम् । अन्यस्य तूत्तरसूत्रेण सिद्धम् एषा द्वा एतयोस्तु सपूर्वयोर्नेत्वम् अन्तवर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य असुपः प्रति-

---

को विकल्प से इकार हो गया, आर्यिका आर्यका, ककारपूर्वक। चटकिका, चटकका, 'धात्वन्तयकोस्तु नित्यम्', धातु के अन्त में यकार ककार हो तो नित्य इकार होगा। सुनयिका। णी धातु है, एरच् अथवा, पचादित्वात् अच्। सुनयो यस्याः सा सुनया, सुनया एव, कप्रत्यय, यहाँ णीधातु है, तदन्तयकार है, इसलिये यक पूर्वक आतः स्थानी होने पर भी नित्य होगा, उक्त सूत्र से विकल्प नहीं होगा। सुपाकिका, सुष्टु पाको यस्याः सा सुपाका, सुपाका एव सुपाकिका, यहाँ पाक यह पच् धातु का है। धात्वन्त ककार पूर्व में हैं, अतः विकल्प से इत्व नहीं होगा। प्रत्ययस्थात् से अथवा इसी वार्तिक से नित्य इकार होगा, सुपाकिका।

(भस्त्रैषेति) "भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ् पूर्वाणामपि।" स्वपर्यन्त लुप्त षष्ठीक है आर्षत्वात् षष्ठी का लुक्। भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानाम् है। यह अर्थ है, कि-भस्त्रा एषा अजा ज्ञा स्वा इनके अकार को इकार विकल्प से हो। यह सूत्र अङ्गाधिकारोक्त है, अतः तदन्त विधि हो जायगी, तो नञ् पूर्वक अनञ् पूर्वक दोनों का लाभ हो जायगा और व्यपदेशिवद्भाव से केवल का ग्रहण हो जायगा फिर 'नञ् पूर्वाणाम्' व्यर्थ होता हुआ स्पष्टार्थ है। प्रश्न होता है, कि भस्त्राग्रहण क्यों है। क्योंकि भस्त्रिका में वक्ष्यमाण 'अभाषितपुंस्काच्च' सूत्र से इत्व विकल्प होकर भस्त्रिका, भस्त्रका सिद्ध हो ही जायँगे ? उत्तर-फिर भस्त्रा ग्रहण जहाँ उपसर्जन में भाषित पुंस्कत्व हो जाता है तदर्थ है। अतएव निर्भस्त्रका निर्भस्त्रिका उपसर्जन का उदाहरण दिया है, और केवल भस्त्रा शब्द को तो उत्तर से सिद्ध होगा। एषा द्वा, इनको सपूर्वक होने पर अर्थात् इनके पूर्व में किसी शब्द के विद्यमान होने पर इत्व

षेधात्। अनेषका परमैषका अद्वके परमद्वके इति। स्वशब्दग्रहणं संज्ञोपसर्जनार्थम्। आतः स्थान इत्यनुवृत्तेः। अन्यत्र अकचि नित्यमेवे-

नहीं होगा। क्योंकि इस सूत्र में प्रत्यस्थात्कात्पूर्वस्य०' सूत्र से 'असुपि' की अनुवृत्ति हैं, तो सुप् परे होने पर इत्व नहीं होगा। जैसे न एषा। अनेषा। अनेषा एव। स्वार्थ में कप्रत्यय। ह्रस्व। अनेषक से टाप्। ट इत् अनेषक आप्। यह आप् अनेषा के समास से उत्पन्न सुप् विभक्ति से पर है, अतः इत्व नहीं होगा। एवं परमैषा के समासीय विभक्ति सुप् से पर आप् है अतः इत्व नहीं होगा। एवम् अद्वके, परमद्वके में भी जानना। द्वि शब्द नित्य द्विवचनान्त है इसलिए द्विवचनान्त का उदाहरण दिया। स्वशब्द का ग्रहण संज्ञा अथवा उपसर्जनार्थ है, क्योंकि—'आत्मा, आत्मीय, ज्ञाति, धन', ये चार स्वशब्द के अर्थ हैं, इनमें स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्, इस सर्वादि गण सूत्र से, ज्ञातिधन, अर्थ के अतिरिक्त अर्थात् आत्मा और आत्मीय अर्थ में सर्वनाम है। तो इन अर्थों में "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः", इससे अकच् हो जाने से 'भस्त्रैषा०' का विषय ही नहीं है। निदान–उदीचामातः स्थाने यक पूर्वायाः' सूत्र से 'आतः स्थाने' की अनुवृत्ति है, अतः सर्वनामत्वात् अकच् करने पर स्विका में स्वशब्द का अकार आतः स्थानी नहीं है। धन अर्थ में नियत नपुंसक लिङ्ग है। ज्ञाति अर्थ में नियत पुंलिङ्ग है। "स्वो ज्ञाता वात्मनि, स्वंत्रिष्वात्मीये, स्वोऽस्त्रियाँ धने" तो केवल आत्मीय अर्थ में स्त्रीलिङ्ग है, वहाँ अकच् हो जायगा तो आतः स्थानी कहाँ मिलेगा। संज्ञा अथवा उपसर्जन में क प्रत्यय करने पर ही आतः स्थानी अकार मिल सकेगा। 'क्योंकि 'सर्वोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः' अतः उक्त अर्थों में सर्वादि संज्ञा न होने से अकच् की प्राप्ति नहीं है।

प्रश्न यह होता है कि 'आतः स्थाने' का सम्बन्ध केवल स्वशब्द से क्यों होगा अन्य से भी क्यों नहीं? उत्तर—द्वाएषा में अकच् होने से आतः स्थानी मिलेगा ही नहीं और भस्त्रा अजा ज्ञा इन में आतः

स्वम् । स्विका परमस्विका । निर्भस्त्रका, निर्भस्त्रिका, एषका, एषिका । कृतषत्वनिर्देशान्नेह विकल्पः एतिके, एतिकाः । अजका, अजिका । ज्ञका, ज्ञिका । द्वका, द्विका । निःस्वका, निःस्विका । **अभाषितपुंस्काच्च** ।७।३।४८। एतस्माद्विहितस्यातः स्थानेऽत इद् वा स्यात् । गङ्गका, गङ्गिका । भाषितपुंस्के तु नित्यम् । बहुखट्विका । **आदाचार्याणाम्**

स्थानिक ही मिलेगा, अतः विशेषण व्यर्थ होगा । क्योंकि व्यावर्त्य कोई नहीं है । स्वशब्द आत्मीय वाची स्त्रीलिङ्ग है परन्तु उसमें अकच् हो जायगा, और आत्मा ज्ञाति धन अर्थों में स्त्रीलिङ्ग नहीं है, इसलिये स्वशब्द ग्रहण व्यर्थ हो जायगा । 'आतः स्थाने' अनुवृत्ति का फल कहीं होगा । इसलिये स्वशब्द संज्ञा अथवा उपसर्जन में सर्वनाम संज्ञक न होने से जहाँ अकच् नहीं होगा किन्तु क प्रत्यय होगा, वहाँ केऽणः से ह्रस्व होगा वह उदाहरण होगा । केवल भस्त्रा में अभाषित पुंस्काच्च से इत्वा इसका उदाहरण जहाँ उपसर्जन में भाषित पुंस्कत्व है । निर्भस्त्रका निर्भस्त्रिका एषका एषिका । षत्वनिर्देश के साथ 'एषा' का उपादान है, अतः द्विवचन आदि में एतिके एतिकाः इत्यादि में प्रत्ययस्थात् से नित्य इत्व होगा । अजका अजिका । ज्ञका ज्ञिका । द्वके द्विके । द्वि शब्द नित्य द्विवचनान्त है अतः द्विवचन का उदाहरण दिया है । निःस्वका निःस्विका । और जहाँ स्वशब्द संज्ञा उपसर्जन अर्थ में नहीं है वहाँ अकच् होगा । आतः स्थानी अकार न होने से 'प्रत्ययस्थात्०' से नित्य इत्व होगा । स्विका परमस्विका । गङ्गा शब्द स्वार्थे कः । केऽणः । गङ्गाका । 'प्रत्ययस्थात्' से इत्व प्राप्त था ।

(अभाषितेति) अभाषितपुंस्काच्च । एतस्मात् विहितस्य, इससे विहित । अर्थात् पुंलिङ्ग को न कहता हो उससे विहित आतः स्थानी जो ह्रस्व अकार उसको विकल्प से इकार हो । तो जहाँ इकार नहीं हुआ वहाँ, गङ्गका । इकार पक्ष में । गङ्गिका । भाषितपुंस्के तु नित्यम् । जहाँ भाषितपुंस्क से विहित आतः स्थानी अकार होगा वहाँ प्रत्ययस्थात् से नित्य इत्व होगा । बह्व्यः खट्वाः यस्य, बहुखट्वा शब्द उप-

।७।३।४६। स्पष्टम्। गङ्गाका उक्तपुंस्के तु शुभ्रिका। अनुपसर्जनात् ।४।१।१४। अधिकारोऽयम्। यूनस्तिरिति यावत्। टिड्ढाणञ् द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्करपः ।४।१।१५। अनुपसर्जनात्टिदादेः तदन्तादन्दन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीप् स्यात्।

सर्जन त्रिलिङ्ग है। स्त्रीत्व विवक्षा में टाप्। क प्रत्यय। ह्रस्व। पुनः स्त्रीत्वात् टाप्। यहाँ बहुखट्वा भाषितपुंस्क है, अतः, अभाषितपुंस्काच्च से इकार नहीं होगा। बहुखट्विका।

(आदिति) आदाचार्याणाम्। आचार्य के मत से अभाषितपुंस्क से विहित आतः स्थानी अकार को आकार विकल्प से हो। आचार्याणाम् से वैकल्पिकत्व है। गङ्गा से क प्रत्यय ह्रस्व। अभाषितपुंस्क गङ्गा है अतः आकार होगा। पक्ष में, गङ्गाका, गङ्गिका होंगे। जहाँ भाषितपुंस्क होगा वहाँ नित्य इकार होगा। जैसे शुभ्रिका। शुभ्र शब्द विशेष्यनिघ्न अनियत लिङ्ग है, अतः भाषितपुंस्क होने से 'अभाषित पुंस्काच्च से विकल्पेन इकार और इससे आकार नहीं होगा। शुभ्रिका।

(अनुपेति) अनुपसर्जनात्। अधिकार सूत्र है, 'यूनस्तिः' सूत्र पर्यन्त अनुपसर्जन में ही कार्य होंगे। यद्यपि 'संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति' इससे तदन्त विधिका प्रतिषेध हो जायगा। फिर अनुपसर्जनात् की क्या आवश्यकता है, 'अनुपसर्जनात्' यह सूत्र ही व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि 'स्त्री प्रत्यय में तदन्त विधि होती है। अतएव 'वनो र च' सूत्र में वन्नन्तान्त का ग्रहण होने से बहुधीवरी आदि सिद्ध होते हैं।

(टिड्ढेति) टिड्ढाणञ् द्वयसज् दघ्नञ् मात्रच् तयप् ठक्ठञ् कञ् करपः। अनुपसर्जन टिदादि अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप हो। टित् तीन प्रकार का है। प्रत्ययगत, प्रातिपदिकगत, धातुगत। प्रत्ययगत का उदाहरण। कुरुषु चरति, चरेष्टः। सप्तम्यन्त अधिकरण उपपद रहते चरधातु से 'ट' प्रत्यय हो। टकार इत्, अनुपसर्जन, टित् चरट् वह कुरु के अन्त पर है, ऐसा टिदन्त अदन्त प्रातिपदिक कुरुचर है उससे

ङीप्। 'यस्येति च' से अकार लोप। कुरुचरी। प्रश्न यह है। टिदन्त में अन्त ग्रहण कैसे। 'येन विधिस्तदन्तस्य' से प्रातिपदिक का विशेषण होने से तदन्त लाभ हो जायगा। अब प्रातिपदिकगत टित् का उदाहरण देते हैं। नदट् यह पचादि गण में अप्रत्यय विशिष्ट टित् प्रातिपदिक पढ़ा है, अतः टित्वात् ङीप्। यस्येति च। गौरी शब्दवत् रूप होंगे।

टिप्पणी—वक्ष्यमाणा यहाँ स्थानिवत्त्वेन टित्व अथवा उगित्व से ङीप् क्यों नहीं होता। वच् धातु भविष्यत् अर्थ में कर्म में लृट् लकार। तो सत् से शतृशानच् की सत्। 'लृटः सद्वा' इससे कर्म में आत्मनेपद में शानच्। स्यतासी लृ लुटोः से स्य विकरणागम। चोः कुः। आदेश प्रत्यययोः। कषसंयोगेक्षः। आनेमुक्। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि। वक्ष्यमाणा से स्त्रीत्व विवक्षा में 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' से लृट् के स्थान में शानच् आदेश है, वह लृट् स्थानी के तुल्य हो जायगा, तो लृट् का टित्व लेकर टिड्ढाणञ्० से और लृट् ऋकार को लेकर उगितश्च से ङीप् प्राप्त है, टित्व उगित्व टकाराश्रित ऋकाराश्रित होने से अनल्विधौ से निषेध हो जायगा, यह नहीं कह सकते, क्योंकि 'अनुबन्धकार्ये अनल्विधाविति निषेधाभावात्' प्रमाण—प्रधाय, प्रमाय में क्त्वाप्रत्यय को ल्यप् करने पर 'घुमास्था गा पा जहातिसां हलि' से हलादि किति ल्यप् पर है अतः ईत्व प्राप्त था तन्निषेधार्थ 'न ल्यपि' सूत्र है। तो यहाँ कित्व लाने में अनल्विधौ से निषेध हो जायगा, तो ईत्व कित्वाभाव होने से प्राप्त ही नहीं है फिर नल्यपि सूत्र क्यों? व्यर्थ होकर सूचित करता है कि अनुबन्ध कार्य में अनल्विधौ नहीं लगता। तो टित्वउगित्व से ङीप् प्राप्त था। परन्तु "ज्ञापक सिद्ध वचन है, "लाश्रयमनुबन्धकार्यम् आदेशानां न" लाश्रय अनुबन्ध कार्य टित्वउगित्व है वह आदेश, शानच् को नहीं होगा। प्रमाण, 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' इस सूत्र में ङिच्च क्यों किया? क्योंकि लिङ् के स्थान में तिङादिक हैं, और यदागम न्याय से यासुट् तिङ् का अवयव है अतः लिङ् का ङित्व यासुट् में आ ही जायगा फिर 'ङिच्च' क्यों किया। वह व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है। 'लाश्रय-

कुरुचरी। नदट् नदी। सौपर्णेयी, ऐन्द्री, औत्सी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री,

सुपर्ण्याः अपत्यम्, 'स्त्रीभ्यो ढक्' से सुपर्णी शब्द से ढक्। आयनेयी नीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' से ढ को एय् आदेश। 'यस्येति च' से ईकार लोप। 'किति च' से आदि वृद्धि। सौपर्णेय, 'ढ' प्रत्ययान्त है अतः ढप्रत्ययान्त अनुपसर्जन अदन्त प्रातिपदिक सौपर्णेय से ङीप् अल्लोप। सौपर्णेयी, गौरीवत्। इन्द्रो देवता अस्या 'सास्य देवता' से अण्, णित्त्वात् आदि वृद्धि, अल्लोप। ऐन्द्र। अणन्तत्वात् ङीप् ऐन्द्री। उत्स-स्यापत्यम् स्त्री। 'उत्सादिभ्योऽञ्' से अञ्। ञित्वाद् आदि वृद्धि। औत्स वह अञन्त है। ऊरू प्रमाणस्याः। प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः से उक्त प्रत्यय। ङीप्, अल्लोप। ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री। पञ्च अवयवा अस्याः। संख्याया अवयवे तयप्, पञ्चतयी। पूर्ववत्, अक्षैर्दीव्यति। तेन दीव्यति जयति॰ इससे ठक् ठस्येकः से ठ प्रत्यय को इक, यस्येति च। किति च, आक्षिक शब्द से ङीप् अल्लोप। आक्षिकी, लवणं पण्यमस्याः। लवणात् ठञ्, ङीप् अन्य कार्य पूर्ववत्। लावणिकी, यादृशी। त्यदा-दिषु दृशोनालोचने कञ् च। कञन्तत्वात् ङीप्। आसर्वनाम्नः, सर्व-

---

मनुबन्ध कार्यमादेशानां न' अतः न लटः का टित्व उगित्व शानच् में नहीं आवेगा। ङीप् नहीं प्राप्त है, परन्तु उक्त ज्ञापन से ब्रूतात् में तातङ् आदेश करने पर तिप् गत पित्व को लेकर ब्रुवईट से ईट् हो जायगा। क्योंकि वह स्थानिवत्त्व लाश्रय नहीं है किन्तु तिबाश्रय है, और भाष्यकार ने कहा है, 'ङिच्च पित् न, पिच्च ङित् न' ङित् पित् नहीं होगा, और पित् ङित् नहीं होगा इस अरुचि को लेकर दूसरा ज्ञापक कहते हैं, 'हलः श्नः शानच् झौ', सूत्र में श्ना प्रत्ययगत शित्व-शानच् में आ ही जायगा फिर शानच् शित् क्यों पढ़ा वह व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है, 'क्वचिदनुबन्धकार्येऽपि अनल्विधाविति निषेधः प्रवर्तते' अतः अनल्विधौ से निषेध होने से टित्व उगित्व नहीं आवेगा, तो ङीप् नहीं प्राप्त है वक्ष्यमाणा सुसाधु है। परन्तु भाष्यकार ने शानच् के शित् का प्रत्याख्यान किया है। अतः शानच् प्रत्यय को अजादि गण में मानकर वक्ष्यमाणा चिन्वाना पचमाना इत्यादि का साधुत्व जानना।

पञ्चतयी, आह्निकी, लावणिकी, यादृशी, इत्वरी। ताच्छीलिके णेऽपि। चौरी। नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् ।*। स्त्रैणी, पौंस्नी, शाक्तीकी, आढ्यकरणी, तरुणी, तलुनी। यञश्च।४।१।१६। यञन्तात्स्त्रियां ङीप्स्यात्। अकारलोपे कृते। हलस्तद्धितस्य।६।४।१५०।

णंदीर्घ, यस्येति च। यादृशी, इत्वरी-इण्धातु, इण्नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप्। ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्। इत्वर शब्द से ङीप्। इत्वरी, चौरी, चुराशीलमस्याः, यह विग्रह है छत्रादिभ्यो णः। आदि वृद्धि, अल्लोप। स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्राप्त था। ताच्छीलिके णेऽपि। ताच्छीलिक ण प्रत्यय के परे भीङीप् हो, ङीप्, अल्लोप चौरी। स्त्रियां भवा, पुंसिभवा विग्रह। 'स्त्रीपुंसाभ्यां से, नञ्स्नञ् प्रत्यय न आदि वृद्धि नञ्स्नञीकक् इति ङीप् अल्लोप, अट्कुप्वाङ् से णत्व। स्त्रैणी, एवं पौंस्नी, संयोगान्तस्य लोपः से स् लोप। शक्तिः प्रहरणमस्याः, 'शक्तियष्ट्योरीकक्' से ईकक् यस्येतिच से इकार लोप, कितिच। ङीप् अल्लोप, शाक्तीकी। आढ्य- सुभग, से ख्युन्, रकार नकार इत्, युवोरनाकौ, अरुर्द्विष् से मुम् अनुस्वार परसवर्णत्व। ख्युन् प्रत्ययान्त है अतः ङीप् अल्लोप आढ्य- करणी, तरुण तलुन शब्द से ङीप् अल्लोप। तरुणी तलुनी, यद्यपि यहां वयसि प्रथमे से ङीप् सिद्ध था परंतु गौरादित्वात् प्राप्त ङीष्के बाधके

टिप्पणी—'ताच्छीलिके णेऽपि' यह ज्ञापक सिद्ध वचन है। तथाहि 'कार्मः ताच्छील्ये' तच्छील अर्थ में कार्म हो, कर्म शीलमस्य। 'छत्रादिभ्यो णः' से ण प्रत्यय। आदि वृद्धि। नस्तद्धिते से टिलोप। कार्मः सिद्ध ही था, फिर 'कार्मस्ताच्छील्ये' सूत्र क्यों किया। 'अन्' से प्रकृतिभाव न हो एतदर्थं है, यह नहीं कह सकते। क्योंकि—'अन्' सूत्र से प्रकृतिभाव अण् प्रत्यय के परे होता है, यहाँ ण प्रत्यय है। अतः कार्मस्ताच्छील्ये व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है, 'ताच्छीलिके णेऽपि अण् कार्याणि भवन्ति।' अतः इस वचन से प्राप्त प्रकृतिभाव के प्रतिषेध के लिए कार्मस्ताच्छील्ये सूत्र पढ़ा है। वचन का फल चौरी। यहाँ तच्छील अर्थ में ण प्रत्यय है। उसमें अण् कार्य होने से अणन्तत्वात्, टिड्ढाणञ् से ङीप्। यस्येति च। चौरी, गौरी शब्दवत् रूप होंगे।

हल उत्तरस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोपः स्यादीपि परे। गार्गी। अनपत्याधिकारस्थान्न ङीप्। ⊛। द्वीपे भवा द्वैप्या अधिकारग्रहणान्नेह। देवस्यापत्यं स्त्री, दैव्या। प्राचां ष्फ तद्धितः।४।१।१७। यञन्तात्ष्फो वा स्यात्, स्त्रियाम् स च तद्धितः। षः प्रत्ययस्य।१।३।६। प्रत्ययस्यादिः

लिये उपादान है। गर्गस्यापत्यं स्त्री, गर्गादिभ्यो यञ् से यञ्, अल्लोप, गार्ग्य शब्द है।

(यञश्चेति) यञश्च। यञ् प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् हो। यञ् प्रत्ययान्तगार्ग्य ङीप् अल्लोप।

(हलइति) हलस्तद्धितस्य। हल से उत्तर तद्धित टाकार का लोप हो, ईप् प्रत्यय के परे। इससे यकार का लोप गार्गी। 'अनपत्याधिकार-स्थान्न ङीप्। वार्तिक है। जो अपत्याधिकार में नहीं पठित है, चाहे अपत्यार्थक है, तब भी ङीप् नहीं होगा। द्वीपे भवा, में भवार्थक यञ्। आदि वृद्धि अतः ङीप् नहीं होगा किन्तु अदन्तत्वात् टाप्। अकः सवर्णे दीर्घः। द्वैप्या, रमावत्। जो अपत्याधिकार में पठित नहीं है उससे नहीं, होगा। जैसे—देवस्यापत्यम्, 'देवाद् यञञौ' यहाँ यञ् प्रत्यय अपत्यार्थक है परन्तु अपत्याधिकार में नहीं होगा, किंतु टाप्, दैव्या, द्वैप्यावत्। गार्य से स्त्रीत्वविवक्षामें।

(प्राचामिति) प्राचां ष्फतद्धितः। यञन्त ष्फ् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से हो और वह प्रत्यय तद्धित संज्ञक हो, इससे ष्फ् प्रत्यय हुआ।

(षइति) षः प्रत्ययस्य। प्रत्यय का आदि षकार इत् संज्ञक हो। तस्य लोपः।

टिप्पणी—गार्ग्य ई इस अवस्था में अल्लोप क ।स्थानिवत् भाव होने से यकार उपधा में नहीं है। य लोप कर्तव्य में अल्लोप 'आभीयत्वेन' असिद्धवदत्राभात् से असिद्ध है तो अल्लोप के असिद्ध होने से ईकार पर नहीं है अतः फिर भी यलोप नहीं हो सकेगा। सूत्रारम्भ सामर्थ्य से अकार के व्यवधान होने पर भी यलोप हो जायगा। तो फिर उपधा पद की अनुवृत्ति नहीं करनी। स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिए अनुवृत्त है।

ष इत्स्यात्। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** ।७।१।२। स्पष्टम्। तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वम्। षित्वात् ङीष्। गार्ग्यायणी। **सर्वत्रलोहितादिकतन्तेभ्यः**।३। लोहितादिभ्यः कतशब्दान्तेभ्यो यञन्तेभ्यो नित्यं ष्फः स्यात्। लौहित्यायनी। **कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च** ।४।१।१९। टाप्ङीपोरपवादः। कौरव्यायणी, माण्डूकायनी। **आसुरेरुपसंख्यानम्**।

(आयनिति) आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्। यथासंख्यमनुदेशः समानाम् से स्थानी और आदेश का क्रम से संबन्ध है, प्रत्यय के आदि में विद्यमान फ् ढ ख छ घ इन को आयन्, एय् ईन ईय् इय् ये आदेश हों, फ् को आयन् आदेश। तद्धितान्तत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा। षिद्गौरादिभ्यश्च से ङीष् 'प्राचां ष्फ तद्धितः' से विहित ष्फ् प्रत्यय से स्त्रीत्व सिद्ध है, फिर उक्तार्थानामप्रयोगः से ङीष् नहीं होगा। षित्वात् ङीष्, षित्व सामर्थ्य से ङीष् होगा। गार्ग्यायणी।

(सर्वत्रेति) सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः। लोहितादिक और कतशब्दान्त जो यञन्त उससे नित्य ष्फप्रत्यय हो। लोहितादि गर्गाद्यन्तर्गण है। लोहितस्यापत्यं स्त्री, गर्गादित्वात्, यञ्। आदि वृद्धि, अल्लोप, यञन्तलोहित शब्द से अर्थात् लौहित्य शब्द से नित्य ष्फ् प्रत्यय। 'षः प्रत्ययस्य' से ष इत्। फ् को आयन् अल्लोप। षित्वात् षिद् गौरादिभ्यश्च। अन्य कार्य पूर्ववत्। लौहित्यायनी। कतस्यापत्यं स्त्री। गर्गादित्वात् यञ्, पूर्ण प्रक्रिया, लौहित्यायनीवत्।

(कौरव्येति) कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च। कौरव्य और माण्डूक शब्द से ष्फ् प्रत्यय हो। टाप् ङीप् का अपवाद है। कुरोरपत्यं स्त्री। कुर्वादिभ्यो ण्य। ओर्गुणः। वान्तो यि प्रत्यये। कौरव्य से टाप् प्राप्त था उसे बाधकर उक्त सूत्र से ष्फ प्रत्यय। अन्य साधुत्व पूर्वोक्तवत्, मण्डूको नाम ऋषिः। 'ढक् च मण्डूकात्' से अण् आदि वृद्धि। अणन्तत्वात् ङीप्, 'गोत्रं च चरणैः सह' जातित्वात् ङीष् प्राप्त था बाधकर ष्फ प्रत्यय, षित्वात् षत्वसामर्थ्यात् ङीष्। साधुत्व पूर्ववत्। आसुरेरुपसंख्यानम्' आसुरि शब्द से भी ष्फ प्रत्यय हो। असुरस्यापत्यं स्त्री अ

आसुरायणी। **वयसि प्रथमे** ।४।१।२०। अतः स्त्रियां ङीप्स्यात् । कुमारी । वयस्यचरम इति वाच्यम् ।*। वधूटी, चिरण्टी । वधूटचिरण्टशब्दौ यौवनवाचिनौ। कन्यायाः कनीन चेति निर्देशात् कन्याया न। **द्विगोः** ।४।१।२३। त्रिलोकी। अजादित्वात् त्रिफला । **अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि** ।४।१।२२। अपरिमाणान्ताद् बिस्ताद्यन्ताच्च द्विगोर्ङीप्

इञ्, तद्धितेष्वचामादेः, यस्येति च। आसुरि से ष्फ् प्रत्यय। षः प्रत्ययस्य, आयनेयी० से आयन् आदेश, यस्येति च से इकार लोप। अट्कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि। षिद्गौरादिभ्यश्च पुनः यस्येतिच से ष्फ् प्रत्यय के अकार का लोप। गौरी शब्दवत्। आसुरायणी।

(वयसीति) वयसि प्रथमे, प्रथम वयस् में विद्यमान अर्थात् प्रथम अवस्था का वाचक अदन्त प्रातिपदिक उससे ङीप् हो। यस्येति च। कुमारी किशोरी। अवस्था विशेष में कुमार किशोर का प्रयोग यौवन से पूर्व में होता है। भाष्यकार का मत है, वयसि प्रथमे के स्थान पर 'वयस्यचरमें' पढ़ना चाहिये। चरम अवस्था में नहीं विद्यमान अदन्त प्रातिपदिक से ङीप् हो। वधूट चिरण्ट शब्द यौवन वाचक है ङीप् हो जायगा, वधूटी, चिरण्टी। 'कन्यायाः कनीन च' सूत्र में कन्यायाः पढ़ा है इससे।

(द्विगोरिति) द्विगोः। अतः की अनुवृत्ति है। कन्य शब्द से ङीप् नहीं होगा। द्विगु समास में विद्यमान अदन्त प्रातिपदिक से ङीप् हो। संख्या पूर्वो द्विगुः। संख्यावाचक शब्द को पूर्व में विद्यमान होने पर द्विगु समास कहाता है। तो त्रिलोक शब्द द्विगु है ङीप् हो गया। त्रिलोकी। त्रिफला त्र्यनीका, ये संख्यावाचक त्रिशब्द के पूर्व में होने से द्विगुत्वात् ङीप् क्यों नहीं, अजादि हैं, अतः अजादित्वात् टाप् होगा।

(अपरीति) अपरिमाण विस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धित लुकि। अपरिमाणान्त से अर्थात् परिमाण वाचक जिसके अन्तर पर न हो, तथा बिस्त आचित कम्बल्य जिन के अन्त पर हों उनसे द्विगु समास में विद्यमान होने पर भी ङीप् न हो। तद्धित प्रत्यय का लुक होने पर। पञ्चभिः

स्यात् तद्धितलुकि सति। पञ्चभिरश्वैः क्रीता, पञ्चाश्वा। द्विविस्ता, द्व्याचिता, द्विकम्बल्या। काण्डान्तात्क्षेत्रे ।४।१।२३। द्वे काण्डे प्रमाणमस्या प्रमाणे द्वयसज्जितिविहितस्य मात्रचः। द्विगोर्नित्यमिति लुक्, द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः। पुरुषात्प्रमाणेऽन्यतरस्याम्।४।१।२४। द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः सा, द्विपुरुषी द्विपुरुषा वा, परिखा। ऊधसोऽनङ् ।५।४।१३१। ऊधोऽन्ताद् बहुव्रीहेरनङादेशः स्यात्, स्त्रियाम्।

अश्वैः क्रीता यह विग्रह है। तद्धितार्थोत्तर पद समाहारे च से द्विगु समास। 'अर्हाद्गोपुच्छ' के अधिकार में 'तेन क्रीतम्' से ठक्। 'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' से ठक् का लुक्। पञ्चाश्व से ङीप् प्राप्त था। उक्त सूत्र से निषेध। टाप्। दीर्घ। रमावत्। द्वौ विस्तौ पचति। तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च से समास। संभवत्यवहरति पचति से ठक् अध्यर्द्ध से लुक्, द्विगोः से ङीप् प्राप्त था उक्त सूत्र से निषेध। टाप्। द्विविस्ता। द्वौ आचितौ वहति। ठञ्, पूर्ववत् अध्यर्द्ध से लुक्। द्व्याचिता। उक्त सूत्र से ङीप् निषेध। टाप्। द्वाभ्यां कम्बल्याभ्यां क्रीता द्विकम्बल्या। पञ्चाश्वा के सामान साधुत्व।

(काण्डान्तादिति) काण्डान्तात् क्षेत्रे। क्षेत्र वाच्य होने पर काण्डान्त द्विगु से ङीप् न हो तद्धित लुक् होने पर। द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः विग्रह। मात्रच् प्रत्यय उसका लुक्। उक्त सूत्र से ङीप् निषेध। द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः।

(पुरुषादिति) पुरुषात्प्रमाणेऽन्यतरस्याम्। प्रमाण अर्थ में पुरुषान्त द्विगु से ङीप् विकल्प से हो। द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः विग्रहः। पूर्ववत् प्रमाणे द्वयसज्० से मात्रच् प्रत्यय। द्विगोर्लुक् से लुक्। विकल्प से ङीप् द्विपुरुषी। पक्ष में द्विपुरुषा।

(ऊधस इति) ऊधसोऽनङ्। येनविधि से तदन्त विधि बहुव्रीहि का विशेषण। ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि को अनङ् स्त्रीलिङ्ग से कुण्डोधस् के सकार को अनङ् हुआ। अतोगुणे लान्तत्वात् ङीप् प्राप्त था। अन्न उपधा-अभो बहुव्रीहेः से निषेध। डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् से डाप्

इत्यनङि कृते, डाब्ङीब्निषेधेषु प्राप्तेषु । बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ।४।१।२५। ऊधोन्ताद् बहुव्रीहेर्ङीष् स्यात्, स्त्रियाम् । कुण्डोध्नी । संख्याव्ययादेर्ङीप् ।४।१।२६। द्व्यूध्नी । दामहायनान्ताच्च ।४।१।२७। संख्यादेर्बहुव्रीहेर्दामान्ताद् हायनान्ताच्च ङीप् स्यात् । द्विदाम्नी । द्विहायनी बाला । अव्ययाननुवृत्तेर्नेह । उद्दामा । पक्षे डाब्निषेधो ।

लोपिनोऽन्यतरस्याम् से विकल्पेन ङीप् प्राप्त था।

(बहुव्रीहेरिति) बहुव्रीहेरूधसो ङीष् । ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि से ङीष् हो स्त्रीलिङ्ग में, तो कुण्डोधन् से ङीष् हो गया। भसंज्ञा, अल्लोपः ।

(संख्येति) संख्याव्ययादेर्ङीप्। संख्या वाचक अथवा अव्यय जिसके पूर्व हो ऐसे ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि से ङीप् हो, ङीष् का अपवाद है। ङीष् और ङीप में स्वर में भेद है। द्वे ऊधसी यस्याः। ऊधसो, नङ्, पूर्ववत् निषेध डाप् ङीप् ङीष् प्राप्त थे उन्हें बाधकर ङीप्, द्व्यूध्नी, अतिशयितम् ऊधः यस्याः, अत्यूध्नी । 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे, द्वितीयया' तत्पुरुष समास में अत्यूधाः । ङीप्-ङीष् अनङ् आदि नहीं होंगे ।

(दामेति) दामहायनान्ताच्च । संख्या वाचक शब्द जिसके आदि में है, ऐसे दामान्त हायनान्त बहुव्रीहि से ङीप् हो । द्वे हायनी यस्याः । संख्या वाचक द्वि पूर्व में है ऐसा दामन् शब्दान्त बहुव्रीहि है, ङीप् हो गया । ङीप् निषेध डाप् ङीप् विकल्प ङीष् प्राप्त थे, बाधकर ङीप् हो गया । अल्लोप । द्विदाम्नी । द्वे हायने यस्याः यहाँ हायनान्त बहुव्रीहि है, ङीप् होगा। अदन्तत्वात् टाप् प्राप्त था। द्विहायनी बाला। अव्यय की अनुवृत्ति नहीं होगी। यद्यपि 'संख्याव्ययादेर्ङीप्। सूत्र में संख्या के साथ ही अव्यय पढ़ा है, परन्तु तथाभूत स्वरितत्व प्रतिज्ञा के कारण अव्यय की अनुवृत्ति नहीं होगी। उद्गतं दाम यस्याः सा उद्दामा। अनो० से ङीप् प्राप्त था। डाबुभाभ्याम् से डाप्। पक्ष में। 'अनउपधालोपिनः' से ङीप्। पक्ष में राजन्वत्। त्रीणि हायनानि यस्याः दाम हायनान्तच्च से ङीप् अल्लोप त्रिहायणी। असमान पद होने से णत्व अप्राप्त था।

त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम् ।*। त्रिहायणी, चतुर्हायणी। वनोवाचकस्यैव हायस्य ङीप्णत्वं।*।नेह। त्रिहायना, चतुर्हायना शाला। नित्यंसंज्ञाछन्दसोः ४।१।२७। सुराज्ञी नाम नगरी, वेदे तु शतमूर्ध्नी। केवलमामकभागधेयपापरसमानार्यकृतसुमङ्गलभेषजाच्च ।४।१।३०। केवली, मामकी भागधेयी इत्यादि । संज्ञाच्छन्दसोरन्यत्र । केवला मामिका । अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ।४।१।३२। गर्भिण्यां जीवद्भर्तृकायां प्रकृतिभागौनिपात्येते । मतुब्वत्वयोर्निपातेन निष्पन्नाभ्यामाभ्यां स्त्रियां

'त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम्। त्रिशब्द और चतुर् शब्द से पर हायन शब्द के नकार को णकार हो। त्रिहायणी, एवम्-चत्वारि हायनानि यस्याः कन्यायाः चतुर्हायणी। वयो वाचकस्यैव हायनस्य ङीप् णत्वं चेष्यते। वयम् अवस्था वाचक ही हायनान्त बहुव्रीहि के ङीप् और णत्व होगा। त्रीणि हायनानि यस्याः शालायाः। यहाँ शाला निवास स्थान, वयवाचक नहीं है अतः ङीप् णत्व नहीं होगा त्रिहायना, एवं चतुर्हायना होंगे।

(नित्यमिति) नित्यं संज्ञा छन्दसोः। संज्ञा वाचक और छन्दस वेद में नित्य ङीप् हो। सुराजन् से ङीप् हो गया। अन उपधा लोपिनः से विकल्पेन प्राप्त था नहीं होगा। अल्लोपोऽनः स्तोः श्चुनाश्चुः। सुराज्ञी नगरी का नाम है। वेद में शतमूर्धन् से नित्य ङीप्। अल्लोप। शतमूर्ध्नी।

(केवलेति) केवल-मामक-भागधेय-पापा-ऽपर-समाना-ऽऽर्यकृत-सुमङ्गल -भेषजाच्च। केवलादिक शब्दों से संज्ञा और वेद में ङीप् हो। यस्येति च से अल्लोप। केवली। मामकी इत्यादि समान हैं। संज्ञा छन्दस् से अतिरिक्त लोक में असंज्ञा में। केवला, मामिका। मामकनरकयोरुपसंख्यानम् प्रत्ययस्थात् सूत्र पर उक्त है। इत्व। मामिका इत्यादि।

(अन्तर्वदिति) अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्। अन्तर्वत् और पतिवत् से स्त्री लिङ्ग में नुक् हो। कित्वात् अन्त में होगा। गर्भिणी अर्थ में

नुक् स्यात्। ऋन्नेभ्यो ङीप् अन्तर्वत्नी। पतिवत्नी। **पत्युर्नो यज्ञसंयोगे** ।४।१।३३। वशिष्ठस्य पत्नी। **विभाषा सपूर्वस्य** ।४।१।३४। गृहपत्नी, गृहपतिः। अनुपसर्जनस्येत्यनुवृत्तमपि न पत्युर्विशेषणम्, किन्तु तदन्तस्य। तेन बहुव्रीहावपि। दृढपत्नी, दृढपतिः। क्वचित्पत्नीव पत्नीत्युपचारात्। व्यस्तेऽपि प्रयोगः। वृषलस्य पत्नी। **नित्यं सपत्न्यादिषु** ।४।१।३५।

अन्तर्वत्नी शब्द का प्रकृति भाग अन्तर्वत् है। अतः अन्तः अस्ति अस्या गर्भः इस विग्रह में अन्तर् शब्द का अस्ति के साथ सामानाधिकरण नहीं है इससे मतुप् की प्राप्ति नहीं है। निपातनात् मतुप्। मादुपधायाश्च मतो र्वोऽयवादिभ्यः से अकारोपध होने से वकार। पतिः अस्याः विग्रह में मतुप् प्रत्यय होगा। वत्व अप्राप्त था, निपातनात् मकार को वकार। अन्तर्वत् शब्द से एवम् पतिवत् शब्द से नुगागम। ककार इत्। उकार उच्चारणार्थं। ऋन्नेभ्यो ङीप् से नान्तत्वात् ङीप्। अन्तर्वत्नी, पतिवत्नी।

(पत्युरिति) पत्युर्नो यज्ञसंयोगे। पतिशब्द को नकारादेश हो, यज्ञ से संयोग होने पर। अलोऽन्त्यस्य से अन्त्य इकार को नकार। नान्तत्वात् ङीप्। वशिष्ठस्य पत्नी। यज्ञ में स्त्री को पुरुष कृत यज्ञादि का सहाधिकार होने से स्त्रीको भी फल मिलता है, यही यज्ञादिसंयोग है।

(विभाषेति) विभाषा सपूर्वस्य। सपूर्वक पति शब्द को अर्थात् जिसके पूर्व में कोई शब्द विद्यमान है ऐसे पति शब्द को स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से नकार हो। गृहस्य पतिः स्त्री। गृहपत्नी, गृहपतिः। अनुपसर्जनस्य की अनुवृत्ति है, परन्तु वह पति शब्द का विशेषण नहीं है, किन्तु तदन्त का विशेषण है। इसलिए बहुव्रीहि समास में भी सपूर्वक पति शब्द को नकार होगा। दृढः पतिर्यस्याः सा दृढपत्नी, पक्ष में दृढपतिः। कहीं पर व्यस्त में भी पति शब्द गत स्त्रीलिङ्ग में नकारादेश का प्रयोग देखते हैं। जैसे—वृषलस्य पत्नी। यहाँ पत्नी इव पत्नी यह औपचारिक प्रयोग है।

(नित्यमिति) नित्यं सपत्न्यादिषु। सपत्न्यादिक शब्दों में नित्य नकारादेश हो। विभाषा सपूर्वस्य से विकल्पेन प्राप्त था। समानः पतिर्यस्याः समान को स आदेश निपात से होगा। नकारादेश ङीप्, परम्।

समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी, एकपत्नी, वीरपत्नी। पूतक्रतोरै च ।४।१।३६। इयं त्रिसूत्री पुंयोग एवेष्यते। पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी। अन्यत्र पूतक्रतुः। वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः ।४।१।३७। वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी अग्नायी, कुसितायी, कुसिदायी। मनोरौ वा ।४।१।३८। ऐकारौकारौ वास्तः। ताभ्यां सन्नियोगशिष्टो ङीप् च। मनोः स्त्री मनायी, मनावी, मनुः। वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः

भवति लोक में प्रसिद्ध है। एवम्, एकपत्नी, वीरपत्नी भी जानना।

(पूतक्रतोरिति) पूतक्रतोरै च। पूतक्रतु शब्द से ङीप् हो चकार से ऐकारादेश हो। 'इयं त्रिसूत्री पुंयोग एवेष्यते" यह वार्तिक है। यह त्रिसूत्री पुंयोग में ही होगी। पूतक्रतोः स्त्री पुंयोग है, ङीप् हो गया। उकार को ऐकारादेश, एचोऽयवायावः से ऐकार को आय्। पूतक्रतायी और जहां पुंयोग नहीं है वहाँ पूतक्रतुः होगा। 'यथा तु क्रतवः पूताः स्यात्पूतक्रतुरेव सा'।

(वृषेति) वृषाकप्यग्नि कुसित कुसिदानामुदात्तः। इन वृषाकपि इत्यादिक शब्दों से ङीप् हो और उदात्तसंज्ञक ऐकारादेश हो। वृषाकपेः स्त्री। वृषाकपि शब्द से ङीप् हो गया और इकार को उदात्त संज्ञक ऐकारादेश। एचोऽयवायावः। वृषाकपायी। गौरी शब्दवत्। हर और विष्णु को वृषाकपि कहते हैं, "हरविष्णू वृषाकपी" यह अमर कोष है। एवम् 'अग्नेः स्त्री अग्नायी। पूर्ववत् प्रक्रिया जानना। कुसित कुसिद अकारान्त शब्द हैं, अतः ङीप् होगा और ऐकारादेश अकार को होगा। आयादेश। कुसितायी। कुसिदायी।

(मनोरिति) मनोरौ वा। मनुशब्द को पुंयोग में उकार को ऐकार औकार विकल्प से हो, उन ऐकार औकार के योग में अर्थात् जहाँ ऐकार औकार हुआ वहाँ ङीप् प्रत्यय होगा। ऐकार को आय् और औकार को आव्। मनायी। मनावी। पक्ष में। मनुः धेनु शब्दवत्।

(वर्णादिति) वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः। वर्णवाची अनुदात्तान्त तकारोपध-अर्थात् तकार जिसके उपधा में है, तदन्त अनुदात्त अकारान्त प्रातिपदिक से विकल्प से ङीप् हो, और तकार को नकार

।४।१।३९। वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनादकारान्ता-त्प्रातिपदिकाद्वा ङीप् स्यात्, तकारस्य नकारादेशश्च । एनी, एता । रोहिणी, रोहिता । पिशङ्गादुपसंख्यानम् ॐ पिशङ्गी, पिशङ्गा । असित-पलितयोर्न । ॐ । असिता, पलिता । छन्दसि क्नमित्येके । * । असिक्नी पलिक्नी । अन्यतो ङीष् ।४।१।४०। तोपधभिन्नाद्वर्णवाचिनोऽनुदात्ता-न्तात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् स्यात् । कल्माषी, सारङ्गी । षिद्गौरा-

---

को नकार हो, यस्येति च । एत शब्द शुभ्रवाची है, जहाँ ङीप् तकार को नकार हुआ वहाँ एनी, पक्ष में अदन्तत्वात् टाप्, एता । एवं रक्त वर्णवाची रोहित शब्द से ङीप् तकार को नकार । अल्लोप । अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि से णत्व । रोहिणी । पक्ष में रोहिता । (पिशङ्गा-दुपसंख्यानम्) पिशङ्ग शब्द से ङीप् विकल्प से हो । पिशङ्गी, पक्ष में पिशङ्गा । (असित पलितयोर्न) असित और पलित शब्द से ङीप् नत्व न हो । असिता, पलिता । छन्दसि क्नमित्येके । असित पलित शब्द से वेद में ङीप् और तत्सन्नियोग में तकार को क्न आदेश हो, यह कोई आचार्य मानते हैं । असित से ङीप्, तकार को क्न आदेश । असिक्नी । एवम् पलित का पलिक्नी ।

(अन्यतो इति) अन्यतो ङीष् इस सूत्र से, पूर्व में तोपधवर्णवाची कहा है, उससे भिन्न अर्थात् तकारोपध रहित वर्णवाची अनुदात्तान्त प्रातिपदिक से ङीष् हो । कल्माष से ङीष् कल्माषी । एवं सारङ्गी । चित्रं किर्मीर कल्माष, शबलैताश्च कर्बुरे, इति । सारङ्गः शबले त्रिषु इति चामरः ।

(षिदिति) षिद्गौरादिभ्यः । षकारेत्संज्ञक और गौरादि गण पठित शब्दों से ङीप् । नर्तकी । नृत्–धातु । शिल्पिनि ष्वुन् ।३।१।१४५। से ष्वुन् प्रत्यय । षः प्रत्ययस्य से षकार की इत् संज्ञा । युवोरनाकौ से वु को अकादेश । पुगन्तलघूपधस्य च से उपधा गुण । उरण् रपरः । नर्तक । षित् है, अतः षित्त्वात् स्त्रीलिङ्ग में ङीष् । अल्लोप । नर्तकी । अनड्वह शब्द से गौरादित्वात् ङीष् । अनुडुहः स्त्रियाम् आम् वा । अनड्वह् शब्द से स्त्रीलिङ्ग में आम् विकल्प से हो ।

दिभ्यश्च ।४।१।४१। नर्तकी, गौरी । अनडुहः-स्त्रियां वा आम् । अनडुही, अनड्वाही । आकृतिगणोऽयम् । **सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः** ।६।४।१४९। एषां यस्य लोपः । मत्स्यस्य ङ्याम् । * । सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च । * । तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम् । * । मत्सी । गौरादिषु मातामहीशब्दस्य पाठादनित्यः षितां ङीष् । * । दंष्ट्रा । **जानपद-कुण्ड-गोण-स्थल-भाज-नाग-काल-नील-कुश-कामुक-कवराद्, वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु** ।४।१।४२। क्रमाद्वृत्यादिष्वर्थे

मिदचोऽन्त्यात्परः से अन्त्य अच् उकारोत्तर आम् हुआ, इकोयणचि से उकार को वकार । अनड्वाही । जहाँ आम् नहीं हुआ वहाँ अनडुही । यह गौरादि आकृति गण है । प्रयोगानुकूल गौरादि में जानना ।

(सूर्येति) सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः । सूर्य-तिष्य-अगस्त्य-मत्स्य इनकी उपधा के यकार का लोप हो । 'मत्स्यस्य ङ्याम्' नियम करता है, मत्स्य के यकार का लोप केवल ङी के परे होगा । सूर्य और अगस्त्य शब्द के यकार का लोप छ प्रत्यय के परे और ङी के परे होगा । तिष्य पुष्ययोर्नक्षत्राणि य लोप इति वाच्यम् । तिष्य का प्राप्त था, नक्षत्र वाचक में नियमार्थ है और पुष्यका य लोप अप्राप्त था उसका नक्षत्र में विधान है । मत्सी । मत्स्य शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में गौरादित्वात् ङीष् । मत्स्यस्य ङ्याम् से यलोप । यस्येति च से अल्लोप । मत्सी । दंश् धातु-दश्यते अनेन । करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय । 'षः प्रत्ययस्य' से षकार इत् । व्रश्चभ्रस्ज् से षत्व । दंष्ट्र । स्त्रीत्व विवक्षा में षित्वात् ङीष् प्राप्त था । परन्तु 'गौरादिषु मातामही शब्दस्य पाठात् अनित्यः षितां ङीष्' यह ज्ञापक सिद्ध वचन है । 'मातरि षिच्च' इससे षित्व होने से षित्वात् ङीष् सिद्ध ही था फिर मातामही शब्द का पाठ गौरादि गण में व्यर्थ होकर सूचित करता है कि 'षित् आश्रित ङीष् अनित्य है' अत एव गौरादि गण में मातामही का पाठ किया । ज्ञापक सिद्ध वचन का फल दंष्ट्रा में षित्व प्रयुक्त ङीष् नहीं हुआ । पितामही के लिये सूत्र सावकाश है

ङीष् स्यात् । जानपदी वृत्तिः । अन्यत्र उत्सादित्वात् टिड्ढेति ङीपि, जानपदी आद्युदात्तः । कुण्डी अमत्रम् । कुण्डाऽन्या, जारजे तु जातिलक्षणो ङीष् कुण्डी । गोणी आवपनम् । स्थली अकृत्रिमा भूमिः । भाजी श्राणा । नागी स्थूला । काली, तद्वर्णवती । नीली अनाच्छादनम् । अनाच्छादनेऽपि न सर्वत्र किंतु । नीलादौषधौ । * । नीली । प्राणिनि च । * । नीली गौः । संज्ञायां वा । * । नीली, नीला । कुशी अयो-

---

(जानपदेति) जानपदकुण्ड गोणेत्यादि । जानपदादिक शब्दों से क्रम से वृत्त्यादिक अर्थों में ङीष् हो । जानपद शब्द से वृत्ति अर्थ में ङीष् । अल्लोप जानपदी । अन्यत्र वृत्ति अर्थ से अतिरिक्त अर्थ में उत्सादित्वात् अञ् । टिड्ढाणञ् से ङीप् जानपदी । स्वर में भेद है । ङीप् में अनुदात्तौ सुप्पितौ से आद्युदात्त है, और ङीष् में प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त है यह भेद है, एतदर्थ सूत्रोपात्त है । कुण्ड अमत्र अर्थ में ङीष्, यहाँ अप्राप्त ङीष् का पात्र अर्थ में विधान है, नियमन नहीं है, पात्र अर्थ से भिन्न अर्थ में अदन्तत्वात् टाप् । कुण्डा । 'अमृते जारजः कुण्डः' इस कुण्ड जाति वाचक अर्थ में, जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् से ङीष् होगा । गोण शब्द से वपन बोने अर्थ में ङीष् अन्यत्र टाप् । गोणा किसी का नाम है । नाज भरने की दुतरफी बोरी गून शब्द से प्रसिद्ध है । स्थल शब्द से अकृत्रिम भूमि अर्थ में ङीष् स्थली, अन्यत्र टाप् स्थला । भाजी, श्राणा अर्थ में 'यवागूरुष्णिका श्राणा' इत्यमरः । ङीष्, अन्यत्र भाजा । नागी, स्थूला-स्थौल्य गुणवती में । नाग शब्द गजवाची है, और सर्पवाची है, तो स्थौल्य गुण योग से नागी-हस्तिनी होगा और नागा-सर्पिणी में । काल शब्द से काल वर्ण में ङीष्, काली । अन्यत्र काला क्रूरा इत्यर्थः । नीली अनाच्छादनमें आच्छान से अतिरिक्त में नील शब्द से ङीष् होगा । अन्यत्र नीला, अनाच्छादन भी सर्वत्र नहीं होगा, किंतु, 'नीलाद् औषधौ' । औषधि अर्थ में नील शब्द से ङीष्, नीली, औषधि विशेषः । 'प्राणिनि च ।' और प्राणि में भी ङीष् नीली गौः । 'संज्ञायां वा' संज्ञा में विकल्पेन ङीष् होगा । नीली नीला ।

विकारा, कामुकी मैथुनेच्छावती। कवरी केशानां सन्निवेशविशेषः। **शोणात्प्राचाम्**। ४। १। ४३। शोणी, शोणा। **वोतो गुणवचनात्**।४।१।४४। मृद्वी, मृदुः। खरुसंयोगोपधान्न। *। खरुः, पतिंवरा कन्या। पाण्डुः। **बह्वादिभ्यश्च**।४।१।४५। बह्वी, बहुः। कृदिकारादक्तिनः। *। रात्री, रात्रिः। सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके। *। शकटी, शकटिः। बह्वा-

---

संज्ञा से अतिरिक्त में भी नीला होगा। कुश शब्द से अयस्-लोह विकार में कुशी। लोक में फाल शब्द से प्रसिद्ध है। अन्यत्र टाप् कुशा। कामुक शब्द से मैथुनेच्छावती अर्थ में ङीष्। कामुकी। अन्यत्र कामुका। धनादि की इच्छावती। केशों के सन्निवेश विशेष में कवर शब्द से ङीष्। कवरी। अन्यत्र टाप्। कवरा चित्रा, भिन्न भिन्न वर्णयुक्त।

(शोणादिति) शोणात् प्राचाम्। शोण शब्द से विकल्पेन ङीष् हो। अन्यतो ङीष् से नित्य प्राप्त था। विकल्पार्थ सूत्र है। 'शोणी, शोणा'। 'रोहितो लोहितो रक्तः शोणः कोकनदच्छविः' इत्यमरः।

(वोतः इति) वोतो गुणवचनात्। वा उतः। स्पष्ट है। उदन्त गुण वाचक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीप् हो। स्वरितत्व प्रतिज्ञा वश से ङीप् की अनुवृत्ति है ङीष् की नहीं मृदुत्व–कोमलता गुण है। अतः उदन्त गुणवाचक मृदु शब्द से विकल्पेन ङीप्। इको यणचि, उकार को वकार। मृद्वी। पक्ष में मृदुः। 'खरु संयोगोपधान्न' खरु शब्द से और संयोगोपध से ङीप् न हो। खरु पतिंवरा कन्या कहाती है, पतिंवरत्व गुण है और उदन्त भी है। अतः ङीप् प्राप्त था निषेध हो गया, खरुः। पाण्डुः। संयोगोपधत्वात् ङीप् नहीं हुआ।'

(बह्वादीति) बह्वादिभ्यश्च। बहु, इत्यादिक शब्दों से ङीष् हो। यथा- बह्वी। बहुः। बहुत्वगुण है अतः वोतो गुणवचनात् से ङीप् सिद्ध था फिर बहुग्रहण व्यर्थ है यह प्राचीन मानते हैं। वस्तुतः त्रित्वादि संख्यावाचक बहु है अतः संख्यावाचक गुणवाचक नहीं हो सकता यह भाष्यकारादि का सिद्धान्त है। कृदिकारादक्तिनः। क्तिन् प्रत्यय रहित इकारान्त कृदन्त शब्द से ङीष् हो। रा धातु से 'रा शदिभ्यां त्रिप्'

दित्वात् ङीष्। पद्धती, पद्धतिः। **पुंयोगादाख्यायाम्। ४। १। ४८।** पुंयोगात् स्त्रियां वर्तमानात् पुमाख्यावाचकाद् ङीष् स्यात्। गोपस्य स्त्री गोपी। पालकान्तान्न। *। गोपालिका, अश्वपालिका। सूर्याद्देवतायां चाप् वाच्यः। *। सूर्यस्य स्त्री देवता, सूर्या, सूरी कुन्ती,

---

औणादि त्रि प्रत्यय। क्तिन् प्रत्यय रहित रात्रि शब्द से विकल्पेन ङीष्, यस्येति च। रात्री, रात्रिः। सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके। सर्वतः—कृत् इकारान्त हो अथवा अकृत् इकारान्त हो क्तिन् रहित के विकल्प से ङीष् होगा। शकटि, अव्युत्पन्न इकारान्त अकृत प्रातिपदिक है, ङीष् हो गया, शकटी, ङीष् अभाव में शकटिः। 'पद्धती' क्तिन्नन्तत्वात् अप्राप्त ङीष् है अतः बह्वादि गण में पद्धति शब्द पढ़ा है। तो बह्वादित्वात् ङीष्। अल्लोप। पद्धती। पक्ष में पद्धतिः।

(पुंयोगेति) पुंयोगादाख्यायाम्। पुंयोग से स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान पुमाख्या वाचक अर्थात् पुरुष के आख्या—नाम को कहनेवाला अकारान्त प्रातिपदिक से ङीष् हो। गोपस्य स्त्री, पुमाख्या वाचक गोप शब्द है, पुंयोग से स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान है अदन्त गोप से ङीष् हो गया। गोपी। 'पालकान्तान्न।' यह वार्तिक है वस्तुतः। 'गोपालकादीनां प्रतिषेधः' यह वार्तिक है। परन्तु पालकादि से अश्वपालिकादि का ही ग्रहण होता है। अतः पालकों के ग्रहण होने में तात्पर्य को लेकर 'पालकान्तान्न' कहा है। पालक शब्द अन्तपर हो तो ङीष् नहीं होगा। गोपालकस्य स्त्री। पुंयोग है परन्तु पालकान्त है अत ङीष् नहीं हुआ। अजाद्यतष्टाप् से टाप्। प्रत्यस्थात् से इकार। गोपालिका, एवम् अश्वपालिका इत्यादि। सूर्यस्य स्त्री देवता। पुंयोगादाख्यायाम् से ङीष् प्राप्त था। सूर्याद् देवतायां चाप् वाच्यः। सूर्य से पुंयोग में चाप् हो यदि देवता स्त्री हो। सूर्यस्य स्त्री देवता, चाप्। चुटू से चकार इत्, सवर्ण दीर्घ सूर्या। यदि मानुषी स्त्री है तो ङीष्। सूर्य-तिष्यागस्त्य॰ सूत्र में नियमार्थ पठित 'सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च। यहाँ ङी पर है अतः सूर्य शब्द के यकार का लोप हो गया। सूरी। कर्ण की माता कुन्ती। यह मानुषी है, देवी नहीं है।

मानुषीयम् । इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ।४।१।४९। एषामानुगागमः स्यात् ङीष् च । इन्द्रादीनां षण्णां मातुलाचार्ययोश्च पुंयोग एवेष्यते । तत्र ङीषि सिद्धे आनुगागममात्रं विधीयते । इतरेषां चतुर्णां तूभयम् । इन्द्राणी । हिमारण्ययोर्महत्त्वे । * । महत् हिमं हिमानी । अरण्यानी । यवाद् दोषे । * । दुष्टो यवो यवानी । यवनाल्लिप्याम् । * । यवनानी । मातुलोपाध्याययोरानुग् वा

(इन्द्रेति) इन्द्रवरुण-भवशर्वरुद्रमृड-हिमारण्ययवय-वनमातुलाचार्याणामानुक् । इन शब्दों से ङीष् हो और ङीष् के संनियोग में जहां ङीष् हो वहाँ आनुक् का आगम हो । इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-और मातुल आचार्य इनसे पुंयोग में ङीष् पुंयोगादाख्यायाम् से सिद्ध था अतः इन शब्दों में आनुक् आगम मात्र का विधान है । अवशिष्ट हिम-अरण्य-यव-यवन-इनसे ङीष् और आनुगागम इन दोनों का विधान है । इन्द्रस्य स्त्री पुंयोगादाख्यायाम् से ङीष् । इन्द्र वरुण० से आनुक् । अकः सवर्णे दीर्घः, अट् कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि से णकार। इन्द्राणी । एवं शर्वाणी रुद्राणी का भी साधुत्व जानना । वरुणानी। भवानी मृडानी में पुंयोग में ङीष् और आनुक् । रेफ षकार नहीं है इससे णत्व नहीं होगा । हिमारण्ययोर्महत्त्वे । महत्त्व अर्थ में हिम और आरण्य शब्द से ङीष् आनुगागम होगा । महत् हिमम् इस अर्थ में हिम शब्द से, महत् अरण्यम् इस अर्थ में अरण्य शब्द से ङीष् आनुक् होगा । हिमानी, एवम् अरण्यानी । यवाद् दोषे । इसी वार्तिक से वृत्ति में स्त्रीत्व जानना । दुष्टो यवो यवानी । यवनात् लिप्याम् । लिपि अर्थ में यवन शब्द से ङीष् और आनुक् हो, यवनानां लिपिः । यवन शब्द से ङीष् आनुक् । सवर्ण-दीर्घादि प्रक्रिया पूर्वोक्तवत् । यवनानी। मातुलोपाध्याययोः आनुग्वा । मातुलस्य स्त्री, उपाध्यायस्य स्त्री, पुंयोगादाख्यायाम् से ङीष्, उक्त वार्तिक से विकल्पेन आनुक् । जहाँ आनुक् वहाँ मातुलानी, उपाध्यायानी और जहाँ आनुक् नहीं होगा । वहां मातुली, उपाध्यायी होगा । और यदि स्त्री अध्यापन कार्य स्वयं कर रही

।*। मातुलानी, मातुली, उपाध्यायानी, उपाध्यायी। या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा ङीष् वाच्यः।*। उपाध्यायी उपाध्याया। आचार्यादणत्वं च।*। आचार्यानी, पुंयोग इत्येव। आचार्या स्वयं व्याख्यात्री। अर्यक्षत्रियाभ्यां वा।*। स्वार्थे। अर्याणी, अर्या। स्वामिनी वैश्या वेत्यर्थः। क्षत्रियाणी, क्षत्रिया। पुंयोगे तु आर्यी, क्षत्रियी।

है, अध्यापक की स्त्री नहीं है वहाँ पुंयोगाभाव से ङीष् अप्राप्त है। इस वार्तिक से विकल्पेन ङीष्। "या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा ङीष्" ङीष् अल्लोप। उपाध्यायी। पक्ष में टाप्। उपाध्याया। स्त्री और शूद्र को पढ़ने का ही निषेध है। तो पढ़ाना कैसे हो सकता है? उत्तर-कारण वश मध्य समय में "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्" इस ऋषिवचन से अध्ययन अध्यापन रुक गया था परन्तु पूर्व समय में स्त्रियाँ भी पढ़ती-पढ़ाती थीं। देखिये स्मृति वचन—

पुरा युगेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा॥

इस समय स्मार्तसंप्रदायी सनातनी आदि में स्त्रियों के और स्पृश्य-शूद्रादि में वेदाध्ययन क्यों नहीं? जब पूर्व समय में था तो मध्य समय में क्यों रोका गया इत्यादि मेरे बनाये गोत्र निर्णय से जानना। अस्तु।

आचार्यादणत्वं च। आचार्य शब्द के आनुक् के नकार को णकार न हो। चकार से आनुक् का विधान है। आचार्यस्य स्त्री, पुंयोग में ङीष्। आनुक् णत्वाभाव आचार्यानी। यदि स्वयं व्याख्यात्री है तो पुंयोगाभाव से ङीष् नहीं होगा, और इस वार्तिक में भी पुंयोग का सम्बन्ध है अतः इससे भी ङीष् नहीं होगा। आचार्या। अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे। आर्य और क्षत्रिय शब्द से स्वार्थ में ङीष् आनुगागम विकल्प से हो। अर्य से ङीष् आनुक्। सवर्ण दीर्घ। अट्कुप्वाङ् से णत्व। अर्याणी, पक्ष में अर्या। 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' से निपात से उक्त अर्थों में अर्य होता है, अतः स्वामिनी वैश्या अर्थ कहा। एवम् क्षत्रिय शब्द से ङीष् आनुक् विकल्प से। क्षत्रियाणी क्षत्रिया। और यदि पुंयोग

क्रीतात्करणपूर्वात् ।४।१।५०। वस्त्रक्रीती । क्वचिन्न । धनक्रीता । **क्तादल्पाख्यायाम्** ।४।१।५१। करणादेः क्तान्तादन्तात्स्त्रियां ङीष् स्यादल्पत्वे द्योत्ये । अभ्रलिप्ती द्यौः । **बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्** ।४।१।५२। स्पष्टम् । ऊरुभिन्नी । जातिपूर्वादिति वक्तव्यम् । * । तेन बहुनञ्सुकाल-

---

है तो पुंयोगादाख्यायाम् से ङीष् । अर्यी, क्षत्रियस्य स्त्री क्षत्रियी ।

(क्रीतादिति) क्रीतात्करणपूर्वात् । करण वाचक शब्द पूर्व में रहने पर क्रीतान्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् हो । वस्त्रेण क्रीता, यहाँ क्रयक्रिया का करण वस्त्र है तत्पूर्वक क्रीतान्त अदन्त वस्त्रक्रीत है उससे ङीष् हो गया । वस्त्रेण क्रीता इस विग्रह में वस्त्रक्रीता अदन्त नहीं है ङीष् कैसे होगा, ठीक है परन्तु यह लौकिक विग्रह वाक्य है । अलौकिक विग्रह, वस्त्र टा क्रीत । गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समास वचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' इससे सुबुत्पत्ति से पूर्व ही समास करने पर क्रीत अदन्त से ही समास होगा । एवं वस्त्रक्रीती इत्यादि सिद्ध होते हैं । क्वचिन्न । कहीं पर क्रीतान्त से ङीष् नहीं होता । निदान 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' में बहुल शब्द से 'गतिकारकोपपदानाम्' कहीं नहीं प्रवृत्त होता है, अतः धनेन क्रीता यहाँ धनक्रीता शब्द है, अदन्तता-भाव से ङीष् नहीं होगा । धनक्रीता ।

(क्तादिति) क्तादल्पाख्यायाम् । करण पूर्वमें जिसके ऐसे क्तान्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् हो । अल्पत्व द्योत्य होने पर । अभ्रेण लिप्ता, अभ्रलिप्ती । द्यौः । किञ्चिन्मेघ युक्त । इतस्ततः मेघ-युक्त आकाश इत्यर्थः ।

(बह्विति) बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् । अन्तोदात्त क्तान्त बहुव्रीहि से ङीष् हो । भिन्नौ ऊरू यस्याः । निष्ठान्त, भिन्न पद का पूर्वनिपात प्राप्त था, 'जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्या' इससे परनिपात । जाति-काल ६।२।१७०। से अन्तोदात्त । जातिपूर्वादिति वक्तव्यम् । जाति-वाचक शब्द को पूर्व में होने पर ङीष् होगा । अन्य में नहीं, इससे बहु नञ् सु काल सुखादिक पूर्व में होने पर नहीं होगा । बहुकृता कीर्ति

सुखादिपूर्वान्न । बहुक्रीता । जातान्तान्न । * । दन्तजाता । पाणिगृहीती भार्यायाम्* पाणिगृहीताऽन्या । **अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा** ।४।१।५३। पूर्ववत् । सुरापीती, सुरापीता । **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** ।४।१।५४। असंयोगोपधमुपसर्जनं यत्स्वाङ्गं तदन्तादन्तात्प्रातिपदिकाद्वा ङीष् स्यात् । अतिकेशी अतिकेशा । चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा । स्वाङ्गं त्रिधा ।

यथा, बहुक्रीता । एवम् अक्रीता, सुक्रीता कालयाता सुखयाता, दुःखयाता । इत्यादि जानना । जातान्तान्न । जात शब्द अन्त पर होने से बहुव्रीहेश्चान्तो० से विहित ङीष् नहीं होगा । दन्ताः जाताः यस्याः, दन्तजाता । 'पाणिगृहीती भार्यायाम्' भार्या अर्थ में, अर्थात् विवाहकाले विधिवत् पाणिः गृहीतो यस्याः इस अर्थ में पाणिगृहीत से ङीष् होगा । अन्यत्र रक्षिता सुरतिका अर्थ में टाप् पाणिगृहीता होगा ।

(अस्वाङ्गेति) अस्वाङ्ग पूर्वपद क्तान्त बहुव्रीहि से ङीष् विकल्प से हो । 'बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्' से नित्य प्राप्त था । इससे विकल्पेन होगा । सुरापीती, ङीष् अभाव में सुरापीता ।

(स्वाङ्गादिति) स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् । असंयोगोपध उपसर्जन जो स्वाङ्ग अर्थात् संयोग जिसके उपधा में न हो और उपसर्जन ऐसा जो स्वांग तदन्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में विकल्प से ङीष् हो । बहुव्रीहि पदकी अनुवृत्ति से उपसर्जनत्त्व सिद्ध था फिर अनुपसर्जन पद तत्पुरुषगत उपसर्जन ग्रहणार्थ है । अतएव अतिकेशी अतिकेशा उदाहरण है । अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया, से समास । केशानतिक्रान्ता । असंयोगोपध उपसर्जन स्वांग केश है ऐसा अदन्त प्रातिपदिक अतिकेश है इससे विकल्पेन ङीष् हो गया । यस्येति च से अल्लोप । अतिकेशी । पक्ष में अतिकेशा । एवं चन्द्र इव मुखं यस्याः आह्लादकत्वादि धर्मों से सादृश्य है । असंयोगोपध उपसर्जन स्वांग तदन्त अदन्त चन्द्रमुख प्रातिपदिक से ङीष् । चन्द्रमुखी-चन्द्रमुखा स्वांग का निर्वचन तृणारणिमणिन्याय से भिन्न २ तीन लक्षणों से करते है । स्वांग त्रिधा ।

अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्। सुस्वेदा द्रवत्वात्, सुज्ञाना अमूर्त्तत्वात्, सुमुखा शाला, अप्राणिस्थत्वात्। सुशोफा विकारजत्वादेषु न ङीष्। अतत्स्थं तत्र दृष्टं च। तत्र प्राणिनि दृष्टम् परमिदानीं प्राणिनि अस्थितं तदपि स्वाङ्गम्। *। सुकेशी, सुकेशा वा रथ्या। "तेन चेत्त

अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम् (१) अतत्स्थं तत्र दृष्टं च (२) तेन चेत्तत् तथायुतम् ॥

(३) इन तीन भिन्न २ लक्षणोंमें से किसी लक्षण का समन्वय होता होगा तो वह स्वाङ्ग होगा, अद्रवमिति। द्रवरहित अर्थात् द्रवणशील बहनेवाला न हो, मूर्तिमान्—सावयव, प्राणिस्थ–प्राणवान् में स्थित, और अविकारज–विकार से उत्पन्न न हो, वह स्वाङ्ग कहाता है। सुशोभनः स्वदो यस्याः, यहाँ स्वेद-द्रव है अतः स्वाङ्ग नहीं है। सु-शोभनं ज्ञानं यस्याः, यहाँ ज्ञान अमूर्त है मूर्तिमान्· सावयव नहीं है, सुमुखा-शाला का विशेषण है, अतः प्राणिस्थ मुख नहीं है, और यदि प्राणीका विशेषण होगा तो ङीष् विकल्पेन होगा। सुमुखी सुमुखा वा वधूः। शोभनः शोफो यस्याः, यहाँ शोफ विकारज है, अतः स्वाङ्ग न होने से ङीष् नहीं होगा। अब द्वितीय लक्षण। सुकेशी। शोभनाः केशाः यस्यां रथ्यायाम्, यहाँ रथ्या का विशेषण होने से पूर्व लक्षण से अप्राप्त ङीष् है, इस लिये द्वितीय, लक्षण "अतत्स्थं तत्र दृष्टं च" कहा है। अतत्स्थम्-तत्र प्राणिनि अविद्यमानम्, उस प्राणी में स्थित न हो, अर्थात् उस समय प्राणी में विद्यमान न हों परंतु तत्र दृष्टम्, 'तत्र प्राणिनि दृष्टम्, प्राणी में देखे गये हो शोभन केश वाली रथ्या अप्राणी है, वहाँ केश स्थित हैं, और केश प्राणी में ही उत्पन्न होते हैं, अतः प्राणी में दृष्ट हैं, तो केश, अप्राणी रथ्या में स्थित हैं और पूर्व समय में प्राणी में देखे हैं तो वह भी स्वाङ्ग कहाता है। इससे रथ्या में लक्षण समन्वय होने से ङीष् विकल्प से होगा, सुकेशी सुकेशा। सुस्तनी प्रतिमा का विशेषण होने पर वे स्तन प्राणी में दृष्ट नहीं है इससे द्वितीय लक्षण और प्राणिस्थ नहीं है इससे प्रथम लक्षण का समन्वय न होने से

तथा युतम्।'' यथा प्राणिना युतं तथैव अप्राणिना युतं चेत् तदपि स्वाङ्गम्। सुस्तनी, सुस्तना वा प्रतिमा। नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्ण-शृङ्गाच्च।४।१।५५। एभ्यो वा ङीष्। तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका। अङ्ग-गात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्।*। इति वृत्तिकारः। स्वङ्गी, स्वङ्गा। पुच्छाच्च।*। सुपुच्छी, सुपुच्छा। कवरमणिविषशरेभ्यो नित्यम्।*। कवर-पुच्छी मयूरी। उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च।*। नित्यमित्येव।

लक्षण 'तेन चेत् तत्तथायुतम्' कहा, समन्वय-तेन प्राणिस्थेन स्तनाद्य-ङ्गावयवाकृतिविशेषेण तत् अप्राणि द्रव्यम् प्रतिमादि, तथा प्राणिद्रव्य-वत् यदि युतं संबद्धं तदा तत् स्तनाद्याकृतिकम् अप्राणिनोऽपि स्वाङ्ग-मिति। भावार्थ यह है कि यदि प्राणिस्थ स्तनाद्यवयवाकृति से वह अप्राणी प्रतिमा भी उसी प्रकार जैसे प्राणी में होते है वैसे ही अप्राणी प्रतिमा में बने हों तो वे अप्राणी-प्रतिमा के स्वाङ्ग होंगे। सु-शोभनौ स्तनौ यस्याः प्रतिमायाः,जैसे ये स्तन प्राणयुक्त स्त्री में देखे गये थे उसी बना वट प्रकार से प्रतिमा में देखते हैं तो ये भी स्वाङ्ग हैं। और स्वाङ्गाच्चोप-सर्जनात्० से ङीष्, सुस्तनी सुस्तना प्रतिमा का विशेषण होने पर भी होंगे।

(नासिकेति) नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च। इन शब्दों से ङीष् हो, नासिका उदर ये बह्वच् हैं, अतः वक्ष्यमाण 'न क्रोडादि बह्वचः' से ङीष् निषेध प्राप्त था और ओष्ठादिकों में संयोगोपधत्वात् अप्राप्त ङीष् विधानार्थ सूत्र है। तुङ्गा नासिका यस्याः विधान सामर्थ्यात् ङीष्। तुङ्गनासिकी पक्ष में तुङ्गनासिका, बिम्बोष्ठी बिम्बोष्ठा। चारु-दन्ती चारुदन्ता, सुशृङ्गी, सुशृङ्गा गौः। इत्यादि। अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो-वक्तव्यम् अङ्ग गात्र कण्ठ ये संयोगोपध होने से इन से अप्राप्त ङीष् है। वृत्तिकार के मत से ङीष् होगा, स्वङ्गी स्वङ्गा। सुगात्री, सुगात्रा। सुकण्ठी सुकण्ठा। पुच्छाच्च, संयोगोपधत्वात् अप्राप्त ङीष् का विधान है, सुपुच्छी सुपुच्छा। कवरमणिविषशरेभ्यो नित्यम्। इन शब्दों से पुच्छ शब्द पर हो तो नित्य ङीष् हो। कवरपुच्छी, मयूरी। विषपुच्छी, वृश्चिकी, उपमानात् पक्षाच्च पुच्छाच्च। उपमानवाचक शब्द से पक्ष वा

उलूकपक्षी शाला। उलूकपुच्छी सेना। न क्रोडादिबह्वचः ।४।१।५६। कल्याणक्रोडा। आकृतिगणोऽयम्। सुनयना। सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ।४।१।५७। सकेशा। अकेशा। विद्यमाननासिका। नखमुखात्संज्ञायाम् ।४।१।५८। शूर्पणखा। गौरमुखा। दिक्पूर्वपदान् ङीप् ।४।१।६०। दिक्पूर्वपदात्स्वाङ्गान्तात्प्रातिपदिकात्परस्य ङीषो ङीबादेशः

पुच्छ शब्द पर हो तो नित्य ङीष् हो। उलूकस्य पक्षौ इव पक्षौ पार्श्वभागौ यस्याः उलूकपक्षी शाला। सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिर्वाच्यः, उत्तरपदलोपश्च, समासः। एवम्, उलूकपुच्छी, सेना।

(न क्रोडेति) न क्रोडादिबह्वचः। क्रोडादि बह्वच् अनेक अच् वाले स्वाङ्ग से ङीष् न हो, कल्याणं क्रोडं यस्याः। क्रोडादि आकृतिगण है, कल्याणक्रोडा। शोभनं जघनं यस्याः सुजघना, यहाँ जघन शब्द बह्वच् है।

(सहेति) सह नञ् विद्यमानपूर्वाच्च, सह-नञ्-विद्यमान इन शब्दों के पूर्व में होने पर अदन्त स्वाङ्ग प्रातिपदिक से ङीष् न हो, सह केशा यस्याः यह बहुव्रीहि है, अतः 'वोपसर्जनस्य' सह को स आदेश। स्वाङ्गाच्चोप० से प्राप्त ङीष्का निषेध, सकेशा, एवम्। अकेशा विद्यमान नासिका, यहाँ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात् से ङीष् प्राप्त था उसको न क्रोडादि बह्वचः ने बाधदिया। उसको बाधकर नासिकोदरौष्ठ० से ङीष् प्राप्त था उसको परत्वात् यह सूत्र, विद्यमान पद पूर्व में होने से बाध देगा। अतः ङीष् नहीं होगा।

(नखेति) नखमुखात्संज्ञायाम्, संज्ञा में किसी व्यक्तिका नाम होने पर ङीष् नहीं होगा। शूर्पणखा, गौरमुखा, शूर्पणखा रावण की भगिनी की संज्ञा है।

(दिगिति) दिक् पूर्वपदान् ङीप्। दिग् वाचक पूर्वपद जिसके विद्यमान हो ऐसे स्वाङ्ग वाचक से पर जो ङीष् है उसे ङीप् हो। प्राङ्मुखी। प्राक् दिग् वाचक है उससे अङ्गवाचक मुख शब्द पर है, उससे पर ङीष् स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात् से विहित है, उसे ङीप् आदेश हो [illegible]

स्यात्। प्राङ्मुखी। वाहः ।४।१।६१। ङीषेवानुवर्तते न ङीप्। वाह ऊठ्। दित्यौही। सख्यशिश्वीति भाषायाम्।४।१।६२। सखी अशिश्वी। छन्दस्यपि क्वचित्। आधेनवो धुनयन्तामशिश्वीः। जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ।४।१।६३। जातिवाचिनोऽनियतस्त्रीविषयादयोपधात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् स्यात्। आकृतिग्रहणा जातिः। सर्वासु

ङीप् में स्वरूपतः भेद नहीं है परंतु ङीप् आदेश करने पर स्वरकृत वैषम्य होगा।

(वाह इति) वाहः। वाह् शब्दान्त प्रातिपदिक से ङीष् हो। दित्यवाह् शब्द से ङीष्। यचि भम् से भसंज्ञा। वाह ऊठ् से बकार को संप्रसारण ऊठ्। संप्रसारणाच्च। ठ इत्। दित्य ऊह ई। एत्येधत्यूठ्सु से वृद्धि। दित्यौही। 'दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे' वेदमें आता है।

(सख्येति) सखि शब्द से अशिशु शब्द से भाषा में, इति शब्द से कहीं कहीं वेद में भी ङीष् हो यस्येति च सखी। यण्। अशिश्वी। आधेनवो धुनयन्ताम् 'अशिश्वीः' अशिश्वीः यह वैदिक प्रयोग है।

(जातेरिति) जातेरस्त्री विषयादयोपधात्। जातिवाची अनियतस्त्री लिङ्ग विषय अर्थात् स्त्री लिङ्ग में ही न रहता हो तथा अयोपद्य-यकार जिसके उपधा में न हो ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् हो। जातिलक्षण को कहते हैं।

(१) आकृतिग्रहणा जातिः (२) लिङ्गानां च न सर्वभाक्
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या (३) गोत्रं च चरणैः सह॥

ये तीन लक्षणानुगतजाति को भाष्यकार ने कहा है। इन तीन लक्षणों में अन्यतम लक्षणविशिष्ट हो अर्थात् किसी भी लक्षण का समन्वय हो जाय तो वह जाति वाचक होगा, जाति लक्षण इस सूत्र गत ङीष् सिद्धि के लिये है। नैयायिक 'नित्यमनेकानुगतम्' यह जाति लक्षण मानते हैं अस्तु। अनुपयुक्तत्वात् इस लक्षण विचार को छोड़ते हैं, सूत्रव्याख्या 'अस्त्रीविषयात्' न स्त्री विषयः-नियमेन वाच्या यस्याः, स्त्रीविषय शब्द स्त्रीलिङ्गपरक है। अस्त्री विषयात् का अनियत स्त्रीलिंग में तात्पर्य है तो इससे भाष्योक्त लक्षण सूचित होता है।

व्यक्तिषु समानरूपतदाकारव्यङ्ग्येत्यर्थः । तटी । लिङ्गानां च न सर्वभाग् सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या । 'असर्वलिङ्गत्वे सत्येकस्यां व्यक्तौ कथनाद् व्यक्त्यन्तरे कथनं विनापि सुग्रहा जातिः' इति लक्षणान्तरम् । वृषली । गोत्रं च चरणैः सह ।*। अपत्यप्रत्ययान्तः शाखाध्येतृवाची च शब्दो जातिकार्य

(आकृतिग्रहणा जातिः) आकृति-आकार-शरीरसन्निवेशादि से जिसका ग्रहण हो । यदि एक व्यक्ति में अर्थात् एकस्थान पर परिचित करा दें, और अन्यत्र तदाकृति को देखकर विना कहे उसको समझ जाय तो वह तद् जाति वाच्य होगा । अर्थात् समानरूप तदाकार व्यंग्य हों । जैसे तट नदी प्रान्त का बोध एक स्थान पर हो जाने से अन्यत्र भी तट शब्द से उसका बोध हो जायगा अतः तट शब्द जातिवाचक है । एवं महिष मृग इत्यादिमें जानना । तो जातेरस्त्रीविषयात् से ङीष् होगा । तटी । माहिषी मृगी । परंतु इस लक्षण से वृषली में जाति लक्षण का समन्वय नहीं होता है अतः द्वितीय लक्षण कहा ।

असर्वलिंगत्वे इत्यादि । सर्वलिंग न हो अर्थात् पुं स्त्री नपुंसक तीनों लिंग न हो, और एक व्यक्ति में कहने से दूसरे व्यक्तिओं में कहने के विना भी सुग्रह हो-सुगमतया समझ लिया जाय तो वह जाति है । जैसे वृषल कहने से अर्थात् उस शूद्र व्यक्ति के बताने से उसके पिता पुत्रादि में तदीय परंपरागत तत् शूद्रत्व की प्रतीति होती है । अतः वृषल जाति है, जातित्वात् ङीष् । वृषली । परं तु औपगवी कठी इत्यादि में दोनों लक्षणों से जाति लक्षण का समन्वय न होने से तृतीय लक्षण कहा । औपगव, कठ, अनुगत संस्थान व्यंग्य नहीं हैं, और नाहीं असर्वलिंग है । अतः गोत्रं च चरणैः सह जातिः । चरणैः सह गोत्रं जातिः । अर्थात् गोत्र और चरण जाति कहाता है । गोत्र शब्द से अपत्य प्रत्ययान्त विवक्षित है, भाष्यादि की तदर्थ में सम्मति है । और चरण शब्द कठशाखाध्येता में प्रसिद्ध है । तो निष्कर्ष यह हुआ, कि अपत्य प्रत्ययान्त अथवा शाखाध्येतृ वाची से जातित्वात् जाति लक्षण ङीष् होगा । उपगोः अपत्यम्, औपगवः, औपगव शब्द अपत्य

लभते। औपगवी कठी बह्वृची। योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः।॥ हयी, गवयी मुकयी। हलस्तद्धितस्येति यलोपः। मनुषी। मत्स्यस्य ङ्याम्।॥ मत्सी **पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च** ।४।१।६४। पाकाद्युत्तरपदाज्जातिवाचिनः स्त्रीविषयादपि ङीष् स्यात्। ओदनपाकी शङ्कुकर्णी शालिपर्णी शङ्खपुष्पी दासीफली, दर्भमूली, गोवाली।

प्रत्ययान्त है अतः स्त्रीलिंग में ङीप्। औपगवी। कठेन प्रोक्तम्, बह्वः ऋचः अध्येया यस्याः। यह विग्रह। ऋक्पूरब्धू० से अच् प्रत्यय। बह्वृच शब्द शाखावाची है, एवम् कठ शब्द, बह्वृचशाखाऽध्येतृवाची है, अतः जातित्वात् ङीप्। कठी, बह्वृची सिद्ध होंगे।

(योपधप्रतिषेधे इति) जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्। में अयोपधात् कहा है। अर्थात् यकार उपधा में न हो ऐसा जातिवाचक शब्द, तथा अविशेष से सभी अयोपध शब्दों का ग्रहण होगा? एतदर्थं प्रतिप्रसव वार्तिक है। योपधप्रतिषेधे इति। यकारोपध प्रतिषेध में, हय-गवय-मुकय-मनुष्य-मत्स्य-इनका अप्रतिषेध हो, अर्थात् इनके यकारोपध होने पर भी ङीष् का प्रतिषेध न हो, किंतु ङीष् हो। हयी गवयी मुकयी। मनुष्यशब्द से जातित्वात् ङीष्, उक्तवार्तिक से योपधहोने पर भी ङीष्। 'हलस्तद्धितस्य' से यलोप। यस्येति च। मनुषी। मत्स्य शब्द से पूर्वोक्त प्रक्रियावत् ङीष्। सूर्यतिष्यागस्त्य० सूत्र से 'मत्स्यस्य ङ्याम्, इस नियम से यलोप। यस्येति च। मत्सी।

(पाकेति) पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च। पाकादि शब्द जिसके उत्तर में हों ऐसे जातिवाची स्त्रीविषय से भी ङीष् हो, ओदनपाकी। पाकोत्तर जातिवाचक ओदनपाक शब्द से ङीष् हो गया। यस्य लोपः। ओदनपाकी। एवं शङ्कुकर्णी। शंखपुष्पी, शालपर्णी, इत्यादि। ये ओषधि विशेष में रूढ होने से संज्ञा वाचक हैं, अत एव लौकिक विग्रह वाक्य नहीं होगा,

(इत इति) इतो मनुष्यजातेः। मनुष्यजाति वाची इकारान्त से ङीष् हो, दक्षस्यापत्यम्, दाक्षिः। स्त्री चेत् इकारान्त मनुष्य जातिवाची

इतो मनुष्यजातेः ।४।१।६५। दाक्षी । योपधादपि । औदमेयी । ऊङुतः ।४।१।६६। उकारान्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् स्यात्। कुरूः । अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुपसंख्यानम् ।*। रज्ज्वादिपर्युदासादुवर्णान्तेभ्य एव । अलाब्वा कर्कन्ध्वा । अनयोर्दीर्घान्तत्वेऽपि नोङ्धात्वोरिति विभक्त्युदात्तत्वप्रतिषेध ऊङः फलम् । प्राणिजतिस्तु कृकवाकुः। रज्ज्वादेस्तु रज्जुः । बाह्वन्तात्संज्ञायाम् ।४।१।६७। भद्रबाहूः। पङ्गोश्च ।४।१।६८। पङ्गूः। श्वशुरस्योकाराकारयोर्लोपश्च ।*। चादूङ्।

दाक्षि शब्द है, इससे स्त्रीलिंग में ङीष् हो गया । यस्येति च से इकार लोप । दाक्षी । यह यकारोपध से भी होगा । उदमेयस्यापत्यम् औदमेयिः। यकारोपध है, स्त्रीत्व विवक्षा में इकारान्त औदमेयि शब्द से ङीप्। यस्येति च से इकार लोप' औदमेयी ।

(ऊङिति) ऊङुतः । उकारान्त अयोपध मनुष्यजातिवाची से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो । कुरूः । कुरुनादिभ्यो ण्यः से ण्य प्रत्यय। उसका स्त्रियामवन्ति॰से लुक् 'कुरु से ऊङ् । सवर्ण दीर्घ । कुरूः । अप्राणि जाति से ऊङ् हो, रज्जु इत्यादिकों को छोड़ कर । यह अरज्ज्वादीनाम् का जो उपादान किया है इससे उकारान्त से ही ऊङ् होगा, अलाबु से ऊङ् सवर्ण दीर्घ, अलाबूः । एवं कर्कन्धू से ऊङ् सवर्णदीर्घः । कर्कन्धूः। टाविभक्ति में यण्, अलाब्वा, कर्कन्ध्वा । अलाबू, कर्कन्धू दीर्घ ही थे, इनके दीर्घ करने का क्या फल है ? उत्तर-नोङ्धात्वोः' से विभक्ति का उदात्तत्व प्रतिषेध ऊङ् प्रत्यय का फल होगा, प्राणिजाति से ऊङ् नहीं होगा । कृकवाकु-पक्षि जाति वाचक प्राणी है । मनुष्य जाति न होने से ऊङुतः से भी ऊङ् नहीं होगा । अरज्ज्वादि का ग्रहण है, इसलिये रज्जु शब्द से ऊङ् नहीं होगा । रज्जुः

(बाह्वन्तादिति) बाहुशब्द अन्त में जिसके उससे भी ऊङ् होगा। यदि संज्ञा, किसी का नाम हो। भद्रबाहु से ऊङ् । दीर्घ । भद्रबाहूः ।

(पंगोश्चेति) पंगोश्च । पंगुशब्द से ऊङ् हो । सवर्ण दीर्घ । पंगूः। श्वशुरस्य स्त्री, पुंयोगादाख्यायाम् से ङीष् प्राप्त था, इस वार्तिक से ऊङ्

श्वश्रूः लिङ्गविशिष्टपरिभाषया स्वादयः। ऊरूत्तरपदादौपम्ये ।४।१।६९। करभोरूः। संहितशफलक्षणवामादेश्च ।४।१।७०। अनौपम्यार्थमिदम्। संहितोरूः लक्षणोरूः वामोरूः। सहितसहाभ्यां चेति वक्तव्यम्। *। सहितोरूः। सहोरूः। संज्ञायाम् ।४।१।७२। कद्रुकमण्डल्वोः संज्ञायां

प्रत्यय, और श्वशुर शब्द के उकार तथा रकारोत्तर अकार का लोप होगा, प्रातिपदिकग्रहणे लिंगविशिष्टस्यापि ग्रहणम् इस परिभाषा से श्वश्रू का भी ग्रहण होने से स्वादिक होंगे। शेखरकार ने श्वश्रू को अव्युत्पन्न प्रातिपदिक माना है, परंतु श्वशुरस्य स्त्री में क्या होगा? चिन्त्य है।

(ऊरु इति) ऊरूत्तरपदादौपम्ये। औपम्य अर्थ में ऊरु उत्तरपद जिसके ऐसे प्रातिपदिक से ऊङ् हो। 'करस्य करभो बहिः' करभौ इव ऊरू यस्याः। औपम्य अर्थ है अतः करभोरु शब्द से ऊङ् हो गया। दीर्घ करभोरूः। औपम्य वाचक पूर्वपद जिसके, यह बालमनोरमा में है।

(संहितेति) संहितशफलक्षणवामादेश्च। संहितादिक शब्दों के पूर्वमें होने पर ऊङ् हो। पूर्वसूत्र से ऊङ् सिद्ध था यह सूत्र क्यों किया? जहां औपम्य नहीं है, एतदर्थं सूत्र है। संहितौ मिलितौ ऊरू यस्याः। यहां औपम्य नहीं है। शफौ ऊरू यस्याः सा शफोरूः। काठिन्य और अत्यधिक सान्निध्य होने से शफ के साथ अभेद है। लक्षणौ लक्षणवन्तौ (अर्शादित्वात् अच् प्रत्यय) ऊरू यस्याः सा लक्षणोरूः। वामौ वाम शब्द सुन्दर का वाचक है', अतः वामौ सुन्दरौ ऊरू यस्याः सा वामोरूः। यहाँ कहीं भी औपम्य नहीं है, अतः अनौपम्यार्थ सूत्र है। (सहित सहाभ्यां चेति वक्तव्यम्) सहित और सह शब्द से ऊरू शब्द पर होने से ऊङ् हो। सहितौ मिलितौ ऊरू यस्याः सा सहितोरूः। सहम्, सहौ सहनशीलौ ऊरू यस्याः सा सहोरूः।

(संज्ञेति) संज्ञायाम्। कद्रु और कमण्डलु से संज्ञा में किसी का नाम होने पर स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् हो। कद्रूः। कद्रू सर्पों की माता की संज्ञा है। कमण्डलु मृग जातीय मृगी की संज्ञा है, संन्यासियों का पात्र कमण्डलु का ग्रहण नहीं है, क्योंकि वह स्त्रीलिङ्ग नहीं है।

स्त्रियामूङ् स्यात् । कद्रूः । कमण्डलूः । **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** ।४।१।७३। शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात् । शार्ङ्गरवी, वैदी । जातेरित्यनुवृत्तेः पुंयोगे ङीषेव । नृनरयोर्वृद्धिश्चेति शार्ङ्गरवादिगणकार्यम् । नारी । **यङश्चाप्** ।४।१।७४। यङ इति ञ्यङ् ष्यङोः सामान्यग्रहणम् । अम्बष्ठ्या । कारीषगन्ध्या । षाद्यञश्चाप् वाच्यः ।*। शार्कराक्ष्या

(शार्ङ्गेति) शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् । शार्ङ्गरवादिक और अञ् प्रत्यय की जो अकार तदन्त जातिवाचक शब्द से ङीन् हो । शृंगरोरपत्यम् । 'गोत्रं च चरणैः सह जाति' है जातित्वात् ङीष् प्राप्त था, ङीन् हो गया । शार्ङ्गरवी । विदस्यापत्यम् स्त्री । अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् से अञ् । आदि वृद्धि । अल्लोप । वैद से ङीन् अल्लोप । वैदी । हिड्ढाणञ्० के अञ् का चारितार्थ्य कहां होगा । जहाँ अपत्यार्थ में अञ् न होगा । अपत्यार्थ में गोत्रं च चरणैः सह' इससे जाति संज्ञा जातित्वात् ङीन् । औत्सी में उत्सस्य इयं वापी वाहिका वा । औत्सी । अपत्यार्थ में ङीन्, अन्यार्थ में ङीप् इति विवेकः । सूत्र में जाति पद की अनुवृत्ति है, अतः पुंयोग में 'पुंयोगादाख्यायाम्' से ङीष् होगा । वैदस्य स्त्री वैदी । स्वर में भेद है । 'नृनरयोर्वृद्धिश्च' शार्ङ्गरवाद्यन्तर्गण कार्य है । नर शब्द से अथवा नृ शब्द से ङीन् और अन्तर्गण सूत्र से वृद्धि । नारी । उभयत्र समकार्य है ।

(यङ इति) यङश्चाप् । यङन्त से स्त्रीलिंग में चाप् हो । 'निरनुबन्धकग्रहणे सामन्यग्रहणम्' निरनुबन्धक के ग्रहण में अर्थात् अनुबन्ध रहित के ग्रहण में सामान्य का ग्रहण होगा । यङ् इस निरनुबन्धक के ग्रहण में, ञ्यङ् ष्यङ् दोनो का ग्रहण होगा । अम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री वृद्धेत्कोशला० से ञ्यङ् । आदि वृद्धि । अल्लोप । आम्बष्ठ्या । करीषगन्धेः गोत्रापत्यं स्त्री । अण् प्रत्यय । अणिञोरनार्षयोः इससे अण् को ष्यङ् आदेश, कारीषगन्ध्या । षाद् यञश्चाप् वाच्यः । स्पष्ट है शार्कराक्षस्यापत्यं स्त्री । एवम्, पूतिमाषस्यापत्यं स्त्री । गर्गादिभ्यो यञ् से

पौतिमाष्या। आवट्याच्च ।४।१।७५। यञश्चेति ङीपोऽपवादः। आवटशब्दो गर्गादिः। आवट्या। तद्धिताः ।४।१।७६। आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम्। यूनस्तिः ।४।१।७७। लिङ्गविशिष्टपरिभाषया सिद्धे तद्धिताधिकार उत्तरार्थः। युवतिः। अनुपसर्जनादित्येव। तेन, बहुयुवा। युवतीति तु शत्रन्तान् ङीपि बोध्यम्। इति स्त्रीप्रत्ययाः॥

यञ्। अल्लोपः। उभयत्र षकार से पर यञ् है अतः चाप् हो गया। सवर्णदीर्घ। शार्कराद्या। पौतिमाष्या।

(आवट्येति) आवट्याच्च। आवट शब्द गर्गादि है। इसलिये गर्गादिभ्यो यञ्। आवटस्यापत्यं स्त्री। आवट्या।

(तद्धिता इति) तद्धिताः। अधिकार सूत्र है। पञ्चमाध्याय की समाप्ति तक जितने प्रत्यय होंगे वे सब तद्धित संज्ञक होंगे। तद्धितान्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा होगी।

(यून इति) यूनस्तिः। युवन् शब्द से स्त्रीलिंग में ति प्रत्यय हो और वह तद्धित संज्ञक हो। यूनस्तिः सूत्र को तद्धिताधिकार में क्यों रखा। क्योंकि प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्। इस परिभाषा से युवन् शब्द के ग्रहण में स्त्रीलिंग बोधक तिप्रत्यय विशिष्ट का ग्रहण हो जायगा। ठीक है। 'तद्धिताः' उत्तरार्थ है। तो युवन् शब्द से ऋन्नेभ्यो ङीप् को बाधकर ति प्रत्यय। न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य से न लोप। स्वादि प्रत्यय। युवतिः। मति शब्द वत्। अनुपसर्जनात् का अधिकार है। इसलिये अनुपसर्जन में ही 'ति' प्रत्यय होगा। यहाँ बहवः युवानः यस्यां नगर्याम् में अन्यपद प्रधान बहुव्रीहि समास में तिप्रत्यय नहीं होगा। बहुयुवा। अनो बहुव्रीहेः। डाबुभाभ्यामन्यतर स्याम्। अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' से तीन रूप होंगे। पूर्वोक्त बहुराज्ञी वत् साधुत्व होगा। शसादि में संप्रसारण श्वयुवमघोनामतद्धिते से बहुयुवन् में होगा। 'युवतीभिः परिवृतः स भूमौ' इत्यादि प्रयोग में युवती दीर्घान्त कैसे? युधातु से शतृ प्रत्ययान्त युवत् शब्द से उगितश्च से ङीप्। युवती। इति स्त्रीप्रत्ययाः।

कारकप्रकरणम् ।

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ।२।३।४६। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः । प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात् । उच्चैः । नीचैः । कृष्णः । श्रीः, ज्ञानम् ।

कारकप्रकरणम् ।

(प्रातिपदिकेति) प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण वचनमात्रे प्रथमा। मात्र शब्द का सूत्रोक्त प्रातिपदिकार्थादिक प्रत्येक पद से संबन्ध होगा, क्योंकि—यह नियम है, 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते, द्वन्द्वसमास के अन्त पर अर्थात् द्वन्द्व समास करने के अनन्तर पुनः जो पद प्रयुक्त होता है वह द्वन्द्वसमास के प्रत्येक पद के साथ सम्बद्ध किया जाता है, यहां प्रातिपदिकादि पदों के द्वन्द्व समास के अनन्तर मात्र शब्द है, अतः उसका पूर्वस्थ प्रत्येक पद से सम्बन्ध होगा । तो यह अर्थ होगा । प्रातिपदिकार्थ मात्र में, केवल पुंस्त्वादि लिङ्गाधिक्यमें परिमाण मात्र के आधिक्य में, और वचन मात्र में अर्थात् एकत्व द्वित्वादि मात्र संख्या में प्रथमा विभक्ति हो। उच्चैः नीचैः, सर्वथा प्रातिपदिकार्थमात्र की प्रतीति है। एवम्-कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्, में भी प्रातिपदिकार्थ मात्र से प्रथमा है । प्रश्न होता है, कि-कृष्णः में पुंल्लिङ्ग, श्रीः में स्त्रीलिङ्ग, ज्ञानम् में नपुंसकलिङ्ग की प्रतीति होती है, तो प्रातिपदिकार्थ मात्र का उदाहरण कैसे ?, उत्तर-प्रातिपदिकार्थ का क्या लक्षण है, 'नियतोपस्थितिकः

टिप्पणी—प्रश्न यह है कि—प्रवृत्तिनिमित्त १ व्यक्ति २ लिङ्ग ३ संख्या ४ कारक ५ यह पांच प्रकार का प्रातिपदिक दो तीन चार पांच भेद से भिन्न-भिन्न आचार्यों ने माना है तो फिर सूत्र मे लिङ्ग संख्या का उपादान क्यों ? ठीक है, परन्तु प्रातिपदिकार्थ का स्वरूप क्या है, नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः । शब्दार्थ की नियमेन उपस्थिति हो जाने पर लिङ्ग संख्यादि की उपस्थिति नहीं होती है अतः संख्यादि ग्रहण है ।

अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्च प्रातिपदिकार्थमात्रस्योदाहरणम्। अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्राधिक्यस्य। तटः, तटी, तटम्। परिमाणे। द्रोणो व्रीहिः।

प्रातिपदिकार्थः' नियमेन जिसकी उपस्थिति हो, तो कृष्णः श्रीः ज्ञानम् मे नियतलिङ्ग होने के कारण पुंस्त्वादि की प्रातिपदिकार्थ के साथ ही उपस्थिति हो जाती है, अव्ययों का कोई लिङ्ग नहीं है यह भाष्यकारने भी 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र पर "आवग्रहणं व्यर्थम् अलिङ्गत्वात्' कहा है। उच्चैर्वदति नीचैर्गच्छति इत्यादि मे किसी लिङ्ग की प्रतीति नहीं होती है तो प्रातिपदिकार्थमात्र का यह भावार्थ है, कि-अलिङ्ग— जिनका कोई भी लिङ्ग नहीं, जैसे अव्यय। अथवा नियत लिङ्ग, जिनकी प्रतिपाद्य व्यक्ति के साथ ही तत्तत् लिङ्ग की प्रतीति हो जाती है, वे प्रातिपदिकार्थ मात्र के उदाहरण हैं,

और जो अनियतलिङ्ग है,- अर्थात् जिनका पुंस्त्वादि लिंग निश्चयरूप से नहीं है किन्तु विशेषणरूप से अथवा स्वातन्त्र्येण त्रिलिंग हैं वहाँ नियत लिंग की प्रतीति न होने से लिंगमात्राधिक्य के उदाहरण हैं। जैसे विशेषण कृष्णादि शब्द, यद्यपि कृष्णो घटः कृष्णा शाटी, कृष्णं वसनम् इत्यादिकों में विशेष्य शब्द श्रवण समकाल में ही विशेषण शब्द में तत्तत् लिंग की प्रतीति हो जायेगी परंतु स्वतन्त्र त्रिलिंग तट शब्द से किसी भी पुंस्त्वादि लिंग की प्रतीति नहीं होती है अतः प्रातिपदिकार्थ के लक्षण मे अन्तर्भूत नहीं हो सकता, क्योंकि यह अनियतलिंग है, लिंगमात्राधिक्य होने से प्रथमा है, परिमाणमात्राधिक्य का उदाहरण द्रोणो व्रीहिः। द्रोणपरिमाण का निर्वचन।

चातुर्भिः कुडवैः प्रस्थः, प्रस्थाश्चत्वार आढकः।
आढकैस्तैश्चतुर्भिस्तु द्रोण इत्यभिधीयते ॥

इस प्रकार चार आढक का एक द्रोण होता है। तो द्रोणो व्रीहिः। मे द्रोणत्वेन चतुराढक वाचक द्रोण शब्द से परिमाणत्व सामान्यरूप द्रोणपरिमाण की विवक्षा मे प्रथमा विभक्ति है। तो परिमाण सामा-

द्रोणरूपं यत् परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिः । वचनं संख्या । एकः । द्वौ । बहवः । **संबोधने च** ।२।३।४७। हे राम । **कारके** ।१।०।२३। अधिकारोऽयम् । **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** ।२।४।४९। कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् । **अनभिहिते** ।२।३।१। इत्यधिकृत्य । कर्मणि

न्यात्मक प्रत्ययार्थ मे द्रोणशब्दार्थात्मक प्रकृत्यर्थ परिमाण विशेष का सामान्यविशेषात्मक अभेदरूप संबन्धसे अन्वय होगा, और परिमाण सामान्यात्मक प्रत्ययार्थ का परिच्छेद्यपरिच्छेदक भाव से अन्वय होगा। तो यह भावार्थ होता है कि "द्रोणाख्यपरिमाणविशेषात्मकं यत् सामान्यपरिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिः । तात्पर्य यह है, द्रोणाख्य परिच्छेदक सामान्य परिमाण का द्रोण प्रकृत्यर्थ परिमाण से परिच्छन्न व्रीहि के साथ परिच्छेद्य परिच्छेदक भाव से अभेदरूपेण अन्वय होगा । तो यह निष्कर्ष हुआ, द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिः इस अर्थ से परिमाण पद सूत्र मे नहीं कहते तो द्रोणाभिन्नो व्रीहिः इस अर्थ से परिमाण की प्रतीति नहीं होती एतदर्थ परिमाण ग्रहण किया ।

वचनं-संख्या, पूर्वाचार्यों ने वचन पद को संख्या वाचक कहा है, प्रातिपदिकार्थ मात्र से एकत्व द्वित्व बहुत्व की प्रतीत हो जायगी, फिर उक्तार्थानामप्रयोगः' से स्वादिक सु औ जस् नहीं होगा । एतदर्थवचन ग्रहण है, प्रकृति प्रत्यय के अभेदान्वय होने से तत्तत् शब्द से तत्तत् विभक्ति होगी, न केवला प्रकृतिः, नचापि केवलः प्रत्ययः प्रयोक्तव्यः' इससे वचन पद के सामर्थ्य से प्रथमा विभक्ति होगी। एक; द्वौ बहवः। संबोधन इति। संबोधने च । स्वाभिमुखीकरण मात्र-संबोधन कहाता है। हे राम! कारके इति । कारके । अधिकार सूत्र है । कर्तुरीप्सिततमम्, आदि सूत्रों से जो कर्मादिक संज्ञाये होंगी वे कारक संज्ञक होंगी । कर्तुरिति । कर्तुरीप्सिततमं कर्म । कर्ता को क्रिया के द्वारा जो प्राप्त होने के लिये इष्टतम होगा, वह कारक कहाता हुआ कर्मसंज्ञक होगा । अर्थात् वह कर्म कारक होगा ।

अनभिहित इति । अनभिहिते । यह अधिकार सूत्र है । कर्मणि

द्वितीया ।२।३।२। हरिं भजति । अनभिहिते एव । नेह-हरिः सेव्यते । अत्र कर्मणि प्रत्यये कर्मण उक्तत्वात् । क्वचिन्निपातेनाभिधानम् । यथा

द्वितीया आदि सूत्रों से कर्मादिकों में जो द्वितीयादिक विभक्तियां होगी वे अनभिहित कर्मादिकों से होंगी, तात्पर्य यह कि यदि कर्म में लकार या प्रत्यय होगा तो लकार से अथवा प्रत्यय से कर्म अभिहित-उक्त हो जाने से द्वितीया नहीं होगी। जैसे-देवदत्तेन ओदनः पच्यते । कर्म प्राधान्य की विवक्षा मे लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' से कर्म मे लकार होगा। तो लकार से कर्म उक्त हो जाने से द्वितीया नहीं होगी, इसी तरह तृतीया आदि में जानना।

कर्मणीति। कर्मणि द्वितीया। कर्म मे द्वितीया विभक्ति हो। जैसे-हरिं भजति देवदत्तः। यहां भजन क्रिया का कर्ता देवदत्त है, उसको भजन मे इष्टतम हरि है उसकी कर्म संज्ञा, फिर उक्तसूत्र से द्वितीया, हरिं भजति। प्रथम कह आये हैं, कि अनभिहित ही से द्वितीयादि होंगी। यहाँ नही होगी। हरिः सेव्यते। क्यों कि यहाँ कर्ममे प्रत्यय है और हरि-कर्म उक्त है। यह अभिधान प्रायः तिङ्-कृत-तद्धित-समाससे ही होता है, क्योंकि तिङ् से कर्मादिक उक्त होते हैं। अतएव पाणिनीय कौमुदी में इस वचन को नहीं दिया। इस वचन को वार्तिक मानते हैं वह गतार्थ प्राय है अस्तु। क्वचिद् निपातेनाभिधानम्। कहीं पर निपात से भी अभिधान होता है अर्थात् कहीं कर्मादि उक्त हो जाता है, जैसे विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसंप्रातम्' यहाँ अपि इस निपात से वृषवृक्षगत कर्मत्व उक्त है। अतः प्रथमा होगी। सांप्रतम् का अर्थ युज्यते, असांप्रतम् न युज्यते।, विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य छेत्तुम् इष्यते इति यत् तत् असांप्रतम्' इस योजना से इष्यते इस तिङ् से उक्त मान कर निपात से अभिहित हरदत्तवासुदेवादिक नहीं मानते हैं, यह ठीक है, परंतु यदि अपि के साथ संबन्ध करके संवर्ध्य क्रिया का कर्म मानेंगे तो तिङ् से उक्त नहीं है किंतु निपात से ही उक्त है, उस वाक्य योजना में यत् इष्यते तत् असांप्रतम् इष्यते का कर्म यह है, अस्तु।

विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम्। इति। **तथायुक्तं चानीप्सितम्** ।१।४।५०। ईप्सिततमवत्क्रियया युक्तमनीप्सितमपि कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते। **अकथितं च** ।१।४।५१। अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। परिग-

---

तथेति। तथायुक्तं चानीप्सितम्। यथा क्रियया युक्तम् ईप्सिततमं कारकं कर्मसंज्ञं भवति, तथा—ईप्सिततमकर्मवत्, क्रियया युक्तम् अनीप्सितमपि कारकं सत् कर्मसंज्ञं स्यात्। जैसे क्रिया से युक्त ईप्सिततम की कर्मसंज्ञा होती है, वैसे ही क्रिया से युक्त अनीप्सित की भी कर्म संज्ञा होती है। चशब्द अप्यर्थं में है। उदाहरण—ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। यहाँ कर्ता को अभिमत गमनक्रिया से ग्राम है, तृण मार्ग में हैं, अतः अनीप्सित होते हुये भी स्पर्श करता है अतः ईप्सित न होने से कर्म संज्ञा प्राप्त नहीं थी एतदर्थ यह सूत्र है। यदि स्पर्श क्रिया के प्रति तृण को ईप्सित ही मानेंगे तो कर्म संज्ञा हो जायगी, अतः द्वितीय उदाहरण है। ओदनं भुञ्जानो विषं भुंक्ते। भोजन-मुख-व्यापार से गले के नीचे उदर में उतारना, भोजन में ओदन ईप्सित है विष ईप्सित नहीं है अतः अनीप्सित विष की कर्म संज्ञा हुई, और कर्मणि-द्वितीया से द्वितीया। अस्तु। अज्ञानात् विषं भुंक्ते। दधिभ्रान्त्या सुधां भुंक्ते। रत्नं मत्वा अग्निं स्पृशति इत्यादि में, अज्ञान से विष खाता है, दही की भ्रान्ति से चूना, रत्न समझकर अग्नि का स्पर्श करता है इत्यादि में अनीप्सित विष की एवम् अग्नि की कर्मसंज्ञा कैसे होगी। तथा युक्तं चानीप्सितम् से नहीं होगी। क्योंकि यहाँ ईप्सिततम क्रिया से युक्त नहीं है अतः कर्तुरीप्सिततमम् से होगी, अज्ञान भ्रममूलक ईप्सित ही है। ऐसे ही ओदनं भुञ्जानो विषं भुंक्ते यहाँ भी अज्ञानात् हेतु अन्तर्हित है। अतः तथायुक्तं चानीप्सितम् सूत्र आपाततः मन्द प्रयोजन है। वस्तुतः द्वेष्योदासीनार्थ सूत्र आवश्यक है।

(अकथितमिति) अकथितं च। अपादानादि विशेष कारकों से अविवक्षित, आदिपद से संप्रदान अधिकरण करण हेतु कर्ता को भी

गणनं कर्तव्यम्। दुह्याच् पच्दण्डरुधिप्रच्छि-चिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्। कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्। एषां कर्मणा यद्युज्यते तदेवाकथितं कर्मेति। गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। अविनीतं विनयं याचते। तण्डुलान् ओदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति।

ग्रहण जानना', कारक संज्ञक होते हुये कर्म संज्ञक हो। परन्तु एतावत् मात्र से 'नटस्य शृणोति।' नटसम्बन्धि श्रवण करता है, यहाँ भी नट, क्रियान्वयी कारक है अतः कर्म संज्ञा प्राप्त है, अतः परिगणन वार्तिक है, इनके; परिगणित धातुओं के अविवक्षित अपादानादि की कर्म संज्ञा होगी

दुह्याच् पच् दण्ड् रुधि प्रच्छि-चि ब्रू शासु जि मथ् मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी हृ कृष् वहाम्।१।

उदाहरण—गां दोग्धि पयः, 'गोः सकाशात्, गोशब्द से पय विभाग में पञ्चमी प्राप्त थी, उस अपादान अर्थ में कर्मसंज्ञा होगी और कर्मणि द्वितीया से द्वितीया। वस्तुतः अपादान की विवक्षा में भी पञ्चमी नहीं होगी। गोः दोग्धि पयः नहीं होगा। क्योंकि आर्थिक विभाग होते हुए अप्रतीयमान विभाग है। अतः अप्राप्त द्वितीया का विधान है। याच् का—बलिं याचते वसुधाम्, बलेः सकाशात् वसुधां याचते। भाष्यकार कहते हैं 'नहि याचनादेव अपायो भवति।' अतः याचन मात्र से विभाग नहीं हो सकता इसलिये पञ्चमी अप्राप्त है, अतः तदर्थ में कर्मसंज्ञा है। द्वितीय उदाहरण-यद्वा, अविनीतं विनयं याचते।' अविनीतकर्तृकं विनयकर्मकम् अभ्युपगमं प्रार्थयते। कर्तुः कर्मत्वविवक्षायां द्वितीयेति नवीनाः। अविनीतसम्बन्धिनम् अभ्युपगमं प्रार्थयते। इति प्राचीनाः। अविनीत की अकथितं च से कर्मसंज्ञा और विनय की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' से कर्मसंज्ञा होगी। पच्—तण्डुलान् ओदनं पचति, पाकविक्लृत्य-नुकूल व्यापार। तण्डुलैः ओदनं पचति। तण्डुलों से विक्लृत्यनुकूल व्यापार संपन्न ओदन को करता है। प्रधान कर्म ओदन है और गौण कर्म, तण्डुल है। तण्डुलसम्बन्धिनीम् ओदनकर्मिकां विक्लृतिं निर्वर्त

व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा। समानार्थेऽपि। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते,

---

यतीति तु प्राचीनाः। दण्ड–गर्गान् शतं दण्डयति। ताडनभर्त्सनादिना परस्वत्वनिवृत्तिपूर्वक स्वस्वत्वोत्पादन दण्ड कहाता है। गर्गेभ्यः सकाशात् शतसंख्याकाः सुवर्णमुद्राः दण्डयति। यहाँ प्रधान कर्म शत है, और गौणकर्म गर्ग है। अपादान को अविवक्षा में कर्मसंज्ञा। रुध्-अंवरोध। व्रजम् अवरुणद्धि गाम्। व्रजे गाम् अवरुणद्धि। अधिकरण को अविवक्षा में व्रज की कर्मसंज्ञा। प्रच्छ-पृच्छ-ज्ञातव्य विषयक अज्ञाननिवृत्ति व्यापार। माणवकं पन्थानं पृच्छति। माणवकेन पन्थानं पृच्छति। माणवक के द्वारा मार्ग का निश्चय करता है। माणवक गत करणत्व की अविवक्षा में कर्मसंज्ञा। कर्मणि द्वितीया। माणवक गौण. कर्म। प्रधान कर्म पन्था है।

वृक्षमवचिनोति फलानि। अवचय-झोरना, तोड़ना। वृक्षात् फलम् अवचिनोति। वृक्ष से फल तोड़कर इकट्ठे करता है। अपादान की अविवक्षा में कर्मसंज्ञा, वृक्ष गौण कर्म। अविवक्षाजन्य कर्म, गौण कर्म होता है। ब्रू-कहना। शास् सिखाना। माणवकाय धर्मं ब्रूते, संप्रदान की अविवक्षा में कर्म संज्ञा, माणवक के लिये धर्म कहता है। कर्मत्वात् द्वितीया। माणवकं धर्मं ब्रूते, एवम्-शास् के योग में भी पूर्ववत् जानना। माणवकं धर्मं शास्ति। शतं जयति देवदत्तम्। देवदत्तात् अपादानत्वेन पञ्चमी प्राप्त थी अपदानत्व की अविवक्षा में कर्म संज्ञा, सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। क्षीर सागर से सुधाको, मथ्नाति-दण्ड भ्रामणादि द्वारा उद्भावयति प्रकट करता है। तो उद्भव के प्रति क्षीरनिधि अपादान कर्म है, अपादान की अविवक्षा में कर्मसंज्ञा। देवदत्तं शतं मुष्णाति। देवदत्तात्-शतं मुष्णाति। अपनय का अवधि देवदत्त है अतः पञ्चमी प्राप्त थी। अपादान की अविवक्षा में कर्मसंज्ञा।

अभिधत्ते, वक्तीत्यादि। अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्। *। कुरून् स्वपिति। मासमास्ते। गोदोहमास्ते। क्रोशमास्ते। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ ।१।४।५२। एषामणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्।

ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति। ग्रामे अधिकरणत्वेन सप्तमी प्राप्त थी, उस अधिकरण की अविवक्षा में कर्मसंज्ञा। कर्मत्वात् द्वितीया। "समानार्थास्वपि।" इसी का तात्पर्यग्राहक है 'अर्थ निबन्धनेयं संज्ञा'। समान अर्थ में विद्यमान अन्य धातुओं के योग में भी कर्म संज्ञा हो। बलिं भिक्षते वसुधाम्। परिगणन में याच् धातु पढ़ा है। याच् का समानार्थक भिक्ष धातु है उसके योग में बलि की कर्मसंज्ञा होगी। एवम् ब्रू के समानार्थक–भाष्, अभिपूर्वक अभिधा–वच् है, इनके योग में भी माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते वक्ति इत्यादि होंगे।

(अकर्मकेति) अकर्मक धातु के योग में देशवाचक-कालवाचक-भाववाचक अर्थात् क्रियावाचक और गन्तव्य अध्वावाचक की कर्म संज्ञा हो। काल और अध्वावाचक से अत्यन्त संयोग में 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' से होगी। अनत्यन्तसंयोगार्थ अर्थात् अनैरन्तर्यार्थं वचन है। कुरून् स्वपिति। कुरु देश वाचक है स्वप्-फलव्यापार के ऐक्य होने से अकर्मक है। अतः अकर्मक स्वप् धातु के योग में देश वाचक कुरु की कर्म संज्ञा, कर्मत्वात् द्वितीया। कुरून्, स्वपिति। एवम् मासम् आस्ते। आस्-उपवेशने। आस्ते से कालवाचक मास का योग है उससे द्वितीया होगी। मासपर्यन्तम् आस्ते। गोदोहम्-गोदोहन क्रियापर्यन्तम्, दोहन-भाव है। भावो-भावना-उत्पादना-क्रिया, सा च धातुत्वेन सकलधातुवाच्या। तो दोहन क्रिया भाववाचक है, अतः आस्ते अकर्मक से योग है, इसलिये गोदोह-भाव से द्वितीया होगी, एवम् गन्तव्य अध्वा, क्रोश से द्वितीया। क्रोशमास्ते। गतीति—"गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणाम् अणिकर्ता स णौ॥" गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक–माने समझना जानना आदि। प्रत्यवसानार्थक-प्रत्यव-

शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्। आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद् विधिम्। आसयत् सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः। गत्यार्थाति-

सान-भोजन करना खाना, एतदर्थक धातुओं के और शब्द कर्मक शब्द जिसमें प्रधानभूत क्रिया हो, अर्थात् पढ़ना और अकर्मक जिसमें फल व्यापार के ऐक्य होने से फलाश्रय की आकांक्षा न हो उस अकर्मक के, अर्थात् एतदर्थक इन धातुओं के योग में, "अणौ यः कर्ता" णयन्त भिन्न का जो कर्ता है प्रयोज्य कर्ता, वह णयन्त में अर्थात् प्रेरणार्थक णिच्प्रत्यय के परे कर्मसंज्ञक हो, और प्रयोजक कर्ता से कर्तृत्वात् 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' से तृतीया होगी। यद्यपि प्रयोजक कर्ता को इष्टतम प्रयोज्य कर्ता है अतः कर्तुरीप्सिततमं कर्म से कर्म संज्ञा सिद्ध है, फिर यह सूत्र नियमार्थ है। एषामेव योगे प्रयोज्यकर्ता कर्म स्यात्, इससे गुरुः पाचयत्योदनं देवदत्तेन में देवदत्त का कर्मत्व नहीं होगा। सूत्र के उदाहरण देखाते हैं।

शत्रून् अगमयत् स्वर्गम्। अणयन्तावस्था का प्रयोग देखाते हैं। शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन्। हरिः प्रैरयत्। इति, हरिः शत्रून् स्वर्गम् अगमयत्। प्रयोज्यकर्ता-अणयन्तकर्ता शत्रु है उसकी कर्मसंज्ञा, कर्मत्वात् द्वितीया और प्रयोजक कर्ता हरि है, हेतुमति च से कर्ता में णिच् है, णयन्त से लकार कर्ता में है। कर्ता प्रत्यय से अभिहित है अतः प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा। एवम् बुद्ध्यर्थक-अध्ययन में—स्वे वेदार्थम् अविदुः। हरिः प्रैरयत्। हरिः स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्। यहां अणयन्तावस्था का प्रयोज्यकर्ता स्वे है, उसकी णयन्तावस्था में कर्म संज्ञा, पूर्ववत् प्रयोज्य कर्ता से द्वितीया, प्रयोजक कर्ता से प्रथमा, प्रत्यवसान-भोजन, प्रत्यवसानार्थक-भोजनार्थक का उदाहरण, आशयत् अमृतं देवान्। प्रयोज्यकर्त्रवस्था का विग्रह। देवाः अमृतम् आश्नन्। हरिः प्रैरयत्। हरिः देवान् अमृतम् आशयत्। पूर्ववत् प्रथमा द्वितीया की कल्पना कर लेना है। एवम्, शब्दकर्मक-अध्ययन पठन आदि। विधिः वेदम् अध्यैत, हरिः प्रैरयत्, हरिः विधिं वेदम् अध्यापयत्, पूर्ववत् प्रयोज्य

रिक्ते तृतीयैव। पाचयत्योदनं देवदत्तेन। नीवह्योर्न। *। नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन। नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः। *। वाहयति रथं वाहान् सूतः। आदिखाद्योर्न। *। आदयति खादयति वाऽन्नं वटुना।

अण्यन्तावस्था का कर्ता विधिः है, उसकी ण्यन्तावस्था मे कर्मसंज्ञा। कर्मत्वात् द्वितीया, अकर्मक-फलव्यापार के ऐक्य होने से अकर्मक। अकर्मक का उदाहरण, आस उपवेशने। पृथ्वी सलिले आस्त। तां हरिः पृथ्वीं सलिले आसयत्। यहां प्रयोज्यकर्त्री पृथ्वी है उसकी कर्मसंज्ञा। कर्मत्वात् द्वितीया, शेष पूर्ववत्। गत्यादिक से अतिरिक्त में कर्तृकरणयोः० से तृतीया ही होगी। क्यों कि यह सूत्र नियमार्थ है यह प्रथम कह दिया है, इनके योग में प्रयोज्य कर्ता की कर्मसंज्ञा होगी, अन्य के योग में नहीं॥ देवदत्तः ओदनं पचति, गुरुः प्रेरयति।.गुरुः देवदत्तेन ओदनं पाचयति। यहां प्रयोज्यकर्ता देवदत्त से कर्तृत्वात् तृतीया है, नीवह्योर्न। णीञ् प्रापणे, वह प्रापणे दोनो गत्यर्थक हैं। गत्यर्थकत्वात् कर्मसंज्ञा प्राप्त थी, नहीं होगी। भृत्यः भारं नयति, वहति वा। प्रभुः प्रेरयति। प्रभुः भृत्येन भारं नाययति वाहयति। यहां प्रयोज्य कर्ता भृत्य है, कर्मसंज्ञा नहीं होगी, कर्तृत्वात् तृतीया होगी। नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः। नियन्ता-सारथिः कर्ता यस्य, एवं भूतस्य वहेर्निषेधो न। वाहाः रथं वहन्ति। नियंन्ता प्रेरयति। नियन्ता सूतः वाहान् रथं वाहयति। यहां गत्यर्थत्वात् प्राप्त कर्मसंज्ञा का निषेध 'नीवह्योर्न' इससे प्राप्त था। उसका इस वार्तिक से प्रतिप्रसव पुनः निषेध होकर कर्मसंज्ञा हो गयी।

आदिखाद्योर्न। अद् भक्षणे, खाद भक्षणे। प्रत्यवसानार्थत्वात् कर्म संज्ञा प्राप्त थी। इस वार्तिक से निषेध हो गया, वटुः अन्नम् अत्ति, खादति वा। पिता प्रेरयति, पिता वटुना अन्नम् आदयति, खादयति वा। प्रत्यवसानार्थत्वात्, अण्यन्तावस्था का कर्ता वटु की कर्मसंज्ञा प्राप्त थी इससे निषेध हो गया। अतः वटुना में कर्तृत्वात् तृतीया हुई। भक्षेरहिंसार्थकस्य न। अहिंसार्थक भक्ष धातु के योग में अणिकर्ता की अर्थात् ण्यन्तावस्था के कर्ता की कर्मसंज्ञा न हो। वटुः अन्नं भक्षति। पिता

भक्षेरहिंसार्थस्य न । * । भक्षयत्यन्नं बटुना । जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् । * । जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः । दृशेश्च । * । दर्शयति हरिं भक्तान् । सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणं न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते । तेन स्मरति जिघ्रतीत्यादीनां न । स्मारयति

प्रेरयति । पिता बटुना अन्नं भक्षयति । यहाँ बटु के अन्न खाने में हिंसा नहीं है परंतु भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्, यहां सस्य स्वरूपात्मक जीवों की हिंसा है, अतः प्रतिषेध नहीं होगा, किन्तु प्रयोज्य कर्ता बलीवर्द की कर्मसंज्ञा हो जायगी । अतः बलीवर्दान् हुआ ।

(जल्पतीति) जल्पति प्रभृतीनामुपसंख्यानम् । जल्पति इत्यादिक धातुओं के योग में अण्यन्तावस्था का जो कर्ता है वह कर्म संज्ञक हो। वार्तिक में प्रभृतिपद से व्याहरति वदति इत्यादिकों का ग्रहण है । भाष्यकार ने, के पुनर्जल्पति प्रभृतयः यह कहकर, जल्पति, विलपति आभाषते इन तीन को ही कहा है, कोई आचार्य एतन्मात्र का परिगणन मानते हैं । और कोई आचार्य उदाहरण मात्र मानते हैं । दृशेश्च । दृश धातु का अण्यन्तावस्था का कर्ता कर्मसंज्ञक हो । भक्ताः हरिं पश्यन्ति । गुरुः प्रेरयति । गुरुः भक्तान् हरिं दर्शयति । यहां अण्यन्तावस्था में कर्ता भक्त हैं, उनकी दृश् धातु के योग में कर्मसंज्ञा हो जायगी । प्रश्न यह है, कि-दृश-प्रेक्षण, भी वुद्धि विशेष ही है अतः बुद्ध्यर्थक होने से 'गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ०' सूत्र से कर्मसंज्ञा सिद्ध ही है, फिर दृशेश्च वार्तिक क्यों किया । वह व्यर्थ होकर नियम करता है कि गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ सूत्र में बुद्धि पद से बुद्ध्यर्थक सामान्य ज्ञानार्थक ही ली जायगी अर्थात् ज्ञान सामान्यार्थकों का ही ग्रहण होगा, ज्ञान विशेषार्थकों का ग्रहण नहीं होगा । नियम का फल ज्ञान विशेषात्मक स्मरण जिघ्रण सूँघने अर्थ की धातुओं का ग्रहण होगा अतः देवदत्तः पुष्पं जिघ्रति स्मरति वा । प्रभुः प्रेरयति । प्रभुः देवदत्तेन पुष्पं घ्रापयति, स्मारयति वा । यहां प्रयोज्य-अण्यन्तावस्था का कर्ता देवदत्त की कर्मसंज्ञा नहीं होगी, किन्तु कर्तृत्वात् तृतीया होगी ।

प्रापयति देवदत्तेन। शब्दायतेर्न।*। शब्दाययति देवदत्तेन। धात्वर्थसंगृहीतकर्मकत्वेनाकर्मकत्वात्प्राप्तिः। येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न सम्भवति तेऽत्राकर्मकाः, न त्वविवक्षितकर्माणोऽपि। तेन मासमासयति

(शब्दायतेर्न)। शब्दाययति के भी अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञा नहीं होगी। शब्दं करोति इस अर्थ में शब्दवैर कलहाभ्र० से क्यङ् प्रत्यय है, तो शब्दात्मक जो कर्म हैं वह धात्वर्थ के अन्तर्भूत है अतः अकर्मक है। सकर्मक वे होती हैं, धात्वर्थ बहिर्भूतकर्मकत्वमेव सकर्मकत्वम्।" धात्वर्थ से बहिर्भूत जिनका कार्य हो वे सकर्मक होती हैं। तो शब्दायति यह अकर्मक है, अतः अकर्मकत्वात् प्रयोज्यकर्ता की कर्मसंज्ञा प्राप्त थी, शब्दायतेर्न से निषेध हो गया। देवदत्तः शब्दायते। तं यज्ञदत्तः प्रेरयति। इति यज्ञदत्तः देवदत्तेन शब्दाययति। कर्मसंज्ञा न होने से कर्तृत्वात् तृतीया होगी।

प्रश्न होता है, 'मासम् आसयति देवदत्तम्' यहाँ अकर्मक आस धातु का योग होने पर भी 'अकर्मकधातुभिर्योगे से कालवाचक की कर्मसंज्ञा होने पर 'मासमासयति देवदत्तम्' यहाँ देवदत्त से तृतीया प्राप्त है। एवम् सः ओदनं पचति' यहाँ कर्म की अविवक्षा में स पचति इस प्रकार पच् धातुको अकर्मक होने से, सः पचति हरिः प्रेरयति, हरिः तेन पाचयति प्रयोज्यकर्ता से अकर्मकत्वात् तृतीया अप्राप्त है। अतः अकर्मक सकर्मक का निर्वचन करते हैं।

जिन धातुओं का देश काल भाव गन्तव्य अध्वा से अतिरिक्त अन्य कर्म संभवित न हो वे इस सूत्र में अकर्मक पद से गृहीत हैं, अविवक्षित जिनका कर्म हैं वे नहीं, अर्थात् "धात्वर्थबहिर्भूतकर्मकत्वमेव सकर्मकत्वम्" यह सकर्मक का लक्षण है। तो धात्वर्थ बहिर्भूत कर्म तो है परन्तु उस कर्म की अविवक्षा करने से जो अकर्मक हो रही हैं, वे अकर्मक नहीं होंगी। जैसे देवदत्तः ओदनं पचति। यहाँ ओदनम् कर्म की अविवक्षा करेंगे। तो देवदत्तः पचति। कर्म रहित है। यज्ञदत्तः प्रेरयति। इति यज्ञदत्तः देवदत्तेन पाचयति। अविवक्षित कर्मत्वात् कर्म

देवदत्तमित्यादौ कर्मत्वं भवति। देवदत्तेन पाचयतीत्यादौ न। हृक्रोरन्यतरस्याम् ।१।४।५३। स्पष्टम्। हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्। अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् ।*। अभिवादयते दर्शयते वा देवं भक्तं भक्तेन वा। अधिशीङ्स्थासां कर्म ।१।४।४६। अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्म स्यात्। अधिशेते अधितिष्ठति अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः। अभिनिविशश्च।१।३।४७। स्पष्टम्। अभिनिविशते सन्मा-

---

रहित है, तब भी धात्वर्थ बहिर्भूत कर्म होने के कारण सकर्मक ही है, अतः अकर्मक न होने के कारण प्रयोज्य कर्ता देवदत्त की कर्मसंज्ञा नहीं होगी, किन्तु कर्तृत्वात् तृतीया होगी। यज्ञदत्तः देवदत्तेन पाचयति और मासम् आसयति देवदत्तं यज्ञदत्तः' इत्यादि में कालवाचक 'मासम्' को कर्म होने पर भी उपवेशन इस धात्वर्थ से बहिर्भूत कर्म नहीं है। अतः यज्ञदत्तः देवदत्तं मासम् आसयति में प्रयोज्य कर्ता देवदत्त की अकर्मकत्वात् कर्मसंज्ञा होगी।

(हृक्रोरिति) हृक्रोरन्यतरस्याम्। अर्थ स्पष्ट है। हृकृधातु के प्रयोज्य कर्ता की कर्मसंज्ञा विकल्प से हो। भृत्यः कटं हरति, करोति वा। स्वामी तं प्रेरयति। इति, स्वामी भृत्यं भृत्येन वा कटं हारयति, कारयति, अभिवादीति। अभिपूर्वक वद्धातु और दृशधातु के योग में अण्यन्तावस्था के कर्ता की कर्मसंज्ञा विकल्प से हो। देवं भक्तः अभिवदति, पश्यति वा। गुरुः प्रेरयति। इति गुरुः देवं भक्तेन भक्तं वा अभिवादयते, दर्शयते वा। 'दृशेश्च' से नित्य प्राप्त था विकल्पार्थ उसका ग्रहण है।

(अधीति) अधिशीङ्स्थाऽऽसां कर्म। अधिपूर्वक शीङ् स्था आस् इनका आधार कर्म संज्ञक हो। अधिशेते वैकुण्ठं हरिः। एवम् अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा, और जहाँ अधिपूर्व में नहीं होगा वहाँ अधिकरण में सप्तमी ही होगी, जैसे—हरिः वैकुण्ठे शेते, आस्ते, तिष्ठति वा।

(अभीति) अभिनिविशश्च। अर्थ स्पष्ट है। अभिनि एतत्पूर्वक

गम्। परिक्रयणे संप्रदानमिति सूत्रात् मण्डूकप्लुत्या अन्यतरस्यां ग्रहण-मनुवर्त्य तस्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात्क्वचिन्न। पापेऽभिनिवेशः। उपान्वध्याङ्वसः।१।४।४८। उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः। अभुक्त्यर्थस्य न। *। वने उपवसति। उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते। *। उभयतः कृष्णं गोपाः। सर्वतः कृष्णम् धिक् कृष्णाभक्तम्। उपर्युपरि

विश् धातु का आधार कर्म संज्ञक हो। अभिनिविशते सन्मार्गम्। पापेऽभिनिवेशः, इस प्रसिद्ध प्रयोग में कर्मसंज्ञा क्यों नहीं। उत्तर-'परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम्' इस सूत्र से मण्डूकप्लुति से दो सूत्रों में अनुवृत्ति छोड़कर अन्यतरस्याम् पद की अनुवृत्ति है, और उसकी व्यवस्थित विभाषा मान कर कहीं कर्म संज्ञा नहीं होगी। तो अधिकरणत्वात् सप्तमी होगी। पापेऽभिनिवेशः।

(उपेति) उपान्वध्याङ् वसः। आधार पद की अनुवृत्ति है। तो यह अर्थ होगा उप-अनु-अधि-आङ् पूर्वक वस धातु का आधार कर्म संज्ञक हो, कर्मत्वात् द्वितीया। उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा बैकुण्ठं हरिः। बैकुण्ठे प्राप्त था कर्म संज्ञा हो गयी। अभुक्त्यर्थस्य न। भुक्ति-भोजन, अभुक्ति-भोजन निवृत्तिवाचक वस धातु के आधार की कर्म संज्ञा न हो। वस्तुतः 'वसेरश्यर्थस्य प्रतिषेधः' यह वार्तिक स्वरूप है। अर्थ पद निवृत्ति वाचक है। "अर्थोऽभिधेय रै वस्तु प्रयोजन निवृत्तिषु" इत्यमरः। इसी वार्तिक का भावार्थ ग्राहक 'अभुक्त्यर्थस्य न' यह है, भोजन निवृत्ति अर्थ में कर्म संज्ञा का प्रतिषेध हो जायगा। बने उपवसति आधार बन में सप्तमी हुई।

(उभेति) उभ और सर्व शब्द का द्वन्द्व समास, तदनन्तर तस्, द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते। तो यह अर्थ होगा। उभतस्-सर्वतस्-धिक् और द्विरुक्त उपर्यादिक तीन उपरि-अधि-अधस् इनके योग में द्वितीया हो, और इनसे अतिरिक्त में भी हो। तो उभयतः 'उभयोऽन्यत्र' से अयच् प्रत्यय। उभयतः कृष्णम्, सर्वतः कृष्णम्, में

लोकं हरिः। अध्यधि लोकम् अधोऽधो लोकम्। अभितः परितः समया निकषा हा प्रति योगेऽपि। ॐ। अभितः कृष्णम्। परितः कृष्णम्। ग्रामं समया। निकषा लङ्काम्। हा कृष्णाभक्तम्। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्। **अन्तराऽन्तरेणयुक्ते** ।२।३।४। अन्तरा त्वां मां हरिः। अन्तरेण हरिं न सुखम्। **कर्मप्रवचनीयाः** ॥१।४।८३॥ इत्यधिकृत्य। **अनुर्लक्षणे** ॥१।४।८४॥ लक्षणे द्योत्ये अनुरुक्तसंज्ञः स्यात्। कर्मप्रवचनीययुक्ते

उभयतस् और सर्वतस् के योग में द्वितीया। धिक् के योग में कृष्णाभक्त से। द्विरुक्त उपर्यादिक के योग में लोक शब्द से द्वितीया है। अभितः इति। अभितस्-परितस्-समया-निकषा हा और प्रति के योग में द्वितीया हो। अभितस् परितस् के योग में कृष्ण से, एवम् तत् तत् के योग में ग्रामादिकों से द्वितीया होगी। "बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् निःस्वा जना निष्करुणा भवन्ति। त्वं याहि भद्रे ! प्रियदर्शनाय न गङ्गदत्तः पुनरेति कूपम्" प्रतिभाति में प्रति के योग में बुभुक्षित से द्वितीया है।

(अन्तरेति) अन्तराऽन्तरेण युक्ते। इन अव्ययों के योग में द्वितीया हो। त्वाम् माम् अन्तरा हरिः। तव मम च मध्ये हरिः। त्वाम् माम् यहाँ अन्तरा के योग से द्वितीया हो गयी। एवम् अन्तरेण के योग से हरि से द्वितीया। 'हरिम् अन्तरेण' हरि के बिना सुख नहीं।

(कर्मेति) कर्मप्रवचनीयाः। यह अधिकार सूत्र है। वक्ष्यमाण सूत्रों से अधिरीश्वरे पर्यन्त कर्मप्रवचनीय संज्ञा होगी।

(अनुरिति) अनुर्लक्षणे। लक्ष्यते अनेनेति लक्षणम्। जिससे मालूम किया जाय वह लक्षण कहाता। अर्थात् लक्ष्य लक्षणभाव संबन्ध द्योत्य हो व्यङ्ग्य न हो, यह कर्मप्रवचनीय इस महासंज्ञा करण से जानते हैं, कर्म-क्रिया का कथन व्यज्यमान हो अर्थात् क्रिया को ही न लक्षित करता हो, किन्तु क्रियानिरूपित सम्बन्ध विशेष को द्योतित करता हो तो कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। तात्पर्य यह है, कि वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् के समान चिह्नमात्र का लक्षण-व्यङ्ग्य-विवक्षित नहीं है किन्तु हेतुभूतत्वेन लक्ष्य लक्षण भाव विवक्षित है। कर्मप्रवचनीय संज्ञा का फल

द्वितीया ॥२।३। पर्जन्यो जपमनु प्रावर्षत् । हेतुभूतजपोपलक्षितं वर्षणमित्यर्थः । पुनः संज्ञाविधानसामर्थ्यात्परत्वाऽपि तृतीयाऽनेन बाध्यते । तृतीयार्थे ॥१।४।८५॥ अस्मिन् द्योत्येऽनुरुक्तसंज्ञः स्यात् । नदीमन्ववसिता सेना । नद्या सह संबद्धेत्यर्थः । हीने ॥१।४।८६॥ अनुः प्राग्वत् । अनु हरिं सुराः ।

.(कर्मेति) कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया । अर्थ स्पष्ट है । कर्मप्रवचनीय के योग में द्वितीया विभक्ति हो, जपम् अनु प्रावर्षत् पर्जन्यः । जप के बाद मेघ वरसा । अर्थात् जप करने से मेघ वरसा, यहाँ मेघ वर्षण के प्रति जप कारण है, तात्पर्य यह कि यहाँ हेतुभूत जप लक्षण है । हेतुत्वं नाम पूर्वकाल–वृत्तित्वघटितम्' तो यहाँ पूर्वकालवृत्ति; वर्षण का हेतुभूत वरुण जप है, क्योंकि उसके करने से तदनन्तर काल में वृष्टि हुई । लक्षण का स्वरूप यह है, ज्ञान जनक ज्ञान विषयत्वम्' जपज्ञान से तदनन्तर काल में समुत्पन्न वृष्टिज्ञान है, तो यहाँ लक्षण और हेतु दोनों द्वितीया के ही अर्थ हैं । क्योंकि जपज्ञान से तदुत्तर काल में समुत्पन्न वृष्टिज्ञान होता है । तो यह भाव होगा । जपात्मकहेतुज्ञानजन्यज्ञानविषयो वर्षणम् । तो यहाँ हेतु स्वरूप जपज्ञान है तज्जन्य ज्ञान पर्जन्य वर्षणज्ञान तद्विषयक वर्षण है । इति लक्षणेत्थंभूताख्यान से सिद्ध ही था फिर जो इससे कर्मप्रवचनीय संज्ञा विधान किया है उस कारण पर भी हेतौ से प्राप्त तृतीया का बाध करेगा । वस्तुतः लक्षणेत्थंभूताख्यान० सिद्ध में लगता है, यह हेतु के द्योतन में अतः अपवादत्वात् तृतीया को बाधेगा ।

(तृतीयेति) तृतीयार्थे । तृतीयार्थ द्योत्य रहते अनु कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो । नदीम् अनु-अवसिता सेना । नद्या सह सम्बद्धा । यहा नद्या यह तृतीयार्थ अनु से द्योतित है, तो कर्मप्रवचनीय संज्ञा नदी की हो गयी । उक्त सूत्र से द्वितीया ।

(हीने इति) हीने । हीन—निकृष्ट—अर्थ द्योत्य होने पर अनु उक्त संज्ञक हो । ततः उक्त सूत्र से द्वितीया । अनु हरिं सुराः । सुरा हरे र्निकृष्टाः इत्यर्थः ।

हरेर्हीना इत्यर्थः। **उपोऽधिके च ॥१।४।८७॥** अधिके हीने च द्योत्ये उपेत्ययं प्राक्संज्ञः स्यात्। अधिके सप्तमी वक्ष्यते। हीने उपहरिं सुराः। **लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः ॥१।४।९०॥** एष्वर्थेषु विषयभूतेषु प्रत्यादय उक्तसंज्ञाः स्युः। लक्षणे वृक्षं प्रति पर्यनु वा विद्योतते विद्युत्। इत्थंभूताख्याने-भक्तो विष्णुं प्रति परि अनु वा। लक्ष्मीर्हरिं प्रति पर्यनु

(उप इति) उपोधिके च। अधिक अथवा हीन अर्थ द्योत्य हो तो उप यह कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो। और फिर उसके योग में द्वितीया होगी। अधिक अर्थ में, 'यस्मादधिकम्' से सप्तमी कहेंगे। हीन अर्थ में उपहरिं सुराः। हरेर्हीनाः। हीन अर्थ द्योत्य है, अतः उपकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा। उप से हरि का योग है, अतः कर्मप्रवचनीययुक्ते से द्वितीया। उपहरिं सुराः।

(लक्षण इति) लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः। इन लक्षणादिक अर्थों के विषय में प्रति परि अनु ये कर्मप्रवचनीय संज्ञक हों। लक्षण का उदाहरण—वृक्षं प्रति परि अनु वा, विद्युत् विद्योतते। यहाँ लक्ष्यलक्षणभाव संबन्ध द्वितीया से व्यक्त है और वह सम्बन्ध प्रति परि अनु से द्योत्य है। क्योंकि विद्युत् क्षणिक होने के कारण उत्पन्नविनष्टशील है, उसके प्रकाशमात्र से प्रकाशित वृक्ष भी उत्पन्नविनष्टशील है परंतु वृक्ष प्रकाशोत्तर विद्युत् अप्रत्यक्ष है अतः अनुमानगम्य लक्ष्य है और प्रकाशित वृक्ष से विद्युत् का ज्ञान होता है इससे वृक्ष लक्षण है, तो इस प्रकार लक्ष्यलक्षण सम्बन्ध में प्रति-परि-अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा। तद् योग में द्वितीया। एवम् इत्थंभूतादिक अर्थों में। यह किसका भक्त है ? अर्थात् इसकी किस देव विषयक भक्ति है ! यहाँ भक्त की विष्णु विषयक सिद्ध भक्ति का इत्थंभूततया कथन है अतः प्रत्यादिकों की उक्त संज्ञा, तद्योग में द्वितीया। भाग में—लक्ष्मी किसका भाग है ? अर्थात् इसका कौन स्वामी है। तो यहाँ भाग—स्वामित्व का कथन है, प्रति इत्यादि की उक्त संज्ञा। तद् योग में हरि से द्वितीया। लक्ष्मीः हरिं प्रति। वीप्सा में उदाहरण—वृक्षं वृक्षं प्रति। नित्यवी

वा। हरेर्भाग इत्यर्थः। वीप्सायाम्—वृक्षं वृक्षं प्रतिपर्यनु वा सिञ्चति। अत्रोपसर्गत्वाभावान्न षत्वम्। **अधिपरी अनर्थकौ** ।१।४।९३। भागवर्जेषु लक्षणादिष्वर्थेषु अभिरुक्तसंज्ञः स्यात्। हरिमभिवर्तते। भक्तो हरिमभि। देवंदेवमभिसिञ्चति। **अधिपरी अनर्थकौ** ।१।४।९३। कुतोऽध्यागच्छति।

से द्वित्व। वीप्सा अर्थ में प्रति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा से उपसर्ग संज्ञा का बाध होने से 'उपसर्गात्सुनोति सुवति स्यति' से प्राप्त षत्व नहीं होगा।

(अभिरिति) अभिरभागे। अभागे-भाग अर्थ से अतिरिक्त अर्थों में अर्थात् लक्षण इत्थंभूताख्यान वीप्सा इन अर्थों में अभि उक्त-कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो। हरिम् अभिवर्तते। जयः क्व वर्तते? इस प्रश्न में अभि से व्यक्त द्वितीयार्थ हरि लक्ष्य जय है, अभि के योग में हरि से द्वितीया। एवम् इत्थंभूताख्यान का उदाहरण, कस्यायं भक्तः, इस जिज्ञासा में, भक्तो हरिम् अभि। हरि विषयक भक्तिमान्, इत्थंभूताख्यान है अतः अभि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा। तद्योग में हरि से द्वितीया। वीप्सा में देवं देवम् अभिसिञ्चति। कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञा का निषेध। तो 'उपसर्गात्सुनोति॰ से षत्व नहीं होगा, और देव से योग है अतः देव से द्वितीया। प्रत्येक देव का अभिषेक करता है। यह वीप्सा अति देवं-देवं से व्यक्त है।

टिप्पणी—वृक्षं वृक्षं प्रतिसिञ्चति, यद्यपि द्विर्वचन से ही प्रत्येक वृक्ष के सिञ्चन प्रति इच्छा प्रतीत है, परन्तु प्रत्यादिको से भी है। अस्तु। यहाँ सिञ्चन का वृक्ष कर्म है अतः कर्मत्वात् द्वितीया सिद्ध है फिर यह सूत्र क्यों? उपसर्गादि संज्ञा बाधनार्थ सूत्र है। यह ठीक नहीं क्योंकि प्रत्यादिकों का क्रिया से योग ही नहीं है, किन्तु वृक्ष से है, उत्तर—कर्मत्व की अविवक्षा में प्राप्त षष्ठी के बाध के लिये सूत्र आवश्यक है, अपिच कर्मत्व की विवक्षा में भी प्रथम प्रतिद्योत्य सम्बन्ध में वृक्ष का अन्वय होगा, अन्तरङ्गत्वात् सम्बन्ध में प्राप्त षष्ठी बाधनार्थ सूत्र आवश्यक है। किञ्च वृक्षं वृक्षं प्रति शिष्याः आसते, इत्यादि अकर्मक धातु में अधिकरण संज्ञा प्राप्त है तद्बाधनार्थं कर्मप्रवचनीय संज्ञा है। इत्यादि भाष्य में स्पष्ट है।

कुतः पर्यागच्छति अत्र न निघातः। **सुः पूजायाम् ॥१।४।९४॥** सुसिक्तम्। सुस्तुतम्। **अतिरतिक्रमणे च ॥१।४।९५॥** अतिदेवान् कृष्णः। **अपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु ॥१।४।९६॥** सर्पिषोऽपि स्यात्। अनुपसर्गत्वान्न षः। सर्पिषो बिन्दुरपि स्यादित्यर्थः सर्पिषो बिन्दुना योगात्

अधीति। अधिपरी अनर्थकौ। अनर्थक अधि और परि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। तो 'उपसर्गाः क्रियायोगे गतिश्च' से गति संज्ञा नहीं होगी, अतः कुतः आगच्छति, इस विवक्षा में निरर्थक, किसी प्रकार के विलक्षण अर्थ को न द्योतित अथवा न कहने वाले अधि परि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होगी, कर्म प्रवचनीय संज्ञा से गतिसंज्ञा का बाध है, अतः 'गतिर्गतौ' से निधात-अनुदात्त नहीं होगा।

(सुरिति) सुः पूजायाम्। पूजा अर्थ में अर्थात् स्तुति अर्थ में सु कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो। 'सु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञा का बाध हो जायगा अतः उपसर्गात्सुनोति॰ से प्राप्त षत्व नहीं होगा। सुसिक्तम्, सुस्तुतम्, यदि आक्षेप पूर्वक कहेगा तो सु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होगी क्योंकि आक्षेप से निन्दा व्यक्त है, अतिरिति। अतिरतिक्रमणे च। अतिक्रमण अर्थ में अति कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो। अति देवान् कृष्णः। अति की उक्त संज्ञा, उसके योग में देव शब्द से द्वितीया। देवान् अतिक्रम्य कृष्णः वर्तते। कृष्ण देवों से बढकर हैं।

(अपिरिति)। अपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु। उक्त पदार्थादिकों की द्योतकता में अपि कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो, पदार्थ-का अर्थ प्रकृत में अप्रयुज्यमानस्य पदान्तरस्य अर्थः पदार्थः। अप्रयुज्यमान-अर्थात् जिसका प्रयोग न हो, ऐसे दूसरे पद का अर्थ वह पदार्थ कहाता है, उसकी द्योतकता में अपि उक्त संज्ञक हो। उदाहरण-सर्पिषोऽपि स्यात्। यहाँ अपि शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्गसंज्ञा का बाध है, अतः उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः से षत्व नहीं होगा। पदार्थ द्योतकता जिस पद की जिस प्रकार है उसकी प्रक्रिया-उक्तवाक्य में बिन्दुबोधक

तत्र न द्वितीया। अपि स्तुयाद्विष्णुम्। सम्भावनं शक्त्युत्कर्षमाविष्कर्तुमत्युक्तिः। अन्ववसर्गः कामचारानुज्ञा। अपि स्तुहि। गर्हायाम्–धिक् देवदत्तमपि स्तुयाद् वृषलम्। समुच्चये-अपि सिञ्च अपि स्तुहि। कालाध्वनोरत्यन्त-

पद नहीं है अतः उसकी द्योतकता में पदार्थ द्योतकता है, किस प्रकार द्योतकता है उसकी प्रक्रिया यह है-अतिकृपणके यहां भोजनामन्त्रणमें मित्र का सोपहास कथन-'सर्पिषोऽपि स्यात्'। 'उपसंवादाशंकयोर्लिङ् ऐसा-मान कर आशंका उत्कटैककोटिका। संभावना आशंका एक ही है तो संभावना अर्थ में कर्त्ता में स्यात् यह लिङ् है, तो कर्ता कौन है इस आकांक्षा में सर्पिषः पदकी अवयव षष्ठी से लब्ध बिन्दु पद है उसी अप्रयुज्यमान पदार्थ को अपि शब्द द्योतित-व्यक्त करता। तो संभावना विषय क्या है, बिन्दु उसी को प्रकृत्यर्थ विषयक जो सत्ता उसमें बिन्दु दौर्लभ्य द्वारा अन्वय है, वह बिन्दु दौर्लभ्य भी अपि शब्द द्योत्य है। सर्पिषः यहां द्वितीया क्यों नहीं? बिन्दु के साथ अवयव सम्बन्ध में षष्ठी है। सर्पिष का बिन्दु के साथ योग है अपि के साथ नहीं। तो यह अर्थ होगा। 'सर्पिरवयव—बिन्दुदौर्लभ्यप्रयुक्तदौर्लभ्यवतो बिन्दुकर्तृका सम्भावनाविषयीभूता सत्ता। सर्पिषका अवयव-बिन्दुदौर्लभ्यप्रयुक्त दौर्लभ्यवती बिन्दु की सत्ता होगी। तो यहाँ संभावित बिन्दु की सत्ता का ही स्यात् क्रिया से अन्वय है, यही बिन्दुद्योतकता पदार्थद्योतकता है और पदार्थ द्योतक अपि की उपसर्ग संज्ञा न होने से षत्व नहीं होगा।

संभावना का उदाहरण—लोकोत्तर विष्णु की कोई स्तुति नहीं कर सकता, परन्तु औत्कर्ष्य से अत्युक्ति है 'अपि स्तुयात् विष्णुम्, उक्तवत् षत्व नहीं होगा। यथेच्छ कार्य करने का बोधक अन्ववसर्ग है, अपि स्तुहि। स्तुति करो, अथवा न करो, जैसी इच्छा। गर्हा–निन्दा, धिग्-देवदत्तम्, अपि स्तुयाद् वृषलम्। वृषल निन्द्य है अतः तत्स्तुति कर्तृत्वेन देवदत्त भी निन्द्य है, वह गर्हा अपि पद से द्योत्य है। समुच्चय-प्रयुक्त सभी कामों का करना। अपि सिञ्च, अपि स्तुहि। सींचों भी स्तुति भी करो, समुच्चय है, अतः कर्म प्रवचनीय होने से षत्व नहीं होगा।

संयोगे ॥२।३।५॥ द्वितीया स्यात् । मासं कल्याणी । मासमधीते । मासं गुडधानाः क्रोशं गिरिः । **स्वतन्त्रः कर्ता ॥१।३।६४॥** क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् । **साधकतमं करणम् ॥१।४।४२॥** कर्तृकर-

---

(कालेति) कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे । काल-समय अथवा अध्वा वाचक से अत्यन्त अविच्छिन्न संयोग होने पर द्वितीया हो। अर्थात् गुणक्रियाद्रव्य वाचक शब्द का काल अथवा अध्व वाचक से अत्यन्त संयोग होनेपर द्वितीया हो, मासं कल्याणी । मास पर्यन्त बराबर कल्याण युक्त है, तो यहाँ गुण बोधक कल्याणी में काल वाचक मास का योग है उससे द्वितीया हो गयी । मांसं कल्याणी । मासम् अविच्छिन्नं मास-पर्यन्तम् अधीते, यहाँ अध्ययन क्रिया के साथ कालवाचक मास का योग है अतः उससे द्वितीया हो गयी । मासं गुडधानाः, यहाँ द्रव्यवाचक गुडधानाः के योग में द्वितीया । इसी प्रकार अध्ववाचक से द्वितीया। क्रोशं कुटिला नदी, क्रोशमधीते । क्रोशं गिरिः । इति द्वितीया ।

(स्वतन्त्र इति) स्वतन्त्रः कर्ता । 'कारके' पद का अधिकार है अतः कारके-क्रिया में जो स्वतन्त्र-प्रधान है, अर्थात् प्राधान्येन विवक्षित है, 'क्योंकि-विवक्षातः कारकाणि भवन्ति' विवक्षा के अधीन कारक होते हैं, यह भाष्य सिद्धान्त है अतएव स्थाली पचति इत्यादि में स्थाली का स्वातन्त्र्य न होने से कर्तृत्व नहीं है, अस्तु । तो स्वातन्त्र्येण विवक्षित अर्थ कर्ता हो ।

(साधकेति) साधकतमं करणम् । कारके का अधिकार है । अतः कारक में क्रिया सिद्धि में जो साधकतम प्रकृष्ट उपकारक अर्थात् जिस व्यापार के अनन्तर अव्यवहित क्रिया की निष्पत्ति हो वह उस क्रिया के प्रति करण संज्ञक हो ।

टिप्पणी—सूत्र में तपप् ग्रहण क्यों ? क्योंकि कारके का अधिकार है, अतः सिद्धि में सहायक यह सिद्ध ही था फिर जो साधक ग्रहण किया उससे प्रकृष्ट अर्थ लब्ध ही हो जायगा फिर 'तमप् ग्रहण' व्यर्थ है । व्यर्थ होकर यह सूचित करता है कि 'कारकप्रकरणे गौणमुख्यन्यायो न प्रवर्तते

णयोस्तृतीया ॥२।३।१८॥ अनभिहिते एव। रामेण बाणेन हतो बाली। प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ॥ प्रकृत्या चारुः। प्रायेण याज्ञिकः। गोत्रेण गार्ग्यः। समेन एति। विषमेण एति। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। सुखेन दुःखेन वा याति। दिवः कर्म च ॥ १४३३ ॥ दिवः साधकतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्याच्चात्करणसंज्ञम्। अक्षैरक्षान् वा दीव्यति। अपवर्गे

(कर्त्रिति) कर्तृकरणयोस्तृतीया। पूर्वोक्त सूत्रों से जिन की कर्तृ संज्ञा और करण संज्ञा की है उनसे तृतीया विभक्ति हो। 'अनभिहिते' का अधिकार है, अतः अभिहित कर्ता करण से तृतीया नहीं होगी। यथा—रामेण बाणेन हतो बाली यहाँ कर्म में हन् धातुसे क्त प्रत्यय है अतः हनन क्रिया के कर्म; बाली में कर्म के उक्त होने से प्रथमा और अनभिहित; हनन क्रिया के प्रधान कर्ता राम से और कर्ता व्यापार के समनन्तर बाण व्यापार से हनन क्रिया की सिद्धि हुई है अतः प्रकृष्ट साधकतम-करण बाण से तृतीया हुई।

(प्रकृत्येति) 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' प्रकृत्यादिक शब्दों से तृतीया विभक्ति हो। प्रकृत्या चारुः इत्यादि में प्रकृति इत्यादिक पदों से तृतीया हुई।

(दिव इति) दिवः कर्म च। 'दिवु-क्रीडायाम्' क्रीडार्थक दिव्धातु का जो साधकतम कारक है वह कर्म संज्ञक और चकार से करण संज्ञक

कारक प्रकरण में गौण मुख्यन्याय नहीं होता है, अतः प्रकृष्ट अर्थ लाभार्थ तम (प्) म् ग्रहण है। फल-गङ्गायां घोषः में सप्तमी हुई। अन्यथा 'आधारोऽधिकरणं में महासंज्ञा करण सामर्थ्य से मुख्य अधिकरण का ग्रहण होगा। तो सर्वावयवतया व्याप्त जो आधार है वही अधिकरण संज्ञक होगा। तो तिलेषु तैलम्, दध्नि सर्पिः, जले शैत्यम्, इत्यादिक में सप्तमी होगी। गङ्गायाम् घोषः में नहीं होगी। गङ्गा प्रान्त में घोष-अहीरों का ग्राम है, यहाँ सर्वावयवतया गङ्गा में व्याप्त ग्राम नहीं है।

(२) भाष्यकार ने प्रकृत्यादिक पदों से अन्य प्रकार से तृतीया देखकर इस वार्तिकको अकिंचित्कर माना है।

तृतीया ॥२।३।६॥ अपवर्गः फलप्राप्तिस्तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात्। अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः। सहयुक्तेऽप्रधाने ॥२।३।१९॥ पुत्रेण सहागतः पिता। एवं साकं सार्धं समं योगेऽपि। विनाऽपि तद्योगं तृतीया। वृद्धो यूनेत्यादिनिर्देशात्। येनाङ्गविकारः

हो, कर्म संज्ञा होने से कर्मणि द्वितीया से द्वितीया, और करण संज्ञा होने से कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया हुई। अक्षैः, अक्षान् वा, दीव्यति।

(अपवर्ग इति) अपवर्गे तृतीया। अपवर्ग-समाप्ति। प्रायः फल प्राप्ति पर्यन्त ही क्रिया की समाप्ति होती है, उसी तात्पर्यार्थ को लेकर कहते हैं। अपवर्ग—फलप्राप्ति उस फल प्राप्तिकी द्योतकता में काल अथवा अध्वावाचक के अत्यन्त योग होने पर उससे काल अथवा अध्वावाचक से तृतीया हो, 'कालाध्वनो०' से प्राप्त द्वितीया का बाधक है, अह्ना कालवाचक है, क्रोशेन अध्वावाचक है तृतीया हो गई। अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः,यहाँ अधीतः से फलप्राप्ति द्योतित है।

(सहेति) सहयुक्तेऽप्रधाने। 'सहेन प्रधाने' पढना था, युक्तग्रहण सह समानार्थक पदों के बोधनार्थ है। सह समानार्थक पदों के योग में अप्रधान से तृतीया हो। पुत्रेण सह आगतः पिता। यहाँ आगमन में पिता साक्षात् सम्बद्ध है, पुत्र आर्थिक अप्रधान है अतः अप्रधानत्वात् तृतीया। इसी प्रकार पुत्रेण साकं समं सार्द्धम् इत्यादि में भी जानना। विनापीति। सहाद्यर्थक के अनुपादान में भी केवल तदवगति में भी तृतीया विभक्ति होती है। 'वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेत्' सूत्र में यूना यह तृतीया देखते हैं इससे जानते हैं, सहादि के अभाव में भी तृतीया होती है। भाष्यकार का सिद्धान्त है कि आगमन क्रिया के प्रति कर्ता पुत्र भी है, क्तप्रत्यय से उक्त पिता है अतः अनुक्तकर्ता पुत्र शब्द से तृतीया होगी। इस सूत्र का उदाहरण पुत्रेण सह स्थूलः इत्यादि है।

(येनेति)। येनाङ्गविकारः। अङ्ग शब्द से अर्शादित्वात् अच् प्रत्यय। अङ्गस्य विकारः अङ्गवतः अङ्गिनः विकारः। येन पद से प्रत्या

॥२।३।२०॥ अक्ष्णा काणः। पादेन खञ्जः। शिरसा खल्वाटः। इत्थंभूतलक्षणे ॥२।३।२१॥ कञ्चित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात्। जटाभिस्तापसः। संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि ॥२।३।२२॥ पित्रा पितरं वा संजानीते। हेतौ ॥२।दण्डेन घटः।पुण्येन दृष्टः। द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसा-

---

सत्ति न्याय से प्रकृत्यर्थभूत अङ्गका ग्रहण होगा। तो यह अर्थ होगा, जिस विकृत अङ्ग से अङ्गीका विकार लक्षित हो उस अङ्गवाचक से तृतीया विभक्ति हो, क्योंकि बिना अङ्ग विकार के अङ्गी का विकार हो नहीं सकता, अतः येन पद से विकृतेन अङ्गेन का परामर्श होगा। अक्ष्णा काणः अक्षिके अभावात्मक विकार से अङ्गी काणत्वेन लक्षित है अतः अक्षि अङ्ग से तृतीया हुई। काण पद से काण-पुरुष इस अंगी का ही बोध होता है अंग का नहीं। एवं पादेन खञ्जः। कर्णेन बधिरः। शिरसा खल्वाटः। इत्यादि जानना।

(इत्थमिति)। इत्थंभूत लक्षणे। अयं प्रकारः इत्थम्। इदमस्थमुः। भूतः। भू प्राप्तौ चुरादि आधृषाद्वा। पाक्षिक णिच्। इत्थंभूतस्य-कञ्चित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे-ज्ञापके। किसी प्रकार विशेष को प्राप्त के लक्षण में अर्थात् किसी प्रकार वैलक्षण्य प्राप्त की संबन्धद्योतकता में तृतीया विभक्ति हो। जटाभिः तापसः। यहां जटाभिः का तापस के साथ ज्ञाप्य ज्ञापक भाव सम्बन्ध है। जटाओं से तपस्वित्व का बोध होता है। अतः इत्थं भूत बोधक जटा पदसे तृतीया हो गई।

(समिति)। संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि। संपूर्वक ज्ञा धातु के कर्म में तृतीया विभक्ति विकल्प से हो, पक्ष में द्वितीया होगी। पित्रा संजानीते, पितरं वा।

(हेताविति) हेतौ। हेत्वर्थ में तृतीया विभक्ति हो। दण्डेन घटः दण्ड से घट। एवं पुण्येन दृष्टो हरिः। पुण्य से हरि। को देखा। प्रश्न यह है, कि हेतु और करण समान ही है, अतः करणत्व से ही तृतीया सिद्ध है, फिर हेतौ सूत्र क्यों है। इसलिये हेतु और करण का विवेचन करते हुये

परस्पर वैषम्य बताते हैं। द्रव्यादीति। द्रव्य आदि पद से गुण क्रिया का

धारणं च हेतुत्वम् । करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च । फलमपि हेतुः । अध्ययनेन वसति । गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका । अलं श्रमेण । श्रमेण साध्यं नास्तीत्यर्थः । शतेन वत्सान् पाययति पयः । शतेन परिच्छिद्येत्यर्थः । अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया । * । दास्या संयच्छते कामुकः । कर्मणा यमभिप्रैति स संप्र-

---

ग्रहण होगा । तो यह अर्थ होगा, द्रव्य-गुण-क्रियात्मक कार्य निरूपित हो और निर्व्यापार अथवा सव्यापार हो वह हेतु, और करण-क्रिया जनक मात्र वृत्ति, और व्यापार नियत-अर्थात् व्यापारवद् वृत्ति हो वह करण। दण्डेन घटः । यहां दण्ड में ब्यापार है, परंतु क्रिया जनक नही है, अतः करण नहीं है, एवं पुण्येन दृष्टः । यहां क्रिया जनक है, परंतु व्यापार वद्वृत्ति नहीं है । फलमपीह हेतुः । फल भी हेतु कहाता है, अध्ययनेन वसति । यहाँ अध्यन वासके प्रति हेतु है । अतः अध्यनशब्द से तृतीया हो गयी । गम्यमानेति । केवल श्रूयमाण ही क्रिया कारक विभक्तियों की उत्पादिका नहीं है, किन्तु गम्यमान क्रिया भी कारक विभक्ति की उत्पत्ति में प्रयोजिका है । यथा-अलं श्रमेण । अलम् पद से साध्याभाव गम्यमान है । साध्य के प्रति श्रम करण है । अलं पद से साध्याभाव वाच्य है। अतः अलं के योग में श्रम शब्द से तृतीया होगी । उदाहरणान्तर-यथा शतेन शतेन वत्सान् पाययति । वीप्सा मे शतेन पद को द्वित्व । 'वत्सगत शत संख्या का पायन असंबद्ध होकर परिच्छिद्य पद को लक्षित करता है, अतः शत शब्द से करण में तृतीया होगी, क्योंकि परिच्छेद के प्रति शत संख्या वाचक शतशब्द करण है, अशिष्टेति । अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया । अशिष्ट व्यवहार में, शिष्ट पुरुषों से अननुमोदित व्यवहार में दाण धातु के प्रयोग होने पर चतुर्थी के अर्थ में तृतीया हो । दास्या संयच्छते कामुकः । कामुक पद से रत्यर्थ दान अशिष्टव्यवहार प्रतीत है, अतः दानपात्रीचतुर्थ्यर्थ में विद्यमान दासीशब्द से संयच्छते इस दाण धातु के योग में तृतीया हुई । शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् । जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते । मनुः ।

दानम् ।१।४।३२। दानस्य कर्मणेत्यर्थः। चतुर्थी संप्रदाने ।२।३।१३। विप्राय गां ददाति। अनभिहित इत्येव। दानीयो विप्रः। क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि संप्रदानम्। *। पत्ये शेते। यजेः कर्मणः करणसंज्ञा, संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा। *। पशुना रुद्रं यजते। पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः। रुच्य-

---

कर्मणेति। कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रसादनम्। संप्रदीयते यस्मै तत् संप्रदानम्, यह अन्वर्थ महासंज्ञा है, तो कर्मणा यंम् अभिप्रैति, कस्य कर्मणा-किसके कर्म से इस आकांक्षा में अन्वर्थ संप्रदान पद से उपलब्ध दानक्रिया उसके कर्म से जो अभिप्रेत है, वह तत् संज्ञक हो। अर्थात् देय द्रव्य का जो उद्देश्य है वह संप्रदान संज्ञक होता है।

चतुर्थीति। चतुर्थी संप्रदान। संप्रदान में अर्थात् देयद्रव्य के उद्देश्य मे चतुर्थी विभक्ति हो। विप्राय गां ददाति। यहां देय द्रव्य गो हैं उसका उद्देश्य विप्र है, अर्थात् दानक्रिया का कर्म गाम् है उस गांम से अभिप्रेत किसको गौ देता है, विप्रको अतः विप्र की संप्रदान संज्ञा। संप्रदानत्वात् चतुर्थी। अनभिहिते का अधिकार है अतः अभिहित संप्रदान में चतुर्थी नही होगी, दानीयो विप्रः। यहाँ 'कृत्यल्युटो बहुलम्' में बहुलग्रहण से संप्रदान में अनीयर प्रत्यय है। यही कृदन्त से संप्रदान उक्त है। दीयते अस्मै यहाँ अस्मै इसपद से बोधित संप्रदान में अनीयर। और अनीयर प्रत्यय से संप्रदान उक्त है, अतः दान क्रियोद्देश्य विप्र से चतुर्थी नहीं हुई। 'कर्मणायमभि प्रैति० सूत्र में वार्तिक कार कहते हैं 'क्रियाग्रहण-मपि कर्तव्यम्। उसीका फलितार्थ है। क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि संप्रदानम् क्रियासे जो अभिप्रेत है अर्थात् क्रिया का जोउद्देश्य है वह भी संप्रदान संज्ञक हो। पत्ये शेते। यहाँ शयनक्रिया का उद्देश्य क्या है पति, इसलिये उसकी संप्रदान संज्ञा चतुर्थी। पत्ये शेते। यजेरिति। यजेः कर्मणः करण-संज्ञा संप्रदानस्य च कर्म संज्ञा, यह वार्तिक है, पशुं रुद्राय ददाति, इस विवक्षा में, यज् धातु के कर्म पशु की करण संज्ञा हो गयी और संप्रदान रुद्रकी कर्मसंज्ञा हो गयी, करणत्वात् तृतीया और कर्मत्वात् द्वितीया हुई। पशुना रुद्रं यजते। यज् धातु विषयक ही यह वार्तिक है, यह भट्टोजि

र्थानां प्रीयमाणः ।१।४।३३। हरये रोचते भक्तिः। हरिनिष्ठप्रीतेर्भक्तिः कर्त्री। श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानाः ।१।४।३४। एषां प्रयोगे बोधयितुमिष्टः संप्रदानं स्यात्। गोपी स्मरात्कृष्णाय श्लाघते, ह्नुते, तिष्ठते शपते वा। धारेरुत्तमर्णः ।१।४।३५। भक्ताय धारयति मोक्षं

का मत है, छान्दस ही यह वार्तिक है यह कैयट का मत है। रुच्यर्थेति। रुच्यर्थानां प्रीयमाणः। रुच्यर्थक अर्थात् प्रीति जननार्थक धातुओं के योग में प्रीयमाण संप्रदान संज्ञक हो, हरये रोचते भक्तिः। भक्तिः स्वविषयां प्रीतिं हरौ जनयतीत्यर्थः।

श्लाघेति। श्लाघह्नुङ-स्था-शयां ज्ञीप्स्यमानः। उक्त इन धातुओं के योग में ज्ञीप्स्यमान अर्थात् जिसको बताना चाहते हैं उसकी संप्रदान संज्ञा हो, संप्रदानत्वात् चतुर्थी, गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते इत्यादि। स्मर वेदना को तप्तगोपी आत्मश्लाघा से कृष्ण को कहती है। इसी प्रकार सर्वत्र 'स्वाशयं कृष्णं बोधयति' जानना।

धारेरिति। धारेरुत्तमर्णः। धारेः—णिजन्त धृ धातु के योग में उत्तमर्ण संप्रदान संज्ञक हो। हरिः भक्ताय मोक्षं धारयति। यहां भक्त हरि का पूजनादि द्वारा उत्तमर्ण है, भक्तके प्रति देय द्रव्य मोक्षको हरि भक्त

टिप्पण—प्रश्न—यह है कि हरिः भक्तिम् अभिलषति, यहाँ प्रीतिका विषयभक्ति है अतः भक्तिशब्द की संप्रदान संज्ञा प्राप्त है, अतः रुच्यर्थ और अभिलाषा का भेद कहते हैं, प्रीत्याश्रयापेक्षया अन्यकर्तृकोऽभिलाषः रुचिधात्वर्थः। और प्रीत्याश्रयकर्तृकःकिञ्चिद्विषयकः इच्छाविशेषोऽभिलाषः। तो अभिलाषा रुच्यर्थ से भिन्न है, अतः तद्योग में संप्रदान संज्ञा नहीं होगी। पुनश्च विषयतासंबन्ध से भक्ति भी प्रीत्याश्रय है अतः भक्ति से चतुर्थी हो जाय। उत्तर-समवाय संबन्ध से प्रीत्याश्रयतया हरि का ही प्रीयमाणत्व है अतः प्रीयमाणत्व कर्त्री भक्ति का प्रीयमाणत्व नहीं है, अतः भक्ति की संप्रदान संज्ञा नहीं होगी। इसीका ग्राहक हरिनिष्ठप्रीतेर्भक्तिः कर्त्री है।

हरिः। स्पृहेरीप्सितः।१।४।३६। पुष्पेभ्यः स्पृहयति। ईप्सितमात्रे इयं संज्ञा, प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात्कर्मसंज्ञा। पुष्पाणि स्पृहयति। क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः।१।४।३७। हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति। क्रोधोऽमर्षः, द्रोहोऽपकारः, ईर्ष्या अक्षमा, असूया गुणेषु दोषाविष्करणम्। क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म।१।४।३८। क्रूरमभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति। राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः।१।४।३९। यदीयो विविधः प्रश्नः

को पूजनादि परावर्त्तन में देगा, अतः अधमर्ण है, तो धारि के योग में उत्तमर्ण भक्त की संप्रदान संज्ञा, ततः चतुर्थी। स्पृहेरिति। स्पृहेरीप्सितः स्पृहधातु के प्रयोग में ईप्सित-इष्ट संप्रदान संज्ञक हो। पुष्पेभ्यः स्पृहयति। पुष्पों को चाहता है। इस साधारण इच्छा में संप्रदान संज्ञा होगी। उत्कृष्ट इच्छा में परत्वात् कर्मसंज्ञा होगी, पुष्पाणि स्पृहयति।

क्रुधेति। क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः। अर्थ स्पष्ट है। क्रुधाद्यर्थक धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति कोप हो वह संप्रदान संज्ञक हो कंसः हरये क्रुध्यति। हरि के प्रति क्रोध है, अतः हरि शब्द की संप्रदान संज्ञा। संप्रदानत्वात् चतुर्थी। एवं हरये द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति। क्रोधादि पदों का निर्वचन करते हैं। क्रोध अमर्ष अर्थात् घातेच्छासम नियत चित्तवृत्ति विशेष। द्रोह अपकार, तिरस्कार करना अर्थात् दुःखजनिका क्रिया, बड़ों की उपेक्षा करना भी द्रोह है। ईर्ष्या-अक्षमा, न सहना। असूया, गुणों में मिथ्या दोषारोपण करना।

क्रुधद्रुहोरिति। क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म, उपसृष्टयोः सोपसर्गयोः। उपसर्ग से सहित जो क्रुध द्रुह धातु इनके योग में जिसके प्रति कोप हो वह कारक कर्म संज्ञक हो। क्रूरम् अभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति। यहाँ अभिउपसर्ग पूर्वक क्रुध द्रुह है, और क्रूर के प्रति कोप है अतः क्रूर की कर्म संज्ञा। कर्मणि द्वितीया से द्वितीया। क्रूरमभिक्रुध्यति। इत्यादि।

राधीक्ष्योरिति। राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः। विविधः प्रश्नः विप्रश्नः।

क्रियते तत् कारकं सत् सम्प्रदानं स्यात् । तत्र चतुर्थी । कृष्णाय राध्यति, ईक्षते वा । पृष्टो गर्गः शुभाशुभं पर्यालोचयतीत्यर्थः । **प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता** ।१।४।४०। आभ्यां परस्य श्रृणोतेर्योगे पूर्वस्य प्रवर्तनरूपव्यापारस्य कर्ता सम्प्रदानं स्यात् । विप्राय गां प्रतिश्रृणोति, आश्रृणोति वा। विप्रेण मह्यं देहीति प्रवर्तितः प्रतिजानीत इत्यर्थः । **अनुप्रतिगृणश्च** ।१।४।४१ आभ्यां गृणातेः कारकं पूर्वव्यापारस्य कर्तृभूतमुक्तसंज्ञं स्यात्। होत्रेऽनुगृणाति । प्रतिगृणाति, होता प्रथमं शंसति, तमध्वर्युः प्रोत्साह-

---

राध और ईक्ष धातु के योग में यद् विषयक विविध प्रश्न किये जांय उस कारक की संप्रदान संज्ञा हो । नन्द कृष्ण विषयक शुभाशुभ गर्ग ऋषि से पूछते हैं और गर्ग पर्यालोचना–विचार करता है। राध्यति ईक्षते का तात्पर्यार्थ है ग्रहानुकूल प्रर्यालोचन । अतः कृष्ण की संप्रदान संज्ञा । संप्रदानत्वात् चतुर्थी । कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा।

प्रत्याङिति । प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता । प्रति अथवा आङ से पर जो श्रुधातु उसके योग में प्राथमिक प्रवर्त्तनारूप जो व्यापार है, उसका कर्त्ता संप्रदान संज्ञक हो, प्रथम विप्र कहता है, कि 'इमां गां मह्यं देहि' इस प्रकार विप्र से दान के लिये प्रवर्तित वह दाता विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति' पूर्व प्रवर्तक कर्ता विप्र है उसकी संप्रदान संज्ञा, विप्राय प्रतिशृणोति, विप्रके लिये देने की प्रतिज्ञा करता है।

अन्विति । अनुप्रतिगृणश्च । 'अभिनिविशश्च' के समान 'अनुप्रति' इस समुदाय का ग्रहण क्यों नहीं ? पूर्वोक्त प्रत्याङ्भ्याम् के साहचर्य से अथवा अनुप्रति लुप्त पञ्चम्यन्त है, अथवा भाष्यादि प्रयोग से अनुप्रति भिन्न स्वरूप से हैं । तो अनु अथवा प्रति से पर जो गृधातु उसका कारक पूर्व व्यापार का कर्ता उक्त संज्ञक-संप्रदान संज्ञक हो । होत्रे अनुगृणाति, होता प्रथमं शसति, तम् अध्वर्युः प्रोत्साहयति, यहाँ होतृ कृत शंसन रूप पूर्व व्यापार है उस शंसन का कर्ता होता है, उसकी संप्रदान संज्ञा। संप्रदानत्वात् चतुर्थी, एवम् प्रतिपूर्वक गृधातु का होत्रे प्रतिगृणाति।

भवतीत्यर्थः । परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् ।१।४।४२। नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणम् । तस्मिन् साधकतमं कारकं संप्रदानसंज्ञं वा स्यात् । शतेन, शताय वा परिक्रीतः । तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या । ॐ । मुक्तये हरिं भजति । कॢपिसंपद्यमाने च । * । भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, संपद्यते, जायते इत्यादि । उत्पातेन ज्ञापिते च । * । वाताय कपिला विद्युत् । हितयोगे च । ॐ । ब्राह्मणाय हितम् । क्रियार्थो—

परीति, परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम्, साधकतमम् की अनुवृत्ति है। परिक्रयण पद का निर्वचन-नियतकालं भृत्या स्वीकरणम् । तो यह अर्थ होगा, नियत समय तक भृत्यत्वेन जो स्वीकरण है, अर्थात् "तुमे एतद्द्रव्य से एतत्कालपर्यन्त हमारे भृत्य होकर रहना होगा" यह स्वीकार कराना-भृत्यत्वेन तत्समय पर्यन्त खरीदना परिक्रयण है, उस परिक्रयण में जो साधकतम है वह संप्रदान संज्ञक विकल्प से हो, जहां संप्रदान संज्ञा हुई वहाँ संप्रदानत्वात् चतुर्थी । पक्ष में साधकतमं करणम्, कर्तृकरणयोस्तृतीया । शताय, शतेन वा परिक्रीतः । सौ रुपयों में एक मास का नौकर । तादर्थ्ये इति । तादर्थ्य में चतुर्थी हो, जैसे मुक्तये हरिं भजति । हरि का भजन करता है, किस लिये, इस आकांक्षा में मुक्ति अर्थ है, अतः मुक्ति शब्द से चतुर्थी हो गई । मुक्तये हरिं भजति । कॢपिति । कॢप्धातु के योग में संपद्यमान अर्थ में संपद्यमान से चतुर्थी विभक्ति हो, भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, ज्ञानत्वेन परिणमते । अतः संपद्यमान ज्ञान से चतुर्थी हो गई । संपद्यते जायते इत्यादि अर्थ में भी ज्ञान से चतुर्थी होगी । उत्पातेनेति । उत्पात से जो ज्ञापित-बताया जाय उस से भी चतुर्थी हो । कपिला विद्युत् वाताय । सफेद विद्युत—अशुभ सूचक आकस्मिक उत्पात है, उस से ज्ञापित उग्रवात है अतः उससे चतुर्थी हुई । "वाताय कपिला विद्युत् आतपायातिलोहिता । पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय शिता भवेत्" इति । हितयोगे च । हित शब्द के योग में चतुर्थी हो । ब्राह्मण का हित शब्द से संबन्ध है, अतः ब्राह्मण शब्द से चतुर्थी हुई । ब्राह्मणाय हितम् ।

पपदस्य च कर्मणि स्थानिनः । १ । ४ । १४ । क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्त तस्य स्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य तुमुनः कर्मणि चतुर्थी स्यात् । फलेभ्यो याति । फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः । नमस्कुर्मो नृसिंहाय । नृसिंहमनुकूलयितुमित्यर्थः । एवं स्वयम्भुवे नमस्कृत्येत्वादि । तुमर्थाच्च भाववचनात् । १ । ४ । १५ । यागाय याति । यष्टुं यातीत्यर्थः । नमः

क्रियार्थेति । क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः । क्रिया अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा क्रियार्था । क्रियार्था-क्या ? इस आकांक्षा में विशेष्य-पद का अध्याहार होगा । तो यह अर्थ होगा, क्रियार्था क्रिया, उपपदम् उपोच्चारितं पदं यस्य तस्य क्रियार्थोपपदस्य यह तुमुन् का विशेषण है। स्थानिनः इति । स्थानं-प्रसङ्गः, अस्यास्तीति स्थानी तस्य । यह भी तुमुन् का विशेषण है । प्रसङ्ग हो अर्थात् प्रयुज्यमान न हो, तो यह फलितार्थ होगा, क्रियार्थक जो क्रिया वह जिसके उपपद, और अप्रयुज्यमान-स्वरूपतः जिसका प्रयोग नहीं हुआ हो, ऐसा जो तुमुन् उसके कर्म कारक में चतुर्थी हो । उदाहरण—फलेभ्यो याति, यहाँ फलाहरण क्रिया तदर्थ क्रिया गम्यमान-यान क्रिया, तद्वाचक उपपद आहर्तुम् यह अध्याहार लभ्य है, अतः एव स्वरूपतः अप्रयुज्यमान है, उस तुमुनर्थक क्रिया के प्रति फल कर्म है अतः कर्मत्वात् द्वितीया प्राप्त थी, उसको बाधकर कर्म में चतुर्थी हुई । फलेभ्यो याति । फलानि आहर्तुं यातीत्यर्थः । एवम्-नमस्कुर्मो नृसिंहाय, नृसिंहम् अनुकूलयितुम्, यहां नृसिंहाय में द्वितीया प्राप्त थी चतुर्थी हुई । प्रक्रिया पूर्ववत् है। नमः के योग में चतुर्थी सिद्ध थी, परंतु द्वितीया उसका बाधक है। एवं स्वयंभुवे नमस्कृत्य गच्छति इत्यादि जानना ।

तुमर्थेति । तुमर्थाच्च भाववचनात्, तुमुनः अर्थ इव अर्थो यस्येति, तस्मात् । उच्यते अनेनेति वचनः-भावः क्रिया । भावस्य वचनः/ क्रिया वचनः । तस्मात्, यहां 'अव्ययकृतो भावे' इससे तुमुन् प्रत्यय का भाव में ही विधान है, तो तुमर्थक प्रत्यय का भाववचनत्व सिद्ध

स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च। २। ३। १६। हरये नमः। उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी। ॐ। नमस्करोति देवान्। प्रजाभ्यः स्वस्ति, अग्नये स्वाहा, पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन। दैत्येभ्यो हरिरलम्। प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि। प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि साधुः। यथा प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्येत्यादि। वषट् इन्द्राय। चकारग्रहणात् परामपि 'चतुर्थी चाशिषीति' षष्ठीं बाधते। स्वस्ति

था फिर भाववचन ग्रहण जो किया है वह सूत्र विशेष परिग्रहणार्थ है। तो भावे के अधिकार में विहित जो घञादिक प्रत्यय हैं वे क्रियार्थक क्रिया उपपद माने जायँगे। तो यह तात्पर्यार्थ है। भाववचनाश्च इससे विहित जो घञ् तदन्त शब्द से चतुर्थी हो। याग यहां यज् धातु घञ्। अत उपधायाः। चजोः कुघिण्यतोः। यागः, यागाय याति। यष्टुं याति। याग यहां भावे के अधिकार में घञ् है, तदन्त याग से चतुर्थी हो गयी। यागाय याति।

नम इति। नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलं वषट् इन शब्दों के योग होने पर चतुर्थी विभक्ति हो, अर्थात् जिससे योग होगा उस युक्त से चतुर्थी होगी। हरये नमः। नमः के योग में हरि शब्द से चतुर्थी। नमस्करोति देवान् यहाँ देव शब्द से नमस् का योग है अतः चतुर्थी प्राप्त थी, 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी। पदान्तर योगनिमित्तिका जो विभक्ति वह उपपद विभक्ति है। तदपेक्षया कारक विभक्ति बलिष्ठ है, यह वार्तिक है, भाष्योक्त वचन है यह अन्य मानते हैं। अन्तरङ्ग परिभाषा से ही वार्तिक गतार्थ है यह कोई मानते हैं अस्तु, यहाँ पदान्तर योगनिमित्तक चतुर्थी से कर्मकारक—द्वितीया बलिष्ठ है अतः द्वितीया होगी। नमस्करोति देवान्, उदाहरण सुगम है, सूत्रोक्त अलम् पद पर्याप्त्यर्थक है अतः पर्याप्त वाचक के योग में भी चतुर्थी होगी। दैत्येभ्यो हरिः अलम्, प्रभुः, समर्थः, शक्तः इत्यादि, प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः यहाँ भुवनत्रय से षष्ठी नहीं होगी

गोभ्यो भूयात् **मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु । २ । ३ । १७ ।** न त्वां तृणं मन्ये, तृणाय वा । श्यना निर्देशात्तनादियोगे, न त्वां तृणं मन्वे । अप्राणिष्वित्यपनीय, नौकाकान्नशुकशृगालवर्ज्येष्विति वाच्यम् ॥ न त्वां शुने मन्ये, इत्यत्र प्राणित्वेऽपि भवत्येव । न त्वां नावमन्नं वा

अतः प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि । प्रभु इत्यादि के योग में षष्ठी भी होती है अतः षष्ठी होगी । स्वस्ति गोभ्यो भूयात्, यहाँ क्तिसंज्ञक आशिष अर्थ में लिङ् है । अतः चतुर्थी चाशिष्या०' सूत्र से विकल्पेन षष्ठी क्यों नहीं ? नमः स्वस्ति सूत्र में जो चकार है वह पुनः चतुर्थी विधानार्थ है, इस लिये चतुर्थी चाशिष्या० से पर भी वैकल्पिक षष्ठी है, उसको पुनर्विधानसामर्थ्य से वाध लेगा ।

मन्येति, मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु । मन् धातु के कर्म में अनादर अर्थ में विकल्प से चतुर्थी हो, अप्राणिषु, प्राणि में नहीं अर्थात् प्राणिवर्ज्य में हो । विभाषा ग्रहण है, अतः पक्ष में द्वितीया होगी। न त्वां तृणं मन्ये, मै निःसार तुमे तृण के बरावर भी नहीं मानता तृणाय वा । यहाँ अपिशब्द गम्य है, तृणशब्द तृणसदृश में लाक्षणिक है । अन्यथा तृणं न मन्ये किन्तु शक्तिशालिनं राजानं मन्ये, विना अपि शब्द के अनादर अर्थ की प्रतोति नहीं होगी, यहाँ मन्य यह श्यन् प्रत्यय का निर्देश है, अतः तनादि में चतुर्थी नही होगी । न त्वां तृणं मन्वे । वार्तिककार कहते हैं कि--सभी अप्राणी नहीं लेना, किंतु अप्राणिषु के स्थान पर 'नौकाकान्नशुकशृगालवर्ज्येष्विति वाच्यम्। तीन प्राणी; काक शुक शृगाल, इनके अतिरिक्त अन्य प्राणी के योग में भी विकल्प से द्वितीया चतुर्थी होगी, और नौ, अन्न इन दो के योग में अप्राणी होते हुए भी चतुर्थी नहीं होगी, यथा न त्वां शुनं शुने वा मन्ये, यहाँ श्वन् प्राणी है तव भी चतुर्थी हो जायगी, क्यों कि उक्त तीन प्राणियों में नहीं है, और न त्वां नावम्, अन्नं वा मन्ये यहां नौ, अन्न अप्राणी हैं, तव भी चतुर्थी नहीं होगी, क्यों कि उक्त वार्तिक में पठित हैं ।

मन्ये। इत्यत्र अप्राणित्वेऽपि न चतुर्थी। **गत्यर्थकर्मणि द्वितीया-चतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि। २। ३। १२।** ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति चेष्टया अभावान्नेह मनसा हरिं भजति। गन्त्राधिष्ठितेऽध्वन्येवायं निषेधः पन्थानं गच्छति। यदा तूत्पथात्पन्था एवाक्रमितुमिष्यते तदा चतुर्थी

गत्यर्थेति। गत्यर्थकर्मणि द्वितीया चतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि। अनध्वनि-यह गत्यर्थ कर्मणि का विशेषण है, तो यह अर्थ होगा, अध्व-भिन्न गत्यर्थक धातु का जो कर्म है उस में द्वितीया-चतुर्थी हों। चेष्टा मे, चेष्टा-शरीर का परिस्पन्द, चलना फिरना आदि, ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति, यहां गत्यर्थक गम् धातु का कर्म ग्राम. है, उससे द्वितीया चतुर्थी हो गयी, और जहां चेष्टा नहीं है वहाँ चतुर्थी नही होगी, मनसा हरिं व्रजति, मनसा गमन में शरीर परिस्पन्द नहीं है, गन्त्राधिष्ठिते इति। यहाँ। आस्थितप्रतिषेधो वक्तव्यः* यह वार्तिक है, इसी का तात्पर्यार्थ है। 'गन्त्राधिष्ठितेष्वेवायं निषेधः'। गन्ता से अधिष्ठित जो अध्वा-मार्ग है उसी में अनध्वनि यह निषेध लगैगा, अर्थात् गन्त्राधिष्ठित में अनध्वनि निषेध लगैगा, पन्थानं गच्छति। यहां गन्ता से मार्ग आस्थित है, अतः अनध्वनि निषेध होने से चतुर्थी नहीं होगी, और जहाँ गन्ता से आस्थित अधिष्ठित नहीं है वहाँ अनध्वनि निषेध नहीं करैगा, जैसे उत्पथन पथे पन्थानं वा गच्छति, यहाँ गन्ता से अधिष्ठित नही है, किन्तु उन्मार्ग से मार्ग को जा रहा है, अतः द्वितीया चतुर्थी दोनों होगी।

(१) जुगुप्सा विराम प्रमाद में वस्तुतः विश्लेष नहीं है। बुद्धिकृत अपादानत्व का ग्रहण नहीं होता है। अत एव वृश्चिक भियः में वृश्चिक शब्द का बुद्धिकृत अपादानत्व न होने से यण् नहीं हुआ। और भी अकथितं च सूत्र में 'बलिं याचते वसुधाम्', मे बलि से प्राप्त पञ्चमी का निराकरण करते हुये भाष्यकार कहते हैं, नहि याचनादेव अपायो भवति। तो यहां बौद्ध अपादानत्व कैसे हो सकता है अतः अप्राप्त अपादान संज्ञा का वार्तिक से विधान है।

भवत्येव। उत्पथेन पथे पन्थानं वा गच्छति। **ध्रुवमपायेऽपादानम्** । १ । ४ । २४ । विश्लेषे अवधिभूतं कारकमपादानसंज्ञं स्यात्। **अपादाने पञ्चमी** । २ । ३ । २८ । ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात्पतति। जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् । *। पापाज्जुगुप्सते, विरमति।

ध्रुवमिति। ध्रुवमपायेऽपादानम्, अपायो नाम विश्लेषः। विश्लेष में अर्थात् पृथग् भवन में जो ध्रुव अवधिभूत अर्थात् जिससे विश्लेष होना है, वह कारक अपादान संज्ञक हो।

अपादान इति। अपादाने पञ्चमी। अपादान संज्ञक में पञ्चमी हो। गामात् आयाति, आगन्ता देवदत्त का ग्राम से विश्लेष है अतः अवधिभूत ग्राम की अपादान संज्ञा, अपादानत्वात्पञ्चमी, ग्रामात् आयाति। ध्रुव पद से स्थिर-निश्चल अर्थ नहीं लेना एतदर्थ दूसरा उदाहरण देते हैं। धावतोऽश्वात् पतति, दौड़ते हुये घोड़े से गिरता है, यहाँ धावतः विशेषण से निश्चलत्व स्थिराभाव सिद्ध है, परन्तु अवधि भूत अश्व है। अतः अश्व से पञ्चमी, तद्विशेषण धावतः से भी पञ्चमी। जुगुप्सेति। विराम-प्रमादार्थक धातुओं के योग में जुगुप्सादि का जो विषयभूत हैं वह अपादान संज्ञक हो, अपादानत्वात् पञ्चमी, पापात्, जुगुप्सते पापसे जुगुप्सा करता है। एवं पापात् विरमति। पाप से विराम करता है, धर्मात् प्रमाद्यति, प्रमादोऽनवधानता' धर्म से प्रमाद करता है।

टिप्पणी—(२) वारणार्थक धातु के योग में ईप्सित की अपादान संज्ञा होती है। तो अग्नेः माणवकं वारयति' यहां अग्नि की अपादान संज्ञा कैसे ? क्यों कि अग्नि ईप्सित नहीं है। समाधान—इष्टत्व भ्रान्ति से माणवक प्रवृत्त है, वह स्पर्श फलमात्र के लिये प्रवृत्त है, उसका पिता उसको वारण करता है, अर्थात् तत्प्रवृत्ति से विमुख करता है, यह उक्त वाक्य का अर्थ है। यहां वारयिता को इष्टतम माणवक है अतः उसकी कर्म संज्ञा और माणवक को यद्यपि अग्नि इष्ट तम है परन्तु वारण क्रियेप्सिततम माणवक को स्पर्श क्रिया से इष्टतम अग्नि है। परन्तु वारयिता को ईप्सित मात्र है, अतः अपादान संज्ञा हो जायगी। विस्तर भयान्नाधिकमुच्यते।

धर्मात्प्रमाद्यति । **भीत्रार्थानां भयहेतुः । १ । ४ । ३५** । चोराद् बिभेति चोरात् त्रायते । **पराजेरसोढः । १ । ४ । २६** । अध्ययनात्पराजयते, ग्लायतीत्यर्थः । **वारणार्थानामीप्सितः । १ । ४ । २७** । प्रवृत्तिविघातो वारणम् । यवेभ्यो गां वारयति । **अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति ।१।४।२८।** व्यवधाने सति यत्कर्तृकस्यात्मनो दर्शनस्याभावमिच्छति तदपादानं स्यात् । मातुर्निलीयते कृष्णः । **आख्यातोपयोगे ।१।४।२९।**

भीत्रार्थेति, भीत्रार्थानां भयहेतुः । भयार्थक त्राणार्थक धातुओं के योग में जो भयका हेतु है वह अपादान संज्ञक हो, चौराद् बिभेति, चौरात् त्रायते, उभयत्र भयका हेतु चोर है अतः चोर की अपादान संज्ञा, अपादानत्वात्पञ्चमी ।

पराजेरिति पराजेरसोढः । परा पूर्वक जि धातु के योगे में जो असह्य-सोढुम् अशक्य अर्थ है वह अपादान संज्ञक हो । अध्ययनात् पराजयते, अध्ययन से पराजित होता है । अर्थात् ग्लायति, ग्लान-दुःखी होता है, यह ग्लान होना असह्यताका सूचक है, वारणेति, वारणार्थानामीप्सितः । प्रवृत्तिविघातो वारणम् वारणार्थक धातुओं के योग होने पर जो ईप्सित अर्थ है वह अपादान संज्ञक हो, यवेभ्यो गां वारयति, यवों से गौ का वारण करता है, मेरे ईप्सितयवों का विघात न हो, इसलिये गौ को रोकता है । यहाँ ईप्सित यव हैं इसकी अपादान संज्ञा, अपादानत्वात् पञ्चमी ।

अन्तर्धाविति । अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति । अन्तर्धौ का निर्वचन-व्यवधान होने पर अर्थात् व्यवधान द्वारा, जिससे अपने दर्शनाभाव की इच्छा करता हो वह अपादान संज्ञक हो । मातुर्निलीयते कृष्णः । यहाँ कृष्ण निलयन अन्तर्धान द्वारा माता से अपने दर्शनाभाव की इच्छा करता है अतः मातृ शब्द की अपादान संज्ञा, अपादानत्वात् पञ्चमी ।

आख्यातेति । आख्यातोपयोगे । आख्याता-उपयोगे । आद् गुणः । उपयोग का अर्थ है नियमपूर्वक विद्या का स्वीकार इसमें, आख्याता-

नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ता प्राक्संज्ञः स्यात्। उपाध्यायादधीते। **जनिकर्तुः प्रकृतिः। १। ४। ३०।** जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात्। ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते। **भुवः प्रभवः। १। ४। ३१।** भवनं भूः। भूकर्तुः प्रभवस्तथा। हिमवतो गङ्गा प्रभवति। तत्र प्रकाशत इत्यर्थः। ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च। ॐ। प्रसादात्प्रेक्षते, आसनात्प्रेक्षते।

वक्ता अपादान संज्ञक हो। उपाध्यायात् अधीते, उपाध्याय से नियमपूर्वक पढ़ता है, अतः आख्याता उपाध्याय की अपादान संज्ञा, अपादानत्वात् पञ्चमी।

जनीति, जनिकर्तुः प्रकृतिः। जनेः कर्तुः जनिकर्तुः। प्रकृतिः हेतुः। उपादानं कारणम्। जनि-उत्पत्ति के कर्त्ता की प्रकृति--आदि कारण अर्थात् उपादान कारण, वह अपादान संज्ञक हो। ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते। यहाँ जनि कर्ता प्रजाः है उसकी प्रकृति-उपादान कारणस्वरूप ब्रह्म, है उसकी अपादान संज्ञा, अपादानत्वात् पञ्चमी। ब्रह्मणः। ब्रह्म से प्रजा उत्पन्न होती हैं।

भुव इति। भुवः प्रभवः। भवनं भूः तस्य, जनिकर्तुः से कर्तुः पदकी अनुवृत्ति है, तो यह अर्थ होगा। उत्पादन कर्ता का जो प्रभव है, प्रथम प्रकाशस्थान वह अपादान संज्ञक हो। भूभृतः गङ्गा अवतरति। उत्पत्ति की कर्त्री गङ्गा है, उनका प्रभव प्रथम प्रकाशस्थान भूभृत् है उसकी अपादान संज्ञा, फिर पञ्चमी। भूभृतोऽवतरति गङ्गा। प्रथमं तत्र प्रकाशते इत्यर्थः।

ल्यबिति। ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च। ल्यप् का लोप होने पर अर्थात् ल्यबन्त के अप्रयोग में गम्यमान ल्यबन्त का जो कर्म अथवा अधिकरण उसमें पञ्चमी हो। प्रासादात् प्रेक्षते, प्रासादमारुह्येत्यर्थः। प्रासाद से प्रेक्षण असंभव है, अतः ल्यबन्त आरुह्य की प्रतीति होगी ल्यबन्त आरोहण का अधिकरण प्रासाद है उससे पञ्चमी हो गई। प्रासाद पर चढ़कर देखता है। एवम् आसनात् प्रेक्षते। उपविश्य ल्यबन्त के अप्रयोग होने पर भी तदर्थावगति संगत्यर्थ ल्यबन्त उपविश्य

प्रासादमारुह्य, आसने उपविश्य च प्रेक्षते इत्यर्थः। श्वशुराज्जिह्रेति। श्वशुरं वीक्ष्य जिह्रेतीत्यर्थः। गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम्। कस्मात् त्वम्, नद्याः। यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी, तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ कालात्सप्तमी च वक्तव्या। *। वनाद्

की प्रतीति है, उसका अधिकरण आसन है उससे पञ्चमी हुई। आसनात्। आसन पर बैठकर देखता है। एवम्, श्वशुरात् जिह्रेति। अकारणिक लज्जा असंगत होकर वीक्ष्य ल्यबन्त की अवगति है। उस वीक्ष्य ल्यबन्त का कर्म श्वशुर है उससे पञ्चमी हो गयी। श्वशुर को देखकर लज्जा करती है।

गम्येति। गम्यमान-प्रकरणवश से प्रतीयमान भी क्रिया कारक विभक्तियों का निमित्त होती है। आगत परिचित मित्र से पूछता है; कस्मात् त्वम्? 'आगतः' प्रकरण से प्रश्न से प्रतीयमान है, अतः किं शब्द वाच्य स्थान, विश्लेषावधि है अतः किं शब्द से और तदुत्तर में प्रयुक्त नदी शब्द से पञ्चमी होगी। कस्मात् त्वम् आगतः, इति गम्यते। एवम् उत्तर में भी। नद्याः। आगतोऽस्मीति गम्यते। प्रश्न कहां से 'आये हो' यह गम्यमान है। एवम्, नद्याः, नदी से, 'आये हैं', यह गम्यमान है। यतश्चेति। जिस अवधि से अध्वा अथवा काल-समय का निर्माण इयत्ता प्रतीयमान हो उससे पंचमी हों, और उस पंचम्यन्त से युक्त अध्ववाचक से प्रथमा और सप्तमी हो, यह द्वितीय वाक्य है, और पुनः तद्युक्तात् का अध्याहार है पंचम्यन्त से युक्त काल वाचक से केवल सप्तमी हो, जैसे—वनात् ग्रामो योजनम्, योजने वा। यहाँ अध्व की इयत्ता किस अवधि से गम्यमान है? वन से, अतः वन से पञ्चमी हुई और तद्युक्त-उस पञ्चम्यन्त से युक्त अध्ववाचक योजन से, प्रथमा, योजनम्, और योजने सप्तमी हुई। एवं तृतीय वाक्य का उदाहरण—कार्तिक्या आग्रहायणी मासे। पूर्ववाक्य से कार्तिक्याः यहां पञ्चमी, और काल वाचक मास से सप्तमी हुई। कार्तिक्याः मासे

ग्रामो योजनं योजने वा। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे। **अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते।२।३।२९।** अन्य इत्यर्थग्रहणम्, इतरग्रहणं प्रपञ्चार्थम्। अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्। आराद् वनात्, ऋते कृष्णात् पूर्वो ग्रामात्। दिशि दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः। तेन, संप्रति देशकालवृत्तिना योगेऽपि भवति। चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः। अवयववाचियोगे तु न। पूर्वं कायस्य। प्राक् प्रत्यग् वा ग्रामात्। आच् दक्षिणा

आग्रहायणी, कार्तिकी से महिना के अनन्तर–बाद आग्रहायणी होगी।

अन्येति। अन्य,–आरात्, इतर, ऋते, दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद आच्, आहि इनसे योग होने पर युज्यमान से अर्थात् जिससे योग है उससे पञ्चमी हो। अन्य यह अन्यार्थक का ग्राहक है। भाष्यादि व्याख्यान प्रयोगों से। अतः अन्यार्थकत्वेन इतर का ग्रहण हो जायगा, पुनः सूत्र में इतर ग्रहण क्यों? उत्तर–प्रपञ्चार्थ-विस्तार पूर्वक प्रतिपत्ति के लिये है। कृष्णात् अन्यः–भिन्नः यह अन्यार्थक है। कृष्ण से भिन्न अन्यार्थक है। आरात् के योग में वन से पञ्चमी। आरात् दूरसमीपयोः वन के दूर अथवा वन के समीप। ऋते कृष्णात् सुखं नास्ति। ऋते एकारान्त अव्यय वर्जन अर्थ में हैं। कृष्णं वर्जयित्वा सुखं नास्तीति तदर्थः। दिक्शब्द–पूर्वो ग्रामात्। ग्राम से पूर्व दिशा का ग्राम। प्रश्न होता है कि–'चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः' यहाँ दिग् वाचक शब्द नहीं है, किन्तु काल वाचक है, तो इसके योग में चैत्र शब्द से पंचमी कैसे? उत्तर। दिग् शब्द से दिशि दृष्टः शब्दः दिक् शब्दः। दिशा के अर्थ में देखा गया हो वह दिक् शब्द। रूढि से पूर्वादिक शब्द दिग्विशेष के वाचक हैं अतः उनका ग्रहण है। परंतु कभी दिग्वाचक पूर्वादिक शब्दों का काल वाचक के योग होने में भी पंचमी होती है। यहाँ चैत्र माससे फाल्गुन मास पूर्व है, यहां-समयवाचक पूर्व-प्रथम है, तव भी चैत्र शब्द से पंचमी हुई। प्रश्न है तो शरीरावयववाची पूर्व शब्द के योग में 'पूर्व कायस्य' यहाँ काय शब्द से पञ्चमी हो जायगी। 'पूर्वं कायस्य' का अर्थ। शरीरस्य पूर्वावयवः। काय-देह का पूर्वावयव, उत्तर अवयववाचि

ग्रामात् । आहि-दक्षिणाहि ग्रामात् । भाष्यप्रयोगात्प्रभृतियोगेऽपि पञ्चमी भवात्प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः । अपपरिबहिरिति समासविधानाज्ज्ञापकाद् बहिर्योगे पञ्चमी ग्रामाद् बहिः । अपपरी वर्जने १ । ४

योगे तु न' । अवयव वाचक के योग में पञ्चमी नहीं होती । यह सूत्र निर्देश सिद्ध वचन है । तस्य परम्-आम्रेडितम् सूत्र । तस्य द्विरुक्तस्य परम् परावयव:, यहां तस्य–यह, परावयवात्मक परम् के योग होने पर षष्ठी की है, पञ्चमी नही । इससे सिद्ध है, अवयववाचि योगे तु न' पुनः प्रश्न होता है, अञ्चूत्तरपद प्राक् प्रत्यक् दक्षिणाहि इत्यादिक भी दिक् शब्द हैं फिर अञ्चूत्तर पदादि ग्रहण क्यों ? उत्तर-परत्वात् षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन से प्राप्त षष्ठी के बाध के लिये है । प्राक्, प्रत्यग् वा ग्रामात् । अञ्चूत्तरपद प्राक्, प्रत्यक् के योग में ग्राम से पञ्चमी है, आच, दक्षिणा ग्रामात् । आहि-दक्षिणाहि ग्रामात् । ग्रामावधिक दक्षिण दिशा में । आच् आहि प्रत्ययान्त दक्षिण शब्द के योग में ग्राम से पञ्चमी । पुनः प्रश्न होता है । 'भवात् प्रभृति हरिः सेव्यः' यहां प्रभृति के योग में भव शब्द से पञ्चमी कैसे ? क्यों कि प्रभृति शब्द अन्यादिक में नहीं है।

उत्तर—भाष्यकार अपादाने पञ्चमी सूत्र की व्याख्या करते हुये यतश्चाध्वकालनिर्माणम् का खण्डन करते हुए, कहा 'इदमत्र प्रोक्तव्यं सत्र प्रयुज्यते, कार्तिक्याः प्रभृति आग्रहायणी मासे' इत्युक्तम् । प्रभृति शब्दाभावेऽपि तदर्थ सत्तया पञ्चमी सिद्धा" इति । इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि—"प्रभृत्यर्थकयोगे पञ्चमी" प्रभृत्यर्थक के योग में पंचमी होती है इस भाष्य वचन से प्रभृति के योग में पंचमी हो जायगी । अपपरीति बहिर् पद के योग में भी पंचमी होती है । ग्रामाद् बहिः' इसमें प्रमाण—यदि बहिर् के योग में पंचमी नहीं होती, तो 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्याः' इससे बहिर् योग में समास का विधान कैसे हो सकता, इससे जानते हैं बहिर् योग में पंचमी होती है । ग्रामात् बहिरस्ति मन्दिरम् ।

अपपरी इति । अर्थ स्पष्ट है । 'कर्मप्रवचनीयाः' का अधिकार है । वर्जन अर्थ में अप और परि कर्मप्रवचनीय संज्ञक हों ।

८८। एतौ कर्मप्रवचनीयौ स्तः। **आङ्मर्यादावचने १।४।८९।** वचनमभिविधिः। **पञ्चम्यपाङ्परिभिः २।३।१०।** एतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी स्यात्, अपहरेः परिहरेः संसारः। लक्षणादौ तु हरिं परि। आ मुक्तेः संसारः। आ सकलाद् ब्रह्म। **प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः १।४।९२।** उक्तसंज्ञः स्यात्। **प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ।२।३।११** पञ्चमी स्यात्।

आङिति। मर्यादा—और वचन, अर्थात् अभिविधि अर्थ में आङ् कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो।

पञ्चम्यपाङिति। कर्मप्रवचनीय संज्ञक अप आङ् परि के योग में पंचमी हो। अपहरेः संसारः। संसार—जन्म मरणात्मक संसरणशील, हरि को छोड़कर है, और वर्जन अर्थ से अतिरिक्त लक्षणादिक मे, लक्षणेत्थंभूताख्यान से द्वितीया। हरिं परि। यहां भी पंचमी क्यों नहीं? अप के साहचर्य से वर्जन अर्थ में ही पंचमी होगी। लक्षणादिक में नहीं। आङ् का उदाहरण—आमुक्तेः संसारः, मुक्तिं मर्यादीकृत्य मुक्ति पर्यन्त संसार है। अभिविधि में, आसकलात् ब्रह्म। सर्वम् अभिव्याप्य ब्रह्म वर्तते। सबको अभिव्याप्त ब्रह्म है। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानाऽस्ति किंचन' इत्यादि।

प्रतिरिति। प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थ में 'प्रति' कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो।

प्रतिनिधीति। जिसके प्रतिनिधि अथवा प्रतिदान हो उस कर्मप्रवचनीय संज्ञक से जो युक्त है उससे पंचमी हो। प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति। कृष्णस्य प्रतिनिधिः। यहाँ प्रतिनिधि अर्थ में प्रति है, अतः उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा और उसका किससे योग है, कृष्ण से तो कृष्ण से पंचमी हुई। प्रतिदानम् ऋणत्वेन दत्तस्य प्रतिनिर्यातनम्। ऋण दिये हुये के बदले में जो हो अर्थात् दिये हुए ऋण के बदले में ऋण चुकाने में ऋण निर्मुक्त होने में जो दिया जाय वह प्रतिदान कहाता है। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्। यहां ऋणत्वेन गृहीत तिल को चुकाने के लिये माष देता है। यहां प्रतिदान अर्थ में प्रति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है,

प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्। अकर्तर्यृणे पञ्चमी २। ३। २४। शताद् बद्धः, कर्तरि शतेन बन्धितः। विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्। २। ३। २५। जाड्याज्जाड्येन वा बद्धः। विभाषेति योगविभागादगुणे स्त्रियां च क्वचित्। धूमादग्निमान्। नास्ति घटोऽनुपलब्धेः। पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्। २। ३। ३२ एभिर्योगे तृतीया स्यात्, पञ्चमीद्वितीये च। पृथक् रामेण, रामाद्, रामं

और उसका तिलों से योग है अतः तिल से पंचमी हुई। तिलों के प्रति अर्थात् तिल ऋण से निर्मुक्त होने के लिए माष उड़द देता है।

अकर्तरीति। हेतौ सूत्र की अनुवृत्ति। अकर्तरि ऋणे पंचमी। कर्तृ भिन्न ऋण हेतु वाचक से पंचमी हो। शतात् बद्धः, शत शब्द कर्तृ भिन्न ऋणत्वेन हेतुभूत बद्धः का हेतु है अतः पंचमी हुई। शताद् बद्धः। ऋणत्वेन गृहीत सौ रुपयों से बद्ध। चैत्रः मैत्रम् अभांत्सीत्। ऋणत्वेन गृहीतं शतं प्रैरिरत्। इति शतं चैत्रेण मैत्रम् अबीबधत्। कर्म में क्त प्रत्यय करने पर शतेन चैत्रेण मैत्रो बन्धितः। यहाँ शत कर्ता है, अतः कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया होगी। पंचमी नहीं होगी।

विभाषेति। स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर हेतुत्वेन विद्यमान गुणवाचक शब्द से पंचमी विकल्प से हो। जाड्य-जड़ता गुणवाचक हेतु है अतः पंचमी हुई, पक्ष में तृतीया। जाड्यात्, जाड्येन वा बद्धः। उक्त सूत्र में 'विभाषा' पद पृथक् करके और उसमें हेतौ की अनुवृत्ति करेंगे, स्त्रियां विद्यमानात् अगुणवाचकाच्च हेतौ तृतीयापंचम्यौ स्तः। स्त्रीलिंग में विद्यमान से भी और गुणवाचक न होने पर भी हेतु वाचक से कहीं पर विकल्पेन तृतीया पंचमी होती हैं। वह्निमान् धूमात्, धूम गुण वाचक नहीं है। एवं नास्ति घटः अनुपलब्धेः। अनुपलब्धि यह क्ति प्रत्ययान्त क्रियावाचक स्त्रीलिंग है। पक्ष में तृतीया होगी, धूमेन इत्यादि।

पृथगिति। पृथक्-विना-नाना, इनसे योग होने पर तृतीया विकल्प से होती है, अन्यतरसां ग्रहण सामर्थ्य से अनुवर्त्यमान द्वितीया पंचमी

-वा। एवं विना नाना। **करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य** ।२।३।१३। एभ्योऽद्रव्यवचनेभ्यः करणे तृतीयापञ्चम्यौ स्तः। स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्तः। **दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च** ।२।३।३५। चात्पञ्चमीतृतीये। ग्रामस्य दूरं दूरात् दूरेण वा। अन्तिकं अन्तिकात् अन्तिकेन वा। **षष्ठी शेषे**। २।३।५०। राज्ञः पुरुषः। कर्मादीनां सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव। सतां गतम्। सर्पिषो जानीते, मातुः स्मरति, एधो

दोनों होती है। पृथक् रामेण, रामात्, रामं वा। इसी प्रकार विना नाना के योग में भी। रामेण विना सुखं नास्ति।

करणे इति। असत्त्व वचन-अर्थात् अद्रव्यवाचक-स्तोक, अल्प, कृच्छ्र, कतिपय, इनसे करण में पंचमी विकल्प से हो, पक्ष में कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया होगी। स्तोकेन, स्तोकाद् वा आयासेन मुक्तः। स्वल्प आयास से छूट गया। यदि द्रव्यवाचक स्तोकादिक होंगे तो पंचमी नहीं होगी, करणत्वात् तृतीया ही होगी। स्तोकेन विषेण हतः। विष द्रव्य है।

दूरेति। दूरार्थक-अन्तिकार्थक से द्वितीया हो, चकार ग्रहण से अनुवर्त्यमान पंचमी तृतीया भी हो। ग्रामस्य दूरं दूरात् दूरेण वा, अन्तिकम् अन्तिकात् अन्तिकेन वा। प्रातिपदिक से ही होगी, यह व्याख्यान-भाष्यादि संमति से जानना।

षष्ठीति। शेष में षष्ठी हो। शेष-अवशेष अर्थात् प्रातिपदिकार्थ कर्म कर्तृकरण आदि से जो अवशिष्ट स्वस्वामिभावादि संबन्ध उसमें षष्ठी हो। राज्ञः पुरुषः। राजा और पुरुष का स्वस्वामिभाव संबन्ध है, अतः संबन्ध में षष्ठी। राजसम्बन्धी पुरुष, यह अर्थ होगा। कर्मादीनामिति। कर्मादिकों की अर्थात् कर्म, करण, संप्रदान आदि की कर्मत्वेन रूपेण नहीं किन्तु संबन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी ही होगी क्योंकि कर्मत्वादि से विवक्षित नहीं है, अतः शेष होने से तत्तत्सम्बन्ध में षष्ठी होगी। सतां गतम् कर्तृत्व की अविवक्षा में षष्ठी। सतां गतम्। और तद्विवक्षा में

दकस्योपस्कुरुते। भजे शम्भोश्चरणयोः। फलानां तृप्तः। **षष्ठी हेतुप्रयोगे** ।२।३।२६। हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ द्योत्ये च षष्ठी स्यात्। अन्नस्य हेतोर्वसति। **सर्वनाम्नस्तृतीया च** ।२।३।२७। केन हेतुना वसति, कस्य हेतोर्वा। निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम् ।*। किं निमित्तं वसति, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्तायेत्यादि। एवं किं कारणम्, को हेतुः। किं प्रयोजनमित्यादि। प्रायग्रहणादसर्वनाम्नः प्रथमाद्वितीये न स्तः ।*।

कर्तृत्वेन तृतीया, सद्भिर्गतम्। करणत्व की अविवक्षा में सर्पिषो जानीते। तद्विवक्षा में सर्पिषा जानीते। एवम् कर्मत्व की अविवक्षा में मातृ शब्द से षष्ठी, मातुः स्मरति। तद्विवक्षा में मातरं स्मरति, पुनः कर्मत्व की अविवक्षा में एधः कर्तृ-दकस्य-दकम् कर्मत्वेन अविवक्षित जल वाचक शब्द से षष्ठी, एधो दकस्य उपस्कुरुते। अथवा एध अकारान्त है, सः एधो दकस्य उपस्कुरुते। शम्भोश्चरणौ भजे, कर्मत्व की अविवक्षा में षष्ठी, चरणयोः। शम्भुचरण संबन्धि भजनमित्यर्थः। एवम् करणत्व की अविवक्षा में फलानां तृप्तः। फल संबन्धिनी तृप्तिः। फलैः तृप्तः तद्विवक्षा मे।

षष्ठी हेत्विति। हेतु शब्द का प्रयोग हो और हेतु द्योत्य हो तो षष्ठी हो। अन्नस्य हेतोर्वसति, हेतोः यह हेतु शब्द का प्रयोग है और हेतु द्योत्य भी है, तो अन्न शब्द से षष्ठी हो गयी। अन्नस्य हेतोः। सर्वनाम्न इति। सर्वनाम संज्ञक और हेतु शब्द के प्रयोग होने में हेतु द्योत्य होने पर तृतीया और षष्ठी दोनों हों। चकार ग्रहण षष्ठी का समुच्चायक है। केन हेतुना, कस्य हेतोर्वा वसति। निमित्तेति। निमित्त और तत्समानार्थक अर्थात् तत्पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग होने पर प्रायः सब विभक्तियाँ होती हैं। किं निमित्तं वसति। सर्वनाम संज्ञक किम् शब्द है। यहाँ प्रथमा द्वितीया दोनों है, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, एवं तत्पर्यायभूत कारण हेतु प्रयोजन इत्यादिकों के योग में भी सर्वादिकों से सब विभक्तियाँ होंगी, किं कारणम्। को हेतुः। किं प्रयोजनम्।

ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः, ज्ञानाय निमित्तायेत्यादि। **षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन** । २ । ३ । ३० । दिक्शब्देति पञ्चम्या अपवादः। ग्रामस्य दक्षिणतः, पुरः पुरस्तात्, उपरि उपरिष्टात्। **एनपा द्वितीया** ।२।३।३१। दक्षिणेन ग्रामम्, एनपेतियोगविभागात् षष्ठ्यपि। दक्षिणेन ग्रामस्य, एवमुत्तरेण। **दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्** ।२।३।३४। पक्षे पञ्चमी। दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद् वा। **ज्ञोऽविदर्थस्य करणे** ।२।३।५१। जाना-

---

इत्यादि। प्रायग्रहणादिति। पूर्वोक्त वार्तिक में जो प्रायग्रहण किया है उसके कारण असर्वनाम से प्रथमा द्वितीया नहीं होगी। ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः। यहाँ ज्ञान शब्द असर्वनाम है अतः प्रथमा अथवा द्वितीया नहीं होगी, एवं ज्ञानाय निमित्ताय होगा।

षष्ठ्यतसिति। 'दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्' मे अतसुच् प्रत्यय कहा है। तदर्थक अर्थात् अतसुच् प्रत्ययार्थक के योग में षष्ठी हो। अन्यारादितरर्ते-दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते से प्राप्त पंचमी का अपवाद है। ग्रामस्य दक्षिणतः, दक्षिण शब्द से अतसुच् प्रत्यय है, अतसुच् प्रत्ययान्त दक्षिणतः से योग होने पर ग्राम से षष्ठी हुई, पंचमी नहीं, ग्रामस्य दक्षिणतः। एवम् ग्रामस्य पुरः। असि प्रत्यय, पूर्व को पुर आदेश। एवम ग्रामस्य पुरस्तात्। अस्ताति प्रत्यय पूर्व को पुर आदेश। ग्रामस्य उपरि। उपरिष्टात्। ऊर्ध्व शब्द से रिल् और रिष्टातिल् प्रत्यय। ऊर्ध्व शब्द को उप आदेश निपात से होगा।

टिप्पणी—बालमनोरमाकार वासुदेव और दीक्षित जी भाष्योक्त षष्ठ्यतसर्थ प्रत्ययेन से पूर्व एनपा द्वितीया है। यह मानकर कहते हैं कि 'एनपा' का पृथक् योग विभाग होने पर भी अनुवृत्ति न होने से एनवन्त के योग में षष्ठी नहीं हो सकती, अतः दक्षिणेन ग्रामस्य असाधु है। एतदसद् योग विभाग सामर्थ्य से अनुवृत्ति न होने पर भी षष्ठी का अपकर्ष हो जायगा। अतः ग्रामस्य दक्षिणेन साधु है।

तेरज्ञानार्थस्य करणे शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी स्यात्। सर्पिषो ज्ञानम्। अधीगर्थदयेशां कर्मणि ।२।३।५२। मातुः स्मरणम्, सर्पिषो दयनम्, ईशनं वा। कृञः प्रतियत्ने ।२।३।५३। कृञः कर्मणि शेषे षष्ठी

एनपेति। एनप् प्रत्ययान्त से योग होने पर द्वितीया हो। दक्षिणेन ग्रामम्, एनपा सूत्र पृथक् पढना। षष्ठी की अनुवृत्ति। एनप् प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी हो, दक्षिणेन ग्रामस्य। एवम्। उत्तरेण ग्रामम्, ग्रामस्य वा।

दूरान्तिकेति। दूरार्थक अथवा अन्तिकार्थक के योग में षष्ठी विकल्प से हो। पक्ष में अपादाने पंचमी सूत्र से मण्डूक प्लुति से पंचमी की अनुवृत्ति है। अतः पक्ष में पंचमी होगी। दूरं निकटं वा ग्रामस्य ग्रामात् वा। निकटम् अन्तिकार्थक है।

ज्ञोऽविदर्थेति। अविदर्थक अर्थात् अज्ञानार्थक ज्ञा धातु के करण में शेषत्वेन विवक्षित होने पर षष्ठी हो। 'अविदर्थक ज्ञा धातु कहा है इससे जानते हैं अन्य अर्थ भी ज्ञा धातु का है। सर्पिषो ज्ञानम्। करणीभूतं यत् सर्पिः तत्सम्बन्धिनी प्रवृत्तिः। तो यहां प्रवृत्ति अर्थ है। 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी सिद्ध ही थी फिर यह सूत्र क्यों? इससे विहित षष्ठी का 'प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते' इससे समास निषेधार्थ है। अन्यथा समास हो जायगा। इसी प्रकार अग्रिम सूत्र भी समास निषेधार्थ षष्ठी विधायक हैं।

अधीगर्थेति। अधि-पूर्वक इक् स्मरणे। 'इगर्थदयेशाम्' पढ़ना था अधि उपसर्ग का जो ग्रहण किया है इससे जानते हैं, 'इङिकावध्युपसर्गौं न व्यभिचरतः।' तो इक् धातु सदा अधि पूर्वक ही रहता है। तो यह सूत्रार्थ होगा अधीगर्थक और दय ईश, इनके योग में शेषत्वेन विवक्षित कर्म से षष्ठी हो। मातुः स्मरति। कर्मीभूत–मातृसम्बन्धि स्मरणम्। एवम् सर्पिषो दयनम् ईशनम्। कर्मीभूततत्सम्बन्धिनो दानम्, ईशनम् वा।

स्याद् गुणाधाने । एधो दकस्योपस्करणम् । **रुजार्थानां भाववचनानामज्वरे ।२।३।५४।** भावकर्तृकाणां ज्वरवर्जितानां कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात् । चौरस्य रोगस्य रुजा । अज्वरिसंताप्योरिति वाच्यम् ।*। रोगस्य चौरज्वरः चौरसंतापो वा । **आशिषि नाथः । २।३।५५।** सर्पिषो नाथनम् । **जासिनिप्रहणननाटक्राथपिषां हिंसायाम् । २।३।५६।** चौरस्योज्जासनम् । निप्रौ संहतौ विपर्यस्तौ व्यस्तौ वा । चौरस्य निप्रहणनम्, प्रणिहननम्,

---

कृञ इति । प्रतियत्न-गुण का उत्पन्न करना । शेषत्वेन विवक्षित कृञ् धातु के कर्म में षष्ठी हो । एधोदकस्योपस्करणम् । कर्मीभूतम् एधोदकसम्बन्धि उपस्करणम् ।

रुजार्थानामिति । भावकर्तृक ज्वर वर्जित रुजार्थक धातुओं के योग में शेष कर्म में षष्ठी हो । चौरस्य रोगस्य रुजा । रोगः चौरं संतापादिरुजा पीडयति । रोगकर्तृका—कर्मीभूतचौरगता संतापादि पीडा ।

अज्वरीति । रुजार्थानां सूत्र में 'अज्वरिसंताप्योः' यह कहना । अर्थात् ज्वर-संतापवर्जितानाम् रुजार्थानाम्, ज्वर संताप से रहित रुजार्थक के योग में षष्ठी हो । रोगस्य चौरज्वरः । रोगकर्तृकः कर्मीभूत चौरसम्बन्धी ज्वरः, संतापो वा । चौरस्य ज्वरः । चौरस्य संतापः । यहां उक्त सूत्र से षष्ठी नहीं है, किन्तु कर्तृकर्मणोः कृति से अथवा षष्ठी शेषे से शेष में षष्ठी है, अत एव समास हो जायगा, प्रतिपदविधाना॰ से निषेध नहीं होगा । अतः चौरज्वरः । चौरसंतापः होगा । रोग कर्तृकं चारसम्बन्धि ज्वरादिकम् ।

आशिषीति । आशीर्वादार्थक नाथ धातु के योग में शेषकर्म में षष्ठी हो । नाथ धातु याञ्चा उपताप-ऐश्वर्य आशीष अर्थ में है । सर्पिषो नाथनम् । सर्पिर्मे भूयात् । सर्पिष का आशीर्वाद । कर्मीभूत सर्पिष् सम्बन्धि आशंसन, सर्पिष् सम्बन्धि आशीर्वाद प्रार्थना । जासीति । हिंसार्थक जासि नि-प्र-पूर्वक हन्, नाट, क्राथ, पिष, इन धातुओं के योग होने पर शेषत्वेन विवक्षित कर्म में षष्ठी हो । चौरस्य उज्जासनम्, इत्यादि में सर्वत्र चोर कर्म में षष्ठी है । नि प्र संहत व्यस्त विपर्यस्त लिये जाते हैं।

निहननम्, प्रहणनं वा। चौरस्योन्नाटनम्, चौरस्य क्राथनम्, वृषलस्य पेषणम्। **व्यवहृपणोः समर्थयोः** ।२।३।५७। शतस्य व्यवहरणं पणनं वा। **दिवस्तदर्थस्य** ।२।३।५८। द्यूतार्थस्य व्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि षष्ठी स्यात्। शतस्य दीव्यति। **विभाषोपसर्गे** ।२।३।५९। शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति। **प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने** ।२।३।६१

चौरस्य निप्रहणनम्, निहननम्, प्रहणनम्। प्रणिहननम्। एवम्, चौरस्य क्राथनम्। वृषलस्य पेषणम्। इत्यादि में जानना।

व्यवेति। व्यवहृपणोः समर्थयोः। समः तुल्यः अर्थः ययोस्तौ। तयोः। सकन्ध्वादित्वात्पररूप। सम-तुल्य अर्थ जिनों का, विअवपूर्वक हृ धातु का अर्थ व्यवहार, पण धातु का अर्थ व्यवहार है अतः समर्थ, समानार्थक व्यवहृ धातु के और पण धातु के शेषत्वेन विवक्षित कर्म में षष्ठी हो। व्यवहार और पणन का द्यूत में समानार्थकत्व है। क्योंकि द्यूत अक्षों से खेलने में और क्रय-विक्रय मूल्य संवाद में अर्थात् सट्टा में समानार्थकत्व है। शतस्य व्यवहरणम्, एवम् शतस्य पणनम्। और स्तुत्यादि अर्थ में समानार्थ व्यवहार अर्थ न होने से षष्ठी नहीं होगी। तो 'प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते' इससे समास विषेध नहीं होगा। ब्राह्मणपणनम्। ब्राह्मणस्तुतिः। यहां स्तुत्यर्थ में समास हो जायगा।

दिव इति। तदर्थस्य, तत् शब्द से पूर्व सूत्रोपात्त व्यवहार और पणन का ग्रहण होगा, तो यह अर्थ होगा। द्यूतार्थक अथवा क्रयविक्रय व्यवहारार्थक दिव धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति हो, शतस्य दीव्यति। सौ रुपये का ग्लह, पण करता है।

विभाषेति। उपसर्ग सहित दिव धातु के योग में कर्म से विकल्पेन षष्ठी हो। शतस्य शतं वा प्रतिजानीते। सौ रुपये के पणन-दांव-की अथवा व्यवहार-सट्टा की प्रतिज्ञा करता है, अतः कर्म में षष्ठी और पक्ष में कर्मत्वात् द्वितीया हुई।

प्रेष्येति। देवता संप्रदानं यस्य, तस्मिन्। देवता संप्रदान विषयक

अनयोः कर्मणो हविर्विशेषस्य वाचकाच्छब्दात् षष्ठी स्यात्। अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा। **कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे । २ । ३ । ६४** अत्र शेषे षष्ठी स्यात्। पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम्। द्विरह्नो भोजनम्। **कर्तृकर्मणोः कृति ।२।३।६४।** कृष्णस्य कृतिः, जगतः कर्ता। गुणकर्मणि वेष्यते।*। नेताऽश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा।

अर्थ में विद्यमान प्रेष्य और ब्रू धातु का कर्म हविषविशेष वाचक शब्द से षष्ठी हो। अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य, अनुब्रूहि वा। अध्वर्युं मैत्रावरुण से कहता है। हे मैत्रावरुण अग्नि के उद्देश्य से दी जा रही छाग सम्बन्धी वपाख्य अर्थात् वसा—चर्बी मेदास्वरूप हवि को भेज दो। तो देवतोद्देश्यक दीयमान हविर्विशेष वाचक वपा है और वह प्रेष्य, और अनुब्रूहि का कर्म है अतः वपायाः मदसः से षष्ठी है।

कृत्व इति। कृत्वोऽर्थप्रयोगे इति। कृत्वसुच् प्रत्ययस्य अर्थ इव अर्थो येषां ते। तेषाम्। कृत्वसुजर्थक प्रत्यय के प्रयोग में कालवाची अधिकरण की शेषत्व विवक्षा में षष्ठी हो। पंचकृत्वः अह्नः भोजनम्। अहन् शब्द से शेष में षष्ठी है। एवम् द्विरह्नो भोजनम्। कृत्वसुच् के अर्थ में द्वि शब्द से सुच् प्रत्यय है। अधिकरणत्व की अविवक्षा में षष्ठी। द्विरह्नो भोजनम्।

कर्तृकर्मणोरिति। कृत् प्रत्यय के योग में कर्ता और कर्म में षष्ठी हो। कृष्णस्य कृतिः। कृदन्त क्तिप्रत्ययान्त कृतिः है, उसके योग में कर्तृ संज्ञक कृष्ण से षष्ठी हुई। जगतः कर्ता। यहां तृच् प्रत्ययान्त कर्ता है। उसका कर्म जगत् है उससे षष्ठी हुई। जगतः कर्ता। गुणेति। अकथितं च सूत्र से अपादानादि अविवक्षाजन्य एक गौण कर्म और एक प्रधान कर्म है, तो यह अर्थ होगा। कृत्प्रत्यय के योग होने पर गौण कर्म में विकल्प से षष्ठी हो। पक्ष में अकथितं च से द्वितीया होगी। नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा। ग्रामम् अजां नयति के समान

उभयप्राप्तौ कर्मणि ।२।३६६। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन । स्त्रीप्रत्यययोर काकारयोर्नायं नियमः ।%। भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः । शेषे विभाषा ।%। स्त्रीप्रत्यय इत्येके । विचित्रा जगतः कृतिर्हरेर्हरिणा वा । केचि-

मुष्न गौण कर्म है, अतः इससे विकल्प से षष्ठी, और पक्ष में द्वितीया होगी ,और प्रधान कर्म अश्व से षष्ठी ही होगी ।

उभयेति । उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन् , तस्मिन् , जिस एक वाक्य में कर्ता और कर्म दोनों से षष्ठी प्राप्त हो वहाँ कर्म से ही षष्ठी हो अर्थात् कर्ता से न हो । आश्चर्यो गवां दोहः अगोपेन । यहाँ दोहन क्रिया का कर्ता अगोप है और गो कर्म है । तो केवल कर्म वाचक गो शब्द से षष्ठी होगी, कर्तृवाचक अगोप से षष्ठी नहीं होगी किन्तु कर्तृत्वात् कर्तृकरणयोः० से तृतीया होगी । स्त्रीप्रत्यययोरिति । स्त्रीप्रत्ययान्त अक-युवोरनाकौ से जात अक और अप्रत्यात् से उत्पन्न अप्रत्यय के विषय में, उभयप्राप्तौ० से कर्म में ही षष्ठी हो यह नियम नहीं है, किन्तु तद्विषय में कर्ता कर्म दोनों से षष्ठी होगी। भेदिका रुद्रस्य जगतः । यहाँ कृत्ण्वुल् से जात अक के योग में रुद्र कर्ता से और जगत् कर्म से षष्ठी हो गई । एवम् रुद्रस्य जगतः बिभित्सा । यहाँ अप्रत्ययान्त कृत् के योग में कर्म में ही षष्ठी हो यह नियम नहीं लगा, तो कर्ता रुद्र से और कर्म जगत् से दोनों से षष्ठी हुई । 'रुद्र कर्तृकं जगत्कर्मकं भेदनं, भेदनेच्छा वा' यह शाब्द बोध होगा । शेषे विभाषा' शेष में विकल्प से अर्थात् स्त्री प्रत्यय अक और अप्रत्यय से अतिरिक्त कृत्प्रत्यय के योग में विकल्प से उभय प्राप्तौ यह नियम लगैगा, अर्थात् कर्म में ही षष्ठी हो और कर्ता कर्म दोनों में न हो, यह नहीं । यह वैकल्पिक नियम स्त्रीप्रत्यय में ही होता है यह कोई आचार्य मानते हैं । विचित्रा जगतः कृतिः हरेः । यहाँ अक और अप्रत्यय से रहित शेष, ति प्रत्यय है, उसमें विकल्प से उक्त नियम लगेगा । जहाँ नियम नहीं लगा वहाँ कर्ता और कर्म दोनों से षष्ठी हुई । विचित्रा जगतः हरेः कृतिः । जगत् कर्म से

दविशेषेण विभाषामिच्छन्ति । शब्दानामनुशासनमाचार्येणाचार्यस्य वा। **क्तस्य च वर्तमाने** ।२।३।६७। न लोकेत्यस्यापवादः। राज्ञां मतो, बुद्धः, पूजितो वा। **अधिकरणवाचिनश्च** ।२।३।६८। क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्। इदमेषामासितं शयितं गतं भुक्तं वा। **न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्**

और हरि कर्ता से षष्ठी हुई, और जहाँ उक्त नियम लगा, वहाँ विचित्रा जगतः कृतिः हरिणा यहां केवल जगत् कर्म से षष्ठी होगी और हरि कर्ता से कर्तृत्वात् तृतीया होगी। अन्य आचार्य स्त्री प्रत्यय में ही वैकल्पिक कर्तृ कर्मणोः षष्ठी का नियम हो यह नहीं किन्तु अविशेष से स्त्रीप्रत्यय से अतिरिक्त भी कृत्प्रत्यय के योग में विकल्प से नियम हो। शब्दानाम् अनुशासनम् आचार्येण, आचार्यस्य वा। यहां अनुशासनम् ल्युडन्त नपुंसक लिङ्ग है स्त्रीप्रत्यय से अतिरिक्त है। शब्दानाम् अनुशासनम् आचार्येण में नियम लगने से 'शब्द' शब्द से षष्ठी हुई और नियम न होने से पक्ष में आचार्य शब्द से षष्ठी होगी। शब्दानाम् अनुशासनम् आचार्यस्य।

(क्तस्येति)· वर्तमान अर्थ में समुत्पन्न क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी हो। राज्ञां मतः, 'कर्तृकर्मणोः' से प्राप्त षष्ठी का 'न लोकाव्यय' से निषेध प्राप्त था। उसका अपवाद षष्ठी का प्रतिप्रसव है। 'मति बुद्धि पूजार्थेभ्यश्च' से वर्तमान अर्थ में क्त प्रत्यय है। एवं राज्ञां बुद्धः पूजितः इत्यादि जानना।

(अधिकरणेति) अधिकरण वाची क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी हो। इदमेषाम् आसितम्, शयितम् गतम्, भुक्तम्। यहां अधिकरण वाचक क्त प्रत्ययान्त शयित आदि से एदम् का योग है अतः एषाम् यह षष्ठी अधिकरणवाचिनश्च• से अधिकरण में क्त प्रत्यय है। शयितम् गतम्। आसितम् भुक्तम् इत्यादि। शेते अस्मिन् इति शयितम्। इसी तरह अन्य भी जानना।

न लोकेति। 'ल' ल के स्थान में शतृ शानच् आदि आदेश उ प्रत्यय एवम् उक अव्यय निष्ठा, निष्ठा संज्ञक क्त क्तवतु प्रत्यय

।२।३।२६। लादेशः–कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः। उः-हरिं दिदृक्षुः, अलंकरिष्णुर्वा। उक-दैत्यान् घातुको हरिः। कमेरनिषेधः। * लक्ष्म्याः कामुको हरिः। अव्ययम्-जगत् सृष्ट्वा, सुखं कर्तुम्। निष्ठा-विष्णुना हता दैत्याः, दैत्यान् हतवान् विष्णुः। खलर्थाः–ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा। तृन्निति प्रत्याहारः। शतृशानचाविति तृशब्दादारभ्य आ तृनो नकारात्

खलर्थक प्रत्यय और तृन् प्रत्याहारान्तर्गत प्रत्ययान्तों के योग होने पर षष्ठी न हो। कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः। यहां कुर्वन् शतृप्रत्ययान्त लादेश है और कुर्वाणः शानच् प्रत्ययान्त लादेश है उसके योग में सृष्टि से षष्ठी नहीं हुई। हरिं 'दिदृक्षुः' उ प्रत्ययान्त है। 'सनाशंसभिक्ष उः से उप्रत्यय है। अतः हरि से षष्ठी नहीं हुई। एवम् अलं करिष्णुः। उक दैत्यान् घातुको हरिः, यहां उक प्रत्ययान्त घातु के योग में दैत्य से षष्ठी नहीं हुई। 'कमेरनिषेधः' उक प्रत्ययान्त कम धातु के योग में निषेध न हो। उक प्रत्ययान्त कामुक से लक्ष्म्याः का योग होने से 'न लोकाव्यय' से निषेध प्राप्त था नहीं हुआ। लक्ष्म्याः कामुकः हरिः। जगत् दृष्ट्वा। यहां 'क्त्वा तोसुन् कसुनः' से क्त्वा प्रत्ययान्त अव्यय है। अतः जगत् शब्द से षष्ठी नहीं हुई। एवं सुखं कर्तुम्' में कृन्मेजन्तः से कर्तुम् की मान्तत्वात् अव्यय संज्ञा है। विष्णुना हता दैत्याः, क्त प्रत्ययान्त निष्ठा, दैत्यान् हतवान् विष्णुः। क्तवतु प्रत्ययान्त निष्ठा है इसके योग में दैत्य से षष्ठी नहीं हुई। हरिणा प्रपंचः ईषत्करः। ईषद्दुःसुषु० से खल् प्रत्यय है। अतः हरि शब्द से षष्ठी नहीं हुई। तृन् प्रत्याहार का ग्राहक है। अतः तदन्तर्गत जितनी प्रत्यय हैं उन के योग में षष्ठी नहीं होगी, शानच् प्रत्ययान्त में सोमं पवमानः। सोम से षष्ठी नहीं हुई। पूङ् धातु से 'पूङ्यजोः शानच्' से शानच् प्रत्यय है। चानश् का उदाहरण--आत्मानं मण्डयमानः। मडि धातु से 'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्' इससे चानश् प्रत्यय है। शतृ प्रत्यय का उदाहरण–इङ् अध्ययने। इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि' से शतृ

शानच् सोमं पवमानः, चानश्–आत्मानं मण्डयमानः। शतृ–वेदमधीयन्। तृन्–कर्त्ता लोकान्। द्विषः शतुर्वा। *। मुरस्य मुरं वा द्विषन्। सर्वोऽप्ययं कारकषष्ठ्याः प्रतिषेधः शेषे षष्ठी तु स्यादेव। ब्राह्मणस्य कुर्वन्, नरकस्य जिष्णुः। **अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः** ।२।३।७०। भविष्यत्यकस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थेनश्च योगे षष्ठी न

प्रत्यय है। अतः वेदमधीयन् में वेदम् से षष्ठी नहीं हुई। तृन् का उदाहरण—कर्ता लोकान्। तृन् सूत्र से तृन् प्रत्यय। अतः उक्त सूत्र से षष्ठी का निषेध हो गया। लोकान् द्वितीया हुई। 'द्विषः शतुर्वा' शतृ प्रत्ययान्त द्विष् धातु का योग होने पर विकल्प से निषेध हो। मुरं द्विषन् जहां षष्ठी का निषेध नहीं हुआ वहां मुरस्य द्विषन्। यहां सब निषेध-विधायक सूत्र कारक षष्ठी के, निषेधक है। परन्तु कर्त्राद्यविवक्षा में शेष षष्ठी तो होगी ही। तो फिर निषेध विधायक सूत्रों का फल क्या होगा। शाब्द बोध में केवल भेद है। ब्राह्मणस्य कुर्वन्। शतृ प्रत्ययान्त कुर्वन् के योग में भी ब्राह्मण शब्द से षष्ठी हुई। एवम् नरकस्य जिष्णुः में जि धातु से स्नु प्रत्यय है। उभयत्र कर्मत्व की अविवक्षा में षष्ठी है, और कर्मत्व की विवक्षा में उभयत्र द्वितीया ही होगी। ब्राह्मणं कुर्वन् इत्यादि।

(अकेनोरिति) अक और इन् द्वन्द्व समास एवं भविष्यत् आधमर्ण्य का द्वन्द्व समास है, परंतु भाष्यादि व्याख्या प्रमाण्य से यहाँ यथासंख्य नहीं है, तो यह अर्थ होगा, कि भविष्यत् अर्थ में जो अकप्रत्ययान्त और भविष्यत् तथा आधमर्ण्य अर्थ में जो इन प्रत्ययान्त उनका योग होने पर षष्ठी न हों, सतः पालकः, कृदन्त है। कर्तृ कर्मणोः से षष्ठी प्राप्त थी भविष्यदर्थक अक प्रत्ययान्त पालक का योग है अतः षष्ठी नहीं हुई, सतः—सज्जनान् पालयिष्यन् हरिः अवतरति, 'तुमुन्ण्वुलौ क्रियार्थायां क्रियायाम्' से भविष्यत् अर्थ मेण्वुल् है। व्रजं गामी। भविष्यत् अर्थ में णिनि प्रत्यय है, क्योंकि भविष्यति गम्यादयः उणादि सूत्र है। शतंदायी, यहां आवश्यकाधमर्ण्ययोः से आधमर्ण्य अर्थ में णिनि प्रत्यय

स्यात् । सतः पालकोऽवतरति व्रजं गामी, शतं दायी । **कृत्यानां कर्तरि वा ।२।३।७१।** मया मम वा सेव्यो हरिः । अत्र योगो विभज्यते, कृत्यानाम् इति । तत्र उभयप्राप्तौ, न इति च अनुवर्तेते । कृत्यानां योगे उभयप्राप्ता विदं स्यात् । तेन नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन । ततः कर्तरि वा । **तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् । २।३।७२ ।** तुल्यः, सदृशः, समो वा कृष्णस्य कृष्णेन । अतुलोपमाभ्यामित्युक्तेर्नेह । तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति । **चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः । २ । ३७३ ।** एतदर्थैर्योगे आशिषि चतुर्थी वा स्यात्, पक्षे षष्ठी । आशिषि-आयुष्यं चिरं जीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात् । एवं

है । शतं दायी, शतं प्रत्यर्पयति । शत शब्दसे षष्ठी नहीं हुई । किंतु कर्मत्वात् द्वितीया हुई ।

(कृत्यानामिति) कृत्यप्रत्ययान्तों के योग में कर्ता में षष्ठी विकल्प से हो । मया मम वा सेव्यः । यहाँ ऋहलोर्ण्यत् से ण्यत्, कृत्याः के अधिकार में है । कृत् योगा नित्य षष्ठी प्राप्त थी, विकल्प से हुई पक्ष में तृतीया । नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन, यहां उभयप्राप्तौ कर्मणि प्राप्त था । कृत्यानाम् सूत्रांश पृथक्, उभय प्राप्तौ और न पद की कृत्यानाम् सूत्र में अनुवृत्ति है, तो यह अर्थ होगा कि कृत्यप्रत्यय के योग में उभय प्राप्तौ यह सूत्र नहीं प्रवृत्त होता, अतः कर्म में षष्ठी नहीं हुई । कर्ता में नित्य षष्ठी प्राप्त थी । तदनन्तर कर्त्तरि वा, अर्थ उदाहरण उक्त है । यहाँ नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन में भी विकल्प से षष्ठी होगी । तुल्येति । तुला उपमा शब्द के अतिरिक्त तुल्यार्थक शब्दों का योग होने पर तृतीया हो पक्ष में षष्ठी, तुल्यः सदृशः कृष्णेन कृष्णस्य वा नास्ति । तुला अथवा उपमा शब्द के योग में तृतीया नहीं होगी किन्तु षष्ठी ही होगी । कृष्णस्य तुला, इत्यादि । चतुर्थीति । आयुष्य मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित, एतदर्थक शब्दों के योग होने पर आशीर्वाद में चतुर्थी विकल्प से हो पक्ष में षष्ठी हो । आशीर्वाद में आयुष्यं, चिरं जीवितम् कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात् । सिद्धासिद्धि । सिद्धासिद्धि । भूयात् से

मद्रं भद्रं कुशलं निरामयं सुखं शम् अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा भूयात्। **आधारोऽधिकरणम्** ।१।४।४५। कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसंज्ञं स्यात्। **सप्तम्यधिकरणे च** ।२।३।३६। चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः इति द्वितीया- तृतीया-पञ्चम्यो भवन्ति। तत्र औपश्लेषिको वैषयिकः अभिव्यापकश्चेति त्रिधा आधारः। कटे आस्ते,

---

आशीर्वाद स्पष्ट है। आयुष्य समानार्थक चिरं जीवितं है। एवम्, मद्रं, भद्रं, कुशलम् शम्, कल्याणं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्, इत्यादि में चतुर्थी षष्ठी दोनों होगी।

(आधार इति) कर्तृ कर्मद्वारा कर्तृ कर्मनिष्ठा जा क्रिया उसका आधार कारक संज्ञक होते हुये अधिकरण संज्ञक हो।

(सप्तमीति) अधिकरण में सप्तमी विभक्ति हो। सूत्रस्थ चकार से दूरान्तिकार्थेभ्यः० से द्वितीया तृतीया पञ्चमी और सप्तमी के सहित चार विभक्तियाँ होती है। वह आधार तीन प्रकार का होता है, औपश्लेषिक वैषयिक और अभिव्यापक। कर्तृ द्वारा कर्तृनिष्ठ औपश्लेषिक का उदाहरण कटे आस्ते कुमारः, कर्ता कुमार का कट के साथ आसन क्रिया द्वारा संयोग संबन्ध है। अतः औपश्लेषिक आधार कट की अधिकरण संज्ञा। अधिकरणत्वात्सप्तमी। कर्म द्वारा के औपश्लेषिक का उदाहरण कहते हैं। स्थाल्याम् तण्डुलान् पचति। यहाँ तण्डुलात्मक कर्म का पाकक्रिया के प्रति स्थाली के साथ संयोग सम्बन्ध है, अतः कर्मगत आधारत्वात् अधिकरण में सप्तमी। मोक्षे इच्छाऽस्ति। विषयता सम्बन्ध से इच्छा का आधार मोक्ष है अतः उसकी अधिकरण संज्ञा, और उससे सप्तमी। अभिव्यापक का उदाहरण, सर्वस्मिन् आत्मा अस्ति। यहाँ आत्मा की सत्ता का आधार व्याप्ति द्वारा सब है, अतः आत्मा के अभिव्यापक आधार सर्व से अधिकरणत्वात्सप्तमी हुई। 'सप्तम्यधिकरणे च' में चकार ग्रहण है, उससे दूरान्तिकादिकों के योग में सप्तमी भी होगी। वनस्य दूरे दूरं दूरेण दूराद्वा ग्रामोऽस्ति। यहाँ द्वितीयादिक चारों विभक्तियां होगी। 'क्तस्येन्विषयस्य' इति इन प्रत्यः

स्थाल्यां पचति, मोक्षे इच्छाऽस्ति, सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति, वनस्य वनं वनेन वनाद्वा दूरे अन्तिके वा । क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् * अधीती व्याकरणे । साध्वसाधुप्रयोगे च । * । साधुः कृष्णो मातरि, असाधुर्मातुले । निमित्तात्कर्मयोगे । * । निमित्तमिह फलम् । योगः संयोगः समवायात्मकः । चर्मणि द्वीपिनं हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् । केशेषु चमरीं हन्ति, सीम्नि पुष्कलको हतः । हेतौ तृतीया प्राप्ता तन्निवारणार्थम् ।

यान्त जो क्तप्रत्यय, तदन्त प्रातिपदिक के कर्म में सप्तमी हो । अधीती, यह इन् प्रत्ययान्त क्त प्रत्यय है तदन्त प्रातिपदिक अधीती है, उसका कर्म व्याकरण है उससे सप्तमी हुई । अधीती व्याकरणे । साध्वसाध्विति साधु तथा असाधु शब्द के प्रयोग में सप्तमी हो । साधुः कृष्णो मातरि । यहाँ षष्ठी शेषे से मातृशब्द से षष्ठी प्राप्त थी सप्तमी हुई । साधुः कृष्णो मातरि । एवम् असाधुः कृष्णो मातुले, यहाँ असाधु के प्रयोग में मातुल से सप्तमी हुई । 'निमित्तादिति' कर्मयोग होने पर निमित्तवाचक से अर्थात् हेतुवाचक शब्द से सप्तमी विभक्ति हो । निमित्त शब्द से यहाँ फल का ग्रहण है, क्योंकि किंचिन्निमित्त से ही प्रवृत्ति होती है, अर्थात् प्रवृत्ति का कारण है, इष्टसाधनताज्ञान, तत्प्रवर्तक फल ही है अतः निमित्तमिह फलम् कहा है । योग शब्द से समवायसम्बन्धादिकों का ग्रहण है । उदाहरण-चर्मणि द्वीपिनं हन्ति, द्वीपि-व्याघ्र और चर्मका समवाय सम्बन्ध है, तो यहाँ हनन क्रिया का हेतु क्या है चर्म, तद्वाचक चर्मन् से सप्तमी हुई । एवम् दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्, यहाँ भी कर्मकुञ्जर के साथ दन्तों का समवाय सम्बन्ध है अतः हस्तिहनन प्रवृत्ति का हेतु दन्त हैं उससे सप्तमी हुई । एवम् 'केशेषु चमरीं हन्ति' यहाँ चमरी और केशों का समवाय सम्बन्ध है । हननहेतु-निमित्तवाचक केश से सप्तमी हुई । सीम्नि पुष्कलको हतः, सीमन्-कस्तूरिका का वाचक है, पुष्कलक-मृगविशेष, जिसकी नाभि में कस्तूरी होती है, पूर्ववत् कस्तूरिका का और पुष्कलक का समवाय संबन्ध है । अतः निमित्त-सीमन् से सप्तमी हुई । हेतौ से तृतीया प्राप्त थी उसका बाधक है ।

यस्य च भावेन भावलक्षणम् ।२।३।३७। यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः सप्तमी स्यात् । गोषु दुह्यमानासु गतः । ब्राह्मणेषु अधीयानेषु आयातः । अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च * । सत्सु तरत्सु

(यस्यचेति) भाव शब्द क्रिया वाचक है, भावो भावना उत्पादना क्रिया च । ये सब भाव शब्द वाच्य हैं । उभयत्र भावशब्द से क्रिया का ग्रहण है । तो यह अर्थ होगा, यस्य भावेन यत्सम्बन्धि क्रियया, भावलक्षणम्, भावस्य लक्षणम्, क्रियान्तरं लक्ष्यते । जिसकी क्रिया से क्रियान्तर लक्षित होता है, उससे सप्तमी क्रिया हो दो प्रकार की । कर्ताश्रया और कर्माश्रया, कर्माश्रया का उदाहरण-गोषु दुह्यमानासु गतः । प्रश्न होता है, देवदत्तः कदा गतः ? उत्तर है-'गोषु दुह्यमानासु गतः । यहां गोसम्बन्धिनी दोहन क्रिया से क्रियान्तर देवदत्त गमन लक्षित है, अतः गोशब्द से सप्तमी हुई । तद् विशेषण दुह्यमानासु मे भी सप्तमी हुई । कर्ताश्रया का उदाहरण, आधीयानेषु ब्राह्मणेषु आगतः साधुः । यहां ब्राह्मण सम्बन्धिनी अध्ययन क्रिया से साध्वागमन क्रिया लक्षित होती है अतः ब्राह्मणशब्द से सप्तमी हुई । अर्हाणामिति । अर्हाणां कृर्तृत्वे अनर्हाणाम् अकर्तृत्वे सप्तमी ॥ अनर्हाणाम् अकर्तृत्वे अर्हाणां कर्तृत्वे च सप्तमी ।२। तद्वैपरीत्ये च । अर्हाणाम् अकर्तृत्वे अनर्हाणां कर्तृत्वे, सप्तमी ३ अनर्हाणां कर्तृत्वे अर्हाणाम् अकर्तृत्वे च सप्तमी । ये चार प्रकार के अर्थ भेद होते हैं। उदाहरणों में स्पष्ट है (१) सत्सु तरत्सु असन्त आसते । यहां अर्हयोग्य सन्तों के तरने पर असन्त बैठते हैं, तो अर्हों का कर्तृत्व और अनर्हों का अकर्तृत्व है अतः सत्सु में सप्तमी हुई और तरत्सु विशेषण में भी सप्तमी हुई । (२) असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति । यहां असत्सु तिष्ठत्सु इससे स्पष्ट है अनर्हों का अकर्तृत्व और सन्तस्तरन्ति से अर्ह-पूज्य सन्तों का कर्तृत्व है । (३) सत्सु तिष्ठत्सु से अर्हों का अकर्तृत्व और असन्तः तरन्ति से अनर्हों का कर्तृत्व है (४) एवम् असत्सु तरत्सु से अनर्हों का कर्तृत्व है और सन्तस्तिष्ठन्ति से अर्हों का अकर्तृत्व है । षष्ठीति । 'यस्य च भावेन' सूत्र

असन्तस्तिष्ठन्ति, असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति। सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति। असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति। **षष्ठी चानादरे** ।२।३।३८। अनादरे गम्यमाने यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः षष्ठी चात्सप्तमी। रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत्। रुदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य संन्यस्तवानित्यर्थः। **स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च** ।२।३।३९ गवां गोषु वा स्वामी, गवां गोषु वा प्रसूतः। **आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्** ।२।३।४०। आभ्यां योगे तौ स्तः। औत्सुक्येऽर्थे। आयुक्तः, कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा। **यतश्च निर्धारणम्** ।१।३।४१।

की अनुवृत्ति है। अनादर अर्थ प्रतीयमान होने पर जिसकी क्रिया से क्रियान्तर लक्षित हो उससे षष्ठी हो और चकार ग्रहण से सप्तमी भी हो, कदा प्रव्रजितः? प्रश्न है, रुदति, रुदतो वा प्राव्राजीत्, यहाँ रोदन क्रिया से अनादर गम्यमान है, और रोदन क्रिया से प्रव्रजन लक्षित है अतः षष्ठी सप्तमी दोनों विभक्तियां हुईं। पूर्वसूत्र से सिद्ध था, षष्ठी विधानार्थं सूत्र है, रुदन्तं पुत्रादिकम् अनादृत्य संन्यस्तवान्। स्वामीति। स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षि, प्रतिभू, प्रसूत, इनके योग होने पर षष्ठी सप्तमी हो। स्वस्वामिभावादि संबन्ध में षष्ठी मात्र प्राप्त थी उभय विधानार्थ सूत्र है। गवां गोषु वा स्वामी इत्यादि।

(आयुक्तेति) उक्त पदों के योग में षष्ठी सप्तमी हो। आसेवा तत्परता, अर्थात् औत्सुक्य अर्थ में, आङ् ईषदर्थे। हरिपूजने आयुक्तः ईषद्युक्त इत्यर्थः, एवं हरि पूजनस्य आयुक्तः। हरिपूजनस्य हरिपूजने वा कुशल इत्यर्थः।

(यतश्चेति) जिस समुदाय से निर्धारण पृथक् करण हो उससे षष्ठी सप्तमी हों। निर्धारण क्या? उसका स्वरूप कहते हैं। भाष्यकार ने कहा है, चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः, जातिशब्दाः, गुणशब्दाः क्रियाशब्दाः सन्ति यदृच्छा शब्दाश्च। उसी तात्पर्य को लेकर व्याख्या है, कि जातिवाचक

जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणम्, यत्समुदायान्निर्धारणं ततः षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः। गवां गोषु वा कृष्णा गौः बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः। **पञ्चमी विभक्ते** निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पञ्चमी ।२।३।४२। माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य

गुणवाचक क्रियावाचक संज्ञावाचक शब्दों से एकदेश का जो पृथक् करण है वह निर्धारण कहाता है। उससे षष्ठी सप्तमी हो। जाति शब्द से निर्धारण नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः, यहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र समुदायात्मक मनुष्य समुदाय में जातिवाचक ब्राह्मण शब्द से पृथक् करण श्रेष्ठत्वेन पृथक् करण है, तो जिस समुदाय से पृथक् करण है उससे षष्ठी सप्तमी होगी, तो यहां नृ मनुष्यों से पृथक् करण है अतः नृ शब्द से षष्ठी सप्तमी नृणां नृषु हुआ। एवम्, गवां गोषु कृष्णा गौः बहुक्षीरा। यहां गुणवाचक कृष्ण शब्द से गो समुदाय से पृथक् करण बहुक्षीरत्व धर्म से पृथक् करण है, अतः गो समुदाय से पृथक् करण है इस लिये गो शब्द से षष्ठी सप्तमी हुई। एवम् क्रिया शब्द से, गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। यहां गमनवत्समुदाय से धावन क्रिया से शीघ्रत्वेन पृथक्करण है, अतः गमन क्रियावान् गच्छतां गच्छत्सु में षष्ठी सप्तमी हुई। एवं छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः। यहां मैत्र संज्ञा वाचक शब्द है, अतः छात्र समुदाय से संज्ञा वाचक मैत्र का पटुत्वेन पृथक् करण है अतः षष्ठी सप्तमी हुई।

(पञ्चमीति) विभागो विभक्तम्। भाव में क्त प्रत्यय है। निर्धार्यमाण का जहां भेद हो, कथमपि अभेद न हो सके वहां पञ्चमी हो। माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः। मथुरा निवासी, पटना निवासियों से अत्यधिक आढ्य-धनी है। यहाँ हिम विन्ध्य के समान सर्वथा भेद ही है, अभेद कथमपि नहीं है अतः समुदाय से पृथक्करण नहीं है अतः षष्ठी सप्तमी नहीं हुई। किन्तु पञ्चमी हुई।

आढ्यतराः। साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः।२।३।४३। मातरि साधुर्निपुणो वा। अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम्।*। साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति पर्यनु वा। प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च।२।३।४४। चात्सप्तमी। प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा। नक्षत्रे च लुपि २।३।४५। नक्षत्रे प्रकृत्यर्थे यो लुप्संज्ञया लुप्यमानस्य प्रत्ययस्यार्थस्तत्र वर्तमानात्तृतीयासप्तम्यौ स्तोऽधिकरणे। मूलेनावाहयेद् देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्, मूले श्रवणे इति वा। सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये।२।३।७। शक्तिद्वयमध्ये

(साध्विति) साधु और निपुण शब्द के योग होने पर सप्तमी हो, अर्चा अर्थ में प्रयोग होने पर न हो। मातरि साधुर्निपुणो वा। मातृ से साधु का योग है अतः सप्तमी हुई। अप्रतेः से प्रति इत्यादिक प्रति परि अनु का ग्रहण करना यह वार्तिककार कहते हैं। तो प्रति परि अनु के योग में सप्तमी नहीं होगी। साधुः कृष्णो मातरं प्रति, परि, अनु वा। यहां साध्वसाधु प्रयोगे च सप्तमी सिद्ध थी फिर यह सूत्र प्रत्यादि योग में सप्तमी निषेधार्थ है।

प्रसितेति। प्रसित और उत्सुक शब्द से योग होने पर तृतीया हो, चकार से सप्तमी हो। प्रसितः उत्सुको वा हरिणा हरौ वा। यहाँ हरि शब्द से उक्त पदों का योग है, अतः हरिणा तृतीया, हरौ सप्तमी हुई। नक्षत्र इति। नक्षत्र प्रकृत्यर्थ होने पर लुप्संज्ञा से अर्थात् लुप् पदसे लोप की जाती जो प्रत्यय उसके अर्थ में विद्यमान, उससे तृतीया सप्तमी हो अधिकरण अर्थ में। मूलनक्षत्रेण युक्तः कालः इस अर्थ में 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इस सूत्र से अण् प्रत्यय, उसका 'लुब् विशेषे' से लुप्, यहाँ लुप् पद से लुप्यमान अण् प्रत्यय है उसके प्रकृत्यर्थ में विद्यमान मूलादि शब्द हैं उससे अधिकरण अर्थ में तृतीया सप्तमी हुई। "मूलेनावाहयेद् देवीं पूर्वायामेव पूजयेत्। उत्तरायां बलिं दद्यात् श्रवणेन विसर्जयेम्।" मूले, श्रवणे पक्ष में सप्तमी होगी।

सप्तमीति। यहाँ कारक पद कर्तृत्वादि शक्ति परक है, मध्यय पद दो के अन्तराल बीच का बोधक है, तो यह अर्थ होगा—शक्तिद्वय

यौ कालाध्वानौ ताभ्यामेते स्तः। अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता कर्तृशक्त्योर्मध्येऽयं कालः। इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्। कर्तृकर्मशक्त्योर्मध्येऽय देशः। अधिकशब्देन योगे सप्तमीपञ्चम्याविष्येते। ।*। लोके लोकाद्वा अधिको हरिः। **अधिरीश्वरे** ।१।४।९७। स्वस्वामिसम्बन्धे अधिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञः स्यात्। **यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी**। २।३।९। अत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी। उपपराधिका

मध्यगत काल अथवा अध्व वाचक जो शब्द उससे सप्तमी और पंचमी विभक्ति हों। जैसे अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहात् वा भोक्ता। यह आज भोजन करके दो दिन के बाद भोजन करैगा। आज भोजन करने वाला और दो दिन के बाद भोजन करने वाला एक ही कर्ता है अतः उसकी शक्ति का मध्यगत काल वाचक द्व्यह शब्द है उससे सप्तमी और पंचमी हो गयी। इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद् वा लक्ष्यं विध्येत्। यहाँ वेध करने वाला कर्ता और लक्ष्य वेध रूप कर्म के मध्यगत शक्ति है अतः अध्व वाचक क्रोश शब्द से सप्तमी पंचमी हुई, कर्तृत्वकर्मत्वरूप शक्त्योर्मध्येऽयं क्रोशः। अधिक शब्द के योग में सप्तमी पंचमी हों, लोक शब्द से अधिक पदका योग है अतः सप्तमी पंचमी हुई, लोके, एवं लोकात्, अधिकः हरिः। लोक से अधिक हरि हैं।

अधिरिति। ईश्वरे-स्वस्वामिसंबन्ध में अधि कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो।

यस्मादिति। जिससे अधिक हो अर्थात् यत् सम्बन्धी ईश्वरोक्ति हो उससे कर्मप्रवचनीय योग होने पर सप्तमी हो। यहां 'उपोधिके च' से उपकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा है। तद्युक्त परार्ध से सप्तमी विभक्ति हुई। उपपरार्धे हरेर्गुणाः। परार्द्धात् अधिकाः इत्यर्थः। 'यस्य चेश्वरवचनम्' यत्सम्बन्धी ईश्वर कहा जाता है उससे सप्तमी हो। अर्थात् स्व वाचक शब्द से सप्तमी हो इति। अथवा ईश्वर शब्द भाव प्रधान है। यस्य ईश्वरत्वमुच्यते ततः सप्तमी स्यात्, अर्थात् जिसका ईश्वरत्व कहा जाय उससे सप्तमी हो, स्वस्वामिभाव में सप्तमी हो यह फलितार्थ है। [illegible]

हरेर्गुणाः। ऐश्वर्ये तु स्वस्वामिभ्यां पर्यायेण सप्तमी। अधिभुवि रामः, अधिरामे भूः। समासे-रामाधीना। विभाषा कृञि।१।४।९८। अधिः कृञो योगे प्राक्संज्ञः स्यादीश्वरेऽर्थे। यदत्र मामधिकरिष्यति। अगतित्वात् तिङि चोदात्तवति इति निघातो न। इति विभक्त्यर्थाः।

अर्थ में स्व और स्वामि वाचक से पर्यायेण सप्तमी होगी। अर्थात् जब स्व वाचक से होगी तब स्वामि वाचक से नहीं होगी, और जब स्वामि वाचक से होगी तब स्व वाचक से नहीं होगी। उदाहरणयथा-अधिभुवि रामः; भुवः स्वामी रामः, यहां अधिभू शब्द से सप्तमी हुई, अधि-ईश्वर पर्याय बोधक है, अधिरीश्वरे इत्यादि प्रामाण्य से, तो यह स्व वाचक से सप्तमी होने का उदाहरण है। स्वामिवाचक से सप्तमी का उदाहरण कहते हैं। अधिरामे भूः। यहाँ अधि-स्वशब्द पर्याय है सम्बन्ध सप्तम्यर्थ है। रामस्य स्वभूता भूः इत्यर्थः, यहां स्वामिवाचक राम से सप्तमी हुई, और समास विवक्षा में 'सप्तमी शौण्डैः' से समास० अषडक्षा० दि सूत्र से ख प्रत्यय, ख को ईन आदेश, रामे अधि इति रामाधीना।

(विभाषेति) कृञ् का योग होने पर अधि कर्मप्रवचनीय संज्ञक विकल्प से हो ईश्वर अर्थ में, अर्थात् प्रभुत्व अर्थ द्योत्य हो। यदत्र माम् अधिकरिष्यति, मुझे अधिकारी करैगा, यहाँ अधिपद से ईश्वर अर्थ द्योत्य है, अर्थात् नियोजनाधिपत्य प्रतीयमान है अतः कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई। कर्मप्रवचनीयत्वात् गति संज्ञा नहीं हुई, तो 'तिङि चोदात्तवति' से निघात नहीं हुआ, अतः निपातैर्यद्यदिह० से यत् नहीं हुआ। माम् में 'कर्मप्रवचनीययुक्ते' से द्वितीया।

इति श्री म० म० मथुराप्रसाद दीक्षित कृतौ-

कारकप्रकरणं समाप्तम्